MAPS-204

भारत में लोक प्रशासन : उत्तराखण्ड राज्य के विशेष सन्दर्भ में

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी ,263139

फोन नं. : 05946-261122, 261123

टोल फ्री नं.: 18001804025

फैक्स नं.: 05946-264232

ई-मेल :info@uou.ac.in , http://uou.ac.in

पाठयक्रम समिति

प्रो. गिरजा प्रसाद पाण्डे **निदेशक –समाज विज्ञान विद्या शाखा** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी नैनीताल	**प्रो.अजय सिंह रावत** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी नैनीताल
प्रो0 एम0एम0 सेमवाल राजनीति विज्ञान विभाग केन्द्रीय विश्वविद्यालय,गढवाल	**प्रो.मधुरेन्द्र कुमार (विशेष आमंत्रित सदस्य)** राजनीति विज्ञान विभाग कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल
डॉ0ए0के0 रुस्तगी रीडर राजनीति विज्ञान विभाग जे0एस0पी0जी0 कॉलेज अमरोहा	**डॉ0 सूर्य भान सिंह** असिस्टेन्ट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल
डॉ घनश्याम जोशी उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय .हल्द्वानी नैनीताल	

पाठ्यक्रम संयोजन एव सम्पादन

डॉ0 सूर्य भान सिंह ,असिस्टेन्ट प्रोफेसर- राजनीति विज्ञानउत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल
डॉ घनश्याम जोशी,एकेडमिक एसोसिएट- लोक प्रशासन उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय .हल्द्वानी,नैनीताल

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डॉ. सूर्यभान सिंह--- असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान – उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल	1,2,3,4,5,6,7,8
डॉ .सुशील सिंह चौहान --	**09**
डा0 भुवन तिवारी **राजकीय महाविद्यालय कोटाबाग रामनगर नैनीता**	10.11.12.13.18,21,22,23
डा0 जाकिर हुसैन **181 चैसवानी टोला ओल्ड सिटी बरेली यू0 पी0**	14,15,16,17
डॉ0 डा0 घनश्याम जोशी उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी	19

प्रकाशन वर्ष :

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण: 2019, सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन की प्रति।

प्रकाशक : कुलसचिव उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी , नैनीताल -263139

पुनःमुद्रण – 2018

प्रतियाँ : 2300

मुद्रक : पी. स्क्वायर सॉल्यूशन्स, मथुरा

अनुक्रम

भारत में लोक प्रशासन : उत्तराखण्ड राज्य के विशेष सन्दर्भ में **MAPS-204**

इकाई क्रम	खण्ड-1 परिचय	पृष्ठ संख्या
1	भारतीय प्रशासन का विकास	1-17
2	भारतीय प्रशासन की विशेषताएँ	18-25
3	भारतीय प्रशासन सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक व संवैधानिक पर्यावरण	26-35
4	भारतीय संविधान की विशेषताएँ	36-45
	खण्ड-2 संघीय शासन	
5	राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति	46-60
6	प्रधानमंत्री, मन्त्रिपरिषद	61-69
7	संसद- लोक सभा और राज्य सभा	70-81
8	मन्त्रिमंडलीय सचिवालय, केन्द्रीय सचिवालय, प्रधानमंत्री सचिवालय	82-95
9	राजनीति और प्रशासन में सम्बन्ध	96-103
	खण्ड-3 उत्तराखण्ड मे राज्य प्रशासन	
10	उत्तराखण्ड का इतिहास- प्रशासनिक सन्दर्भ में	104-116
11	उत्तराखण्ड में राज्य प्रशासनः एक पारिस्थिकी विश्लेषण	117-128
12	केन्द्र राज्य सम्बन्ध: विधायी और प्रशासनिक	129-143
13	भारत में केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्ध- उत्तराखण्ड के वित्तीय संदर्भ में	144-155
	खण्ड-4 उत्तराखण्ड की प्रशासनिक संरचना	
14	राज्यपाल, मुख्यमंत्री	156-166
15	राज्य सचिवालय, मंत्रिमण्डलीय सचिवालय,मुख्य सचिव	167-177
16	राज्य योजना आयोग	178-188
17	राज्य में प्रशासनिक सुधार	189-201

	खण्ड-5 उत्तराखण्ड में महत्वपूर्ण विभाग	
18	गृह विभाग, वित विभाग, आपदा विभाग	202-212
19	उत्तराखण्ड में जनजातियॉ एवं जनजाति विकास हेतु प्रशासनिक तंत्र	213-228
20	आपदा प्रबन्धन	229-244
	खण्ड-6 उत्तराखण्ड में कार्मिक प्रशासन	
21	राज्य लोक सेवा आयोग	245-253
22	भर्ती, प्रशिक्षण(एटीआई के संदर्भ में) एवम् पदोन्नति	254-267
23	सांस्कृतिक एवम भाषा विकास	268-276
	खण्ड-7 स्थानीय स्वशासन	
24	पंचायती राज, 73 वॉ संवैधानिक संशोधन	277-285
25	नगरीय स्थानीय सरकार 74 वॉ संवैधानिक संशोधन	286-296

इकाई 1 : भारतीय प्रशासन का विकास

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 भारतीय प्रशासन: विकास
    1.3.1 मौर्य प्रशासन
    1.3.2 मुगल प्रशासन
    1.3.3 ब्रिटिश प्रशासन
1.4 सारांश
1.5 शब्दावली
1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

यद्यपि लोक प्रशासन एक अध्ययन के विषय के रूप में नवीन विषय है जिसका जन्म 1887 में वुडरो विल्सन की राजनीति-प्रशासन द्वैतभाव की विचारधारा के प्रतिपादन के परिणामस्वरूप हुआ, तथापि लोक प्रशासन एक कार्य या प्रक्रिया के रूप में सभ्यता के अस्तित्व के साथ ही दिखाई देता है। जब से सभ्यता का अस्तित्व के साथ ही दिखाई देता। जब से सभ्यता का अस्तित्व है तब से मानव के विकास हेतु निरंतर संगठित प्रयास होते रहै और सभ्यता के अस्तित्व के साथ ही प्रशासन का अस्तित्व भी देखने को मिलता है।

भारतीय परिवेश में भी प्रशासन का विकास प्राचीन काल से ही देखा जा सकता है। हड़प्पा सभ्यता से लेकर आज तक भारतीय प्रशासन अनेक उतार-चढ़ावों से गुजरा है। भारतीय प्रशासन अपने वर्तमान रूप में विरासत और निरंतरता का परिणाम है जिसके विकास की कड़ियां किसी न किसी रूप में अतीत से जुड़ी हुई है। हालांकि वर्तमान भारतीय शासन प्रणाली मूल रूप से ब्रिटिश काल की देन मानी जाती है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत हम --

1.भारतीय प्रशासन के विकास प्रक्रिया को जान सकेंगे |

2.मौर्यकाल में भारतीय प्रशासन के विकास प्रक्रिया को जान सकेंगे।
3. मुगलकाल में भारतीय प्रशासन के विकास प्रक्रिया को जान सकेंगे ।
4.ब्रिटिश शासन में भारतीय प्रशासन के विकास प्रक्रिया को जान सकेंगे।

1.3 भारतीय प्रशासन विकास

वी. सुब्रह्मण्यम के अनुसार वर्तमान प्रशासनिक प्रक्रिया का सिलसिला सदियों तक विचारों का रहा, न कि संस्थाओं का। संस्थागत सिलसिला अंग्रेजों के शासनकाल की देन है।

भारतीय प्रशासन के विकास में मौर्यकाल, मुगलकाल तथा ब्रिटिशकाल का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

1.3.1 मौर्य प्रशासन

मौर्य प्रशासन का अथवा भारतीय इतिहास में दिलचस्पी का विषय है। मौर्य प्रशासन का अध्ययन पूर्ववर्ती प्रक्रियाओं के परिप्रेक्ष्य में ही किया जा सकता है, अर्थात इसकी स्थिति वैदिक कबायली संरचना और सामंतवादी युग के बीच की है।मौर्यकालमें भारत ने पहली बार राजनीतिक एकता प्राप्त की तथा एक विशाल साम्राज्य पर मौर्य शासकों ने शासन किया। इस विशाल साम्राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रकाश डालने वाले अनेक ऐतिहासिक स्रोत उपलब्ध है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र, मेगस्थनीज की इंडिका,, अशोक के शिलालेख व अनेक यूनानी रचनाओं से मौर्य शासन प्रणाली के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा अपने गुरू और प्रधानमंत्री चाणक्य की सहायता से जिस शासन प्रणाली का प्रारंभ किया गया, उसके अनेक तत्व वर्तमान प्रशासन में भी दृष्टिगोचर होते है।

मौर्य प्रशासन के दौरान निम्नांकित बातों पर विशेष ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है-

1. यह एक अति केन्द्रीकृत प्रशासन था जिसकी पहुँच नागरिक जीवन के सभी क्षेत्रों में थी। इसकी चिंता बाजार-व्यवस्था के नियंत्रण से लेकर नागरिक जीवन में नैतिक मूल्यों की सुरक्षा तक थी।

2. यह एक नौकरशाही पर आधारित प्रशासन था जिसमें सबल एवं निर्बल दोनों पक्ष थे।

3. वस्तुतः मौर्य प्रशासन कोई नवीन प्रशासन नहीं था वरन नंद शासकों की पद्धति का ही एक विकसित रूप था अर्थात् केंन्द्रीकरण की प्रक्रिया नंद शासकों के समय ही शुरू हो गई थी।

केन्द्रीय प्रशासन:-

मौर्य साम्राज्य का स्वरूप राजतंत्रात्मक था। अतः शासन का प्रधान राजा होता था। राजपद एक महत्वपूर्ण पद हो गया और इस पद की शक्ति एवं अधिकार बढ़ गए। राजा, राज्य का प्रमुख होता था। जिसके पास कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका के अधिकारों के साथ वित्तीय शक्तियां भी थी। राजा की खुशी प्रजा की खुशी पर निर्भर करती थी। जनकल्याण पर राजा का कल्याण आश्रित था। राज्य में रहने वाले लोगों के हितों का संपादन ही राजा का प्रमुख कर्त्तव्य था।

राजा अब केवल दूरस्थ संरक्षक नहीं वरन जनता का एक निकट संरक्षक बन गया। राजशक्ति निंरकुश पितृसत्तावाद पर आधारित थी। अशोक ने स्पष्ट रूप से अपने धौली शिलालेख में घोषणा की कि "सारी प्रजा मेरी संतान है"। अर्थात मौर्य शासक जनता के व्यक्तिगत जीवन में भी हस्तक्षेप करने लगे थे। राजा अब न केवल धर्मशास्त्र के द्वारा संचालित होता था। बल्कि अर्थशास्त्र के द्वारा संचालित होता था। अर्थशास्त्र में राजा की विवेकशीलता पर बल दिया गया, अर्थात् राजा न केवल पुराने कानूनों का पालन करवा सकता था वरन प्रशासनिक आवश्यकताओं से

प्रेरित होकर नए कानूनों कानिर्माणभी कर सकता था और फिर परंपरागत कानून तथा राजा के कानून में किसी प्रकार का विरोधाभास उत्पन्न होने की दशा में राजा का कानून ही ज्यादा मान्य होता था। अर्थशास्त्र के अनुसार प्रशासन के प्रत्येक पहलू में राजा का आदेश या विचार ही सर्वोपरि है।

अर्थशास्त्र में राजा के कर्त्तव्यों का भी निर्धारण किया गया। अर्थशास्त्र ने इस बात पर बल दिया, कि राजा को किसी भी समय कर्मचारियों एवं जनता की पहुंच से परे नहीं होना चाहिए। ऐसा होने पर गड़बड़ी एवं अशांति फैलेगा और राजा शत्रुओं का शिकार हो जाएगा। मेगस्थनीज का भी कहना है कि मालिश करवाते समय राजा से विचार विमर्श के लिए मिला जा सकता है। अशोक के शिालालेख भी इस बात की पुष्टि करते है। अर्थशास्त्र में राजा के कुछ आवश्यक गुण भी निर्धारित किए गये, जिसके अनुसार जनसाधारण, राजा नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त राजा को दैवीय बुद्धि व शक्ति वाला, वृद्धजनों की बात सुनने वाला, धार्मिक व सत्यवादी होना आवश्यक है।

मंत्रिपरिषद-

सिंद्धात के रूप में मौर्य काल में राज्य की संपूर्ण शक्ति राजा के हाथों में ही केंद्रित थी, किंतु व्यवहार में अनेक प्रतिबंधों के कारण राजा की शक्ति की निरंकुशता सीमित थी विशाल मंत्रिपरिषद व प्राचीन परंपराओं के पालन ने मौर्य शासकों की निरंकुशता पर सदैव अंकुश लगाए रखा। राजा को अपने कर्त्तव्यों के निवर्हन में सहायता हेतु एक मंत्रिपरिषद होती थी। अर्थशास्त्र एवं अशोक के अभिलेखों में मंत्रिपरिषद का जिक्र है। अर्थशास्त्र के अनुसार राज्यरूपी रथ केवल एक पहिए (राजा) के द्वारा नहीं चल सकता। अतएव दूसरे पहिए के रूप में उसे मंत्रिपरिषद की आवश्यकता होती है।

मंत्रिपरिषद एक परामर्शदात्री निकाय थी जिसकी शक्ति राजा एवं मंत्रियों की परस्पर स्थिति पर निर्भर करती थी। सामान्यतः राजा के समानांतर मंत्रिपिरषद् की शक्ति कमजोर थी और राजा मंत्रिपरिषद की सलाह मानने के लिए बाध्य नहीं था। राजा के समानांतर मंत्रियों की स्थिति का अंदाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि राजा अपने मंत्री को स्वयं नियुक्त करता था। मेगस्थनीज के अनुसार राजा के सलाहकार एक विशेष जाति से नियुक्त होते थे। राजा द्वारा मुख्यमंत्री तथा पुरोहित का चुनाव उनके चरित्र की भली भांति जांच के बाद किया जाता था।

अर्थशास्त्र में मंत्रियो के कुछ गुण निर्धारित किए गये अर्थात उनमें उच्चकुल में जन्म, वीर, बुद्धिमान, ईमानदारी जैसे गुण होने चाहिए। मंत्रिपरिषद से 3-4 मंत्रियों की एक छोटी उपसमिति भी बनती थी जो राजा को कुछ विशष्ट बातों में परामर्श देती थी। कौटिल्य ने नीति निर्धारण की गोपनीयता पर बल दिया है। मंत्रिपरिषद का अपना सचिव होता था, जिस पर उसके कार्यालय की देखभाल का भार था। कौटिल्य ने उसे मंत्रिपरिषद अध्यक्ष कहा है। डॉ. आर. सी. मजूमदार ने मौर्यकालीन मंत्रिपरिषद की तुलना इंग्लैण की प्रिवि-कौंसिल से की है।

नौकरशाही

मंत्रिपरिषद व राजा के द्वारा मुख्यतः नीति निर्धारण का कार्य किया जाता था। तत्पश्चात् उन नीतियों को कार्यान्वित करने का प्रमुख कार्य नौकरशाही के द्वारा किया जाता था। मौर्यकालीन नौकरशाही अत्यधिक सुसंगठित तथा सुव्यवस्थित थी। प्रशासन के संचालन में कौटिल्य ने 18 तीर्थो (अधिकारियों का नाम) एवं 27 अध्यक्षों की भूमिका पर बल दिया है। मौर्यकाल में प्रशासन की सुविधा के लिए 18 विभागों की स्थापना की गई थी जिन्हें तीर्थ कहते थे। प्रत्येक विभाग के संचालन व निरीक्षण के लिए अध्यक्ष होता था। एक महत्वपूर्ण केंद्रीय अधिकारी

सन्निधाता अर्थात् कोषाध्यक्ष होता था। वह केन्द्रीय खजाने का प्रभारी होता था। वह एक दूसरे महत्वपूर्ण अधिकारी समाहर्त्ता से मिलकर कार्य करता था। समाहर्त्ता भू-राजस्व की वसूली से जुड़ा हुआ था। युवराज, राजा का उत्तराधिकारी होता था। मंत्री सर्वोच्च सलाहकार था। पुरोहित शासकीय तथा धार्मिक मामलों में राजा का परमर्शदाता था।

अर्थशास्त्र में राजस्व के महत्वपूर्ण स्रोतों की चर्चा की गई है, जैसे भूमि, खन, जंगल, सड़क आदि। महत्वपूर्ण राजकीय खर्च वेतन, सार्वजनिक कार्य निमार्ण, सड़क एवं कुएं, विश्रामगृह, सिचांई से संबंधित कार्यो में होता था। अर्थशास्त्र में राष्ट्रीय कोष एवं राजा के व्यक्तिगत कोष में कोई अंतर नहीं किया गया था।

राज्य का सप्तांग सिंद्धात:-
कौटिल्य के अनुसार राज्य एक आवश्यक और अनिवार्य संस्था है। राज्य की स्थापना के बिना समाज में अराजकता तथा मत्स्य न्याय की स्थापना हो जाएगी तथा शक्तिशाली, दुर्बल को अपने हित का साधन बना लेगा। कौटिल्य राज्य की उत्पत्ति के संदर्भ में सामाजिक समझौते के सिंद्धात में विश्वास करता है। राजा व प्रजा के बीच समझौते के परिणामस्वरूप राज्य अस्तित्व में आया। चूकिं राज्य, व्यक्ति के लिए हितकारी संस्था है। अतः व्यक्ति की निष्ठा एवं आस्था राज्य में होती है। कौटिल्य के अनुसार राज्य के 7 अंग हैं जिन पर राज्य की व्यवस्था, स्थिरता और अस्तित्व निर्भर करता है। ये 7 अंग हैं- राजा, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोषालय, सशस्त्र सेना तथा मित्र। राज्य के इन भागों में सावयव एकता होती है। राजा राज्य का प्राण है। अर्थशास्त्र के अनुसार राजा धर्म का रक्षक होता है। उसमें निर्भयता, आत्मनियंत्रण, निणर्य लेने की क्षमता तथा विचार करने की शक्ति होनी चाहिए। यदि राजा अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार नहीं करता, तो वह आदर योग्य नहीं है। अयोग्य राजा को पद से हटा देना चाहिए।

राजा के बाद पद्सोपान में दूसरा स्थान अमात्म का आता हैं। वह आजकल के मंत्रिमंडलीय सचिव के समान शासकीय अधिकारियों में सबसे उच्चअधिकारी होता था। अमात्य प्रशासन संबंधी बातों को देखता था। राजा कुशल, बुद्धिवान तथा निर्णय लेने की क्षमता वाले व्यक्ति को अमात्य पद के लए चयन करता था।

जनपद, राज्य का तीसरा अंग था। इसमें भूमि-भाग के साथ साथ क्षेत्र में रहने वाले लोग सम्मिलित होते थे। कौटिल्य के आनुसार श्रेष्ठ जनपद वह है जो प्राकृतिक सीमाओं जैसे नदी, पहाड़, जंगल में बसा हो। जनपद की भूमि उपजाऊ होनी चाहिए तथा रहने वाले लोग मेहनती, बुद्धिमान, वफादार होने चाहिए।

दुर्ग भी राज्य का एक अनिवार्य अंग था। राज्य की स्थिरता और युद्धों में सुरक्षा के लिए दुर्ग की भूमिका अहम होती थी। दुर्ग में पर्याप्त खाद्य सामग्री, अस्त्र-शस्त्र, पानी, दवाईयां आदि का रहना आवश्यक था जो समय पर काम आ सके।

कोष व कोषालय भी राज्य के अस्तित्व के लिए अनिवार्य था। मौर्यकाल में वित्त की व्यवस्था बेहतर थी। विभिन्न प्रकार के करों से प्राप्त राशि कोषालय में एकत्रित होती थी। विभिन्न खर्चों के लिए बजट में व्यवस्था होती थी। आपात स्थितियों से निपटने के लिए आपात निधि की आवश्यकता थी।सेना की राज्य में महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। कौटिल्य ने मोर्य सेना के संगठन तथा सैन्यशास्त्र का व्यापक चित्रण किया है। सैनिको से राज भक्ति, साहस, बहादुरी की अपेक्षा की जाती थी। सीमा विस्तार पर विशेष ध्यान होने की वजह से सेना राज्य का आवश्यक अंग थी।

मित्र से तात्पर्य मित्र राज्यों से था। राज्य की प्रगति इस बात पर निर्भर करती है कि पड़ोसी राज्यों के साथ उसके संबंध मैत्रीपूर्ण हैं या नहीं |

इस प्रकार कौटिल्य ने राज्य के अस्तित्व एवं स्थिरता हेतु राज्य के सात अंगों पर आधारित होने की बात कही |इन अंगों के बीच उचित संतुलन अनिवार्य था।

प्रांतीय प्रशासन:-

मौर्यकाल में संपूर्ण साम्राज्य का विभाजन प्रांतों में किया गया था। पाँच प्रांतीय राजधानियां प्रमुख थी | उत्तरापथ की राजधानी तक्षशिला, अवंति राज्य की राजधानी उज्जैन, कलिंग प्रांत की राजधानी तोसली, दक्षिणापथ की राजधानी सुवर्णगिरि और पूर्वी प्रांत की राजधानी पाटलिपुत्र। ये पाँच महत्वपूर्ण एवं बड़े प्रांत थे तथा इनके अधीन छोटे छोटे प्रांत भी थे। बड़े प्रांतों का प्रशासक राजकुल का होता था। अशोक के फरमानों में उन्हें कुमार या आर्यपुत्र कहा गया है। अर्थशास्त्र में इस बात की चेतावनी दी गई कि कुमार या आर्यपुत्र खतरे का कारण हो सकता है। इसलिए उसे राज्य पर संपूर्ण नियंत्रण नहीं होना चाहिए। प्रांतीय प्रशासन में केंद्रीकरण की प्रकृति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है क्योंकि प्रांतीय मंत्रिपरिषदों को यह स्वतन्त्रता थी कि वह प्रांतीय प्रशासक को सूचित किए बिना राजा को महत्वपूर्ण सूचना प्रेषित कर सकती है। इस बात की पुष्टि दिव्यावदान से भी होती है।

किंतु क्षेत्रीय स्तर पर मौर्य प्रशासन में कुछ स्वायत्तता प्रदान की गई थी अर्थात संबंधित क्षेत्र के व्यक्ति को ही उस क्षेत्र का प्रशासक नियुक्त किया जाता था। उदाहरण के लिए रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेखों से ज्ञात होता है कि काठियावाड़ का शासक यौनराज तुशाष्क था।

स्थानीय प्रशासन:-

प्रांतों का विभाजन विभिन्न जिलों में किया गया था। जिले को विषय या आहार कहा जाता था। जिला प्रशासन से जुड़े तीन पदाधिकारी थे- प्रादेशिक, रज्जुक और युक्त। प्रादेशिक नामक अधिकारी कानून एवं व्यवस्था को बनाऐ रखने और भू-राजस्व की वसूली से जुड़े हुए थे जबकि रज्जुक नामक अधिकारी विशेष रूप से न्यायिक कार्यो से जुड़े हुए थे। रज्जुक की नियुक्ति ग्रामीण जन कल्याण के उद्देश्य से की जाती थी। उसके अतिरिक्त युक्त का कर्त्तव्य सचिव एवं लेखा संबधी काम देखना था। अशोक के अभिलेखों में इन अधिकारियों की चर्चा की गई है।

जिला एवं ग्रामीण प्रशासन के बीच एक और प्रशासनिक इकाई थी। जो संभवतः 5 या 10 गांवों का समूह होती थी। इसका महत्वपूर्ण अधिकारी गोप होता था जिसका काम सामान्य प्रशासन की देख - रेख करना था। गोप के अतिरिक्त स्थानिका नामक अधिकारी भी होता था जिसका मुख्य कार्य कर की वसूली था। वह सीधे प्रादेशिक के अधीन था। ऐसा प्रतीत होता है कि स्थानिका आधुनिक सहायक कलेक्टर और प्रादेशिका जिला कलेक्टर के समान थे और ये दोनों अधिकारी समाहर्त्ता या चीफ कलेटर के अधीन होते थे।

सबसे निचले स्तर पर ग्रामीण प्रशासन था जिसका प्रधान मुखिया होता था। वह ग्रामीण वृद्धजनों में से निर्वाचित होता था। छोटे गांवों में मुखिया ही एक मात्र अधिकारी होता था किंतु बड़े गावों में मुखिया की सहायता के लिए लेखपाल एवं लिपिकों की नियुक्ति की जाती थी और अधिकारियों का वेतन या तो भू- राजस्व से या फिर भूमि प्रदान करके पूरा किया जाता था।

नगर प्रशासन:-

मौर्यकाल में नगर प्रशासन का अपना श्रेणीबद्ध संगठन था। नगर प्रशासन का प्रधान नगरक नामक अधिकारी होता था। अशोक के एक अभिलेख में नगर-व्यवहारिक की चर्चा की गई है। नगरक या नगर निरीक्षक का काम नगर कानून व्यवस्था बनाए रखना था। अकाल पड़ने पर गोदामों से अनाज बंटवाने का काम भी नगरक करता था। इस नगरक नामक अधिकारी की सहायता एवं मंत्रणा के लिए समाहर्त्ता एवं प्रादेशिका नामक अधिकारी होते थे। मेगस्थनीज के इंडिका में विस्तार से पाटलिपुत्र के नगर प्रशासन की चर्चा की गई है। मेगस्थनीज के अनुसार पाटलिपुत्र के प्रशासक के लिए पांच-पांच सदस्यों की 6 समितियां होती थी जिनके कार्य एवं कार्त्तव्य निम्नलिखित थे।

1. उद्योगों व शिल्पों का निरीक्षण 2. विदेशियों की देखभाल 3. जन्म मरण का पंजीकरण 4. वाणिज्य व्यापार की देखभाल 5. सार्वजनिक बिक्री का निरीक्षण 6. बिक्री कर संग्रह

कौटिल्य के अर्थशास्त्र की प्रांसगिकता:-

कौटिल्य का अर्थशास्त्र प्राचीन भारत में लोक प्रशासन पर किया गया सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। यद्यपि अर्थशास्त्र में स्पष्ट रूप से लोक प्रशासन के सिद्धांत नहीं रखे गए हैं लेकिन इसमें वर्णित सरकारी कार्यप्रणाली महत्वपूर्ण है। कौटिल्य ने एक कल्याणकारी प्रशासन की बात की थी। राजा को प्रजा के हित के लिए कार्य करना चाहिए। उसे प्रजा को पुत्र की भांति पालना चाहिए, क्योंकि 'प्रजा हिते, हिते राज्ये, प्रजानाम च सुखे सुखम्'। अर्थात प्रजा के हित में ही राज्य का हित है और प्रजा के सुख से ही राज्य सुखी है। कल्याणकारी प्रशासन के साथ ही कौटिल्य ने सुशासन की बात की है अर्थात जनता की सारी सुविधाओं को सरकार द्वारा मुहैया कराया जाना चाहिए। क्षेत्रों की आवश्यकतानुसार उन्हें संसाधन उपलब्ध कराना राष्ट्र का दायित्व है।

कौटिल्य ने राजस्व संग्रहण के संदर्भ में उचित करारोपण को महत्व दिया है। करारोपण राज्य की आवश्यकता व प्रजा की स्थिति के अनुरूप होना चाहिए, उसके अनुसार उचित करारोपण की व्यवस्था वैसी ही होनी चाहिए, जैसे वृक्ष से फल गिरते हैं। कौटिल्य ने जट को जनता को खुशहाली की गारंटी देती है। कौटिल्य का कथन है कि सभी उद्यम वित्त पर निर्भर है अतः कोषागार पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

कौटिल्य का विचार है कि राजा का लोकसेवक कोषागार रक्षक मात्र होना चाहिए। प्रशासन के नियमों का उल्लंघन करने पर न्यायपालिका के दायरे में नहीं आते, किंतु निजी गुप्तचर व्यवस्था तथा विदेश संबंधी आदि विषयों पर कौटिल्य के द्वारा दिए गए विचार वर्तमान भारतीय प्रशासन के संदर्भ में पर्याप्त रूप से प्रासंगिक है।

1.3.2 मुगल प्रशासन

केन्द्रीय प्रशासन

प्रशासन के शीर्ष पर बादशाह होता था। वह सभी प्रकार के सैनिक एवं असैनिक मामलों का प्रधान होता है था। बादशाह मुगल साम्राज्य के प्रशासन की धुरी था | बादशाह की उपाधि धारण करता था, जिसका आशय था कि राजा अन्य किसी भी सत्ता के अधीन नहीं है। वह समस्त धार्मिक तथा धर्मोत्तर मामलों में अंतिम निर्णायक व अंतिम सत्ताधिकारी है। वह सेना, राजनीतिक, न्याय आदि का सर्वोच्च पदाधिकार है। वह संपूर्ण सत्ता का केन्द्र है तथा खुदा का प्रतिनिधि है।

मुगल बादशाह बहुत शान शौकत का जीवन व्यतीत करते थे। उनको बहुत से विशेषाधिकार प्राप्त थे और उनकी इच्छा ही कानून थी। तुर्की मंगोल परंपरा से ही मुगल प्रशासन को केन्द्रीकृत प्रशासन की अवधारणा विरासत में प्राप्त हुई थी। वैसे कुछ विद्वानों का मानना है कि अकबर के समय केन्द्रीकृत तुर्की मंगोल परंपरा में संशोधन किया गया।इन सबके उपरांत भी राजा का जीवन नियमों से बंधा हुआ था और यह माना जाता था कि जनता की भलाई में ही राजा की भलाई है। कुरान में स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है कि प्रजा के कल्याण का पूरा उत्तरदायित्व राजा के कंधों पर है। केन्द्रीय प्रशासन के संचालन हेतु राजा के द्वारा निम्नांकित पदाधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी।

1. वकील या वजीर -

वकील संपूर्ण प्रशासन का पर्यवेक्षण करता था। इसे राजस्व और वित्त का अधिभार दिया गया था। यह भू-राजस्व का आकलन करता था और उसकी वसूली का निरीक्षण करता था। वह इससे संबंधित हिसाब की जांच भी करता था।

2. दीवाने-आला या दीवने-कुल:-

दीवाने आला वित्तीय शक्तियां रखता था। इसे राजस्व और वित्त का अधिभार दिया गया था। यह भू-राजस्व का आकलन करता था और उसकी वसूली का निरीक्षण करता था। वह इससे संबंधित हिसाब की जांच भी करता था।

3. मीर बख्शी:-

यह साम्राज्य का सर्वोच्च भुगतान अधिकारी होता था क्योंकि मुगलकाल में मनसबदारी प्रथा प्रचलित थी तथा सैनिक एवं असैनिक सेवाओं का एकीकरण किया गया था। इसलिए यह साम्राज्य के सभी अधिकारियों को भुगतान करता था। यह मनसबदारों की नियुक्ति की सिफारिश करता था और उनके लिए जागीर की अनुशंसा करता था।

4. दीवाने-शामा/खान-ए-शामा:-

यह राजकीय कारखनों का निरीक्षण करता था तथा राजकीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उन कारखानों के उत्पादन को नियंत्रित करता था।

5. सद्र-उस-सूद्र:-

यह बादशाह का मुख्य धार्मिक परामर्शदाता होता था। यह धार्मिक अनुदानों को नियंत्रित करता था। साथ ही यह धार्मिक मामलों से संबंधित मुकदमें भी देखता था।

6. मुख्य काजी:-

यह न्याय विभाग का प्रधान होता था।

7. मुहतसिब:-

यह जनता के नैतिक आचरण का निरीक्षण करता था और देखता था कि शरीयत के अनुसार कार्य हो रहा है या नहीं साथ ही यह माप तौल का निरीक्षण भी करता था।

उपरोक्त 7 अधिकारियों के अतिरिक्त केन्द्रीय प्रशासन में कुछ छोटे छोटे पद भी होते थे, जैसे- दरोगा-ए-तोपखाना, दरोगा-ए-डाकचौकी, मीर -माल (टकसाल प्रधान), मीर-बर्र (वन अधीक्षक) आदि।

प्रांतीय प्रशासन

मुगल सम्राट बाबर ने अपने साम्राज्य का विभाजन जागीरों में किया था तथा उसके समय किसी प्रकार की प्रांतीय प्रशासनिक व्यवस्था विकसित नहीं हुई थी। सबसे पहले एकरूप प्रातों का निर्माण अकबर के शासनकाल में हुआ।

सन् 1580 में अकबर ने अपने साम्राज्य का विभाजन 12 प्रातों में किया, जिसकी संख्या शाहजहाँ के काल तक 22 हो गई। अकबर की प्रशासनिक नीति प्रशासनिक एकरूपता तथा रोक और संतुलन के सिद्धांतों पर आधारित थी परिणामस्वरूप प्रांतीय प्रशासन का ही प्रतिरूप था।

प्रांतीय प्रशासन का प्रमुख सूबेदार/नजीम कहलाता था जिसकी नियुक्ति बादशाह करता था। आमतौर पर सूबेदार का कार्यकाल 3 वर्ष का होता था। नजीम की सहायता हेतु कुछ अन्य अधिकारी भी होते थे। प्रांतीय दीवान की नियुक्ति केंद्रीय दीवान की अनुसशंसा पर बादशाह करता था। प्रांतीय दीवान, नजीम के बराबर का अधिकारी होता था और कभी-कभी श्रेष्ठ अमीर को भी दीवान का पद दे दिया जाता था। इसी तरह प्रांतीय बख्शी की नियुक्ति केंद्रीय बख्शी की अनुशंसा पर होती थी और प्रांतीय बख्शी सुरक्षा से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण बातें नजीम को बताए बिना केन्द्रीय बख्शी तक प्रेषित कर देता था। अकबर ने केंन्द्रीय सद्र शक्ति को कम करने के लिए प्रांतीय सद्र को नियुक्त करना शुरू किया। अब प्रांतीय सद्र के परामर्श से भी धार्मिक बातों का निर्णय लिया जा सकता था। इनके अतिरिक्त प्रांतीय स्तर पर काजी भी होता था।

स्थानीय प्रशासन

प्रांतों के विभाजन सरकार में होता था। सरकार से जुड़े हुए अधिकारी थे फौजदार, अमालगुजार, खजानदार आदि। फौजदार शांति व्यवस्था की देखरेख करता था और अमालगुजार भू-राजस्व से जुड़ा अधिकारी था। खजानदार सरकार के खजाने का संरक्षक होता था। कभी-कभी एक सरकार में कई फौजदार होते थे और कभी-कभी दो सरकारों पर एक फौजदार भी होता था। सरकार का विभाजन परगनों में होता था। परगनों से जुड़े अधिकारी सिकदार, आमिल, पोतदार, कानूनगों आदि थे। सिकदार शान्ति व्यवस्था का संरक्षक होता था और भू-राजस्व संग्रह में आमिल की सहायता करता था। आमिल भू-राजस्व प्रशासन से जुड़ा अधिकारी था। पोतदार, खजांची को कहा जाता था तथा कानूनगों गांव के पटवारियों का मुखिया होता था और स्वयं कृष्य भूमि का पर्यवेक्षण करता था।

सबसे नीचे ग्राम होता था जिससे जुडे अधिकारी मुकद्दम और पटवारी थे। मुगलकाल में ग्राम पंचायत की व्यवस्था थी। इस विभाजन के अतिरिक्त नगरों में कानून व्यवस्था की देखरेख के लिए कोतवाल की नियुक्ति होती थी। अबुल फजल के आइने-अकबरी में कोतवाल के कार्यो का विवरण दिया गया है। इसी तरह प्रत्येक किले पर किलेदार की नियुक्ति होती थी।

इस प्रकार मुगल प्रशासन केंद्रीय प्रशासन से लेकर गांव तक श्रृंखलाबद्ध था लेकिन कुछ इतिहासकार जिनमें इरफान हबीब और आर्थर अली महत्वपूर्ण हैं मुगल प्रशासनिक ढांचे को अतिकेन्द्रीकृत मानते हैं।

मनसबदारी व्यवस्थाः-

अकबर के द्वारा स्थापित की गई मनसबदारी पद्धति मौलिक रूप से एक प्रशासनिक सामरिक उपकरण थी जिनका उद्देश्य अमीरों एवं सेना का एक सक्षम संगठन स्थापित करता था। वस्तुतः मनसबदारी पद्धति की व्याख्या केंद्रीकृत रातनैतिक ढांचे के परिप्रेक्ष्य में की जा सकती है। इसके साथ साम्राज्य की शक्ति को एक चैनल में बांध दिया गया और अमीर वर्ग सेना तथा नोकरशाही तीनों को जोड़ दिया गया।

मुगल साम्राज्य के सभी पंजीकृत अधिकारियों को एक मनसब प्रदान किया गया, जो जोड़े के अंक में प्रस्तुत किया जाता था। प्रथम, संबधित अधिकारी के जात रैंक का बोध होता था तथा दूसरे उसके सवार रैंक का बोध कराता था। जात रैंक किसी भी अधिकारी काविभिन्नअधिकारियों के पदानुक्रम में पद और स्थान को निर्धारित करता था।

दूसरी तरफ सवार रैंक उसके सैनिक उत्तरदायित्व को रेखांकित करता था। सैद्धांतिक रूप से मनसब के कुल 66 ग्रेड होते थे। निम्नतम 10 और उच्चतम 10 हजार होता था किन्तुव्यावहारिकरूप में केवल 33 ग्रेड ही प्रचलित थे। पांच हजार से अधिक रैंक सामान्यतः राजकीय व्यक्ति को ही प्रदान किए जाते थे किंतु यह प्रतिष्ठा कुछ राजपूत योद्धाओं को भी प्राप्त हुई।

जगीरदारी प्रथा:-

वस्तुतः जागीरदारी पद्धति की स्थापना के पीछे साम्राज्य का एक व्यापक उद्देश्य था जिसके द्वारा उन राजपूत जमींदारों से भू- राजस्व संग्रह करना संभव हो गया, जो सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली थे और जाति, गोत्र के आधार पर विभाजित थे। अकबर मनसबदारों का वेतन नकद में देना चाहता था किन्तु उस समय के कुलीन वर्ग को भू-संपत्ति से जबर्दस्त आकर्षण था। इसलिए जागीरदारी प्रथा के अंतर्गत कुछ अधिकारियों को जागीर में वेतन दिया जाता था।

दिल्ली सल्तनत काल में इक्तादारी पद्धति प्रचलित थी और इक्ता के मालिक इक्तादार कहे जाते थे। इक्तादारी पद्धति भी कृषकों से अधिशेष प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण जरिया था किन्तु इक्ता और जागीर में एक महत्वपूर्ण अंतर यह था कि इक्ता में भूमि का आबंटन होता था जबकि जागीर में भू-राजस्व का आबंटन होता था। जागीरदारी व्यवस्था और इकतादारी व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण अंतर यह भी था कि जागीरदारों को केवल भू-राजस्व की वसूली का अधिकार दिया गया था संबंधित क्षेत्र के प्रशासन का नहीं ,जागीरदार को राजकीय नियमों के अनुरूप केवल प्राधिकृत राजस्व वसूलने का अधिकार था तथा प्रशासनिक कार्यो के लिए राज्य जिम्मेदार था। यदि भू-राजस्व की वसूली में किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित होता, तो जागीरदार उस क्षेत्र के फौजदार से सैनिक सहायता भी प्राप्त कर सकता था। जागीरदारी व्यवस्था के द्वारा प्रशासनिक केन्द्रीकरण का प्रयास हुआ था और नौकरशाही को ग्रामीण समुदाय पर आरोपित कर दिया गया था।

1.3.3 ब्रिटिश प्रशासन

भारत में ईस्ट इंडिया कंम्पनी के आगमन के साथ ब्रिटिश प्रशासन के बीज पड़े। सन् 1600 में एक व्यापारिक कंपनी के रूप में ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत में आगमन हुआ, किन्तु देखते ही देखते यह कंपनी और इसके माध्यम से ब्रिटिश संसद का भारत पर साम्राज्य स्थापित हो गया। प्रारंभ में कंपनी का उद्देश्य व्यापार करना था और बंबई, कलकत्ता तथा मद्रास के बंदरगाहों से होकर शेष भारत से इसका संपर्क रहता था। धीरे धीरे कंपनी की प्रादेशिक महत्वकांक्षा प्रबल होती गई और शीघ्र ही वह भारत में एक प्रमुख यूरोपीय शक्ति बन गई। यही कंपनी आगे चलकर मुगल शासन की उत्तराधिकारी बनी। प्लासी और बक्सर के युद्ध के बाद भारत में कंपनी की साम्राज्यीय महत्वकांक्षाएं प्रबल हुई और 1765 की इलाहाबाद की संधि के द्वारा कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी अधिकार प्राप्त हुए, परिणामस्वरूप द्वैध शासन की शुरूआत हुई, जहां कि राजस्व संग्रहण का कार्य ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकार में था, लेकिन सामान्य प्रशासन की जिम्मेदारी संबंधित प्रांत में मुगल प्रशासन द्वारा नियुक्त नवाब के जिम्मे होती थी। इस प्रकार कर्त्तव्य नवाब के पास थे लेकिन शक्तियां कंपनी के पास। यद्यपि नवाब की नियुक्ति में भी कंपनी का हस्तक्षेप होता था और उप नवाब की नियुक्ति का अधिकार तो कंपनी के पास ही था। इस प्रकार सारी शक्तियां कंपनी के हाथ में केन्द्रीत हो गई, लेकिन कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व नहीं, परिणामस्वरूप द्वैध शासन की वजह से अकाल, अव्यवस्था जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ा।

कंपनी के शासन की शुरूआत होने और उसकी शक्तियों में वृद्धि होने के साथ-साथ ब्रिटिश संसद का भी भारतीय प्रशासन संबंधी मामलों में कंपनी के माध्यम से अप्रत्यक्ष नियंत्रण प्रारम्भ हुआ, जो कि 1857 की क्रांति के बाद कंपनी शासन की समाप्ति और भारत में प्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन की स्थापना में परिणत हो गया।

ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन की स्थापना के बाद ब्रिटिश संसद ने समय समय पर विभिन्न अधिनियम पारित करके कंपनी के शासन पर नियंत्रण करने का प्रयास किया, जिनकी संक्षिप्त चर्चा निम्नांकित रूप में की जा सकती है-

केन्द्रीय कार्यकारिणी परिषद का विकास

1. 1773 से 1858 तक प्रशासनिक व्यवस्था - भारतीय संवैधानिक तथा प्रशासनिक व्यवस्था के विकास में 1773 के रेग्यूलेटिंग एक्ट का विशेष महत्व है। सरकार ने कंपनी के आर्थिक, प्रशासनिक एवं सैनिक कार्यो पर संसद के आंशिक नियंत्रण के लिए यह अधिनियम पारित किया था। इस अधिनियम के द्वारा बंगाल के गवर्नर को कंपनी के भारतीय प्रदेशों का गर्वनर जनरल बनाया गया तथा इसकी सहायता के लिए 4 सदस्यों की एक परिषद की स्थापना की गई इस कानून में बंबई और मद्रास के प्रेसीडेंसी को कलकत्ता प्रेसीडेंसी बंगाल के अधीन कर दिया गया। साथ ही भारतीय मामलों में ससंद का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप आरंभ हुआ। परिणामस्वरूप इस कानून से भारत में प्रशासन के केन्द्रीकरण का कार्य शुरू हुआ।

1784 में पिट्स इंडिया एक्ट के माध्यम से गवर्नर जनरल की कौंसिल में सदस्यों की संख्या 4 से घटाकर 3 कर दी गई। साथ ही मद्रास तथा बंबई प्रेसीडेंसियों पर गवर्नर जनरल के निरीक्षण एवं नियंत्रण के अधिकार अधिक स्पष्ट कर दिए गए। इस अधिनियम का उद्देश्य कंपनी पर ब्रिटिश क्राउन का नियंत्रण बढ़ाना था। अतः ब्रिटेन में 6 सदस्यों के बोर्ड ऑफ कंट्रोल की स्थापना की गई। 1786 के अधिनियम के द्वारा गवर्नर जनरल को परिषद से अधिक शक्तियां प्रदान की गई और उसे मुख्य सेनापति बनाया गया।

1793 के अधिनियम से गवर्नर जनरल को अपनी कौंसिल की अनुशंसा को रद्द करने का अधिकार दिया गया। 1813 के चार्टर एक्ट द्वारा भारत में ब्रिटिश कंपनी का व्यापारिक एकाधिकार समाप्त कर दिया गया, लेकिन भू-राजस्व प्रशासन एवं भारतीय प्रशासन का कार्य कंपनी के अधीन रहने दिया गया। 1833 के चार्टर अधिनियम से बंगाल का गवर्नर भारत का गवर्नर जनरल कहलाने लगा। बंबई एवं मद्रास प्रेसीडेंसी को पूर्णतः बंगाल के अधीन कर दिया गया। संपूर्ण भारत के लिए विधि निर्माण का एकाधिकार गवर्नर जनरल तथा उसकी परिषद को प्रदान किया गया तथा बंबई और मद्रास प्रेसीडेंसी से विधिनिर्माणके अधिकार छीन लिए गए। अधिनियम के द्वारा गवर्नर जनरल की काउंसिल में एक चौथा सदस्य फिर से जोड़ा गया, जिसे विधि सदस्य का नाम दिया गया। इस प्रकार इस अधिनियम से भारत में केन्द्रीकृत प्रशासन की स्थापना हुई।

2. 1858 से 1919 तक-1858 के अधिनियम द्वारा भारत पर ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के स्थान पर ब्रिटिश संसद के शासन की स्थापना हुई। भारत सचिव के पद का सृजन किया गया। तथा समस्त संवैधानिक, प्रशासनिक तथा वित्तीय शक्तियां भारत सचिव तथा उसकी 15 सदस्यीय परिषद में केंद्रित हो गई। भारत में सत्ता का केंन्द्रीकरण गवर्नर जनरल तथा उसकी परिषद में निहित हो गया। गवर्नर जनरल को वायसराय कहा जाने लगा।

1861 के अधिनियम द्वारा भारतीय प्रशासन में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। पहली बार प्रांतीय विधायिकाओं की स्थापना हुई। यद्यपि इनके कई अधिकार सीमित थे। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद तथा विधायिका का पुनर्गठन किया गया। अधिनियम की व्यवस्था द्वारा कार्यकारिणी के महत्व में कमी एवं गवर्नर जनरल के प्रभाव में वृद्धि हुई। गवर्नर जनरल को इस बात के लिए अधिकृत किया गया कि वह प्रशासनिक व्यवस्था हेतु विधि बनाए। कैनिंग के द्वारा **विभागीय व्यवस्था** की शुरूआत की गई। अधिनियम के द्वारा मद्रास और बंबई प्रेसीडेंसी को पुनः विधि निर्माण के अधिकार तथा अन्य प्रांतों में ऐसी ही विधायिकाओं की स्थापना की व्यवस्था करके विधि निर्माण में विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया की नींव पड़ी।

1892 के भारतीय परिषद अधिनियम के अंतर्गत विधायिकाओं की सदस्य संख्या और शक्ति में वृद्धि हुई तथा प्रतिनिधि संस्थाओं की सिफारिशों पर मनोनीत किया जाने लगा। 1909 के मार्ले-मिन्टो सुधारों द्वारा विधायिकाओं की सदस्य संख्या में वृद्धि हुई परंतु बहुमत सरकारी सदस्यों का ही बना रहा। अधिनियम में अप्रत्यक्ष चुनाव पद्धति को अपनाया गया अर्थात् केंद्रीय विधान परिषद में विभिन्न प्रांतों से सदस्य चुनकर आने थे। इस अधिनियम का सबसे बड़ा दोष पृथक निर्वाचन व्यवस्था थी।

1919 में मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार द्वारा वायसराय की कार्यकारिणी परिषद में भारतीयों को स्थान दिया गया। केन्द्रीय स्तर पर द्वि-संदनीय व्यवस्थापिका की स्थापना हुई। अधिनियम के द्वारा केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का स्पष्ट विभाजन किया गया। आरक्षित विषयों का प्रशासन गवर्नर को अपने पार्षदों की सहायता से करना था तथा हस्तांतरित विषयों का प्रशासन निर्वाचित मंत्रियों की सहायता से किया जाना था।

3. सन् 1919 से स्वतंत्रता तक प्रशासनिक व्यवस्था 1935 के भारत सरकार अधिनियम का भारत के संवैधानिक इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। इस अधिनियम ने भारत में संघात्मक व्यवस्था का सूत्रपात किया। इस संघ का निर्माण ब्रिटिश भारत के प्रांतों, देशों राज्यों और कमिश्नरी के प्रशासनिक क्षेत्र को मिलाकर किया जाना था। संघ स्तर पर द्वैध शासन प्रणाली को अपनाया गया और आंशिक उत्तरदायी शासन की स्थापना करने का प्रावधान किया गया। संघीय कार्यपालिका, संघीय विधानमंडल तथा संघीय न्यायालय की स्थापना की गई। प्रांतों में प्रांतीय सरकार तथा प्रांतीय सरकार की कार्यपालिका शक्ति समस्त प्रांतीय विषयों तक स्थापित हो गई। प्रांतों से द्वैध शासन प्रणाली का अतं कर दिया गया, किंतु व्यवहार में गवर्नर की शक्ति अब भी बनी रही। गवर्नर की शक्तियों को तीन भागों में विभाजित किया गया-

1. स्वेच्छा से काम में आने वाली शक्तियां

2. व्यक्तिगत शक्तियां

3. विधायिका के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों की सलाह से काम में आने वाली शक्तियां

इस अधिनियम का सबसे विवादास्पद पहलू धारा 93 थी जिसके अनुसार गवर्नर विशेष परिस्थितियों में प्रांतीय प्रशासन को अपने नियंत्रण में ले सकता था। इसी शक्तियों का प्रयोग कर 1939 में विभिन्न प्रांतों में गवर्नर ने शासन कार्य अपने हाथ में ले लिया। भारतीय स्वतंत्रता तक इसी अधिनियम के अनुसार भारतीय प्रशासन का संचालन किया जाता रहा। स्वतंत्रता के बाद भारतीय प्रशासन स्वतंत्र भारत के संविधान द्वारा प्रारंभ हुआ।

केन्द्रीय सचिवालय का विकास

स्वतंत्र भारत में केन्द्रीय सचिवालय औपचारिक रूप से 30 जनवरी, 1948 को स्थापित हुआ, लेकिन मूल रूप से केन्द्रीय सचिवालय अन्य प्रशासनिक संस्थाओं की भांति ब्रिटिश शासनकाल की देन है। ब्रिटिश काल में इसे "इंपीरियल सेक्रेटेरिएट" कहा जाता था। ब्रिटिश साम्राज्य के समय भारत में प्रशासनिक एकता स्थापित करने में केन्द्रीय सचिवालय की विशेष भूमिका थी। समय के परिवर्तन के साथ जैसे जैसे सरकार का कार्यभार बढ़ता गया, विभागों की संख्या भी बढ़ती गई। 1919 से 1947 तक का काल केन्द्रीय सचिवालय मेंविभिन्नसुधारों के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण रहा। सन् 1919 की लिविलियन स्मिथ कमेटी के सुझाव पर -

1. विभागीय विषयों को पुनर्गठित किया गया।

2. लिखित आलेखों की प्रथा प्रारंभ की गई।

3. केन्द्रीकृत भर्ती की व्यवस्था आरंभ हुई

4. सचिवालय में प्रतिनियुक्ति व्यवस्था को सुदृढ़ किया गया।

1919 में पुनर्गठित सचिवालय में कुल 11 विभाग थे।

सन् 1936-37 में नियुक्त होने वाली व्हीलर समिति और मैक्सवेल समिति (संगठन तथा प्रक्रिया समिति) ने केन्द्रीय सचिवालय के संगठन और कार्य पद्धति में सुधार हेतु और भी सुझाव प्रस्तुत किए। आजादी के उपरांत गठित सरकार को कुछ ऐसी विशेष समस्याओं का सामना करना पड़ा, जिनके परिणामस्वरूप केन्द्रीय सचिवालय का कार्यभार अत्यधिक हो गया। ये समस्याएं निम्नांकित थी - -

1. देश का विभाजन होने के कारण पाकिस्तान से आए शरणार्थियों को भारत में बसाना

2. जम्मू-कश्मीर में बाह्य आक्रमण की समस्या

3. रियासतों का भारतीय संघ में एकीकरण

4. आंतरिक सुरक्षा की समस्या

5. आवश्यक वस्तुओं के अभाव की समस्या

6. प्रशासनिक अधिकारियों की संख्या में भारी मात्रा में कमी

कल्याणकारी राज्य की स्थापना से प्रेरित होने के कारण भी सरकार के कार्यभार में अत्यधिक मात्रा में बढ़ोत्तरी हुई, परिणामस्वरूप केन्द्रीय सचिवालय का कार्यभार बढ़ा 15 अगस्त, 1947 को जब सत्ता का हस्तांतरण हुआ तो केन्द्रीय सचिवालय में 19 विभाग थे जिनका फिर से पुनर्गठन एवं सुधार करने के लिए स्वतंत्र भारत की सरकार ने सर गिरिजा शंकर बाजपेयी की अध्यक्षता में सचिवालय पुनर्गठन समिति की स्थापना की। कालांतर में विभागों की संख्या बढ़ी जैसे 1978 में 69 विभाग और 2001 में 81 विभाग।

वित्तीय प्रशासन का विकास

भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का शासक स्थापित होने के बाद प्रांतों को वित्त के संबंध में बहुत अधिक सीमा तक स्वतंत्रता दी गई, किन्तु 1833 के चार्टर अधिनियम के द्वारा वित्त का केन्द्रीकरण कर दिया गया। अधिनियम के द्वारा यह निश्चित किया गया कि किसी प्रांतीय सरकार को नए पद तथा नए वेतन भत्ते की स्वीकृति का अधिकार नहीं होगा, जब तक कि गवर्नर जनरल की पूर्व स्वीकृति न मिल जाए।

1833-1870 तक प्रांतीय सरकारें केन्द्र सरकार के अभिकर्त्ता के रूप में ही कार्य करती रहीं उन्हें कर लगाने अथवा उसे खर्च करने का कोई अधिकार नहीं था। सर्वप्रथम 1870 में वित्तीय विकेन्द्रीकरण की दिशा में लार्ड मेयो की सरकार द्वारा एक निश्चित योजना को अपनाया गया।

1. जिसके अंतर्गत जेलें, रजिस्ट्रेशन, पुलिस, शिक्षा, सड़कें, चिकित्सा सेवाए, छपाई आदि के व्यय की मदों तथा उनसे प्राप्त होने वाले राजस्व को प्रांतीय सरकारों के नियंत्रण में हस्तांतरित कर दिया गया।

2. प्रांतों को कुछ निश्चित वार्षिक अनुदान देने की व्यवस्था की गई।

1877 में स्ट्रेची द्वारा प्रस्तावित नवीन योजना के अंतर्गत भूमि कर, स्थानीय चुंगी, स्टाम्प, स्टेशनरी, कानून व न्याय और सामान्य प्रशासन की कुछ व्यय मदें प्रांतीय सरकारों के नियंत्रण में हस्तांतरित कर दी गई। वित्तीय विकेद्रीकरण की दिशा में 1882 में प्रस्तावित नई योजना के अनुसार राजस्व के समस्त साधनों को तीन भागों में विभक्त किया गया। केन्द्रीय, प्रांतीय व विभाजित

केन्द्रीय मदों से प्राप्त होने वाले राजस्व को केन्द्रीय नियंत्रण में तथा प्रांतीय राजस्व को प्रांतीय नियंत्रण में रखा गया। विभाजित मदों से प्राप्त होने वाली आय को केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों के बीच बराबर बराबर बाटने का निश्चय किया गया। विकेन्द्रीकरण के संबधं में 1907 में चार्ल्स होब हाऊस की अध्यक्षता में एक शाही आयोग नियुक्त किया गया। आयोग ने सिफारिश की, कि गवर्नर जनरल को प्रांतीय राजस्व में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।1919 के अधिनियम द्वारा प्रांतीय बजट केन्द्र सरकार से बिल्कुल पृथक कर दिए गए और प्रांतिय सरकारों को अपने बजट के निर्माण का पूर्ण अधिकार दिया गया। प्रांतों को पहली बार प्रांतीय या स्थानीय प्रकृति के कर लगाने का अधिकार मिला। 1935 के अधिनियम द्वारा प्रांतीय स्वायत्तता की व्यवस्था की गई और संघीय सरकार तथा प्रांतों के बीच तीन सूचियों के आधार पर न केवल कार्यो का वर्गीकरण किया गया, बल्कि वित्तीय साधनों का भी विभाजन किया गया। संघ सरकार तथा राज्यों के पृथक पृथक आय साधन रखे गए। कुछ सीमा में प्रांतों को उधार लेने का अधिकार भी दिया गया। प्रांतों को अपना घाटा पूरा करने के लिए केन्द्र सरकार की ओर से निमेयर रिपोर्ट के अनुसार वित्तीय सहायता प्रदान की गई। निमेंयर रिपोर्ट की इस बात को स्वीकार कर लिया गया, कि आयकर की भी आधी धनराशि प्रांतों में बांट दी जाए।

पुलिस प्रशासन का विकास

मुगल साम्राज्य के विघटन के उपरांत भारत में कानून-व्यवस्था की स्थिति बिगड़ती गई। पुलिस शक्ति क्षेत्रीय जमींदारों के हाथ आ गई। जब क्लाइव ने बंगाल की दीवानी प्राप्त की तो उसने प्रचलित प्रशासनिक व्यवस्था को बनाएं रखा। वारेन हेस्टिंग्स ने भी पुलिस व्यवस्था की ओर ध्यान नहीं दिया। सर्वप्रथम कार्नवालिस ने एक संगठित पुलिस व्यवस्था की शुरुआत की। उसने थाना व्यवस्था का आधुनिकरण किया तथा प्रत्येक क्षेत्र में एक पुलिस थाने की स्थापना कर उसे एक दरोगा के अधीन रखा। जिला स्तर पर जिला पुलिस अधीक्षक के पद का सृजन किया गया। ग्राम स्तर पर चौकीदारों को पुलिस शक्ति दी गई। इस तरह आधुनिक पुलिस व्यवस्था की शुरुआत हुई।

सक्षम पुलिस व्यवस्था ने बहुत सारे उद्देश्य पूरे किए। मध्य भारत में ठगों का दमन, क्रांतिकारी षड्यंत्रों का पर्दाफाश तथा राष्ट्रीय आंदोलन को इसी पुलिस व्यवस्था के द्वारा कुचला गया। इसने भारतीय जनता के साथ क्रूर व्यवहार भी किया। 1813 ईस्वी में संसद की एक समिति ने रिपोर्ट दी कि पुलिस ने भारतीय जनता को डाकुओं की तरह

प्रताड़ित किया है। वस्तुतः महत्वपूर्ण पदों पर भारतीयों की नियुक्ति के मामले में ब्रिटिश कंपनी सतर्क रही। कार्नवालिस ने तो स्पष्ट रूप से भारतीयों को भ्रष्ट मान लिया एवं उन्हें उत्तरदायी पदों से दूर रखा। कुछ छोटे-छोटे पदो पर भारतीयों की नियुक्ति अवश्य की गई, जैसे- अमीन एवं दरोगा। 1793 ईसवी के बाद आधिकारिक नीति भारतीयों को महत्वर्पूण पदों से वंचित करने की रही।

न्याय व्यवस्था का विकास

मुगल साम्राज्य के विघटन के बाद मुगलकालीन न्याय व्यवस्था टूट गई। मुगलकाल के उत्तरार्द्ध में भूमि सुपुर्दगी प्रथा से समृद्ध भू-स्वामियों के हाथों में आ गई। न्यायिक शक्तियां भी भू-स्वामियों के हाथों में आ गई। बंगाल की दीवानी प्राप्त करने के बाद क्लाइव ने प्रचलित व्यवस्था में कोई हस्तक्षेप नहीं किया। न्याय व्यवस्था में सुधार की दृष्टि से वारेन हेंस्टिंग्स का काल महत्वपूर्ण है। भारत में ब्रिटिश न्याय प्रणाली की स्थापना इसी काल में हुई ब्रिटिश न्याय प्रशासन भारतीय और ब्रिटिश प्रणालियों तथा संस्थाओं का सम्मिश्रण था। कानून के शासन तथा न्याय पालिका की स्वतंत्रता इस प्रणाली की विशेषता थी। वारेन हेसिटंग्स ने सिविल तथा फौजदारी मामलों के लिए अलग-अलग अदालतें स्थापित की। उसने न्यायिक सुधार में मुगल व्यवस्था को ही आधार बनाया।

सर्वप्रथम वारेन हेस्टिंग्स ने सिविल अदालतों की श्रृंखला स्थापित की। सबसे नीचे मुखिया, फिर जिले में जिला दीवानी अदालत तथा सबसे ऊपर कलकत्ता की सदर दीवानी अदालत थी। इसी तरह फौजदारी अदालतों का पुनर्गठन किया गया। प्रत्येक जिले में एक फौजदारी अदालत स्थापित की गई, जो काजी, मुफ्ती एवं मौलवी के अधीन होती थी। इसके ऊपर कलकत्ता की सदर दीवानी अदालत थी।

कार्नवालिस के द्वारा उपरोक्त व्यवस्था में सुधार किए गए। उसके सुधारों में यूरोपीय तत्व प्रबल थे। कार्नवालिस ने शक्ति पृथक्करण सिद्धांत के अंतर्गत लगान प्रबंध से दीवानी प्रशासन को पृथक कर दिया। 1793 में कार्नवालिस संहिता द्वारा कलेक्टर से न्यायिक एवं फौजदारी शक्तियां लेली गई। जिला अदालतों के लिए श्रेणी निर्धारित की गई तथा दीवानी अदालतों का पुनर्गठन हुआ। फौजदारी अदालतों की भी नई श्रृंखला बनाई गई। इसके अतिरिक्त विचारधारा से प्रेरित होने के कारण दंड-संहिता में परिवर्तन किया। विलियम बैंटिक के शासनकाल में उपयोगितावादी विचार धारा से प्रेरित होने के कारण दंड विधान की कठोरता को कम करने का प्रयत्न किया गया। कुछ महत्वपूर्ण न्यायिक पदों पर भारतीयों को नियुक्त किया गया। 1859 से 1861 के बीच दंड विधि, सिविल कार्य विधि तथा दंड प्रक्रिया पारित की गई ।इन सुधारों में संपूर्ण भारत के लिए एक ही विधि प्रणाली लागू की गई। 1861 मे भारतीय उच्च न्यायालय अधिनियम पारित हुआ तथा कलकत्ता एवं मद्रास में उच्च न्यायालय की स्थापना की गई। आगे लाहौर, पटना आदि स्थानों पर भी उच्च न्यायालय स्थापित हुए।

1935 के भारत शासन अधिनियम के आधार पर एक संघीय न्यायालय की स्थापना की गई। इस न्यायालय में एक प्रधान न्यायाधीश तथा सरकार द्वारा नियुक्त अन्य न्यायाधीश होते थे। न्यायालय के क्षेत्र में प्रारंभिक एवं अपीलीय तथा परामर्श संबंधी विषय थे। प्रांतीय न्यायालयों को दीवानी, आपराधिक, वसीयती, गैर वसीयती और वैवाहिक क्षेत्राधिकार मौलिक एवं अपीलीय दोनों प्रकार के प्राप्त थे ।

अभ्यास प्रश्न -

1. रेग्यूलेटिंग एक्ट कब पारित हुआ।

2.पिट्स इंडिया एक्ट कब पारित हुआ।
3.सन् में ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत में आगमन हुआ .....,।
4.1919 के अधिनियम को किस नाम जाना जाता है।
5.केन्द्रीय स्तर पर द्विसदनीय व्यवस्थापिका की स्थापना किस अधिनियम से हुई।
6.अशोक ने किस शिलालेख में घोषणा की "कि सारी प्रजा मेरी संतान है"।
7.अर्थशास्त्र के लेखक कौन है ?
8.मेगस्थनीज की पुस्तक का क्या नाम है ?

1.4 सारांश

इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन के पश्चात आप यह जानने और समझने में सक्षम हो गये होंगे कि किस प्रकार से भारतीय प्रशासन प्राचीन मौर्य काल से अपनी विकास की यात्रा शुरु करके मुगल काल से होते हुए ब्रिटिश काल तक की यात्रा पूर्ण की है। इस अध्ययन में आप ने यह देखा कि मौर्य साम्राज्य का स्वरूप राजतंत्रात्मक था जिसमें शासन का प्रधान राजा होता था। राजपद एक महत्वपूर्ण पद होगया और इस पद की शक्ति एवं अधिकार बढ़ गए। राजा, राज्य का प्रमुख होता था। जिसके पास कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका के अधिकारों के साथ वित्तीय शक्तियां भी थी। राजा की खुशी प्रजा की खुशी पर निर्भर करती थी। जनकल्याण पर राजा का कल्याण आश्रित था। राज्य में रहने वाले लोगों के हितों का संपादन ही राजा का प्रमुख कर्त्तव्य था। प्रशासन के शीर्ष पर बादशाह होता था। वह सभी प्रकार के सैनिक एवं असैनिक मामलों का प्रधान होता है था। बादशाह मुगल साम्राज्य के प्रशासन की धुरी था बादशाह की उपाधि धारण करता था, जिसका आशय था कि राजा अन्य किसी भी सत्ता के अधीन नहीं है। वह समस्त धार्मिक तथा धर्मोत्तर मामलों में अंतिम निर्णायक व अंतिम सत्ताधिकारी है। वह सेना, राजनीतिक, न्याय आदि का सर्वोच्च पदाधिकार है। वह संपूर्ण सत्ता का केन्द्र है तथा खुदा का प्रतिनिधि है। इसके बाद भारत में ईस्ट इंडिया कंम्पनी के आगमन के साथ ब्रिटिश प्रशासन के बीज पड़े। सन् 1600 में एक व्यापारिक कंपनी के रूप में ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत में आगमन हुआ, किन्तु देखते ही देखते यह कंपनी और इसके माध्यम से ब्रिटिश संसद का भारत पर साम्राज्य स्थापित हो गया। ब्रिटिश साम्राज्य का भारतीय प्रशासन के विविध पक्षों पर व्यापक प्रभाव पडा ।

1.5 शब्दावली

राजतंत्र -राजतंत्र वह शासन है जिसमें शासन का प्रधान राजा होता है। राजा, राज्य का प्रमुख होता था। जिसके पास कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका के अधिकारों के साथ वित्तीय शक्तियां निहित हों ।

सद्र-उस-सूद्र -यह बादशाह का मुख्य धार्मिक परामर्शदाता होता था। यह धार्मिक अनुदानों को नियंत्रित करता था। साथ ही यह धार्मिक मामलों से संबंधित मुकदमें भी देखता था।

मुख्य काजी - मुगल काल में यह न्याय विभाग का प्रधान होता था।

जागीरदारी प्रथा - मुगल काल में राजपूत जमींदारों के माध्यम से भू- राजस्व संग्रह करने की प्रथा, जो सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली थे और जाति, गोत्र के आधार पर विभाजित थे। अकबर मनसबदारों का वेतन नकद में देना चाहता था किन्तु उस समय के कुलीन वर्ग को भू-संपत्ति से जबर्दस्त आकर्षण था। इसलिए जागीरदारी प्रथा के अंतर्गत कुछ अधिकारियों को जागीर में वेतन दिया जाता था।

इक्तादारी और जागीरदारी प्रथा - दिल्ली सल्तनत काल में इक्तादारी पद्धति प्रचलित थी और इक्ता के मालिक इक्तादार कहे जाते थे। इक्तादारी पद्धति भी कृषकों से अधिशेष प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण जरिया था किन्तु इक्ता और जागीर में एक महत्वपूर्ण अंतर यह था कि इक्ता में भूमि का आबंटन होता था जबकि जागीर में भू-राजस्व का आबंटन होता था। जागीरदारी व्यवस्था और इकतादारी व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण अंतर यह भी था कि जागीरदारों को केवल भू-राजस्व की वसूली का अधिकार दिया गया था संबंधित क्षेत्र के प्रशासन का नहीं

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.1773 2. 1784 3. 1600 4. मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड 5. मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड 6.धौली शिलालेख 7. कौटिल्य 8. इंडिका

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय संविधान	-	ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय लोक प्रशासन	-	बी.एल. फड़िया
भारतीय लोक प्रशासन	-	अवस्थी एवं अवस्थी

1.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान	-	डी.डी. बसु
भारतीय लोक प्रशासन	-	एस.सी. सिंहल

1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1.ब्रिटिश काल में भारतीय प्रशासन के विकास पर निबंध लिखिए।

2.मुगल प्रशासन ,केन्द्रीय प्रशासन था। स्पष्ट कीजिए।

3.मौर्य प्रशासन में राजा पर कर्त्तवय का अंकुश था । व्याख्या कीजिए।

इकाई 2 : भारतीय प्रशासन की विशेषताएँ

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई उत्तरदाई कारण
2.4 भारतीय प्रशासन की विशेषताएँ
2.4.1 गतिशील प्रशासन
2.4.2 विकास प्रशासन
2.4.3 उत्तरदायी प्रशासन
2.4.4 नौकरशाही एवं लालफीताशाही
2.4.5 प्रशासन की तटस्थता
2.4.6 सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ
2.4.7 प्रशासन की बढ़ती हुई शक्तियाँ
2.4.8 प्रशासन का लक्ष्य सामाजिक – आर्थिक न्याय
2.4.9 समन्वित प्रशासन
2.5 सारांश
2.6 शब्दावली
2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

इसके पहले इकाई १ के अध्ययन के पश्चात आप यह जानने और समझने में सक्षम हो गये होंगे कि किस प्रकार से भारतीय प्रशासन प्राचीन मौर्य काल से अपनी विकास की यात्रा शुरु करके मुगल काल से होते हुए ब्रिटिश काल तक की यात्रा पूर्ण की है। भारत में ईस्ट इंडिया कंम्पनी के आगमन के साथ ब्रिटिश प्रशासन के बीज पड़े। सन् 1600 में एक व्यापारिक कंपनी के रूप में ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत में आगमन हुआ, किन्तु देखते ही देखते यह कंपनी और इसके माध्यम से ब्रिटिश संसद का भारत पर साम्राज्य स्थापित हो गया। ब्रिटिश साम्राज्य का भारतीय प्रशासन के विविध पक्षों पर व्यापक प्रभाव पडा ।

इस इकाई २ में हम भारतीय प्रशासन की विशेषताओं का अध्ययन करेंगे , जिसमे हम स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई उत्तरदाई कारणों का अध्ययन करते हुए संसदीय लोकतंत्र , संघात्मक शासन ,स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन की बदलती प्रकृति (प्रशासन के लक्ष्यों और उद्देश्यों में परिवर्तन) का अध्ययन करेंगे। साथ ही यह भी देखेंगे कि किस प्रकार भारतीय संविधान ,समाजवादी और पंथनिरपेक्ष राज्य की स्थापना करता है। और अंततःहम यह अध्ययन करेंगे कि किस प्रकार भारतीय प्रशासन ,गतिशील प्रशासन है , विकास प्रशासन है , उत्तरदायी प्रशासन है और राजनीतिक उथल – पुथल से अपने को अलग रखते हुए सामाजिक - आर्थिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समन्वित रूप से कार्य कर रहा है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हम

1. स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई उत्तरदाई कारणों को जान सकेंगे।
2. भारतीय प्रशासन की विशेषताओं को जान सकेंगे।
3. संसदीय लोकतंत्र की स्थापना के उद्देश्यों को जान सकेंगे।
4. संघात्मक शासन और उसकी स्थापना के कारणों को जान सकेंगे।

2.3 स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई उत्तरदाई कारण

जैसाकि हम जानते है कि 15 अगस्त 1947 को हमारे देश को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। देश को आजादी मिलाने के साथ ही उन सपनों को साकार करने के लिए भी प्रयास शुरू किये जाने लगे ,जिनको लक्ष्य मानकर आजादी के दीवानों ने संघर्ष किया था। लेकिन उन सपनो को साकार करने के लिए यह आवश्यक था कि ,उसके अनुरूप प्रशासनिक तंत्र का निर्माण किया जाए साथ ही साथ इस नवनिर्मित प्रशासनिक तंत्र के लक्ष्य भी स्पष्ट किये जाए। स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई कारण उत्तरदाई थे जो निम्नलिखित हैं –

१.संसदीय लोकतंत्र की स्थापना --

स्वंतंत्रता के पश्चात देश में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की गई। आजादी के पूर्व कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं थी, वह केवल ब्रिटिश आकाओं के प्रति ही उत्तरदायी थी। परन्तु संसदीय लोकतंत्र की स्थापना के साथ ही कार्यपालिका को विधायिका के प्रति उत्तरदायी बनाया गया। कार्यपालिका का अर्थ मंत्रिमंडल से है ,जबकि विधायिका का तात्पर्य कानून निर्माण करने वाली संस्था संसद से है। कार्यपालिका का गठन संसद के सदस्यों में से किया जाता है और कार्यपालिका के गठन का अवसर उस दल को मिलता है जिसे संसद के निम्न सदन में बहुमत प्राप्त होता है । संसद के निम्न सदन में जनप्रतिनिधि होते हैं जो जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुनकर आते है । इस प्रकार से स्पष्ट होता है कि कार्यपालिका अपने अस्तित्व के लिए जनप्रतिनिधियों के बहुमत के साथ समर्थन पर निर्भर करती है ,और ये जनप्रतिनिधि जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं । इस प्रकार अब प्रशासन ,ब्रिटिश शासन के विपरीत ,जनता के प्रति उत्तरदायी है ।

२.संघात्मक शासन की स्थापना

ब्रिटिश शासन के समय हमारे देश में एकात्मक शासन था जिसमे एक केंद्र से शासन संचालित किया जाता था । जब कि हमारे देश में भौगोलिक ,सामाजिक और सांस्कृतिक भिन्नतायें पाई जाती है ,इन भिन्नताओं के साथ इनकी समस्याएँ भी भिन्न प्रकृति की होती हैं ,इस लिये इनका स्थानीय स्तर पर बेहतर समाधान किया जा सकता है । इस लिए शक्ति विभाजन के सिद्धांत के आधार संघात्मक शासन की स्थापना की गई । जो ,सामाजिक और सांस्कृतिक भिन्नताओं को बनाए रखने के साथ ही उनकी समस्याओं के स्थानीय स्तर पर समाधान संभव हो सका ।

३.प्रशासन की प्रकृति में परिवर्तन (प्रशासन के लक्ष्यों और उद्देश्यों में परिवर्तन)

जैसा कि यह सर्वविदित है कि भारतीय संविधान में उन लक्ष्यों और उद्देश्यों का स्पष्ट प्रावधान किया गया है ,जिनकी सिद्धि के लिए प्रशासन को कार्य करना है | यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि स्वतंत्रता के पहले हमारे देश का प्रशासन नियामकीय प्रकृति का था ,दूसरे शब्दों में प्रशासन के कार्य मुख्यतःनियामकीय थे अर्थात प्रशासन का मुख्य कार्य क़ानून और व्यवस्था बनाये रखना था | जिससे अंग्रेज शासन को अपने लक्ष्यों की सिद्धि में अनवरत सहूलियत बनी रहे |

परन्तु स्वतंत्रता के उपरान्त संविधान निर्माताओं ने ,स्पष्ट रूप से उन लक्ष्यों का प्रावधान किया जिनको ध्यान में रखकर प्रशासन को संचालित किया जाना था | पहले प्रशासन जनता पर अपना दबाव बनाकर कार्य करता था

,जनता के कोई मौलिक अधिकार नहीं थे ,जनता का यह दायित्व था की प्रशासन के निर्देशों का पालन करता रहे | किन्तु आजादी के बाद अब प्रशासन जनता के लिए काम करता है क्यों कि जिसकी हम आप को ऊपर बता चुके हैं कि हमारे देश में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की गयी | जिसमें सरकार जनता द्वारा निर्वाचित होती है और जनता के लिए काम करती है ,इस लिए अब प्रशासन जनता के दबाव में काम करता है | संविधान के द्वारा मौलिक अधिकारों का प्रावधान किया गया | ये वे अधिकार हैं जो राज्य और व्यक्तियों के विरूद्ध प्रदान किये गए हैं | अर्थात इन अधिकारों के उल्लंघन होने पर चाहे वे व्यक्ति के द्वारा हों या राज्य के द्वारा हों ,व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अनुच्छेद ३२ के अनुसार सर्वोच्च न्यायलय और अनुच्छेद २२६ के तहत उच्च न्यायलय में जा सकता है |

इसी के साथ – साथ संविधान के भाग ४ में नीतिनिदेशक तत्वों का उपबंध भी करके राज्य को कुछ कल्याणकारी दायित्व भी सौपे गए ,जिनको लागू करने की जिम्मेदारी प्रशासन की है |

४.समाजवादी और पंथनिरपेक्ष राज्य – हमारे मूल संविधान में समाजवादी और पंथनिरपेक्ष शब्द का समावेश नहीं किया गया था | 42 वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा इनका समावेश संविधान में किया गया | इन शब्दों के समावेश से प्रशासन के लक्ष्यों में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया | इसको और अधिक स्पष्ट करनें के ले इनके अर्थ को भी स्पष्ट करना आवश्यक है | समाजवाद का तात्पर्य है कि राज्य लोंगों के बीच आय की असमानताओं को न्यूनतम करने प्रयास करेगा | पंथनिरपेक्ष का अर्थ –राज्य का अपना कोई राजधर्म नहीं होगा ,इसका तात्पर्य यह भी है कि राज्य सभी धर्मो के साथ समान वर्ताव करेगा ,किसी के साथ किसी भी प्रकार का पक्षपातपूर्ण व्यवहार नहीं करेगा | यद्यपि इन शब्दोंके संविधान में समावेश के पूर्व भी ऐसे लक्ष्यों की पूर्ति के लिए प्रावधान थे | इन उपबंधों से प्रशासन की जिम्मेदारी में आमूलचूल परिवर्तन आया है |

2.4 भारतीय प्रशासन की विशेषताएँ

इस प्रकार से स्वतंत्रता के उपरांत भारतीय प्रशासन के उद्देश्यों और लक्ष्यों में अभूतपूर्व परिवर्तन आया है | इस परिवर्तन के कारण भारतीय प्रशासन में निम्नलिखित विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं ,जो इस प्रकार हैं ---

2.4.1 गतिशील प्रशासन

जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं कि आजादी के बाद प्रशासन के उद्देश्यों और लक्ष्यों में आमूलचूल परिवर्तन देखने को मिल रहा है | आज प्रशासन जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन बन गया है | समय के बदलाव के साथ नित्य नई आवश्यकताएं और समस्याएं पैदा होती रहती है | इन आवश्यकताओं की पूर्ती और समस्याओं के समाधान हेतु प्रशासन को निरंतर तत्पर रहना होता है | और बदलती परिस्थितियों के अनुरूप अपने ढालते रहना है | क्योंकि अब प्रशासन जनता के स्वामी के रूप में नहीं वरन सेवक के रूप में कार्य कर रहा है |

2.4.2 विकास प्रशासन

विकास प्रशासन एक परिवर्तनशील अवधारणा है | जो निरंतर सामाजिक,राजनीतिक ,आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को लाने के लिए प्रयत्नशील है ,साथ ही इन परिवर्तनों को सकारात्मक दिशा देने का भी कार्य कर रहा है | इसका सम्बन्ध योजना के निर्माण ,इसके निर्माण हेतु आवश्यक पूर्वआवश्यकताओं की पूर्ति से भी सम्बन्ध रखता

है | विकास प्रशासन का सम्बन्ध नीतियों के कार्यान्वयन से है | इसलिए सरकार के जनकल्याणकारी और सशक्तिकरण संबंधी नीतियों के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी भी इसी पर होती है |

2.4.3 उत्तरदायी प्रशासन

संसदीय शासन की एक प्रमुख विशेषता ,उत्तरदायी शासन की स्थापना | चूँकि हमारे देश में संसदीय शासन में निम्न सदन(लोक सभा) के सदस्यों का चुनाव जनता के द्वारा ,प्रत्यक्ष रूप से वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है |मंत्रिपरिषद का गठन संसद के सदस्यों में से ही किया जाता है |मंत्रिपरिषद के सदस्य सम्बंधित विभाग के अध्यक्ष(राजनीतिक प्रमुख) होते है | इस लिए अपने विभाग के कार्यों के लिए ,वे जनता के प्रति उत्तरदायी होती हैं |

2.4.4 नौकरशाही एवं लालफीताशाही

हमारे देश में नौकरशाही का एक विस्तृत ढांचा विद्यमान है ,जो नीति निर्माण में सहयोगी भूमिका से लेकर ,नीति के क्रियान्वयन तक के कार्यों में सक्रिय रहती है | परन्तु यह नौकरशाही अपने दायित्वों के निर्वहन में नियम - कानून और प्रक्रिया पर ज्यादा जोर देती दिखायी देती है ,जिससे ये नियम - कानून और प्रक्रिया पर ज्यादा जोर देना ही साध्य के रूप में दिखायी देने लगता है , जिससे लालफीताशाही का दोष प्रशासन में उभरकर सामने आता है |

2.4.5 प्रशासन की तटस्थता

भारतीय प्रशासन की एक और महत्वपूर्ण विशेषता इसकी राजनीतिक तटस्थता | अर्थात लोकसेवक अपने सार्वजनिक जीवन में राजनीतिक अभिव्यक्तियों अर्थात राजनीतिक विचारों और व्यवहारों से सर्वथा दूर रखता है | इसका परिणाम यह होता है कि प्रशासनिक अधिकारी विना किसी दलीय निष्ठा के ,पूर्वाग्रह से मुक्त होकर अपने दायित्वों का निर्वहन करता है | सरकार चाहे किसी भी दल की हो , उसका सम्बन्ध केवल नीतियों के निष्पक्ष क्रियान्वयन से होता है ,न कि दलीय भावना से | इस तरह के राजनीतिक तटस्थता के लिए लोक सेवकों हेतु भारतीय संविधान में उपबंध किये गए हैं

2.4.6 सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ

आजादी के बाद सामान्य रूप से प्रशासन में सामान्यज्ञो की नियुक्ति होती थी किन्तु उसके बाद के समय में विभिन्न प्रकार की जरूरतों को पूरा करने के लिए विशेषज्ञों की भी नियुक्ति की जाने लगी | जैसे डॉक्टर, इंजीनीयर,वैज्ञानिक,मनोवैज्ञानिक ,कृषि वैज्ञानिक,अर्थशास्त्री ,विधिवेत्ता आदि |

2.4.7 प्रशासन की बढ़ती हुई शक्तियाँ

स्वतन्त्रता के पूर्व प्रशासन की प्रकृति नियामकीय थी ,जिसका प्रमुख लक्ष्य कानून और व्यवस्था बनाए रखना था | परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की गई ,जिसमे सरकार जनता की भलाई के लिए कार्य करती है ,न कि अपने लाभ के लिए जैसा कि अंग्रेज शासन काल में हुआ करता था | स्वतन्त्रता के पश्चात संविधान निर्माताओं ने ,मूलभूत सामजिक आर्थिक लक्ष्यों की घोषणा की है | इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए नियोजन प्रक्रिया प्रारम्भ की गई | इस कारण से प्रशासन की शक्तियों में अभूतपूर्व बृद्धि कर दी है | नित्य नवीन कल्याणकारी योजनाएं लागू की जा रही है ,इनको लागू करने की जिम्मेदारी प्रशासन पर ही होती है | इसके साथ ही साथ अब तो सशक्तिकरण से सम्बंधित नीतियां भी लागू की जा रही हैं जिससे समाज में अब तक हासिए पर रहे समुदायों को भी

,समाज की मुख्य धारा से जोड़ा जा सके | यदि इन सब बातों को हम संक्षेप में कहें तो यह है कि व्यक्ति के जन्म से पूर्व माँ के स्वास्थ्य ,जन्मोपरान्त –जन्म प्रमाणपत्र ,बच्चे के स्वास्थ्य ,पोषण ,नाना प्रकार के टीके ,जनगणना ,उसकी शिक्षा ,रोजगार ,विवाह पंजीकरण ,बृद्धावस्था में उनके हित में विभिन्न प्रकार के सामाजिक सुरक्षा संबंधी कार्यक्रम ,और अंततः मृत्यु पंजीकरण और इसी प्रकार से अन्य जो भी लोकहित में आवश्यक कार्य हों प्रशासन के द्वारा ही किये जाते हैं | लोकतंत्र में प्रशासन की बढती जिम्मेदारियों ने उसकी शक्तियों में भी अभूतपूर्व बृद्धि कर दी है |

2.4.8 प्रशासन का लक्ष्य सामाजिक – आर्थिक न्याय

लंबे संघर्ष के पश्चात देश को आजादी मिली थी | जिसका उद्देश्य देशवासियों को उन सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों से सुसज्जित करना जिनसे अभी तक वे वंचित रहे है | क्यों कि परम्परागत भारतीय समाज में कुछ सामाजिक और आर्थिक निर्योग्यताएं प्रचलित थी | जैसे अश्पृश्यता (छुआ - छूत) ,व्यवसाय की निर्योग्यताएं आदि | हमारे संविधान में एक तरफ तो इन निर्योग्यताओं को समाप्त किया गया तो दूसरी तरफ ,संविधान के द्वारा देशवासियों को विभिन्न प्रकार के सामाजिक और आर्थिक अधिकार प्रदान किये गए जिससे वे सम्मान पूर्वक अपना जीवन यापन कर सकें | इस प्रकार के व्यापक उपबंध हमारे संविधान भाग ३ में मूलाधिकार और भाग 4 के नीति निदेशक तत्वों में किये गए हैं |

2.4.9 समन्वित प्रशासन –

हमारे देश में भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विविधताएं है | इस बात को ध्यान में रखते हुए संविधान निर्माताओं ने संघात्मक शासन व्यवस्था को अपनाया गया | जिसकी मुख्य विशेषता – लिखित ,निर्मित और कठोर संविधान , संघ सरकार और राज्य सरकार के बीच शक्तियों का विभाजन , संविधान की व्याख्या ,नागरिकों के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा और संघ सरकार और राज्य सरकार के बीच उत्पन्न होने वाले विवादों का निराकरण करने के लिए स्वतन्त्र ,निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायलय की स्थापना | इसके साथ ही साथ मजबूत केंद्र की स्थापना के लिए एकात्मक शासन के मुख्य प्रावधानों को भी सम्मिलित किया गया | ऐसा इस लिए किया गया क्योंकि देश ,स्वतंत्रता के समय दुखद विभाजन को देख चुका था | इसी बात को ध्यान में रखते हुए संघ और राज्य के लिए सम्मिलित सेवाओं का प्रावधान किया गया ,जिसे अखिल भारतीय सेवा कहते हैं | जिसमे तीन अखिल भारतीय सेवा

हैं- १. भारतीय प्रशासनिक सेवा २. भारतीय पुलिस सेवा ३. भारतीय वन सेवा | इन सेवाओं का उद्देश्य केंद्र और राज्य के बीच सहयोग को निरंतर प्रोत्साहित करना ,जिससे राष्ट्र निर्माण का कार्य सफलता पूर्वक किया जा सके और कल्याणकारी और सशक्तिकारक नीतियों को भी सफलतापूर्वक लागू किया जा सके | यहाँ हम यह भी स्पष्ट करना चाहते है कि केंद्र सरकार के पास अपना कोई अलग प्रशासनिक तंत्र नहीं है अपितु केंद्र की नीतियों को भी सफलतापूर्वक लागू करने में राज्य के प्रशासनिक तंत्र से सहयोग लिया जाता है |

भारतीय प्रशासन की उपर्युक्त विशेषताओं के साथ ही साथ इसके कुछ अन्य पक्षों का भी अध्ययन करना आवश्यक होगा जो कि ,इनमें प्रायः दिखाई देता है ---

1.पिछले कुछ वर्षों में यह तथ्य उभरकर सामने आया है की प्रशासनिक अधिकारीयों के अपने दायित्वों के निर्वहन में ,राजनीतिक हस्तक्षेप दिखाई दे रहा है ,परिणामस्वरूप प्रशासकों में निराशा की भावना प्रबल होती दिखाई देती है | राजनीति में अपराधीकरण बहुत ही चिंता का विषय है ,यदि इसके निराकरण हेतु कोई संस्थागत उपाय और उन उपायों का समुचित क्रियान्वयन का प्रबंध करना उपयोगी होगा |

२.कल्याणकारी योजनाओं ,विकास कार्यों और सशक्तिकारक नीतियों के क्रियान्वयन में जनता की सक्रीय भागीदारी नहीं हो पाती है जिसके फलस्वरूप नीतियों और कार्यक्रमों की सफलता संदिग्ध हो जाती है | इसका प्रमुख कारण प्रशासन के द्वारा जनता को साथ लेकर न चलने की प्रवृत्ति है | इस लिए आवश्यकता इस बात की है प्रशासन को जनता के प्रति संवेदनशील बनाया जाये ,और प्रशासकों को भी नियत अंतराल पर नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित किये जाते रहें | साथ ही जिस क्षेत्र और जिस समुदाय विशेष के लिए नीति का निर्माण किया जाना है ,उसकी भी नीति निर्माण में भागीदारी सुनिश्चित करने के उपाय किये जाने चाहिए |

३.देश को आजाद हुए छ : दशक से अधिक हो चुके हैं ,परन्तु आज भी समाज का ढांचा सामंतवादी ही दिखाई देता है ,फलस्वरूप बहुत से कार्यक्रमों का लाभ आम आदमी तक नहीं पहुँच पाता है | जिसकी चर्चा हमारे एक पूर्व प्रधानमंत्री कर चुके हैं ,जिसमें उन्होंने यहाँ तक कहा कि गाँव के लिए भेजे गए एक रुपये में ,मात्र 15 पैसे ही उन् तक पहुँच पाता है | इस लिए आवश्यकता इस बात की है कि इस तरह की सुविधाएं देश के आम आदमी तक पहुंचे ,इसके लिए सामाजिक अंकेक्षण जैसे उपायों के साथ ,इस प्रकार के अन्य उपायों को भी अपनाने पर जोर दिया जाना चाहिए |

४.वोहरा समिति (1995) ने अपने प्रतिवेदन में राजनीतिज्ञों ,प्रशासकों और माफियाओं के बीच संबंधों को उजागर करके यह स्पष्ट कर दिया कि अधिकतर योजनाएं आम आदमी के नाम से संचालित तो हो रही है परन्तु उनका वास्तविक लाभ लक्षित व्यक्ति और समूह तक नहीं पहुच पा रहा है |

अभ्यास प्रश्न

1. 15 अगस्त 1947 को हमारे देश को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। सत्य / असत्य
2. संसद के निम्न सदन के जनप्रतिनिधि ,जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुनकर आते है । सत्य / असत्य
3. शक्ति विभाजन के सिद्धांत के आधार संघात्मक शासन की स्थापना की गई है ।
4. मूल अधिकारों के उल्लंघन होने पर व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अनुच्छेद 32 के अनुसार सर्वोच्च न्यायलय और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायलय में जा सकता है | सत्य / असत्य
5. संविधान के भाग 4 में नीतिनिदेशक तत्वों का उपबंध किया गया है। सत्य / असत्य
6. पंथनिरपेक्ष शब्द का समावेश नहीं किया गया था | सत्य / असत्य
7. 42 वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा समाजवादी ,पंथनिरपेक्ष और अखंडता का समावेश संविधान किया गया। सत्य / असत्य
8. संविधान भाग ३ में मूलाधिकारों का प्रावधान किया गया है। सत्य / असत्य

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हमने स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई उत्तरदाई कारणों का अध्ययन किया जिसमे संसदीय लोकतंत्र , संघात्मक शासन ,स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन की बदलती प्रकृति (प्रशासन के लक्ष्यों और उद्देश्यों में परिवर्तन) का अध्ययन किया है साथ ही यह भी अध्ययन किया कि किस प्रकार भारतीय संविधान ,समाजवादी और पंथनिरपेक्ष राज्य की स्थापना करता है। और अंततःहमने यह

अध्ययन किया कि, किस प्रकार भारतीय प्रशासन ,गतिशील प्रशासन है , विकास प्रशासन है , उत्तरदायी प्रशासन है और राजनीतिक उथल – पुथल से अपने को अलग रखते हुए सामाजिक - आर्थिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समन्वित रूप से कार्य कर रहा है । साथ ही यह भी देखा कि किस प्रकार से प्रशासन में लालफीताशाही के दुर्गुण उभरे हैं ,जिसमे सामाजिक - आर्थिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया को इतना महत्व देते दिखाई देते हैं कि ,लक्ष्य गौण हो जाते है |

परन्तु बावजूद इसके स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय प्रशासन ने सामाजिक - आर्थिक न्याय की स्थापना के मार्ग पर चलने का अच्छा प्रयास किया है किन्तु बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालकर जन आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए अभी बहुत कुछ करना बाकी है |

2.6 शब्दावली

संसद – भारत में कानून निर्माण की सर्वोच्च संस्था है ,जो राष्ट्रपति, राज्य सभा और लोक सभा से मिलकर बनती है

संघात्मक शासन – स्थानीय स्वायत्तता के साथ राष्ट्रीय एकता और सुरक्षा को ध्यान में रखकर स्थापित की जाने वाली शासन व्यवस्था है ,जिसकी प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार है १. शासन के तीनों अंगों में शक्ति विभाजन २.लिखित निर्मित और कठोर संविधान ३.स्वतन्त्र ,निष्पक्ष सर्वोच्च न्यायालय |

समाजवादी – भारत के सन्दर्भ में इसका अर्थ यह है कि –राज्य लोंगो के बीच आर्थिक असमानताओं को न्यूनतमकरने का प्रयास करेगा |

पंथनिरपेक्ष- इसका अर्थ है कि राज्य का अपना कोई राजधर्म नहीं होगा ,और वह सभी धर्मो कोसमानरूप से संरक्षण प्रदान करेगा

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

सत्य 2 सत्य.3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य 6. सत्य 7. सत्य 8. सत्य

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया

भारतीय लोक प्रशासन - अवस्थी एवं अवस्थी

2.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - डी.डी. बसु

भारतीय लोक प्रशासन - एस.सी. सिंहल

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.भारतीय प्रशासन के विशेषताओं की विवेचना कीजिये

२. स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय प्रशासन की प्रकृति में परिवर्तन के कारणों को स्पष्ट कीजिये

इकाई 3 : भारतीय प्रशासन का सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक व संवैधानिक पर्यावरण

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 भारतीय प्रशासन का पर्यावरण
3.3.1 भारतीय प्रशासन: सांस्कृतिक पर्यावरण
3.3.2 भारतीय प्रशासन :सामाजिक पर्यावरण
3.3.3 भारतीय प्रशासन: राजनीति पर्यावरण
3.3.4 भारतीय प्रशासन: आर्थिक पर्यावरण
3.3.5 भारतीय प्रशासन: संवैधानिक पर्यावरण
3.4 सारांश
3.5 शब्दावली
3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.9 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

पर्यावरण दो शब्द परि और आवरण से मिलकर बना है। जिसका शब्दिक अर्थ हैं चारो ओर घिरा हुआ। सामाजिक विज्ञान में पर्यावरण का स्वरूप प्राकृतिक विज्ञान के जैविकिय एवं अजैविकिय संघटनों से भिन्न है। यद्यपि लोकप्रशासन में पर्यावरण या परिवेश अथवा परिस्थिति के अध्ययन का विचार वनस्पति विज्ञान से ग्रहण किया गया है। परन्तु तात्विक रूप से दोनों में भिन्नता है।

डा0 एम0 पी0 शर्मा के अनुसार किसी भी सामाजिक व्यवस्था में पर्यावरण का अर्थ होता है संस्थान, इतिहास, विधि, आचार शास्त्र, दर्शन, धर्म, शिक्षा, परम्परा, विश्वास, मूल्य, प्रतीक, पौराणिक गाथांए आदि जिसमें भौतिक एवं अभौतिक नाचने गाने तथा अन्य प्रकार के मनोरंजन और कलाएं सम्मिलित है।

जबकि जीव विज्ञान में पर्यावरण से तात्पर्य सृष्टि के छोटे बड़े सभी जीवधारियों और प्रकृति के समस्त अजैविक तत्वों का समाहार है। जो जीवित प्राणीयों के अस्तित्व जीवन ओर पुनरूत्पादन को प्रभावित करते है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से हम यह जान सकेंगे कि

1.भारतीय प्रशासन में पर्यावरण का क्या तात्पर्य है।
2.किस प्रकार से भारतीय प्रशासन सांस्कृतिक, पर्यावरण से प्रभावित होता है।
3.किस प्रकार से भारतीय प्रशासन सामाजिक, पर्यावरण से प्रभावित होता है।
4.किस प्रकार से भारतीय प्रशासन, राजनीतिक पर्यावरण से प्रभावित होता है।
5.किस प्रकार से भारतीय प्रशासन आर्थिक पर्यावरण से प्रभावित होता है।
6.किस प्रकार से भारतीय प्रशासन संवैधानिक पर्यावरण से प्रभावित होता है।

3.3 भारतीय प्रशासन का पर्यावरण

सन् 1961 में एफ. डब्ल्यू . रिग्स की पुस्तक 'द इकोलॉजी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' प्रकाशित हुई। इस पुस्तक ने इस क्षेत्र में तहलका मचा दिया। इस पुस्तक में लोक प्रशासन तथा पर्यावरण के बीच परस्पर क्रिया को तुलनात्मक ढंग सं समझने का प्रयास किया गया था। रिंक्स के अतिरिक्त जॉन एम. ग्रास, संवर टफल, रास्कों पार्टिन आदि विद्वानों ने लोक प्रशासन में पर्यावरण के अध्ययन को व्यापक विस्तृत बनाया है। आज जब राज्य का स्वरूप प्रशासनिक हो गया है। किसी भी संस्थान या संगठन के विस्तृत विवेचन हेतु पर्यावरण का अध्ययन एवं विवेचन आवश्यक हो गया है। यह निर्विवाद सत्य है कि लोक प्रशासन कई तत्वों से प्रभावित होता है जैसे सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिवेश। लोक प्रशासन समाज विज्ञान के अन्तर्गत है। इसे समझने के लिए देश में चारों ओर होने वाली घटनाओं का अध्ययन आवश्यक है। अब लोक प्रशासन के विषय के अन्तर्गत यहां भारतीय प्रशासन के संदर्भ पर्यावरण की चर्चा करेंगें|

3.3.1 भारतीय प्रशासन सांस्कृतिक, पर्यावरण

संस्कृति शब्द मूल रूप से संस्कृत भाषा का शब्द है। संस्कृति अंग्रजी भाषा के कल्चर शब्द का रूपान्तरण है। कल्चर शब्द लैटिन भाषा के कलचुरा तथा कोलियर शब्द से बना है जिसका अर्थ है उत्पादन और परिष्कार। अतः संस्कृति के अंतर्गत समुदाय के रहन सहन, खानपान, जीवन शैली, बौद्धिक उपलब्धियों एवं जीवन दर्शन आते है। जी. ई. ग्लैडन ने अपनी पुस्तक 'डायनामिक ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' में लोक प्रशासन और संस्कृति पर्यावरण के संबंधों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि यदि प्रशासनिक संस्कृति रूपान्तरण के कारण हुई प्रगति से सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाती तो सामाजिक असंतोष हिंसा से सामाजिक ढांचा अंततः ध्वस्त हो जायेगा। सामाजिक संस्कृति की अनुकूलन क्षमता ही प्रशासन में लोक सामंजस्य और व्यवस्था बनाये रखने में प्रमुख भूमिका निभाती है।

भारतीय संस्कृति के विषय में एक चिर परिचित और प्रिय उक्ति है। 'भारतीय संस्कृति में अनेकता में एकता का समावेश हैं | भारतीय संस्कृति की धारा का मूल स्रोत वैदिक धर्म है। यही सनातन धर्म के नाम से विख्यात है। यह भी सत्य है कि वैदिक आर्य और उनकी संस्कृति अपनी पूर्ववर्ती सिन्धु संस्कृति से भी प्रभावित रही है। भारतीय संस्कृति की धारा में निरन्तरता प्रवाहता सदैव बनी रही। मध्यकाल में इस्लामिक संस्कृति आगमन व ईसाई संस्कृति इसे अवरूद्ध ना कर सकी। बल्कि इसकी अपनी अमरता ने परिष्कृत ही कियाहै । मध्यकाल के भक्ति आंदोलन और आधुनिक काल के नवजागरण इसके प्रमाण है। भारत अनेक जातियों, धर्मो और भाषाओं का जमघट है। भारत के राजनैतिक इतिहास में अनेक जातियों के प्रवेश किया है। उनकी न केवल भाषाओं बल्कि धर्म, विश्वास, परम्परा भिन्न रही है। 15 अगस्त, 1947 के बाद में भारत अपनी अखण्डता अक्षुण अवश्य बनाये हुए है, परन्तु एक राष्ट्र- राज्य के रूप में अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। इसकी सांस्कृतिक भिन्नताएं इसमें अवरोध उत्पन्न करती है। प्रशासनिक संदर्भ में तो भिन्नताएं बहुत अधिक पीड़ादायक सिद्ध हुई।

सहिष्णुता जहां एक नैतिक आदर्श प्रस्तुत करके सामाजिक जीवन को सरल, सुगम दर्शन प्रदान करते है वहीं प्रशासनिक दृष्टिकोण से यही चीजें कठिनाईयां प्रस्तुत करती है। प्रशासन मानव जीवन को सुखमय और संघर्षरहित बनाने के लिए होता है। परन्तु महज सांस्कृतिक भिन्नता के कारण भिन्नसमुदायों के लिए भिन्न2 कार्यक्रमों का निर्माण करना और उनको क्रियान्वित करना थोड़ा कठिन होता है। यद्यपि प्रशासनिक श्रेष्ठता या हीनता का यह एक

मात्र कारण नहीं है। यहद संस्कृति में कुछ और गुण विद्यमान हों तो यह दुर्गुण प्राकृतिक गुण में बदल सकता है। भारतीय प्रशासन के माध्यम से जब सामाजिक बुराईयों को दूर करने एवं प्रगतिशील व उन्नत कार्यक्रम चलाये जाते हैं तो सांस्कृतिक परम्पराओं के कारण उसका विरोध किया जाता है। जब कभी कोई सामाजिक लक्ष्य प्राप्त करने की चेष्ठा की जाती है तो भारतीय समाज के विभिन्न वर्ग सिर्फ सांस्कृतिक अंर्तविरोधों के कारण उसका विरोध करते हैं। अतः लोकतांत्रिक पृष्ठभूमि के कारण प्रशासन अवसादग्रस्त हो जाता है। स्वतन्त्रता के पश्चात राष्ट्रीय भाषा का निधारर्ण परिवार नियोजन के संबन्ध में कानून, और अनुच्छेद 44 का क्रियान्वयन इसके उदाहरण है।

सांस्कृतिक भिन्नता के कारण भारतीय समाज में सांस्कृतिक वैमनस्य को जन्म देता है। जिसके करण पुलिस प्रशासन पर अत्यधिक दबाव रहता है। धर्म एवं जातिगत भिन्नता के कारण उनमें आपस में खानपान, वैवाहिक संबन्ध स्थापित नहीं हो पाते। परन्तु जब कभी शिक्षित युवा लड़के लड़कीयां प्रेम संबन्धों या वैवाहिक संबन्धों के कारण एक दूसरे के नजदीक आते है। तो जाति धर्म की भिन्नता उनके आड़े आती है। उत्तर भारत के कुछ राज्यों में- हरियाणा, दिल्ली,राजस्थान , उत्तर प्रदेश, बिहार में ऐसे संबन्धों का अभिभावक कड़ा विरोध करते हैं जिनका परिणाम कभी 2 ऑनर किलिंग जैसे अपराधों में दृष्टिगत होता है।

भाषाई आधार पर प्रदेशों का निर्माण और प्रान्तों के बीच असहयोगपूर्ण बर्ताव सांस्कृतिक भिन्नता की पृष्ठभूमि पर आधारित है। प्रान्तों का बँटवारा भौगोलिक एवं प्रशासनिक सुविधा पर होना अधिक श्रेष्ठ और शलाघनीय है। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था और प्रशासन के लिए एक दुखद सत्य है कि प्रान्तों के नेता चाहे वे सत्ता में हों या विपक्ष में राष्ट्रीय आदर्शो के प्रेरणा नहीं होते। वे मन के अनुकूल अधिक क्षेत्रीय या प्रान्तीय विभाजन चाहते है।

भारतीय जीवन धर्म तत्व से अनुप्राणित रहा है । धर्म शब्द स्वजातिक है। और इसका अनुवाद मजहब या रिलिजन नहीं हो सकता। यहां धर्म का अर्थ कत्तव्यों का पालन करना है। समग्र सृष्टि को अच्छी प्रकार से धारण एवं परिपालन करने वाले तत्वों की समष्टि को ही धर्म कहते हैं। अर्थात वे तत्व जिनके रहने से समाज है। और जिनके न होने पर यह समाज नष्ट हो जाता है। धर्म के अन्तर्गत आते हैं। जैसे धैर्य, क्षमा, उदारता, संतोष, ईमानदारी, पवित्रता, ज्ञान, प्रेम, दया, अहिंसा, ममता, परोपकार, सहयोग तथा अपनी भांति दूसरों की चिन्ता करना आदि। श्रेष्ठ जीवन मूल्यों की समष्टि को ही भारतीय शास्त्रों में धर्म कहा गया है। इन तत्वों को धारण करने वाले व्यक्ति आध्यात्मिक शांति को प्राप्त कर समाज को व्यवस्थित एवं गतिमान बनाने में सहयोगी बनते हैं। चूंकि आज सत्ता धर्म के बिना संभव नहीं अतः धर्म के तत्वों की रक्षा में सक्रिय होना समाज के प्रत्येक विचारशील नागरिक का पवित्र कर्तव्य बन जाता है। भारतीय जीवन में धर्म एक अग्रणी तत्व रहा। धर्म एकान्त में रहकर जीवन यापन करने वाले मनुष्यों का प्रेरक नहीं है। धर्म सामाजिक जीवन का सदुण है। भारतीय राजनीतिक दर्शन में धर्म और राज्य मे विरोधी संबंधों की कोई कल्पना नहीं की गई है। आदर्श राज्य में धर्म आत्मा के सदृश्य राज्य रूपी शरीर में विद्यमान व्यक्ति का राजकीय जीवन धार्मिक जीवन का पर्याय माना गया है। राम, कृष्ण, विदूर, भीष्म, युधिष्ठिर, चाणक्य, गांधी और अनगिनत राजर्षि इसके उदाहरण है। भारतीय नागरिकों में कोई हिन्दू हैं और वे लोग अधार्मिक हैं जो किसी पंथ या संप्रदाय से नहीं जुड़े हैं। यह बात उतनी ही असत्य है जितना की यह कहना कि सूर्य पृथ्वी का चक्कर लगाता है। भारतीय समाज यदि पूणतया धार्मिक होता तो इसके सामाजिक, राजनीतिक जीवन में इतनी बुराईयां ना होती। अधिकांश भारतीय धार्मिक होने का दावा करते है । परन्तु वे आचरण में धर्म की अभिव्यक्ति नहीं करते। आज की भारतीय समाज में नैतिक मूल्यों का जो ह्रास देखा जा रहा है उसके आधार पर राजनीतिक एवं प्रशासनिक जीवन

के आदर्श का प्रतिनिधित्व भारतीय कर पायेंगे इसमें संदेह है। यह सच है कि भारतीय समाज मानव जीवन के विभिन्न कृत्यों को ईश्वरीय छाया से निष्पादित मानते है। परन्तु वेव्यावहारिकजीवन में उसे स्वीकार नहीं करते।

धर्म को जीवन और आचरण में पूर्णता उतार लेने के लिए और व्यक्ति के आत्मिक विकास के लिए भारत में विभिन्न दर्शनों, समुदायों का विकास हुआ है। भारत के ऐसे अनेक संप्रदाय हैं जिनमें अद्वैत, वैष्णौ, शाक्त, जैन बौद्ध, सिख आदि प्रमुख है। इन विभिन्न संप्रदायों की उपासना पद्धतियों में भले ही भिन्नता हो परन्तु लक्ष्य सभी का परम् सत्य और धर्म ही है। अर्थात धर्म साध्य है जबकि संप्रदाय साधन। भारतीय समाज सहिष्णुता के कारण अनेक उपसंप्रदायों को भी जन्म देता है बौद्धौ में महायान, हीन यान, जैन में श्वेताम्बर, दिगम्बर आदि हैं। यद्यपि ये भिन्नताएं प्रशासनिक दृष्टिकाण से बहुत महत्व नहीं रखती। राजनीतिक और संप्रदायिक षड़यंत्रों के कारण देश का वातावरण बहुधा विषाक्त हो जाया करता है।

हिन्दू समाज की सहिष्णुता अनुपम है । भारतीय संस्कृति किसी दूसरे धर्म में हस्तक्षेप नहीं करती है। हमारे इतिहास में ऐसे विभिन्न उदाहरण देखने को मिलते है। जिनमें हमारे मनुष्यों ने यह सिद्ध कर दिया है कि सत्य को प्राप्त करने के अनेक मार्ग है।

हमारे पूर्वजों का दृष्टिकोण सदैव अन्तर्राष्ट्रीय ही रहा है। मानव एक ही ईश्वर की संतान है। यह संकल्पना सदैव उपस्थित रही है। वसुधैव कुटुम्बकम् का आदर्श आज से चार हजार वर्षो पूर्व भारतीय संस्कृति का नारा था। हिन्दू संस्कृति ने अनेक संस्कृतियों को पीकर अपनी ताकत बढ़ाईहै। यहां तक की इस्लाम जो अपने व्यक्तित्व को स्वतंत्र रखने का मनसूबा लेकर चला था वह भी भारत में आकर बहुत कुछ परिवर्तित हो गया है। आज भारतीय मुसलमान सांस्कृतिक दृष्टि से भारतीय है।

3.3.2 भारतीय प्रशासन सामाजिक, पर्यावरण

एफ. डब्लू. रिंक्स ने अपनी पुस्तक इकॉलॉजी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेसन में कहा है कि इसी समुदाय का सामाजिक परिवेश उसके संस्थानों, संस्थागत नमूनों, जात संबंधों, परम्पराओं, धर्म मूल्यों की व्यवस्था, विश्वास आदि पर आधारित होता है। ये समस्त तत्व प्रशासन पर बड़ा गहरा प्रभाव डालते है। लोक प्रशासन में मानवीय तत्व विशेष तत्व का प्रभाव होता है। इसलिए लोक प्रशासन का मानवीय तत्व समाज विशेष का ऊपज होता है। विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाएं और संस्थाएं लोक कर्मचारियों के चरित्र की रचना करती है। भारत में आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक आदि आधारों पर अनेक वर्ग बन जाते हैं। समाज के इन वर्गों को पहचानना तथा उनमें जो वर्ग यह पिछड़ी जाति कमजोर है उसे विशेष सुविधा देकर ऊपर उठाना प्रशासन का महत्वपूर्ण दायित्व बन जाता है। प्रशासन को केवल कानूनी न्याय के आदर पर नहीं चलाया जा सकता। बल्कि प्रशासन के संचालन के लिए आज सामाजिक न्याय अधिक आवश्यक बन गया है। इसके साथ सामाजिक संस्थाओं का लोक प्रशासन की नौकर शाही से घनिष्ट संबंध रहता है। सामाजिक संस्थाओं का प्रशासन पर निरन्तर दबाव रहता है। इस सामाजिक दबाव के कारण लोक प्रशासन सतर्क एवं उत्तरदायी बना रहता है। दूसरी ओर सामाजिक जागरूकता भी प्रशासनिक व्यवहार को जनोपयोगी बनाने में सहायता करती है। इससें स्पष्ट है कि प्रशासन को सामाजिक पर्यावरण के अनुसार संचालित होना पड़ता है। समाज प्रशासन के अनुसार कभी कभी ही क्रियाशील होता है। भारतीय समाज की विशेषता है कि वह बहुलवादी समाज है। जिसमें विविध संप्रदायों के अनुयायी भाषाभाषी एवं जाति धर्म वाले लोग रहते है। भारत में हिन्दू मुस्लिम सिख जैन बोध, परसी आदि धर्माबलम्बी रहते है। भाषाओं की संख्या

तो अनगिनत है। फिर भी संविधान की आठवीं सूची में 22 भाषाओं को रखा गया है। बहुसंख्यक हिन्दू के सामाजिक जीवन का आधार वर्णाश्रम व्यवस्था है। यद्यपि वर्ण व्यवस्था अपनी पूर्व अवस्था में नहीं रह गई परन्तु अभी भी अघोषित रूप में सामाजिक जीवन को इसी सिद्धान्त पर चिह्नित किया जाता है। वर्ण व्यवस्था का सूत्रपात श्रम और व्यवसायिक वर्गो के विभाजन से हुआ था। जो कालान्तर में जन्म पर आधारित बन गया। वर्ण व्यवस्था का सबसे हानिकारक पक्ष है। पीछड़ी जातियों के प्रति अस्पृश्यता का व्यवहार। उच्च वर्ग में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ग की स्थिति सम्मानित और गौरवशाली हुआ करती थी। परन्तु शूद्र वर्ग समाज में विपन्न और शोषित वर्ग हुआ करता था। स्वतंत्रता के पश्चात वर्ण व्यवस्था को अवैध एवं गैरकानूनी घोषित किया गया और योग्यता के आधार पर व्यवसायों के चयन को प्रमाणित माना गया। परन्तु भारत के कुछ राज्यों में भूमि पर उच्च वर्गो का एकाधिकार अभी भी स्थापित है। बिहार, पंजाब, राजस्थान, जैसे राज्यों में भूआबंटन लागू ही नहीं हो पाया और कुछ राज्यों में लगभग ही क्रियान्वित हो सका। भारत की राजनीति संरचना और प्रक्रियायें लोकतांत्रिक प्रक्रिया को प्रभावित करता है। पंचायती राज के तीनों स्तरों पर जो अलोकतांत्रिक एवं सामंती मानसिकता का उद्घाटन होता है। इस समाज की अलोकतांत्रिक मानसिकता परिलक्षित होती है। भारतीय राजनीतिक जीवन की सच्चाई है। यहां पर भारतीय समाज के कुछ विशेष मुद्दों पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

जाति -

भारतीय समाज की संचार का आधार जाति और उपजातियां हैं। भारतीय प्रशासन सदियों पुरानी सामाजिक विषमता को ठीक करने में व्यस्त है। अनुसूचित जनजातियों, अनुसूचित जातियों और पीछड़ी जातियों के लिए शिक्षा एवं सेवाओं में आरक्षण का प्रावधान भारतीय समाज की एकरूपता एवं समरसता प्रदान करने का विवादित प्रयास है। आरक्षण की व्यवस्था आर्थिक पीछड़ेपन पर आधारित न होकर जाति पर आधारित है। दूसरे मूल संविधान में इसे दस वर्षो तक जारी रखने का प्रावधान था परन्तु संसद द्वारा इसे समय समय पर बढ़ाया जाता रहा। अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए आरक्षण बहुत हद तक उचित है। परन्तु पीछड़ी जातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान राजनीतिक स्वार्थो से प्रेरित है। राजनीतिक दल वोट बैंक के लिए पीछड़ी जातियों के आरक्षण का समर्थन करते हैं।

प्रशासनिक स्तर पर जाति भावना एक गंभीर समस्या है। समजात वर्ग के अधिकारी एवं कर्मचारी एक दूसरे के लिए अवैध और अनुचित कार्यो को करने के लिए तैयार हुए दिखाई देते हैं । परन्तु विजातिय लोगों के लिए उचित एवं वैध कार्यो के लिए टालमटोल करते है। जिस प्रकार से राजनीतिक स्तर पर जातियों को संगठित कर एक संगठित बोट बैंक क रूप में परिवर्तित कर दिया गया है लगभग उसी प्रकार राजनेताओं द्वारा प्रशासनिक अधिकारियों का इस्तेमाल अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए किया जाता है। राज्यों के विधानसभा के उपचुनाव में इस जाति भावना का प्रशासन खुल कर प्रयोग होता है। आम जनमानस में प्रायः देखा और सुना जाता है। कि समान जाति है तो एसमें अजीब आशा और विश्वास का संचार होता है। परन्तु जब वह विजातिय अधिकारी या कर्मचारी के पास जाते है तो उनमें भय और शंका का समावेश होता है।

भारतीय समाज के नैतिक स्तर में गिरावट :-

राष्ट्रीय आन्दोलन के काल में भारत के नेताओं ने नैतिक मूल्यों एवं आदर्श मानवीय गुणों का जो उद्घाटन किया था विश्व स्तर पर भारत के ब्रिटिश आधिपत्य को असंगत प्रमाणित किया था। विश्व के अनेक विद्वानों ने कहा- भारत को सभ्य बनाने का अधिकार ब्रिटेन को नहीं है। भारतीय पुर्नजागरण और स्वतंत्रता के काल तक भारत के नैतिक

मूल्यों, आदर्शो के कारण भारत एक आध्यात्मिक गुरू के रूप में उभर रहा था। परन्तु पीछले साठ वर्षो से भारतीय समाज का नैतिक पतन बड़ी तीव्र गति से हो रहा था। भारतीय समाज ने मानवीय बुराईयों को फैशन बना लिया है। और सामान्य जनता इन वर्गो की बुराईयों को अनुयायी बनकर अपनाती जा रही है। उच्च वर्ग में भ्रष्टाचार, बेईमानी कर्तव्यहीनता, मिथ्या दंभ, बड़े होने और सभ्य होने के प्रमाण माने जाते है। अर्थ का लाभ भारतीय समाज को उसके आदर्शो से पदच्युत कर रहा है। राजनेता जितना बड़ा आर्थिक घोटाला करते है। उतना ही उनके राजनैतिक कद का प्रमाण माना जाता है। समाज में नैतिक मूल्यों का पतन इतनी गहराई तक पहुँच गया है। कि लोग सामाजिक, प्रशासनिक बुराईयों को मौन स्वीकृति प्रदान कर देते है।

भारतीय प्रशासन, भारतीय समाज के नैतिक पतन का प्रतिबिम्ब भारत के आये दिन अधिकारी और कर्मचारी पर भ्रष्टाचार के आरोप लगते हैं | यह सच है कि उन्हें रिश्वतखोर होने के लिए साम, दाम, दण्ड, भेद सभी नीतियों का इस्तेमाल प्रशासनिक वर्ग और राजनीतिक वर्ग द्वारा ही किया जाता है। भ्रष्टाचारमुक्त भारत सदगुणी व्यक्तियों के लिए अभी भी एक सपना है।

3.3.4 भारतीय प्रशासन आर्थिक पर्यावरण

अर्थ वह भौतिक तत्व जिस पर व्यक्ति के जीवन की गति निर्धारित होती है। राज्य की आर्थिक दशा और अर्थ के वितरण की व्यवस्था उसके सामाजिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक ढ़ाचे का स्वरूप तय करता है। प्रशासन के स्वरूप के संबंध में कुछ समय पहले राजनीतिक परिस्थितियों को ही अधिक महत्व दिया जाता था। परन्तु पिछले कुछ वर्षो से आर्थिक विकास के अनुसार ही प्रशासन की सफलता एवं असफलता के अध्ययन को भी सम्मिलित किया जाने लगा है।

किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की आर्थिक स्थिति का वहां के लोकप्रशासन के स्वरूप संगठन और कार्यो पर प्रभाव पड़ता है। प्रायः सभी विकासशील देशों में द्रुत आर्थिक विकास एवं आधुनिकिकरण के लिए प्रशासनिक सुधारों को अनिवार्य समझा जाता है। आज आर्थिक विकास के लिए प्रशासनिक विकास की भी आवश्यकता है। प्रशासन को आर्थिक आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला जाता है और इसके लिए समय समय पर प्रशासनिक सुधार किये जाते है। किसी भी देश की योजना को लागू करने का दायित्व प्रशासन का होता है। अतः देश की प्रशासनिक प्रणाली वहां के आर्थिक जीवन को नियमित करती है। आज की प्रशासनिक व्यवस्था सिर्फ कानून और व्यवस्था के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि प्रशासन व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक पहलु को अधिकाधिक खुशहाल बनाने के लिए लोक कल्याणकारी बन गया है।

भारतीय अर्थ व्यवस्था अपनी विशाल जनसंख्या के भार से दबी हुई है। आर्थिक प्रगति के बावजूद गरीबी, भुखमरी, कुपोषित जीवन जीने वालों की संख्या में वृद्धि हुई है। भारतीय राजनीतिक नेतृत्व व प्रशासन दोनों के लिए भारतीय समाज का समावेशी विकास एक दुसाध्य लक्ष्य बना हुआ है। लोकप्रशासन अनेक प्रकार से देश के जीवन को नियंत्रित करता है। जैसे एक बाजार व्यवस्था तभी सूचारू रूप से कार्य कर सकती है जब उसके ऊपर विभिन्न प्रकार की नियंत्रण लगाये जायें तथा प्रशासन द्वारा अनेक सुविधायें उपलब्ध करायी जाये। प्रशासन ही वह यंत्र है जों अल्प आर्थिक संसाधनों को अपने कौशल से अधिक उपयोगी और कल्याणकारी बना सकता है। और यदि प्रशासन तंत्र भ्रष्ट और लुटेरा हो तो विश्व के समस्त संसाधनों से दरिद्रता नहीं दूर की जा सकती। प्रशासन में भ्रष्टाचार का मूल आधार आर्थिक है। यदि हम प्रशासन को पवित्र और भ्रष्टाचाररहित बनाना चाहते है तो आर्थिक

विषमताओं को दूर करना आवश्यक है। इसी प्रकार अकुशल प्रशासन निम्न आर्थिक स्तर का एक दुष्चक्र होता है। जब किसी राज्य की आर्थिक स्थिति खराब होती है तो वहां योग्य तथा कुशल कर्मचारी उपलब्ध नहीं हो पाते। फिर भी मै कहूँगा कि भारतीय प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार न तो आर्थिक असमान्यता व दरिद्रता का परिणाम है और ना ही भारत की विकास योजनओं की बल्कि यह नैतिक और चारित्रिक समस्या है।

स्वाधीनता के बाद देश का औद्योगीकीकरण एक पूंजीवादी मिश्रित अर्थव्यवस्था के आधार पर करने का प्रयत्न किया गया पूंजीवादी औद्योगीकीकरण की प्रक्रिया ने कई तरह की बुराईयां उत्पन्न कर दी। उनसे अर्थ व्यवस्था की पूराने ढ़ाचे को समाप्त कर दिया गया। किन्तु किसी नये ढ़ाचे का निर्माण नहीं किया गया। पूंजी अपने निवेश के लिए उन्ही क्षेत्रों को चुनती है जो उसे प्रारंम्भिक सुविधायें प्रदान करते है। चूंकि ये सुविधायें पहले से मौजूद शहरी क्षेत्रों में प्राप्त होती है। अतः नये उद्यम और व्यवसायिक प्रतिष्ठान सामान्यतः शहरों तथा शहरों के उपनगरीय क्षेंत्रों में शुरू किये जाते है। इससे अनेक समस्यायें उत्पन्न हुई जैसे आर्थिक विषमता असन्तुलित आर्थिक विकास आदि।

स्वाधीनता के बाद भारत ने विकसीत देशों से उधार ली गई अत्यधिक पूँजी प्रदान टेकनॉलॉजी को अपनाया। भारी उद्योगों केनिर्माणके लिए विदेशी सहायता लेनी पड़ी ओर देश की अर्थ व्यवस्था विदेशी निगमों के शिकंजे में फँसने लगी। आज देश की अर्थ व्यवस्था पर बड़े औद्योगिक घरानों ओर बहुराष्ट्रीय कंपनीयों का प्रभाव सर्वत्र दिखाई देता है। राजनीतिज्ञ, प्रशासक, सलाहाकार संस्थानएं, सामान्य जन की कल्याण उपेक्षा करके पूंजीपतियों के हितों को पैरवी करने नजर आते है। भारतीय अर्थ व्यवस्था के आर्थिक पर्यावरण को निम्न विशेषताओं के संदर्भ में समझा जा सकता है:-

कृषि की प्रधानता:-

भारतीय अर्थ व्यवस्था की प्रमुख विशेषता कृषि व्यवसाय की प्रधानता है। यहां की कुल कार्यशील जनसंख्या का 56% कृषि व्यवसाय में तथा 32% उद्योग व सेवाओं में लग हुआ है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था:-

भारतीय अर्थव्यवस्था ग्रामीण है। यहां लगभग 72.2% जनसंख्या गावों में निवास करती है। यह प्रतिशत अन्य देशों की तुलना में बहुत ज्यादा है। उदाहरण के लिए अमेरिका में 24% जापान में 22% व आस्ट्रेलिया में 15% जनसंख्या गावों में निवास करती है।

प्रतिव्यक्ति निम्न आय:-

भारतीय अर्थवयवस्था की एक विशेषता यह है कि यहां प्रतिव्यक्ति आय बहुत निम्न है। इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो भारत की प्रति व्यक्ति आय जहां 460 डालर है वही विश्व की औसत प्रति व्यक्ति आय 5159 डालर है। भारत में प्रति व्यक्ति आय कम होने से गरीबी व्याप्त है। लेकिन यह गरीबी आँकड़ों से भी और अधिक है।

परम्परावादी समाज:-

भारतीय अर्थ व्यवस्था का एक लक्षण यह है कि यहां का समाज रूढ़िवादी, भाग्वादी और ढोंगी है यही कारण है कि यहां बहुत सी कुरीतियां हैं जैसे मृत्युभोज व अनेक सामाजिक परम्पराएं है, जिनमें काफी धन व्यय कर दिया जाता है। ऐसी परम्पराओं और रीति रिवाजों के कारण यहां का समाज सुखी जीवन व्यतीत नहीं कर पाता और अपने परिवार का जीवन स्तर नहीं उठा पाता। भारत के आर्थिक परिवेश में प्रशासन के समक्ष अनेक चुनौतियां उपस्थित हो जाती है। पंचायती शासन के माध्यम से विकास योजनाओं का क्रियान्वयन आर्थिक संसाधनो के

बंदरबांट का ज्वलंत उदाहरण है। प्रशासन को भारत की आर्थिक, सामाजिक समस्याओं का समाधान ढूंढ़ना और एक स्वास्थ समाज का निर्माण करना है, जो एक बड़ी चुनौती है |

3.3.5 भारतीय प्रशासन संवैधानिक पर्यावरण

किसी भी देश का प्रशासन संवैधानिक व्यवस्था के अनुरूप ही होता है। जहां संविधान का शासन है वहां प्रशासन का स्रोत भी संविधान ही होता है। भारतीय प्रशासनिक संस्थाओं और उसकी कार्य प्रणाली का विस्तृत विवरण संविधान के अनुच्छेदों में बिखरा पड़ा है। इन संस्थाओं में निर्वाचन आयोग, लोक सेवा आयोग, वित्त आयोग आदि संवैधानिक संस्थाएं है। भारतीय संविधान की कुछ विशिष्ट विशेषताएं प्रशासन की प्रकृति व उसकी रूपरेखा, कार्यप्रणाली आदि का निर्धारण करती है। जैसे संसदीय शासन व्यवस्था प्रशासन में अनुचित राजनीतिक हस्तक्षेप की भूमिका तय करता है। दूसरी ओर मंत्रीयों की अनभिज्ञता उन्हें प्रशासनिक कार्यो के प्रति उदासीन बनाती है और नौकरशाही का प्रभुत्व प्रशासन पर स्थापित हो जाता है। संविधान का लिखित होना प्रशासन के उद्देश्य एवं दिशा का निर्धारण करता है। नागरिकों के मौलिक अधिकार एवं राज्यों के नीति निर्देशक तत्व इस संबंध में द्रष्टव्य है। संघात्मक शासन के कारण प्रशासन के दो स्तर केन्द्रीय एवं प्रांतीय होते है। इस परिस्थिति में दोनों स्तरों में पर्याप्त सहयोग एवं सामंजस्य की आवश्यकता होती है। कभी2 सुरक्षा संबंधी मामलों में केन्द्रीय एवं प्रान्तीय प्रशासनीक संस्थाओं में अतंर्विरोध देखा जाता है। उदाहरणार्थ बिहार, बंगाल, उड़ीसा मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड मेंनक्सली समस्याओं के संबंध में केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सुरक्षा एजेन्सीयों में सहयोग का अभाव दिखाई देता है ।

संविधान में प्रशासकों के चयन प्रक्रिया को योग्यता पर आधारित ओर निष्पक्ष बनाने के लिए संघलोक सेवा आयोग, राज्य लोक सेवा आयोग जैसी संस्थाओं का प्रावधान किया गया है। स्वतंत्र न्याय पालिका के द्वारा लोक सेवकों के पदच्युति को भी न्यायिक प्रक्रिया का विषय बना दिया गया है। जिससे लोक सेवक बिना किसी भय के निष्पक्ष होकर कार्य कर सके। प्रशासनिक अधिकारियों एवं कर्मचारियों के अवैध कार्यो के विरूद्ध मुकद्दमा चलाने का अधिकार पिड़ितों को दिया गया है।

निःसंदेह भारतीय संविधान में जनता के कल्याण और मानव सम्मान व अन्य प्रतिष्ठा को ध्यान में रखा गया है। परन्तु अभी तक उस गिने चुने लोगों तक यह सीमित है| स्वतंत्र न्यायिक व्यवस्था जनहित के मुकद्दमें जनसूचना का अधिकार की उपलब्धता का अधिकार न्याय एक दुर्लभ बस्तु बन गया है। उत्कृष्ट संविधान कानून और संस्थाओं के होते हुए भी समाज के उन्नति नहीं हो पा रही है। स्वतंत्रता के समय भारत की जनता समझती थी कि आजादी मिलने पर भारत एक नये युग में प्रवेश करेगा। परन्तु 70 वर्षो के उपरान्त औद्योगिक, तकनीकी आर्थिक प्रगति के बावजूद भारत की सामाजिक प्रगति और सामान्य जनता की स्थिति के संबंध में संशय है। जो देश अपने 60% जनसंख्या के लिए रोटी, कपड़ा और मकान की व्यवस्था ना कर सकी उसके लिए आर्थिक प्रगति, औद्योगिक उन्नति जैसे शब्द बेईमानी लगती है| यद्यपि वर्तमान समय में जनधन योजना ,मनरेगा , स्वास्थ्य वीमा योजना आदि के द्वारा सशक्तिकरण के कार्य को आगे बधया जा रहा है |

अभ्यास प्रश्न

1.पर्यावरण किन दो शब्दों से मिलकर बना है।

2 'द इकोलॉजी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन के लेखक कौन है ।

3. 'डायनामिक ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन'के लेखक कौन हैं।

4.भारत की लगभग जनसंख्या गावों में निवास करती है।

3.4 सारांश

उपरोक्त अध्ययन से आप समझ सके होगे कि किस प्रकार देश का प्रशासन देश के संवैधानिक पर्यावरण की सीमाओं में रहकर ही कार्य करता है। भारतीय प्रशासन और संवैधानिक पर्यावरण को समझने के लिए भारतीय संविधान की विशेषताएं निर्मित, लिखित, लोकप्रिय संप्रभुता, लोक कल्याण कार्य समाजवादी, धर्म निरपेक्ष राज्य, संसदीय व्यवस्था, स्वतंत्र न्याय पालिका, मूल अधिकारों की व्यवस्था, आदि को समझना आवश्यक है।

साथ ही अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ होगा कि देश विशेष की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, संवैधानिक, और सांस्कृतिक परिस्थितियां प्रशासन को न केवल प्रभावित करती हैं अपितु कार्यप्रणाली एवं ढांचे को नया रूप प्रदान करती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रशासन और पर्यावरण में घनिष्ट संबंध है।

3.5 शब्दावली

पर्यावरण - पर्यावरण दो शब्द परि और आवरण से मिलकर बना है। जिसका शब्दिक अर्थ हैं चारो ओर घिरा हुआ। सामाजिक विज्ञान में पर्यावरण का स्वरूप प्राकृतिक विज्ञान के जैविकिय एवं अजैविकिय संघटनों से भिन्न है। यद्यपि लोकप्रशासन में पर्यावरण या परिवेश अथवा परिस्थिति के अध्ययन का विचार वनस्पति विज्ञान से ग्रहण किया गया है। परन्तु तात्विक रूप से दोनों में भिन्नता है।

संस्कृति -संस्कृति के अंतर्गत समुदाय के रहन सहन, खानपान, जीवन शैली, बौद्धिक उपलब्धियों एवं जीवन दर्शन आते है।

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.परि और आवरण. 2.एफ.डब्ल्यू. रिंक्स 3.जी. ई. ग्लैडन 4.72.2%

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया

भारतीय लोक प्रशासन - अवस्थी एवं अवस्थी

3.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - डी.डी. बसु

भारतीय लोक प्रशासन - एस.सी. सिंहल

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

1.भारतीय प्रशासन के पर्यावरण पर निबंध लिखिए।

2.स्वतन्त्रता के बाद भारतीय प्रशासन के पर्यावरण में किस प्रकार का परिवर्तन आया है। स्पष्ट कीजिए।

इकाई 4 : भारतीय संविधान की विशेषताएं

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 प्रस्तावना
4.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं
4.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबंध
4.6 लोक कल्याणकारी राज्य
4.7 सारांश
4.8 शब्दावली
4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.12 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना -

इकाई एक में हमने भारतीय संविधान केनिर्माणमें विदेशी संविधान के प्रभावों का अध्ययन किया साथ ही भारतीय संविधान के महत्वपूर्ण पक्षों का भी अध्ययन किया है।

इस इकाई में भारतीय संविधान की विशेषताओं का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा। जिससे भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप को समझने में और सुविधा हो सके। यहाँ हम यह भी स्पष्ट करना चाहते है कि भारतीय संविधान में विश्व के संविधानों के उन्हीं पक्षों को शामिल किया गया है जो हमारे देश की आवश्यकताओं के अनुरूप है। चाहे वह संसदीय शासन हो चाहे संघात्मक शासन हो या एकात्मक शासन हो। ब्रिटेन के संसदीय शासन को अपनाया गया किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान सकेगें कि

1.भारतीय संविधान इतना विस्तृत क्यो हुआ?

2.भारतीय संविधान में संसदीय तत्व क्यों अपनाये गये

3.भारतीय संविधान में संघात्मक उपबंध क्यों किये गये

4.आप जान सकेगें कि संसदीय शासन के बाद भी संविधान की सर्वोच्चता है

4.3 संविधान की प्रस्तावना

प्रत्येक देश का संविधान उसके देश-काल की आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार किया जाता है। चूंकि प्रत्येक देश की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियॉ भिन्न-भिन्न होती है इसलिए संविधान निर्माण के समय उन सभी पक्षों को शामिल किया जाता है। इस भिन्नता के कारण यह संभव है कि किसी देश में कोई व्यवस्था सफल हो तो वह अन्य देश में उसी स्वरूप में न सफल हो या उसे उसी रूप में लागू न किया जा सके। यदि हम देखें तो हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण के समय विश्व के प्रचलित संविधानों का अध्ययन किया, और उन संविधानों के महत्वपूर्ण प्रावधानों को अपने देश की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप ढालकर अपनाने पर जोर दिया है। जैसे-हमारे देश में ब्रिटेन के संसदीय शासन का अनुसरण किया गया है किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है बल्कि संसदीय के साथ संघात्मक शासन को अपनाया गया है। यहॉ यह स्पष्ट करना नितान्त आवश्यक है कि संसदीय के साथ एकात्मक शासन न अपनाकर संघात्मक शासन क्यों अपनाया गया है। चूंकि हमारे देश में भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक बहुलता पाई जाती है। इसलिए इनकी पहचान को बनाए रखने के लिए संघात्मक शासन की स्थापना को महत्व प्रदान किया गया परन्तु संघात्मक शासन में पृथक पहचान, पृथकतावाद को बढ़ावा न दे, इसके लिए एकात्मक शासन के लक्षणों का भी समावेश किया गया है, जिससे राष्ट्रीय एकता को खतरा न उत्पन्न हो क्योंकि आजादी के समय हमारा देश विभाजन के दु:खद अनुभव को झेल चुका था।

यहॉ हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि अन्य देशों के संविधान की भांति हमारे देश के संविधान का प्रारम्भ भी प्रस्तावना से हुआ है। प्रस्तावना को प्रारम्भ में इसलिए रखा गया है जिससे यह स्पष्ट हो सके कि इस संविधान के निर्माण का उद्देश्य क्या था? साथ ही वैधानिक रूप से संविधान के किसी भाग की वैधानिक व्याख्या को लेकर यदि स्पष्टता नहीं है तो, प्रस्तावना मार्गदर्शक का कार्य करती है। संविधान की प्रस्तावना के महत्व को देखते हुए सर्वप्रथम प्रस्तावना का अध्ययन करना आवश्यक है:-

" हम भारत के लोग ,भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसंपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए ,तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक ,आर्थिक और राजनीतिक न्याय,

विचार,अभिव्यक्ति ,विश्वास ,धर्म और उपासना की स्वतंत्रता ,

प्रतिष्ठा और अवसर की समता ,

प्राप्त कराने के लिए ,तथा उन सब में

व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की

एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता

बढाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख २६-११-१९४९ ई.(मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी ,संवत दो हजार छह विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत,अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं|"

यहॉ हय स्पष्ट करना आवश्यक है कि मूल संविधान में 'समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और अखण्डता' शब्द नहीं था। इसका भारतीय संविधान में समावेश 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है।

अब हम प्रस्तावना में प्रयोग में लाये गये महत्वपूर्ण शब्दों को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगें-

1. हम भारत के लोग- इसका तात्पर्य यह है कि भारतीय संविधान का निर्माण किसी विदेशी सत्ता के द्वारा नहीं किया गया है। बस भारतीयों ने किया है। प्रभुत्व शक्ति की स्रोत स्वंय जनता है और अन्तिम सत्ता का निवास जनता में है।
2. सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न- इसका तात्पर्य परम सत्ता या सर्वोच्च सत्ता से है, जो निश्चित भू-क्षेत्र अर्थात भारत पर लागू होती है। वह परम सत्ता किसी राजे-महाराजे या विदेशी के पास न होकर स्वंय भारतीय जनता के पास है और भारतीय शासन अपने आंतरिक प्रशासन के संचालन और परराष्ट्र संबंधों के संचालन में पूरी स्वतंत्रता का उपयोग करेगा। यद्यपि भारत राष्ट्रमंडल का सदस्य है, परन्तु इससे उसके सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
3. पंथ निरपेक्ष:- यह शब्द मूल संविधान में नहीं था, वरन इसका समावेश संविधान में 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है। इसका तात्पर्य है कि- राज्य किसी धर्म विशेष को 'राजधर्म' के रूप में संरक्षण नहीं प्रदान करेगा, वरन वह सभी धर्मो के साथ समान व्यवहार करेगा और उन्हें समान रूप से संरक्षण प्रदान करेगा।

4.गणराज्य- इसका तात्पर्य है कि भारतीय संघ का प्रधान, कोई वंशानुगत राजा या सम्राट न होकर के निर्वाचित राष्ट्रपति होगा। ब्रिटेन ने वंशानुगत राजा होता है जबकि अमेरिका में निर्वाचित राष्ट्रपति है इसलिए भारत अमेरिका के समान गणराज्य है।

5.न्याय- हमारा संविधान नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की गारण्टी देता है। न्याय का तात्पर्य है कि राज्य का उद्देश्य सर्वजन का कल्याण और सशक्तिकरण है न कि विशेष लोगों का। सामाजिक न्याय का तात्पर्य है कि अब तक हासिये पर रहे वंचित समुदायों को भी समाज की मुख्यधारा में लाने वाले प्रावधान किये जायें तथा उनका क्रियान्वयन भी सुनिश्चित किया जाए। आर्थिक न्याय का तात्पर्य है कि प्रत्येक नागरिक को अपनी न्यूनतम आवश्यकता को वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने का अवसर प्रदान किये जाएं। राजनीतिक न्याय का तात्पर्य है कि: प्रत्येक नागरिक को धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान का भेदभाव किये बिना उसे अपना प्रतिनिधि चुनने और स्वंय को प्रतिनिधि चुने जाने का अधिकार होना चाहिए।

6.एकता और अखण्डता - मूल संविधान में एकता शब्द ही था। 42 वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा अखण्डता शब्द का समावेश किया गया। जिसका तात्पर्य यह है कि धर्म, भाषा, क्षेत्र, प्रान्त, जाति आदि की विभिन्नता के साथ एकता के आदर्श को अपनाया गया है। इसके साथ अखण्डता शब्द को जोड़कर 'अखण्ड एकता' को साकार करने का प्रयास किया गया है। इसके समर्थन में भारतीय संविधान में 16 वॉ संवैधानिक संशोधन भी किया गया है।

4.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं

भारतीय संविधान की विशेषताए निम्नलिखित हैं -

1. लोकप्रिय प्रभुसत्ता पर आधारित संविधान - संविधान के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है, प्रभुसत्ता अर्थात सर्वोच्च सत्ता का स्रोत जनता है। प्रभुसत्ता का निवास जनता में है। इसको संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट किया गया है कि 'हम भारत के लोग ..... । '

2. विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान हमारा संविधान विश्व में सबसे बड़ा संविधान है। जिसमें 22 भाग, 395 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियॉ हैं। जबकि अमेरिका के संविधान में 7 अनुच्छेद, कनाडा के संविधान में 147 अनुच्छेद है। भारतीय संविधान के इतना विस्तृत होने के कई कारण है। जो निम्नलिखित है:-

अ. हमारे संविधान में संघ के प्रावधानों के साथ - साथ राज्य के शासन से सम्बन्धित प्रावधानों को भी शामिल किया है। राज्यों का कोई पृथक संविधान नहीं हैं (जम्मू कश्मीर को छोड़कर)। जबकि अमेरिका में संघ और राज्य का पृथक संविधान है।

ब. जातीय, सांस्कृतिक, भौगोलिक सामाजिक विविधता भी संविधान के विशाल आकार का कारण बना। क्योंकि इसमें अनुसूचित जातियों, जनजातियों, आग्क्तभारतीय, अल्पसंख्यक आदि के लिए पृथक रूप से प्रावधान किये गये है।

स. नागरिकों मूल अधिकारो का विस्तृत उल्लेख करने के साथ ही साथ नीतिनिदेशक तत्वों और बाद में मूलकर्तव्यों का समावेश किया जाना भी संविधान के विस्तृत होने का आधार प्रदान किया है।

ड. नवजात लोकतन्त्र के सुचारू रूप से संचालन के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रशासनिक एजेन्सियों से सम्बन्धित प्रावधान भी किये गये हैं। जैसे निर्वाचन आयोग, लोक सेवा आयोग वित्त आयोग, भाषा आयोग, नियन्त्रक, महालेखा परीक्षक महिला आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, अनुसूचित जाति आयोग, अनुसूचित जनजाति आयोग आदि। संघात्मक शासन का प्रावधान करने के कारण केन्द्र राज्य संबन्धो का विस्तृत उपबन्ध संविधान में किया गया है।

3. सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतान्त्रात्मक गणराज्य - जैसा कि हम ऊपर प्रस्तावना में स्पष्ट कर चुके है कि अन्तिम सत्ता जनता में निहित है। भारत अब किसी के अधीन नहीं है। वह अपने आन्तरिक और वाह्य मामले में पूरी तरह से स्वतन्त्र है। संघ का प्रधान कोई वंशानुगत राजा न होकर निर्वाचित राष्ट्रपति है न कि ब्रिटेन की तरह सम्राट।

4. पंथ निरपेक्ष - भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। यद्यति इस शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है, किन्तु इससे सम्बन्धित प्रावधान संविधान के विभिन्न भागों में पहले से विद्यमान है जैसे मूल अधिकार में और इसी प्रकार कुछ अन्य भागों में भी। पंथनिरपेक्षता का तात्पर्य है कि राज्य का अपना को राजधर्म नहीं है। सभी धर्मो के साथ वह समान व्यवहार करेगा और समान संरक्षण प्रदान करेगा।

5. समाजवादी राज्य -

इस शब्द को निश्चित रूप से परिभाषित करना आसान कार्य नहीं है, परन्तु भारतीय सन्दर्भ में इसका तात्पर्य है कि राज्य विभिन्न समुदायों के बीच आय की असमानताओं को न्यूनतम करने का प्रयास करेगा।

6.कठोरता और लचीलेपन का समन्वय - संविधान में संशोधन प्रणाली के आधार पर दो प्रकार के संविधान होते है। 1- कठोर संविधान 2- लचीला संविधान | कठोर संविधान वह संविधान होता है जिसमें संशोधन, कानून निर्माण की सामान्य प्रक्रिया से नहीं किया जा सकता है। इसके लिए विशेष प्रक्रिया की आवश्यकता होती है जैसा कि अमेरिका के संविधान में है - अमेरिका के संविधान में संशोधन तभी संभव है जबकि कांग्रेस के दोनो सदन (सीनेट, प्रतिनिध सभा) दो तिहाई बहुमत से संशोधन प्रस्ताव पारित करें और उसे अमेरिकी संघ के 50 राज्यों में से कम से कम तीन चौथाई राज्य उसका समर्थन करें।

लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके। जैसे ब्रिटेन का संविधान। क्योंकि ब्रिटिश संसद साधारण बहुमत से ही यातायात कर लगा सकती तो वह साधारण बहुमत से ही क्राउन की शक्तियों को कम कर सकती है।

किन्तु भारतीय संविधान न तो अमेरिका के संविधान के संविधान के समान न तो कठोर है और न ही ब्रिटेन के संविधान के समान लचीला है। भारतीय संविधान में संशोधन तीन प्रकार से किया जा सकता है -

1. कुछ अनुच्छेदों में साधारण बहुमत से संशोधन किया जा सकता है।

2. संविधान के ज्यादातर अनुच्छेदों में संशोधन दोनो सदनो के अलग-अलग बहुमत से पारित करने साथ ही यह बहुमत उपस्थित सदस्यों का दो तिहाई है।

3. भारतीय संविधान मे कुछ अनुच्छेद, जो संघात्मक शासन प्रणाली से सम्बन्धित है, उपरोक्त क्रम दो के साथ (दूसरे तरीका) कम से कम आधेराज्यों के विधान मण्डलों के द्वारा स्वीकृति देना भी आवश्यक है।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान कठोरता और लचीलेपन का मिश्रित होने का उदाहरण पेश करता है। भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री **जवाहर लाल नेहरू** ने इसको स्पष्ट रकते हुए कहा था कि - 'हम संविधान को इतना ठोस और स्थायी बनाना चाहते है, जितना हम बना सकें। परन्तु सच तो यह है कि संविधान तो स्थायी होते ही नहीं है। इनमे लचीलापन होना चाहिए। यदि आप सब कुछ कठोर और स्थायी बना दें तो आप राष्ट्र के विकास को तथा जीवित और चेतन लोगों के विकास को रोकते हैं। हम संविधान को इतना कठोर नहीं बना सकते कि वह बदलती हुई दशाओं के साथ न चल सके।

4. संसदीय शासन प्रणाली - हमारे संविधान के द्वारा ब्रिटेन् का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। यहॉ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह संसदीय प्रणाली न केवल संघ में वरन राज्यों में भी अपनाया गया हैं।

इस प्रणाली की विशेषता -

अ. नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद/नाममात्र की कार्यपालिका संघ मेंराष्ट्रपतिऔर राज्य में राज्यपाल होता है जबकि वास्तविक कार्यपालिका संघ और राज्य दोनो में मंत्रिपरिषद होती है।

ब. राष्ट्रपति (संघ मे) राज्यपाल (राज्य में) केवल संवैधानिक प्रधान होते है।

स. मन्त्रिपरिषद (संघ में) - लोक सभा के बहुमत के समर्थन पर ही अपने अस्तित्व के लिए निर्भर करती है। राज्य में मन्त्रिपरिषद अपने अस्तित्व के लिए विधानसभा के बहुमत के समर्थन पर निर्भर करती है। लोकसभा, विधान सभा - दोनो निम्न सदन हैं, जनप्रतिनिधि सदन है। इनका निर्वाचन जनता प्रत्यक्षरूप से करती है।

ड. कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है क्योकि कार्यपालिका का गठन व्यवस्थापिका के सदस्यों में से ही किया जाता है।

5.एकात्मक लक्षणों के साथ संघात्मक शासन - यद्यपि भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। किन्तु उसके साथ वहॉ के एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है। क्योंकि भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक बहुलता पाई जाती है। इस लिए इनकी अपनी सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक अस्मिता की रक्षा के लिए संघात्मक शासन प्रणाली अपनाया गया है। लेकिन संघात्मक शासन के साथ राष्ट्र की एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है। इस क्रम में हम पहले भारतीय संविधान में संघात्मक शासन के लक्षणों को जानने का प्रयास करेंगे। जो निम्न लिखित है:-

1. लिखित निर्मित और कठोर संविधान

2. केन्द(संघ) और राज्य की शक्तियों का विभाजन (संविधान द्वारा)

3. स्वतन्त्र, निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायालय जो संविधान के रक्षक के रुप में कार्य करेगी। संविधान के विधिक पक्ष में कही अस्पष्टता होगी तो उसकी व्याख्या करेगी। साथ ही साथ नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करेगी।

किन्तु यहॉ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि भारतीय संघ हेतु, कनाडा के संघ का अनुसरण करते हुए संघीय सरकार (केन्द्र सरकार) को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। भारतीय संविधान के द्वारा यद्यपि संघात्मक शासन तो अपनाया गया है किन्तु उसके साथ मजबूत केन्द्र की स्थापना हेतु, निम्नलिखित एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है-

1- केन्द्र और राज्य में शक्ति विभाजन केन्द्र के पक्ष में हैं क्योंकि तीन सूची - संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची में। संघ सूची में संघ सरकार को, राज्य सूची पर राज्य सरकार को और समवर्ती सूची पर संघ और राज्य दोनों को कानून बनाने का अधिकार होता है किन्तु दोनों के कानूनों में विवाद होने पर संघीय संसद द्वारा निर्मित कानून ही मान्य होता है। इन तीन सूचियों के अतिरिक्त जो अवशिष्ट विषय हो अर्थात जिनका उल्लेख इन सूचियों में न हो उन पर कानून बनाने का अधिकार भी केन्द्र सरकार का होता है।

इसके अतिरिक्त राज्य सूची के विषयों पर भी संघीय संसद को कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है जैसे- संकट की घोषणा होने पर दो या दो से अधिक राज्यों द्वारा प्रस्ताव द्वारा निवेदन करने पर,, राज्य सभा द्वारा पारित संकल्प के आधार पर।

एकात्मक लक्षण- इसके अतिरिक्त

इकहरी नागरिकता- संघात्मक शासन में दोहरी नागरिकता होती है एक तो उस राज्य की जिसमें वह निवास करता है दूसरी संघ की । जैसा कि अमेरिका में है। जबकि भारत में इकहरी नागरिकता है अर्थात कोई व्यक्ति केवल भारत का नागरिक होता है।

एकीकृत न्यायपालिका- एक संविधान, अखिल भारतीय सेवाए, आपातकालीन उपबन्ध, राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति आदि। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय संविधान संघात्मक शासन है जिसमें संकटकालीन स्थितियों से निपटने हेतु कुछ एकात्मक लक्षण भी पाए जाते है।

4.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबंध

जैसा कि हम प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर चुके है कि हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण की प्रक्रिया में दुनियॉ में तत्कालीन समय में प्रचलित कई संविधानों का अध्ययन किया और उसमें से महत्वपूर्ण पक्षों को , जो हमारे देश में उपयोगी हो सकते थे उन्हें अपने देश-काल की परिस्थितियों के अनुरुप ढालकर संविधान में उपबन्धित किया।

वे स्रोत निम्नलिखित है, जिनका प्रभाव भारतीय संविधान पर पड़ा-

स्रोत	विषय
भारतीय शासन अधिनियम 1935	तीनों सूचियॉ, राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियॉ
.2.ब्रिटिश संविधान	संसदीय शासन
.3.अमरीकी संविधान	प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, सर्वोच्च न्यायालय, उपराष्ट्रपति का पद, संविधान में संशोधन प्रक्रिया
.4.आयरलैण्ड का संविधान	नीति निदेशक तत्व, राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचक मण्डल
.5.कनाडा का संविधान	संघात्मक शासन,) अवशिष्ट शक्तियां केंद्र के पास होना
.6.आस्ट्रेलिया का संविधान	समवर्ती सूची
.7.दक्षिण अफ्रीका का संविधान	संविधान में संशोधन की प्रक्रिया
.8.पूर्व सोवियत संघ	मूल कर्तव्य

4.6 लोक कल्याणकारी राज्य

लंबे संघर्ष के पश्चात देश को आजादी मिली थी। जिसमें संसदीय लोकतन्त्र को लागू किया गया है। संसदीय लोकतन्त्र में अन्तिम सत्ता जनता में निहित होती है। इसलिए भारतीय संविधान के द्वारा ही भारत को कल्याणकारी

राज्य के रुप में स्थापित करने का प्रावधान भारतीय संविधान के विभिन्न भागों में किए गए/ विशेष रुप से भाग 4 के नीति निदेशक तत्व में / मौलिक अधिकारों में अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृश्यता के समाप्ति की घोषणा के साथ इसे दण्डनीय अपराध माना गया है। प्रस्तावना में सामाजिक आर्थिक न्याय की स्थापना का लक्ष्य घोषित किया गया। मौलिक अधिकार के अध्याय में किसी भी नागरिक के साथ धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर विभेद का निषेध किया गया। साथ ही अब तक समाज की मुख्यधारा से कटे हुए वंचित समुदायों के लिए विशेष प्रावधान किए गए, जिससे वे भी समाज की मुख्यधारा से जुड़कर राष्ट्र के विकास में अपना अमूल्य योगदान दे सकें।

अभ्यास प्रश्न

1.भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। सत्य असत्य/

2 संसदीय शासन प्रणाली की विशेषता -नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद । सत्य असत्य/

3.लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके । सत्यअसत्य/

4. भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है । सत्यअसत्य/

5.पंथ निरपेक्ष शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है । सत्यअसत्य/

4.7 सारांश

इकाई ४ के अध्ययन के के बाद आप को यह जानने में सहायक हुआ कि भारतीय संविधान की क्या विशेषताएं हैं | जिसमें यह भी जानने का अवसर प्राप्त हुआ कि किन कारणों से यह संविधान इतना विस्तृत हुआ है क्योंकि हमारे नवजात लोकतंत्र की रक्षा और इसके विकास के लिए यह नितांत आवश्यक था कि संभावित सभी विषयों का स्पष्ट रूप से समावेश कर दिया जाए | जैसे मूल अधिकार और नीतिनिदेशक तत्वों को मिलाकर संविधान एक बड़ा भाग हो जाता है इसी प्रकार से अनुसूचित जातियों और जनजातियों से सम्बंधित उपबंध संघात्मक शासन अपनाने के कारण केंद्र –राज्य सम्बन्ध और संविधान के संरक्षण, उसकी व्याख्या और मौलिक अधिकारों के रक्षक के रूप में स्वतंत्र निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायलय की स्थापना का प्रावधान किया गया है जिसकी वजह से संविधान विस्तृत हुआ है इसके साथ –साथ विभिन्न संवैधानिक आयोगों की स्थापना जैसे निर्वाचन आयोग ,अल्पसंख्यक आयोग ,अनुसूचित जाति आयोग ,अनुसूचित जनजाति आयोग ,राजभाषा आयोग आदि कारणों से संविधान विस्तृत हुआ | इसके साथ ही साथ हमने इस तथ्य का भी अध्ययन किया की संविधान निर्माण में संविधान निर्माता किन देशों में प्रचलित किस पक्ष को अपने देश की आवश्कताओं के अनुरूप पाए | जिस कारण से उन्होंने भारतीय संविधान में शामिल किया है |इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हमें संसदीय और अध्यक्षीय शासन के सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त हुई |

4.8 शब्दावली:-

लोक प्रभुसत्ता:- जहाँ सर्वोच्च सत्ता जनता में निहित हो वहाँ लोक प्रभुसत्ता होती है।

धर्म निरपेक्षता:- राज्य का कोई धर्म न होना राज्य के द्वारा सभी धर्मो के प्रति समभाव का होना।

समाजवादी राज्य (भारतीय संन्दर्भ में):- जहाँ राज्य के द्वारा आर्थिक असमानताओं को कम करने का प्रयत्न किया जाए।

संघीय व्यवस्था:- केन्द्र और राज्य दोनों संविधान के द्वारा शक्ति विभाजन अपने -2 क्षेत्र में दोनों संविधान की सीमा में स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करें।

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति - डॉ रूपा मंगलानी
भारतीय सरकार एवं राजनीति - त्रिवेदी एवं राय
भारतीय शासन एवं राजनीति - महेन्द्र प्रताप सिंह

4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय संविधान - दुर्गादास बसु

4.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.भारतीय संविधान की विशेषताओं की विवेचना कीजिये ?

2.आप इस बात से कहाँ तक सहमत हैं कि भारतीय संविधान एकात्मक लक्षणों वाले संघात्मक शासन की स्थापना करता है?

इकाई 5 राष्ट्रपति

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 राष्ट्रपति
    5.3.1 राष्ट्रपति का निर्वाचन
5.4 राष्ट्रपति की शक्तियाँ
    5.4.1 कार्यपालिका शक्तियाँ
    5.4.2 विधायी शक्तियाँ
    5.4.3 राजनयिक शक्तियाँ
    5.4.4 सैनिक शक्तियाँ
    5.4.5 न्यायिक शक्तियाँ
    5.4.6 आपात कालीन शक्तियाँ
5.5 राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाइयों के अध्ययन से आप को ,भारतीय प्रशासन के विभिन्न पक्षों के बारे में जानने में सहायता मिली है। प्रस्तुत इकाई में हम भारत में संघ के कार्यपालिका के प्रमुख ,राष्ट्रपति के बारे में जान सकेंगे। इसके अध्ययन से हम राष्ट्रपति के निर्वाचन ,उनकी शक्तियों और उनकी संवैधानिक स्थिति तथा वास्तविक स्थिति के बारे में भी जान सकेंगे।

इस इकाई के अध्ययन से हमें आगे की इकाइयों में प्रधानमन्त्री सहित मन्त्रिपरिषद को वास्तविक कार्यपालिका प्रधान के रुप में ,समझने में सहायता मिलेगी। साथ ही संसदीय शासन की परम्परा में राष्ट्रपति पद के महत्व को और भी स्पष्ट रुप से समझने में सहायता मिलेगी।

5.2 उद्देश्य -

इस इकाई के अध्ययन से आप राष्ट्रपति के बारे में जान सकेगें-

1.इस इकाई के अध्ययन के बाद आप राष्ट्रपति के चुनाव की प्रक्रिया के बारे में जान सकेंगे।

2.राष्ट्रपति की शक्तियों को जान सकेंगे।

3.आप यह जान सकेंगे कि वह कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान ही नहीं है।

5.3 राष्ट्रपति -

शासन के तीन अंग होते है। जो क्रमशः व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका है। व्यवस्थापिका का सम्बन्ध कानून निर्माण से है, कार्यपालिका का सम्बन्ध व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानूनों और नीतियों के क्रियान्वयन से है, जबकि न्यायपालिका का सम्बन्ध न्यायिक कार्यों से है।

संघ की कार्यपालिका के शीर्ष पर राष्ट्रपति होता है। चूँकि राष्ट्रपति संवैधानिक प्रधान है (नाममात्र की कार्यपालिका) फिर भी उनके पद को सत्ता और गरिमा से युक्त किया गया है। वह राज्य के शक्तिशाली शासक हाने की अपेक्षा, भारत की एकता के प्रतीक हैं। उनकी स्थिति वैधानिक अध्यक्ष की है, फिर भी शासन में उनका पद एक धुरी के समान है जो संकट के समय संवैधानिक तंत्र को संतुलित कर सकता है।

5.4 राष्ट्रपति का निर्वाचन -

भारतीय संविधान के अनुसार भारत एक गणतन्त्र है । गणतन्त्र में राष्ट्र का अध्यक्ष वंशानुगत राजा न होकर निर्वाचित होता है। राष्ट्रपति का चुनाव अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति से होता है।

योग्यता - राष्ट्रपति पद के निर्वाचन के लिए निम्नलिखित योग्यताएं आवश्यक हैं -

1- वह भारत का नागरिक हो

2-वह 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो ,

3-वह लोकसभा का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो ,

4-वह संघ सरकार और राज्य सरकारों या स्थानीय सरकार के अधीन किसी लाभ के पद पर न हो,

5- राष्ट्रपति ,उपराष्ट्रपति ,राज्यपाल और मन्त्रियों के पद लाभ के पद नहीं माने जाते ,इसलिए उन्हे त्यागपत्र देने की आवश्यकता नहीं होती ।

अनु. 54 के अनुसार राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक मंडल के सदस्य करते है जिसमें --

1. संसद के दोनो सदनो (लोकसभा, राज्यसभा) के निर्वाचित सदस्य।
2. राज्यों की विधानसभाओ के निर्वाचित सदस्य शामिल होगें

राष्ट्रपति के निर्वाचन में संघीय संसद के साथ-साथ राज्यों के विधान सभाओं के सदस्यों को शामिल कर इस बात का प्रयत्न किया गया है, कि राष्ट्रपति का निर्वाचन दलीय आधार पर न हों तथा संघ के इस सर्वोच्च पद को वास्तव में राष्ट्रीय पद का रूप प्राप्त हो सके।

भारतीय संविधान के 71वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि पाण्डिचेरी और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली की विधानसभाओं के सदस्य, राष्ट्रपति के निर्वाचक मंडल में शामिल किये जायेंगे।

1957 के राष्ट्रपति चुनाव में कुछ स्थान रिक्त होने पर राष्ट्रपति के चुनाव की वैधता को चुनौती दी गई। न्यायालय ने अपने निर्णय में ऐसी स्थिति में भी चुनाव संभव बताया। इस समस्या के निराकरण हेतु 1961 में 11वें संवैधानिक संशोधन द्वारा अनुच्छेद 71 में उपबन्ध किया गया है कि निर्वाचक मंडल का स्थान रिक्त होने पर भी चुनाव वैध है।

राष्ट्रपति का निर्वाचन ऊपर वर्णित निर्वाचन मण्डल द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाता है अनु 55(3)। मतदान गुप्त होता है। इस पद्धति में चुनाव में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रत्यासी को न्यूनतम कोटा प्राप्त करना होता है। न्यूनतम काटा निर्धारण का सूत्र इस प्रकार है-

$$\text{न्यूनतम कोटा} = \frac{\text{दिये गये मतो की संख्या}}{\text{निर्वाचित होने वाले प्रत्याशियों की संख्या}} + 1$$

राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचन मण्डल के सदस्यों के मतों का मूल्य समान नहीं होता है। कुछ राज्यों की विधानसभाओं के सदस्य अधिक जनसंख्या का और कुछ कम जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते है। इस लिए विधान सभा सदस्य के मत का मूल्य उनकी जनसंख्या के अनुपात में होता है। साथ ही राष्ट्रपति के चुनाव में केन्द्र और राज्य को बराबर की हिस्सेदारी देने के लिए सभी राज्यों और संघीय क्षेत्रों की विधानसभाओं के समस्त सदस्यों के मत मूल्य और संसद के सभी निर्वाचित सदस्यों के मतों के मूल्य बराबर रखने पर जोर दिया जाता है। जिससे राष्ट्रपति का चुनाव दलगत राजनीति का शिकार न हो और वह राष्ट्र का सच्चा प्रतिनिधि हो सके।

मत मूल्य निकालने का तरीका -

$$\text{विधान सभा के एक सदस्य के मत का मूल्य} = \frac{\text{राज्य की जनसंख्या}}{\text{कुल निर्वाचित विधायकों की संख्या}} \div 1000$$

अगर शेष 500 से अधिक हो तो परिणाम में 1 और जोड़ दिया जाएगा।

$$\text{संसद सदस्य के एक मत का मूल्य} = \frac{\text{सभी राज्यों और संघीय क्षेत्रों के कुल निर्वाचित विधानसभा सदस्यों के मतों का मूल्य}}{\text{संसद के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या}}$$

अगर शेष 0.5 से अधिक हो तो परिणाम में 1 और जोड़ दिया जाएगा।

राष्ट्रपति के निर्वाचन में उस प्रत्याशी को निर्वाचित घोषित किया जाता हैंजो न्यूनतम कोटा अर्थात आधे से अधिक मत प्राप्त करे। राष्ट्रपति के निर्वाचन में जितने प्रत्याशी होते हैं, मतदाता को उतने मत देने का अधिकार होता है। मतदाता अपना मत वरीयता क्रम के आधार पर देता है। जैसे

।

	प्रत्याशी	A	B	C	D
मतदाता	P	1	3	2	4
	G	2	1	3	4
	R	4	1	2	3
	S	3	1	2	4

	T	2	3	1	4

इस आरेख में चार प्रत्याशी। A, B, C, D, है मतदाता P, G, R, S, T हैं जिन्होने अपने मत वरीयता के आधार पर राष्ट्रपति प्रत्याशी को दिये हैं। सर्वप्रथम प्रथम वरीयता के मत की गणना की जाती है। यदि उसे न्यूनतम कोटा प्राप्त हो जाय तो वह विजयी घोषित होता है। यदि कोटा न प्राप्त हो सके तो द्वितीय वरीयता के मत की गणना होती है। इस द्वितीय दौर में जिस उम्मीदवार को प्रथम वरीयता का सबसे कम मत मिला हो उसे गणना से बाहर कर, उसके द्वितीय वरीयता के मतमूल्य को स्थानान्तरित कर दिया जाता है। यदि द्वितीय दौर की गणना में किसी प्रत्याशी को न्यूनतम कोटा न प्राप्त हो तीसरे दौर की मतगणना होती है, जिसमें दूसरे दौर की मतगणना में सबसे कम मतमूल्य पाने वाले प्रत्याशी के तीसरे वरीयता के मतमूल्य को शेष उम्मीदवारों को स्थानन्तरित कर दिया जाता है। यह प्रक्रिया तब तक अपनायी जाती है जब तक किसी प्रत्याशी को न्यूनतम कोटा न प्राप्त हो जाय।

अभ्यास प्रश्न –

राष्ट्रपति के चुनाव में कौन कौन भाग लेता है1?

-2 राष्ट्रपति का कार्यकाल कितने वर्ष का होता है?

-3 राष्ट्रपति पर महाभियोग किस अनुच्छेद के तहत लगाया जाता है?

राष्ट्रपति द्वारा शपथ - राष्ट्रपति अपना पद ग्रहण करने से पूर्व अनूच्छेद 60 के तहत भारत के मुख्य न्यायाधीश या उनकी अनुपस्थिति में सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश के समक्ष अपने पद की शपथ लेता है।

राष्ट्रपति की पदावधि -संविधान के अनुच्छेद 56 के अनुसार राष्ट्रपति अपने पद ग्रहण की तिथि से ,पॉच वर्ष की अवधि तक अपने पद पर बना रहता है। इस पॉच वर्ष की अवधि के पूर्व भी वह उपराष्ट्रपति को वह अपना त्यागपत्र दे सकता है या उसे पॉच वर्ष की अवधि से पूर्व संविधान के उल्लंघन क लिए संसद द्वारा महाभियोग से हटाया जा सकता है। राष्ट्रपति अपने पॉच वर्ष के कार्यकाल पूर्ण होने के बाद तक अपने पद पर बना रहता है जब तक कि इसके उत्तराधिकारी द्वारा पद ग्रहण न कर लिया जाए।

उन्मुक्तियॉ – राष्ट्रपति अपने कार्यों के लिए व्यक्तिगत रुप से उत्तरदायी नहीं होता है। अपने पद के कर्तव्यों एवं शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उनके संबन्ध में उसके विरुद्ध न्यायालय में मुकदमा नहीं चलाला जा सकता है।

वेतन - राष्ट्रपति को इस समय 150000 रु0/ माह वेतन है। अनुच्छेद 59(3) अनुसार कार्यकाल के दौरान उनके वेतन और उपलब्धियों में किसी प्रकार की कमी नहीं की जा सकती है।

महाभियोग प्रक्रिया - राष्ट्रपति को अनुच्छेद 61के अनुसार महाभियोग प्रक्रिया द्वारा, संविधान के अतिक्रमण के आधार पर हटाया जा सकता है। संसद के जिस सदन में महाभियोग का संकल्प प्रस्तुत किया गया हो ,उसके एक चौथाई सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर सहित आरोप पत्र राष्ट्रपति को 14 दिन पूर्व दिया जाना आवश्यक है। इस सदन में संकल्प को दो तिहाई बहुमत से पारित करके दूसरे सदन को भेजा जाएगा जो राष्ट्रपति पर लगे इन आरोपों की जॉच करेगा। इस दौरान राष्ट्रपति स्वयं या अपने प्रतिनिधि के द्वारा अपना पक्ष रख सकता है ।यदि दूसरा सदन आरोपों को सही पाता है और उसे अपनी संख्या के बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई सदस्यों द्वारा पारित कर दिया जाता है तो राष्ट्रपति पद त्याग के लिए बाध्य होता है।

भारत के राष्ट्रपति का क्रमवार विवरण इस प्रकार है ---

क्रम संख्या	राष्ट्रपति का नाम	कब से	कब तक
1	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद	26 जनवरी 1950	12 मई 1962
2	सर्वपल्ली राधा कृष्णन	13 मई 1962	13 मई 1967
3	जाकिर हुसैन	13 मई 1967	3 मई 1969
4	वराहगिरी वेंकट गिरी	3 मई 1969	20 जुलाई 1969
5	मुहम्मद हिदायतुल्लाह	20 जुलाई 1969	24 अगस्त 1969
6	वराहगिरी वेंकट गिरी	24 अगस्त1969	24 अगस्त 1974
7	फकरुद्दीन अली अहमद	24 अगस्त 1974	11 फरवरी 1977
8	बी.डी. जत्ती	11 फरवरी 1977	25 जुलाई 1977
9	नीलम संजीव रेड्डी	25 जुलाई 1977	25 जुलाई 1982
10	ज्ञानीजैल सिंह	25 जुलाई 1982	25 जुलाई 1987
11	रामास्वामी वेंकटरमन	25 जुलाई 1987	25 जुलाई 1992
12	शंकरदयाल शर्मा	25 जुलाई 1992	25 जुलाई 1997
13	कोचेरिल रमण नारायणन	25 जुलाई 1997	25 जुलाई 2002
14	ए.पी.जे. अबुलकलाम	25 जुलाई 2002	25 जुलाई 2007
15	प्रतिभा पाटिल	25 जुलाई 2007	25 जुलाई 2012
16	प्रणव मुखर्जी	25 जुलाई 2007	25 जुलाई 2017
17	राम नाथ कोविंद	25 जुलाई 2017	आगे जारी

5.5 राष्ट्रपति की शक्तियाँ -

हमारे संविधान के द्वारा राष्ट्रपति को व्यापक शक्तिया प्रदान की गयी हैं ,जो निम्नलिखित है -

5.5.1 -कार्यपालिका शक्तियाँ

सं्विधान के अनुच्छेद 53(1) के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी और वह इस शक्ति का प्रयोग इस संविधान के अनुसार स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा करेगा।

अनुच्छेद 74 के अनुसार राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी जिसका प्रधान प्रधानमन्त्री होगा। राष्ट्रपति अपने शक्तियों का प्रयोग करने में मंत्रिमंडल की सलाह के अनुसार कार्य करेगा। इसके आगे संविधान के 44वें संशोधन अधिनियम 1978 द्वारा यह जोडा गया कि यदि मंत्रिपरिषद की सलाह पर राष्ट्रपति पुनर्विचार करने को कह सकेगा, परन्तु राष्ट्रपति, ऐसे पुनर्विचार के पश्चात दी गयी सलाह के अनुसार कार्य करेगा। राष्ट्रपति की कार्यपालिका संबन्धी शक्तियों में मंत्रिपरिषद का गठन महत्वपूर्ण है। संसदीय परम्परा के अनुरुप निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल के नेता को राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करता है तथा प्रधानमंत्री की सलाह पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। अब तक नियुक्त अधिकांश प्रधानमंत्री लोकसभा के सदस्य रहे हैं। श्रीमती इन्दिरा गाँधी पहली ऐसी प्रधानमन्त्री थी जो राज्यसभा से मनोनीत सदस्य थी। तथा प्रधानमन्त्री डा मनमोहन सिंह भी राज्यसभा सदस्य थे । संविधान के 91वें संशोधन 2003 द्वारा अनुच्छेद 75(1-क) के अनुसार मन्त्री राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त पद धारण करते हैं। अनुच्छेद 75(3) के अनुसार, मंत्रिपरिषद के सदस्य , सामूहिक

रुप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। अनुच्छेद 75(5) के अनुसार, कोई भी मन्त्री, निरन्तर छः मास तक संसद के किसी सदन का सदस्य हुए विना भी मन्त्री रह सकता है।

यहाँ एक महत्वपूर्ण तथ्य को स्पष्ट करना आवश्यक है कि ,जब लोकसभा में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत न मिले अथवा लोकसभा में अविश्वास मत के कारण ,मन्त्रिपरिषद को त्यागपत्र देना पड़े ,ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति किस व्यक्ति को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करे, इस सम्बन्ध में संविधान मौन है। इस सबन्ध में राष्ट्रपति को स्वविवेकाधिकार प्राप्त है। इस संबंध में संसदीय परम्परा के अनुरुप सर्वप्रथम सबसे बड़े दल के नेता तथा जो बहुमत सिद्ध कर सकता है उसे प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करते हैं।

इसके साथ-2 राष्ट्रपति को संघ के महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्ति की शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं ।भारत के महान्यायवादी की नियुक्ति ,नियन्त्रक-महालेखक की नियुक्ति, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति , राज्यपाल की नियुक्ति, संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्य की नियुक्ति,मुख्य निर्वाचन आयुक्त और निर्वाचन आयोग के अन्य सदस्य की नियुक्ति, अनुसूचित जातियों जनजातियों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति, भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति।

ये सभी नियुक्तियाँ राष्ट्रपति द्वारा मन्त्रिपरिषद की सलाह पर या संविधान द्वारा निश्चित व्यक्तियों से परामर्श के पश्चात की जाती है। राष्ट्रपति को उपर्युक्त अधिकारियों को हटाने की भी शक्ति प्राप्त है।

5.5.2.विधायी शक्तियाँ -

भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। संविधान के अनुच्छेद 79 के अनुसार राष्ट्रपति संसद का अभिन्न अंग है। संसद का गठन राष्ट्रपति, लोकसभा और राज्यसभा से मिलकर होता है। इस प्रकार संसद का महत्वपूर्ण अंग होनें के नाते राष्ट्रपति को महत्वपूर्ण विधायी शक्तियाँ प्राप्त हैं। केाई भी विधेयक संसद के दोनों सदनों(लोकसभा.राज्यसभा) द्वारा पारित होने के बाद राष्ट्रपति की स्वीकृति से ही अधिनियम का रुप लेता है।

संसद का अंग होने के नाते राष्ट्रपति को लोकसभा और राज्यसभा का सत्र आहूत करने और उसका सत्रावसान करने की शक्ति है। अनुच्छेद 85 के अनुसार वह लोकसभा का विघटन कर सकता है। अनुच्छेद 108 के अनुसार वह साधारण विधेयक पर दोनों सदनों में विवाद होनें पर संयुक्त अधिवेशन बुला सकता है। अनुच्छेद 87 के अनुसार राष्ट्रपति प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात प्रथम सत्र के प्रारम्भ पर और प्रत्येक वर्ष के पहले सत्र के प्रारम्भ पर. एक साथ संसद के दोनों सदनों में अभिभाषण करता है। इसके अतिरिक्त किसी एक सदन या दोनों सदनों में एक साथ अभिभाषण करने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति अनुच्छेद 80 के अनुसार राज्य सभा में 12 सदस्यों को मनोनीत कर सकता है जो साहित्य. कला. विज्ञान. या समाजसेवा के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त हों और अनुच्छेद 331 के अनुसार लोकसभा में दो सदस्यों को आंग्लभारतीय समुदाय से मनोनीत कर सकता है।

संविधान के उपबन्धों और कुछ अधिनियमों का अनुपालन करनें के लिए .राष्ट्रपति का यह कर्तव्य है कि कुछ प्रतिवेदनों को संसद के समक्ष रखवायेगा। इसका उद्देश्य यह है कि संसद को उन प्रतिवेदनों और उस पर की गयी कार्यवाई पर विचार करने का अवसर प्राप्त हो जाएगा। राष्ट्रपति का यह कर्तव्य है कि निम्नलिखित प्रतिवेदनों और दस्तावेजों को संसद के समक्ष रखवाए --

1- अनुच्छेद 112 के अनुसार -वार्षिक वित्तीय विवरण (बजट)
2-अनुच्छेद 151 के अनुसार -नियन्त्रक महालेखक का प्रतिवेदन
3-अनुच्छेद 281 के अनुसार - -वित्त आयोग की सिफारिशें
4-अनुच्छेद 323 के अनुसार -संघ लाकसेवा आयोग का प्रतिवेदन
5-अनुच्छेद 340 के अनुसार - पिछड़ा वर्ग आयोग का प्रतिवेदन

6-अनुच्छेद 348 के अनुसार -राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और जनजाति आयोग का प्रतिवेदन

7-अनुच्छेद 394 क के अनुसार -राष्ट्रपति अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए .भारतीय संविधान के अंग्रेजी भाषा में किए गये प्रत्येक संशोधन का हिन्दी भाषा में अनुवाद प्रकाशित करायेगा। इसके अतिरिक्त कुछ विषयों पर कानून बनाने के लिए .उस पर राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति आवश्यक है। जैसे-

अनुच्छेद 3- के अनुसार -नये राज्यों के निर्माण या विद्यमान राज्य की सीमा में परिवर्तन से संबंधित विधेयकों पर। अनुच्छेद 117(1)-धन विधेयकों के संबंध में। अनुच्छेद 117(3) ऐसे व्यय से संबंधित विधेयक. जो भारत की संचित निधि से किया जाना हो। अनुच्छेद 304 के अनुसार-राज्य सरकारों के ऐसे विधेयक जो व्यापार और वाणिज्य की स्वतन्त्रता पर प्रभाव डालते हों।

इस बात का हम उल्लेख कर चुके हैं कि संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित कोई भी विधेयक कानून तब तक नहीं बन सकता जब तक कि उस पर राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति न प्रदान करें। राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति दे सकता है. विधेयक को रोक सकता है या दोनों सदनों द्वारा पुनर्विचार के लिए वापस कर सकता है। यदि संसद पुनर्विचार के पश्चात विधेयक को राष्ट्रपति को वापस करती है, तो वह अपनी स्वीकृति देने के लिए बाध्य है। यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि राष्ट्रपति धन विधेयक को पुनर्विचार के लिए वापस नहीं कर सकता है क्यों कि धन विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति से ही लोकसभा में रखा जाता है।

2006 में लाभ के पद से संबंधित संसद अयोग्यता निवारण संशोधन विधेयक लोक सभा और राज्यसभा द्वारा पारित होने के पश्चात राष्ट्रपति के समक्ष स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया गया जिसे राष्ट्रपति ए.पी.जे.कलाम ने पुनर्विचार के लिए .यह कहते हुए वापस कर दिया कि संसदों और विधायको को लाभ के पद के दायरे से बाहर रखने के व्यापक आधार बताए जाएं। संसद के दोनों सदनों ने इसे पुनः मूल रुप में ही पारित कर दिया। यह पहला अवसर था कि राष्ट्रपति की आपत्तियों पर विचार किए विना ही विधेयक को उसी रुप में पारित कर दिया गया।

राज्य विधानमंडल द्वारा निर्मित विधि के संबंध में भी राष्ट्रपति को विभिन्न शक्तियाँ प्राप्त हैं -

1-राज्य विधानमंडल द्वारा पारित ऐसा विधेयक जो उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को प्रभावित करता है तो राज्यपाल उस विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित कर लेगा।

2-वित्तीय आपात काल लागू होने की स्थिति में .राष्ट्रपति यह निर्देश दे सकता है कि राज्य विधानसभा में प्रस्तुत किये जाने से पूर्व सभी धन विधेयकों पर उसकी अनुमति ली जाय।

3-सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए राज्य विधानमंडल द्वारा पारित विधेयकों पर .राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है।

4-राज्य के अन्दर या अन्य राज्यों के साथ व्यापार पर प्रतिबंध लगानें वाले विधेयकों को विधानसभा में प्रस्तुत करनें से पूर्व राष्ट्रपति की अनुमति आवश्यक है।

अध्यादेश जारी करनें की शक्ति -

जब संसद सत्र में न हो और राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाय कि वर्तमान परिस्थिति में यथाशीघ्र कार्यवाही की आवश्यकता है तो. वे अनुच्छेद 123 के अनुसार अध्यादेश जारी करते हैं। इस अध्यादेश का प्रभाव संसद द्वारा पारित और राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत अधिनियम के समान ही होता है। किन्तु अधिनियम स्थायी होता है और अध्यादेश का प्रभाव केवल छः माह तक ही रहता है। छः माह के अन्दर यदि अध्यादेश को संसद की स्वीकृति न प्राप्त हो तो वह स्वतः ही समाप्त हो जाएगा।

वीटो (निषेधाधिकार) की शक्ति - यह कार्यपालिका की शक्ति है जिसके द्वारा वह किसी विधेयक को अनुमति देने से रोकता है। अनुमति देने इन्कार करता है या अनुमति देने में विलम्ब करता है। वीटो के कई प्रकार हैं -

1-आत्यंतिक वीटो या पूर्ण वीटो -यह वह वीटो है जिसमें राष्ट्रपति ससद द्वारा पारित किसी विधेयक को अनुमति देने से इन्कार कर देता है। पूर्ण वीटो का प्रयोग धन विधेयक के संबंध में नहीं किया जा सकता क्योंकि धन विधेयक राष्ट्रपति की अनुमति से ही लोकसभा में प्रस्तुत किया जाता है।

2-निलम्बनकारी वीटो –

जिस वीटो को सामान्य बहुमत से समाप्त किया जा सकता है उसे निलम्बनकारी वीटो कहा जाता है। इस प्रकार के वीटो का प्रयोग हमारे राष्ट्रपति उस समय करते हैं जब अनुच्छेद 111 के अनुसार वे किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए वापस करते हैं।

3-पाकेट वीटो या जेबी वीटो -संसद द्वारा पारित किसी विधेयक को राष्ट्रपति न तो अनुमति देता है और न ही पुनर्विचार के लिए वापस करता है, तब वह जेबी वीटो का प्रयोग करता है। हमारे संविधान में यह स्पष्ट उपबन्ध नहीं है कि राष्ट्रपति कितने समय के भीतर विधेयक को अपनी अनुमति देगा। फलतः वह विधेयक को अपनी मेज पर अनिश्चित काल तक रख सकता है। जेबी वीटो का प्रयोग 1986 में संसद द्वारा पारित भारतीय डाक अधिनियम के संदर्भ में राष्ट्रपति ज्ञानीजैल सिंह ने किया था।

5.4.3 राजनयिक शक्तियाँ -

यहाँ हम स्पष्ट करना चाहते हैं कि इक्कीसवीं शदी में भूमंडलीकरण की प्रक्रिया चल रही है। इस प्रक्रिया ने एक राष्ट्र के हित को विश्व के अन्य राष्ट्रों के साथ जोड़ दिया है। राष्ट्रों के मध्य आपसी संबंधों का संचालन राजनय के द्वारा होता है। हमारे देश में राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान है। इस लिए अन्य राष्ट्रों के साथ संबंधों के संचालन की शक्ति भी राष्ट्रपति को प्रदान की गयी है। इस लिए अन्य राष्ट्रों के साथ संबंधों का संचालन राष्ट्रपति के नाम से किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय मामले में वे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारत की ओर से भेजे जाने वाले राजदूत की नियुक्ति भी राष्ट्रपति ही करते हैं। दूसरे देशों से भारत में नियुक्त होने वाले राजदूत और उच्चायुक्त अपना परिचयपत्र राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। परन्तु इन सभी विषयों में राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार कार्य करता है।

5.4.4 सैनिक शक्तियाँ -

जैसा कि हम इस इकाई में पहले स्पष्ट कर चुके हैं कि संघ की समस्त कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित है। इसी कारण से वह तीनों सेनाओं का प्रधान सेनापति है। किन्तु हमारे राष्ट्रपति की सैन्य शक्तिया अमेरिका के राष्ट्रपति के समान नहीं है क्यों कि ये अपनी शक्तियों के प्रयोग संसद द्वारा निर्मित कानूनों के अनुसार करते हैं. जब कि अमेरिका के राष्ट्रपति पर इस प्रकार के कोई प्रतिबंध नहीं है।

5.4.5 न्यायिक शक्तियाँ-

हमारे संविधन के द्वारा राष्ट्रपति को व्यापक रुप से न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त हैं जो निम्नलिखित हैं -

1- न्यायाधीशों की नियुक्ति--अनुच्छेद 217 के के अनुसार राष्ट्रपति उच्च न्यायालय और 124 के तहत उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करते हैं। उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति करते समय वह उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश से परामर्श कर सकते हैं। अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति में मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करते हैं।

2- क्षमादान की शक्ति—राष्ट्रपति को कार्यपालिका और विधायी श्क्तियों के साथ-साथ न्यायिक शक्तियाँ- भी प्राप्त हैं , जिनमें क्षमादान की शक्ति अत्यन्त महत्वपूर्ण है जो अनुच्छेद 72 के अनुसार प्राप्त है। वे इस क्षमादान की शक्ति के तहत किसी दोषी ठहराये गये व्यक्ति के दण्ड को क्षमा तथा सिद्ध दोष के निलंबन. परिहार या लघुकरण की शक्ति प्राप्त है। राष्ट्रपति इन शक्तियों का प्रयोग निम्नलिखित परिस्थितियों में करते हैं -सेना द्वारा दिये गये दण्ड के

मामले में।..जब दण्ड ऐसे विषयों के मामले में दिया गया हो जो संघ के कार्यपालिका क्षेत्र में आते हों। ऐसी परिस्थिति में जब किसी व्यक्ति को मृत्यु दण्ड दिया गया हो। क्षमादान की शक्ति का प्रयोग भी वह मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार करता है।

क्षमादान की इस शक्ति को देने के पीछे सोच यह है कि न्यायाधीश भी मनुष्य होते हैं। इस लिए उनके द्वारा की गयी किसी भूल को सुधारने की गुंजाइस बनी रहे।

3--उच्चतम न्यायालय से परामर्श लेने का अधिकार- हमारे यंविधान के अनुच्छेद 143 के अनुसार .यदि राष्ट्रपति को ऐसा कभी प्रतीत होता है कि विधि या तथ्य का कोई सारवान प्रश्न उत्पन्न हुआ है या उत्पन्न होने की संभावना है जो ऐसी प्रकृति और व्यापक महत्व का है तो उस पर उच्चतम न्यायालय से राय मांग सकता है। इस प्रकार की राय राष्ट्रपति पर बाध्यकारी नहीं होती है। इसके साथ-साथ उच्चतम न्यायालय को. यदि वह आवश्यक समझे तो .अपनी राय देने से इन्कार कर सकता है।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति को अन्य अधिकार प्राप्त है -जैसे- संविधान के अनुच्छेद 130 के अनुसार ,यदि सर्वोच्च न्यायालय अपना स्थान दिल्ली के बजाय किसी अन्य स्थान पर स्थानान्तरित करना चाहे तो इसके लिए राष्ट्रपति से अनुमति लेना आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न -

-4 उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति किस अनुच्छेद के तहत की जाती है?

-5 उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति किस अनुच्छेद के तहत की जाती है?

5.5.6 आपात कालीन शक्तियाँ-

हमारे संविधान निर्माता गुलामी की दुखद दास्तान और आजादी की लम्बी लड़ाई के पश्चात आजाद हो रहे देश के दुःखद विभाजन से परिचित थे। इसलिए देश में भविष्य में उत्पन्न होने वाली संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए . संविधान के द्वारा राष्ट्रपति को विस्तृत रुप आपातकालीन शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। हमारे संविधान के भाग 18 के अनुच्छेद 352 से अनुच्छेद 360 तक राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों का उपबन्ध किया गया है। ये शक्तियाँ निम्नलिखित तीन प्रकार की हैं --

1-राष्ट्रीय आपात - संविधान के अनुच्छेद 352 में यह उपबन्ध किया गया है कि.यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाय कि .युद्ध. वाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह के कारण भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा संकट में है या संकट में होने की आशंका है .तो उनके द्वारा आपात की उद्घोषणा की जा सकती है। यहा यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि मूल संविधान में सशस्त्र विद्रोह की जगह आन्तरिक अशान्ति शब्द था। 1975 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी के लोकसभा चुनाव को इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा रद्द किये जाने के पश्चात आन्तरिक अशान्ति के नाम पर प्रधानमंत्री की सिफारिश पर राष्ट्रपति ने राष्ट्रीय आपात की घोषणा की।

1977 के लोकसभा के चुनाव में कांग्रेस को पराज्य का मुंह देखना पड़ा। जनता पार्टी की सरकार बनी। इस सरकार नें 1979 के 44वें संविधानिक सशोधन के द्वारा आन्तरिक अशान्ति के स्थान पर सशस्त्र विद्रोह शब्द रखा गया। साथ ही यह भी उपबन्ध किया गया कि आपात काल की घोषणा अब संघ के मंत्रिमंडल (प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल स्तर के अन्य मंत्री) की सिफारिश से राष्ट्रपति द्वारा ही की जाएगी।

राष्ट्रपति द्वारा आपात की घोषणा के एक माह के अन्दर संसद के द्वारा विशेष बहुमत से स्वीकृति आवश्यक है। दूसरे शब्दों में इस घोषणा को लोकसभा और राज्यसभा द्वारा पृथक-पृथक कुल सदस्य संख्या के बहुमत और उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से स्वीकृति आवश्यक है। आपात की घोषणा के

समय यदि लोकसभा का का विघटन हुआ है तो एक माह के अन्दर राज्यसभा की विशेष स्वीकृति आवश्यक है। नवगठित लोकसभा के द्वारा उसकी प्रथम बैठक के तीस दिन के अन्दर विशेष बहुमत से स्वीकृति आवश्यक है। आपातकाल को यदि आगे भी लागू रखना है तो उसे प्रत्येक छः माह पश्चात संसद की स्वीकृति आवश्यक है। यदि आपात काल की घोषणा एक सदन द्वारा की जाय और दूसरा सदन अस्वीकार कर दे तो यह घोषणा एक माह के पश्चात समाप्त हो जाएगी। इस आपात काल को संसद साधरण बहुमत से समाप्त कर सकती है।

संविधान के 38वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा यह उपबंध किया गया कि आपात काल की उद्घोषणा को न्यायालय में चुनौती नही दी जा सकती। 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा इस प्रावधान को समाप्त कर दिया गया। संविधान के प्रारम्भ में यह उपबन्ध था कि अनुच्छेद 352 के अनुसार आपात काल को पूरे देश में ही लागू किया जा सकता है किसी एक भाग में नहीं। परन्तु 42वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गयी कि आपात काल की उद्घोषणा देश के किसी एक भाग या कई भागों में की जा सकती है।

अभी तक कुल तीन बार राष्ट्रीय आपात की घोषणा की गयी है -

26 अक्टूबर 1962 से 10 जनवरी 1968 तक चीनी आक्रमण के कारण। दूसरी बार -पाकिस्तान के द्वारा आक्रमण के कारण 3 दिसंबर 1971 को घोषणा की गयी तथा 25 जून 1975 को आन्तरिक अशान्ति के आधार पर आपात की घोषणा की गयी , इनकी समाप्ति 21 मार्च 1977 को की गयी।

राष्ट्रीय आपात काल को लागू करने का प्रभाव -

1-अनुच्छेद 83(2) के अनुसार जब आपात की उद्घोषणा की गयी हो तब लोकसभा अपने कार्यकाल को एक साल के लिए बढा सकती है. किन्तु आपात की उद्घोषणा के समाप्त होने पर .यह कार्यकाल वृद्धि अधिकतम छः मास तक ही चल सकती है।

2-अनुच्छेद 250 के अनुसार आपातकाल की उद्घोषणा के दौरान संबंधित राज्य में संसद को राज्य सूची के किसी भी विषय पर कानून बनाने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। यद्यपि राज्य की विधायी शक्तियाँ राज्य के पास बनी रहती है किन्तु उन पर निर्णायक शक्ति संसद के पास रहती है।

3-हम ऊपर इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि अनुचछेद 73 के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति उन विषयों तक सीमित है, जिन पर संसद को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है किन्तु आपातकाल की उद्घोषणा के दौरान केन्द्र सरकार जहँ आपातकाल लागू है उस राज्य के साथ ही साथ देश के किसी भी राज्य को यह निदेश दे सकता है कि वह अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग किस प्रकार करे।

4-संविधान के अनुच्छेद 354 में यह स्पष्ट उल्लेख है कि राष्ट्रपति के आदेश से केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय संबन्ध को उस सीमा तक परिवर्तित किया जा सकता है जिस सीमा तक की स्थिति का सामना करने के लिए आवश्यक हो। राष्ट्रपति के इस प्रकार के आदेश को यथाशीघ्र संसद के समक्ष रखना आवश्यक होता है।

5-मौलिक अधिकारों पर प्रभाव-वाह्य आक्रमण के कारण यदि राष्ट्रीय आपात की घोषण की गयी है तो अनुच्छेद 358 के अनुसार, अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त स्वतन्त्रता का अधिकार निलंबित हो जाता है। जबकि अनुच्छेद 359 के तहत उन्हीं अधिकारों का निलंबन होता है ,जो राष्ट्रपति के आदेश में स्पष्ट किया गया हो। इसके बावजूद भी अनुच्छेद 20 और 21 के तहत प्रदत्त मूल अधिकारों का निलंबन किसी भी स्थिति में नहीं हो सकता है।

अभ्यास प्रश्न -

6- राष्ट्रपति राष्ट्रीय आपात की घोषणा किस अनुच्छेद के अनुसार करता है?

7- 1975 में राष्ट्रीय आपात की घोषणा किस आधार पर की गयी थी ?

2- राज्यों में सांविधानिक तन्त्र की विफलता-अनुच्छेद 355 में यह उपबन्ध है कि संघ सरकार का यह दायित्व है कि वह राज्यों की वाह्य आक्रमण और आन्तरिक अशान्ति से रक्षा करे। साथ ही यह भी देखे कि प्रत्येक राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार चल रहा हो ।अनुच्छेद 356(1) के अनुसार .यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाए कि राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार न चलने के कारण संवैधानिक तन्त्र विफल हो गया है तो वह राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू कर सकता है। राष्ट्रपति का यह समाधान राज्यपाल के प्रतिवेदन पर भी आधरित हो सकता है। अनुच्छेद 365 के अनुसार राष्ट्रपति किसी राज्य की सरकार के विरुद्ध अनुच्छेद 356 का प्रयोग उस समय भी कर सकता है जब संबंधित राज्य की सरकार संघ सरकार के निर्देशों का पालन करने में असफल हो जाती है।

राज्यों में राष्ट्रपति शासन की घोषणा दो माह के लिए होता है किन्तु यदि घोषणा के पश्चात लोकसभा का विघटन हो जाता है तो नवीन लोकसभा के गठन के बाद प्रथम बैठक के तीस दिन के बाद .घोषणा तभी लागू रह सकती है जब कि नवीन लोकसभा उसका अनुमोदन कर दे। इस प्रकार की घोषणा एक बार में छः माह के लिए और अधिकतम तीन वर्ष(पंजाब में पांच वष तक लागू थी) के लिए लागू की जा सकती है। 44वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह उपबंध किया गया कि एक वर्ष से अधिक समय तक राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिए दो आवश्यक शर्तें हैं --

1-जब संपूर्ण देश में या उसके किसी एक भाग में अनुच्छेद 352 के तहत राष्ट्रीय आपात काल की घोषणा लागू हो।

2-निर्वाचन आयोग इस बात को प्रमाणित करे कि संबंधित राज्य में वर्तमान परिस्थितियों में चुनाव कराना संभव नहीं है।

राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू करने का प्रभाव--

1- राष्ट्रपति इस बात की घोषणा कर सकता है कि राज्य के कानून निर्माण की शक्ति का प्रयोग संसद करेगी। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि अनुच्छेद 356 की घोषणा के पश्चात यह आवश्यक दही कि विधानसभा का विघटन कर दिया जाय। विधानसभा को केवल निलंवित भी किया जा सकता है।

2-यदि संसद का सत्र न चल रहा हो तो राष्ट्रपति राज्य की संचित निधि में से आवश्यक खर्च की अनुमति दे सकता है।

3- राष्ट्रपति कार्यपालिका संबंधी सभी या आंशिक कृत्यों को अपने हंथ में ले सकता है। उच्च न्यायालय के कार्यो को छोड़कर।

अनुच्छेद 352 और अनुच्छेद 356 की तुलना –

जैसा कि ऊपर आप देख चुके हैं अनुच्छेद 352 और 356 का प्रयोग राष्ट्रपति करते हैं किन्तु दोनों के प्रभावों में अन्तर हैं। जब किसी राज्य में राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा की जाती है तो संसद को समवर्ती सूची के साथ साथ राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है किन्तु राज्य विधान सभा और कार्यपालिका का अस्तित्व बना रहता है और वे अपना कार्य भी करती रहती हैं. परन्तु अनुच्छेद 356 के तहत जब राष्ट्रपति किसी राज्य में संवैधानिक तन्त्र के विफलता की घोषणा करते हैं तो संबंधित राज्य की विधान सभा निलंवित कर दी जाती है और कार्यपालिका संबंधी शक्तिया पूर्णतः या आंशिक रुप से राष्ट्रपति द्वारा ग्रहण कर ली जाती हैं।

अनुच्छेद 356 के तहत संवैधानिक तन्त्र के विफलता की घोषणा की अधिकतम अवधि तीन वर्ष हो सकती है जब कि अनुच्छेद 352 के तहत लागू किया जाने वाला राष्ट्रीय आपात काल को प्रत्येक छः माह के पश्चात संसद की स्वीकृति आवश्यक है। यह प्रक्रिया तब तक चल सकती है जब तक कि संसद स्वयं के संकल्प से समाप्त न कर दे।

3-- वित्तीय आपात काल --

अनुच्छेद 360 में यह उपबंध किया गया है कि .यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि भारत में या उसके किसी राज्य क्षेत्र में वित्तीय साख को खतरा उत्पन्न हो गया है तो वह वित्तीय संकट की घोषणा कर सकते हैं। वित्तीय आपात की उद्घोषणा को भी राष्ट्रीय आपात के समान ही दो माह के अन्दर संसद की स्वीकृति आवश्यक है। यदि दो माह के पूर्व संसद के दोनों सदन अपनी स्वीकृति प्रदान कर दे तो .इसे अनिश्चित काल तक लागू किया जा सकता है। अन्यथा यह उद्घोषणा दो माह की समाप्ति पर स्वतः ही समाप्त हो जाएगी। यदि इसी दौरान लोकसभा का विघटन हुआ है तो राज्यसभा की स्वीकृति आवश्यक है। परन्तु नवीन लोक सभा के प्रथम वैठक के तीस दिन के अन्दर लोक सभा की स्वीकृति आवश्यक है अन्यथा घोषणा स्वतः ही निरस्त हो जाएगी।

वित्तीय आपात की घोषणा का प्रभाव --

संघ और राज्यों के किसी भी वर्ग के अधिकारियों के वेतन में कमी की जा सकती है।

इस समय राष्ट्रपति न्यायाधीशों के वेतन में भी कटौती के आदेश दे सकता है।

राज्य के समस्त वित विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए पेश किये जाने के निर्देश दिये जा सकते हैं।

संघीय सरकार ,राज्य की सरकार को शासन संबन्धी आवश्यक निर्देश दे सकती है।

राष्ट्रपति द्वारा संघ और राज्यों के मध्य वित्तीय वितरण के संबंध में आवश्यक निर्देश दे सकता है।

5.6 राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति -

भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को प्रदान की गयी व्यापक शक्तियों के आधार पर यह धारणा बनी कि राष्ट्रपति कुछ शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद के परामर्श के विना भी कर सकते हैं। जो संसदात्मक व्यवस्था के परम्पराओं के विपरीत है। इस लिए इसके निवारण के लिए 42वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 74 के स्थान पर इस प्रकार के उपबन्ध किया गया

राष्ट्रपति को सहायता और परामर्श देने के लिए प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में एक मन्त्रिपरिषद होगी और राष्ट्रपति अपने कार्यों के संपादन में मन्त्रिपरिषद के परामर्श के आधार पर कार्य करेगा ।इस उपबन्ध से राष्ट्रपति के पद की गरिमा को आघात पहुँचा। इस लिए 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा निम्न उपबन्ध किये गये -

राष्ट्रपति को मन्त्रिपरिषद से जो परामर्श प्राप्तहोगा उसके संबन्ध में राष्ट्रपति को यह अधिकार होगा कि वह मन्त्रिपरिषद को इस परामर्श पर पुनर्विचार करने के लिए कहे ,लेकिन पुनर्विचार के बाद मन्त्रिपरिषद जो परामर्श देगी, राष्ट्रपति उसी परामर्श के अनुसार कार्य करेगा।

इस प्रकार राष्ट्रपति के संबन्ध में संवैधानिक स्थिति यह नियत करती है कि संसदीय शासन की भावना के अनुरुप राष्ट्रपति , राष्ट्र का संवैधानिक प्रधान है। भारतीय राजनीति में जब भी अनिश्चितता की स्थिति रहेगी तब राष्ट्रपति की भूमिका सक्रिय और अतिमहत्वपूर्ण होगी ।

अभ्यास प्रश्न ---

8.राष्ट्रपति का निर्वाचन प्रत्यक्ष चुनाव के द्वारा होता है - सत्य/असत्य

9.राष्ट्रपति के निर्वाचन में केवल लोक सभा और राज्य सभा के सदस्य भाग लेते हैं - सत्य/असत्य

10.राष्ट्रपति पर महाभियोग अनुच्छेद 63 के तहत लगाया जाता है - सत्य/असत्य
11.राष्ट्रपति को शपथ राज्यपाल दिलाते हैं - सत्य/असत्य
12.राष्ट्रपति राज्यपाल की सिफारिश से अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रीय आपात की घोयाणा करते हैं - सत्य/असत्य

5.7 सारांश -

इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया है कि राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान होने के साथ ही साथ व्यवस्थापिका का अंग भी है , क्योंकि संसद के द्वारा पारित कोई भी विधेयक तभी कानून बनता है जब राष्ट्रपति उसे अपनी स्वीकृति देते हैं । इस प्रकार संसदीय शासन की जो प्रमुख विशेषता है -व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का मिश्रित स्वरुप, वह राष्ट्रपति के पद में स्पष्ट रुप से दिखाई देती है ।भारत में संसदीय प्रणाली में राष्ट्रपति कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान है किन्तु ब्रिटेन के सम्राट के समान वह रबर मुहर नहीं है। राष्ट्रपति को कुछ विवेकी शक्तियां प्राप्त है और कुछ स्थितियों में भारत के राष्ट्रपति ने बड़ी ही समझदारी से कार्य किया है। जब किसी दल को लोकसभा में बहुमत नहीं मिलता है तो राष्ट्रपति स्वविवेक से उसे सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित करता है, जिसे वह समझे कि वह सदन में अपना बहुमत सिद्ध कर सकता है। इसके साथ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि 1984 में इन्दिरागांधी की हत्या के उपरान्त प्रधानमंत्री का पद रिक्त न हो, राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने राजीवगांधी को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया है। किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए राष्ट्रपति के द्वारा लौटाया जाना भी अपने आप में गम्भीर विषय माना जाता है।इस प्रकार जैसा उपर उल्लेख किया गया है राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान होने के नाते व्यापक रुप से नियुक्तियाँ करने और पदच्युत करने का भी अधिकार है । साथ ही क्षमादान की महत्वपूर्ण शक्ति भी प्राप्त है ।विधायन के क्षेत्र में जब संसद का सत्र न चल रहा हो तो राष्ट्रपति की अध्यादेश निकालने की शक्ति भी महत्वपूर्ण है । इस प्रकार से यह पद भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं |

5.7 शब्दावली -

संसद = राष्ट्रपति + राज्य सभा + लोकसभा
औपचारिक प्रधान:- जिसके नाम से समस्त कार्य किये जाते है परन्तु वह स्वयं उन शक्तियों का प्रयोग न करता हो।
गणतन्त्र:- राज्य का प्रधान निर्वाचित हों, वंशानुगत राजा नहीं
कोटा:-जीत के लिए आवश्यक न्यूनतम मत (समस्त का 51 प्रतिशत)

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

1- लोकसभा, राज्यसभा और सभी राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य
2- 5 वर्ष , 3-अनुच्छेद 61, 4-अनुच्छेद 124, 5-अनुच्छेद 217, 6-अनुच्छेद 352,
7-आन्तरिक अशान्ति , 8- असत्य, 9- असत्य, 10- असत्य, 11- असत्य,
12- असत्य

5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची -

डॉ रूपा मंगलानी - भारतीय शासन एवं राजनीति (2009), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

त्रिवेदी एवं राय - भारतीय सरकार एवं राजनीति

महेन्द्र प्रताप सिंह - भारतीय शासन एवं राजनीति (2011), ओरियन्टल ब्लैक स्वान नई दिल्ली

भारतीय प्रशासन - अवस्थी एवं अवस्थी (2011), लक्ष्मी नारायण अग्रवाल , आगरा

5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री -

भारत का संविधान - ब्रज किशोर शर्मा (2008), प्रेन्टिस हाल ऑफ इंडिया नई दिल्ली

भारत में लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया (2010) साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा

The Constitution of India – J.C. Johari, 2004, Sterling Publishers Private Limited New Delhi

5.11 निबंधात्मक प्रश्न-

1-. राष्ट्रपति कार्यपालिका के औपचारिक प्रधान से अधिक है। स्पष्ट कीजिए।

2-. राष्ट्रपति के चुनाव प्रक्रिया की विवेचना कीजिए ?

3-. राष्ट्रपति के आपातकालीन शक्तियों की समीक्षा कीजिए

इकाई छः प्रधानमंत्री, मन्त्रिपरिषद

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 प्रधानमन्त्री एक परिचय
    6.3.1 प्रधानमन्त्री की नियुक्ति
    6.3.2 प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध
    6.3.3 प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध
    6.3.4 प्रधानमन्त्री और संसद के बीच सम्बन्ध
6.4 सारांश
6.5 शब्दावली
6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
6.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.9 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना:-

पिछली इकाई में भारतीय प्रशासन में राष्ट्रपति की स्थिति के बारे में अध्ययन किया है और पाया कि भारत का राष्ट्रपति ब्रिटेन के सम्राट से अधिक शक्तिशाली और महत्वपूर्ण स्थिति में है क्यों कि एक तरफ वह पर राष्ट्र की एकता और गरिमा का प्रतीक है तो दूसरी तरफ उन्हें उसे कुछ स्वविवेकि शाक्तियाँ प्रदान कर राजव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थिति प्रदान की गई है।

इस इकाई में हम देखेगे कि राष्ट्रपति के नाम से जिन शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद करती है। उसका प्रधान प्रधानमंत्री होता है। प्रधानमन्त्री का पद हमारे देश में संसदीय शासन प्रणाली होने के नाते बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है क्यों कि लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होने के नाते इस कारण से सदन का नेता होने के कारण और अन्ततः दलीय अनुशासन के कारण से शासन व्यवस्था को नेतृत्व प्रदान करता है। किन्तु यही शक्तिशाली प्रधानमंन्त्री की स्थिति, गठबंधन सरकार होने पर अत्यन्त कमजोर हो जाती है फिर भी वह केन्द्रीय सत्ता की धुरी होता है।

6.2 उद्देश्य:-

1.इस इकाई के अध्ययन से हम जान सकेगें कि संसदीय शासन में प्रधानमंत्री कितना महत्वपूर्ण है।

2.सरकार के गठन में कितनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

3.वह निम्न सदन (लोक सभा) का नेता भी होता है।

4. वह अपने दल का अत्यधिक प्रभावशाली होता है।

5. मंत्रिपरिषद के विघटन की भी महत्व पूर्ण शक्ति होती है

6.3 प्रधानमन्त्री एक परिचय

भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। इस शासन में प्रधानमन्त्री का पद ,शासन व्यवस्था का केन्द्र विन्दु होता है। इसमें नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद पाया जाता है। नाममात्र की कार्यपालिका राष्ट्रपति होता है। वास्तविक कार्यपालिका मन्त्रिपरिषद होती है,जिसका नेतृत्व प्रधानमन्त्री करता है। राष्ट्रपति के नाम से समस्त कार्यपालिका शक्तियों प्रयोग ,प्रधानमन्त्री के नेतृत्व में मन्त्रिपरिषद करती है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 74(1) के अनुसार राष्ट्रपति को अपने कार्यों में सहायता तथा मन्त्रणा के लिए एक मन्त्रिमण्डल होगा ,जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा। इसके आगे अनुच्छेद 75(1) में कहा गया है कि, प्रधानमन्त्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा तथा अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री के परामर्श पर करेगा। संसदीय लोकतन्त्र की परम्परा के अनुसार राष्ट्रपति लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करते हैं। यहॉ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हमारे संविधान में ऐसा कोई उपबन्ध नही है कि राष्ट्रपति बहुमत दल के नेता को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करने को बाध्य हो।

अनुच्छेद 75(5) के अनुसार के कोई भी व्यक्ति संसद का सदस्य हुए विना छः माह तक मन्त्री पद पर रह सकता है। साथ ही यह भी आवश्यक नहीं है कि प्रधानमन्त्री का नियुक्ति निम्न सदन (लोक सभा) से ही हो। उदाहरण स्वरुप-इन्दिरागान्धी को जब पहली बार 1966 प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया गया तो उस समय वे उच्च सदन (राज्य सभा) की सदस्य थी। व्रिटेन की संसदीय परम्पराओं के अनुसार प्रधानमन्त्री की नियुक्ति में राष्ट्रपति ने कभी अपने विवेक का प्रयोग नहीं किया बल्कि बहुमत प्राप्त दल के नेता,किसी दल को बहुमत न मिलने की स्थिति में सबसे बडे दल के नेता को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया।

संविधान के उपबन्धों और गत 64 वर्ष के व्यावहारिक अनुभवों से प्रधानमन्त्री के पद और स्थिति की जानकारी के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर विस्तृत विचार करना आवश्यक है -

1-प्रधानमन्त्री की नियुक्ति

2-प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध

3- प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध

4- प्रधानमन्त्री और संसद के बीच सम्बन्ध

6.3.1 प्रधानमन्त्री की नियुक्ति

इस बात का उल्लेख ऊपर कर चुके हैं कि संसदीय परम्परा के अनुरुप राष्ट्रपति लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को ,प्रधानमन्त्री नियुक्त करता है। 1946 की अन्तरिम सरकार में जवाहरला नेहरु को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया गया। 1952, 1957 और 1962 के लोकसभा के आम चुनाव में काग्रेंस को सफलता मिली और नेहरु जी को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया जाता रहा। 1964 में इनकी मृत्यु के उपरान्त काग्रेस के वरिष्ठतम सदस्य गुलजारीलाल नन्दा को ,अस्थायी रुप से प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया गया। इसके पश्चात काग्रेस अध्यक्ष कामराज की कुशलता से, लालबहादुर शास्त्री को स्थायी प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया गया।

1966 में शास्त्रीजी की आकस्मिक मृत्यु के उपरान्त एक बार पुनः नेता के चुनाव के प्रश्न पर मतभेद उभरा , क्योंकि काग्रेस अध्यक्ष कामराज इन्दिरा गाँधी को चाहते थे जबकि कांग्रेस के वरिष्ठतम सदस्य मोरारजी देसाई भी दावेदारी कर रहे थे । फलस्वरुप दल के चुनाव में श्रीमती गाँधी 169 के मुकाबले 355 मतों से विजयी रहीं । दल में इस विभाजन के कारण 1967 के चुनाव में कुछ राज्यों में भारी पराज्य का सामना करना पड़ा । काग्रेस ,लोकसभा के 1962 के चुनाव में 361 स्थानों पर विजयी हुई थी जबकि 1967 में यह संख्या घटकर 283 हो गई । 1967 के चुनाव के उपरान्त इन्दिरा गाँधी सर्वसम्मति से प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त की गयी । दूसरे गुट के सदस्य मोरारजी देसाई को उपप्रधानमन्त्री और गृहमन्त्री के पद पर नियुक्त किया गया । फिर भी मोरारजी देसाई को असन्तोष था और उन्होंनें इन्दिरा गाँधी के प्रगतिशील आर्थिक नीतियों का .जैसे बैंकों के राष्ट्रीयकरण का विरोध किया । 1969 के राष्ट्रपति के चुनाव में तो यह विरोध और भी मुखर होकर सामने आ गया । काग्रेस के अधिकृत उम्मीदवार नीलम संजीव रेड्डी के खिलाफ .श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने निर्दल प्रत्याशी वी0वी0 गिरी को राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित करवाया । फलस्वरुप कांग्रेस का विभाजन हो गया । इन्दिरा गुट अल्पमत में आ गयी । प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी की सिफारिश पर राष्ट्रपति ने लोकसभा का विघटन कर दिया । 1971 के पूर्वार्द्ध में लोकसभा का प्रथम मध्यावधि चुनाव हुए । इन्दिरा गुट को भारी सफलता प्राप्त हुई और राष्ट्रपति ने इन्दिरा गाँधी को प्रधानमंत्रीपद पर नियुक्त किया । इस सफलता ने श्रीमती गाधी को एक शक्तिशाली नेता के रुप में. राजनीतिक मंच पर स्थापित कर दिया ।

इन्दिरा गाँधी की चुनावी सफलता और समाजबाद के चमत्कारिक नारे ने उनके प्रभाव में ऐसी वृद्धि की कि काग्रेस के सर्वमान्य नेता के रुप में स्थापित हुई । 1977 के लोक सभा चुनाव में काग्रेस की पराज्य हुई और जनता पार्टी को सफलता मिलि । मोरारजी देसाई को, राष्ट्रपति ने, प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया ।

जनता पार्टी के सरकार बनाने के समय से ही उसके विभिन्न घटक दलों में मतभेद थे, जो 1977 तक बहुत बढ गया । इस स्थिति को देखते हुए जुलाई 1977 में विपक्ष अविश्वास प्रस्ताव ले आया और मोरारजी देसाई ने विना सामना किये ही प्रधानमन्त्री पद से त्यागपत्र दे दिया । इसके पश्चात सरकार बनाने की विभिन्न संभावनाओं पर विचार करते हुए. चौधरी चरण सिंह को. तीन महीने में बहुमत सिद्ध करने की शर्त के साथ. सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित किया । परन्तु काग्रेस पार्टी ने चरण सिंह से अपना समर्थन वापस ले लिया । यह समर्थन चरण सिंह लोकसभा में बहुमत सिद्ध करने की तिथि के पहले ही ले लिया । परिणामस्वरुप चौधरी चरण सिंह ने लोकसभा का सामना किये विना ही त्यागपत्र देते हुए राष्ट्रपति से लोकसभा विघटित करने की सिफारिश की । तत्कालीन राष्ट्रपति ने लोकसभा का विघटन करते हुए. चौधरी चरण सिंह को कार्यवाहक प्रधानमन्त्री के रुप में रहने दिया ।

1980 के लोकसभा चुनाव में काग्रेस पार्टी को एक बार पुनः आश्चर्यजनक सफलता मिलि और श्रीमती गॉधी एक बार पुनः प्रभावशाली प्रधानमन्त्री के रुप में स्थापित हुई । किन्तु श्रीमती गॉधी की दुर्भाग्यपूर्ण हत्या(31 अक्टूबर 1984) हो गयी । तम्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने कांग्रेस संसदीय बोर्ड की सिफारिश पर राजीव गांधी को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया । चूँकि श्रीमती गॉधी की हत्या के कारण राजीव गाँधी के साथ जनता की बहुत सहानुभूति थी । इस लिए 1984 के लोकसभा चुनाव में काग्रेस को अब तक सर्वाधिक सीटें प्राप्त हुई । इस सफलता के केन्द्र में राजीव गॉधी थे । इस लिए राजीवगाँधीका प्रधानमन्त्री बनना तय था । भारतीय राजव्यवस्था और प्रधानमन्त्री पद के लिए 1989 का लोकसभा चुनाव. एक विभाजक चुनाव था । इस चुनाव ने एकदलीय प्रभुत्व का अन्त किया क्यों कि किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला । जनता दल के वी0पी0 सिंह भाजपा

सहित अन्य दलों के समर्थन से प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किये गये किन्तु नवम्बर 1990 में भाजपा के समर्थन वापस लेने की वजह से वी0पी0 सिंह सरकार का पतन हो गया। वी0पी0 सिंह सरकार के पतन के साथ ही जनता दल का विभाजन हो गया। चन्द्रशेखर सिंह (जनता दल -समाजवादी-61 लोकसभा सदस्य) ने कांग्रेस के समर्थन से प्रधानमन्त्री पद प्राप्त किया ।कांग्रेस के समर्थन वापस लेने कारण चन्द्रशेखर सरकार का भी अल्पायु में ही. जून1991 में पतन हो गया ।1991 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस सबसे बड़े दल के रुप में उभरी। मई 1991 राजीव गाधी की हत्या हो गयी। इस राजनीतिक वातावरण में पी0वी0 नरसिंहराव को .राष्ट्रपति ने प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया।

1996 के लोकसभा चुनाव में भी किसी दल को बहुमत नहीं मिला। तेरह दलों के सहयोग प्राप्त भाजपा के अटलविहारी वाजपेयी को राष्ट्रपति ने प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया। किन्तु इस सरकार का कार्यकाल मात्र तेरह दिन ही रहा। इसके पश्चात एच0डी0 देवगौड़ा और इन्दकुमार गुजराल की कांग्रेस समर्थित सरकारें बनीं जों अल्पकालिक ही रहीं। 1998 के लोकसभा चुनाव में के पश्चात भाजपा और उसके सहयोगी दलों के नेता अटलविहारी वाजपेयी पुनः प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त हुए। किन्तु यह सरकार भी स्थायी नहीं रही और पुनः 1999 में लोकसभा के चुनाव में किसी भी दल को बहुमत नहीं प्राप्त हुआ। अटल विहारी वाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा सहित पन्द्रह दलों की गठबंधन सरकार का गठन किया गया। इस गठबंधन सरकार में मंत्रिमंडल के सदस्यों का चयन प्रधानमंत्री की इच्छा पर निर्भर न होकर .घटक दलों की इच्छा और उनकी सौदेवाजी की स्थिति पर आधारित था।

इसी प्रकार 2004 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस के नेतृत्व में ग्यारह दलों के औपचारिक समर्थन और आठ दलों के बाहर से समर्थन से सरकार गठबंधन सरकार का गठन हुआ। इस सरकार ने अपना कार्यकाल पूरा किया। 2009 के 15वीं लोक सभा चुनाव में पुनः कांग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सरकार का गठन हुआ। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि गठबंधन सरकार में मंत्रिपरिषद के गठन में प्रधानमंत्री पूरी तरह से स्वतंत्र नहीं होते है क्यों कि क्षेत्रीय दल. सरकार को समर्थन अपने हितों की सिद्धि के लिए करते है। ऐसे सौदेबाजी के वातावरण में प्रधानमंत्री की स्थिति बहुत मजबूत एवं निर्णायक नहीं हो सकती |

भारत के प्रधानमंत्री का क्रमवार विवरण इस प्रकार है ---

क्रम सं.	प्रधानमंत्री का नाम	संसदीय क्षेत्र से	कब से	कब तक	राजनीतिक दल
1	जवाहर लाल नेहरू	फूलपुर	15 अगस्त 1947	27 मई 1964	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
2	गुलजारीलाल नंदा	साबरकंठा	27 मई 1964	9 जून 1964	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
3	लाल बहादुर शास्त्री	इलाहाबाद	9 जून 1964	11 जनवरी 1966	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
4	गुलजारीलाल नंदा	साबरकंठा	11 जनवरी 1966	24 जनवरी 1966	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
5	इंदिरा गाँधी	रायबरेली	24 जनवरी	24 मार्च	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

			1966	1977	
6	मोरारजी देसाई	सूरत	24 मार्च 1977	28 जुलाई 1979	जनता पार्टी
7	चौधरी चरण सिंह	बागपत	28 जुलाई 1979	14 जनवरी 1980	जनता पार्टी(सेकुलर, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके साथ)
8	इंदिरा गाँधी	मेडक	14 जनवरी 1980	31 अक्टूबर 1984	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस(आई)
9	राजीव गाँधी	अमेठी	31 अक्टूबर 1984	2 दिसंबर 1989	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस(आई)
10	विश्वनाथ प्रताप सिंह	फतेपुर	2 दिसंबर 1989	10 नवंबर 1990	जनता दल(नेशनल फ्रंट)
11	चंद्र शेखर सिंह	बलिया	10 नवंबर 1990	21 जून 1991	समाजवादी जनतापार्टी (भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ)
12	पी.वी. नरसिम्हाराव	नंदयाल	21 जून 1991	16 मई 1996	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस(आई)
13	अटल विहारी वाजपेयी	लखनऊ	16 मई 1996	1 जून 1996	भारतीय जनता पार्टी
14	एच. डी. देवगौडा	कर्नाटक(राज्यसभा)	1 जून 1996	21 अप्रैल 1997	जनता दल (यूनाइटेड फ्रंट)
15	आई.के. गुजराल	बिहार (राज्यसभा)	21 अप्रैल 1997	19 मार्च 1998	जनता दल (यूनाइटेड फ्रंट)
16	अटल विहारी वाजपेयी	लखनऊ	19 मार्च 1998	22 मई 2004	भारतीय जनता पार्टी (एन .डी.ए .)
17	मनमोहन सिंह	असम (राज्यसभा)	22 मई 2004	26 मई 2014	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस(यू.पी.ए.)
18	नरेन्द्र दामोदरदास मोदी	वाराणसी	26 मई 2014	जारी	भारतीय जनता पार्टी (एन.डी.ए.)

6.3.2 प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75(1) के अनुसार राष्ट्रपति मंत्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री की मंत्रणा से करता है। भारत में भी इग्लैण्ड के समान संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। संसदीय परम्परा का अनुसरण करते हुए भारत में भी मंत्री पद के लिए चयन प्रधानमंत्री करते हैं , राष्ट्रपति की स्वीकृति एक औपचारिकता हाती है। प्रधानमंत्री मंत्रियों के चयन में उस समय शक्तिशाली होता था और उसके निर्णय निर्णायक भी होते थे ,जब एक दल

बहुमत के आधार पर सरकार का गठन करता था। सरकार के गठन और उसकी स्थिरता के लिए , विभिन्न क्षेत्रीय दलों के सहयोग की आवश्यकता हेाती है। ये क्षेत्रीय दल सहयेाग के बदले में मंत्री पद प्राप्त करने की सौदेबाजी करते हैं। मंत्रियों को विभागों का बंटवारा भी प्रधानमंत्री का विवेकाधिकार होता है परन्तु मंत्रिपरिषद का गठन करते समय उन्हें जाति ,धर्म, भाषा ,क्षेत्र तथा सहयोगी क्षेत्रीय दलों की निम्न सदन (लोकसभा) में सफल सदस्यों की सख्या केा महत्व देना पड़ता है।

6.3.3 प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध

भारतीय प्रशासन में प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के बीच का संबंध अतिमहत्वपूर्ण है क्योंकि भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। संसदीय शासन प्रणाली में राष्ट्रपति नाममात्र की कार्यपालिका हाते हैं ,जिनके नाम से सभी कार्य किये जाते हैं। जबकि मंत्रिपरिषद वास्तविक कार्यपालिका होती है। प्रधानमंत्री , मंत्रिपरिषद को नेतृत्व प्रदान करते हैं। मूल संविधान में यह उपबन्ध था कि राष्ट्रपति ,मंत्रिपरिषद के परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं थे किन्तु 42वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा यह उपबन्ध किया गया कि राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद की सिफारिस मानने के लिए बाध्य है। 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा पुनः पूर्व स्थिति को बहाल कर दिया गया।

राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच संबंध मुख्यतः दो बातों पर निर्भर करता है-1- राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच का दलीय संबंध - यदि दोनों एक ही दल के हैं तो दलीय अनुशासन के कारण ,संबंध सामान्य बने रहेंगे। जैसा कि 1977 तक स्पष्ट रुप से दिखाई देता है। 2- राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री का व्यक्तित्व और उनके राजनीतिक प्रभाव भी ,दोनों के बीच के संबंध को प्रभावित करते हैं। यदि राष्ट्रपति के चुनाव में प्रधानमंत्री की भूमिका है तो दोनों के बीच के संबंध काफी हद तक सामान्य रहे हैं , जैसा कि जाकिर हुसैन, वी0वी0 गिरि,फखरुद्दीन अली अहमद और ज्ञानी जैल सिंह के मामले में हुआ है। किन्तु 31 अक्टूबर 1984 को श्रीमती इन्दिरा गान्धी की हत्या हो गयी। इसके पश्चात राजीव गांधी को राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया। 1986 तक तो संबंध अच्छे रहे किन्तु 1987 के प्रारम्भ से दोनों के बीच के संबंधों में कड़वाहट शुरु हुई और ऐसा लगनें लगा कि राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह , प्रधानमंत्री राजीव गांधी को पद से हटाकर लोकसभा का विघटन कर देंगे। संविधान लागू होने के पश्चात ऐसा सर्वप्रथम हुआ कि एक ही दल का होने के बावजूद राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री में गम्भीर मतभेद उभर कर सामने आये।

6.3.4 प्रधानमन्त्री और संसद के बीच सम्बन्ध

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं कि भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। भारत में में प्रधानमंत्री की नियक्ति निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल के नेता की की जाती है। यद्यपि उच्च सदन से प्रधानमंत्री की नियुक्ति को लेकर केाई कानूनी बंधन नहीं हैं। हमारे देश में सर्वप्रथम 1966 में श्रीमती इन्दिरा गांधी को राज्य सभा के सदस्य के रुप में प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया गया। इसके पश्चात वर्तमान प्रधानमंत्री डॉ मनमोहन सिंह भी राज्यसभा सदस्य हैं।

प्रधानमंत्री लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता हेाता है ,इस लिए सदन का भी नेता होता है। सदन का नेता होने के नाते विपक्ष के अधिकारों के रक्षा की और सदन की कार्यवाही में उनकी भागीदारी हेतु अवसर प्रदान करेंगे। इस हेतु वे विपक्ष से परामर्श करते हैं और उनकी शिकायतों का निराकरण करने का प्रयत्न भी करते हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75(3) के अनुसार मंत्रिमण्डल सामूहिक रुप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता है । इसका तात्पर्य यह है कि मंत्रिमण्डल का अस्तित्व तभी तक है जब तक कि उसे लोकसभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त है । किन्तु व्यावहारिक स्थिति कुछ और ही है ,क्योंकि दलीय अनुशासन के कारण ,लोकसभा में बहुमत प्राप्त राजनीतिक दल ,मत्रिमण्डल के विरुद्ध नहीं जा पाता है । संसदीय परम्परा के अनुसार प्रधानमंत्री , राष्ट्रपति से सिफारिश करके लोकसभा का विघटन करवा सकता है । इस अधिकार के कारण प्रधानमंत्री लोकसभा को नियंत्रित करने में काफी हद तक सफल रहता है । प्रथम लोकसभा के गठन से आज तक 59 वर्षों में कई बार लोकसभा का विघटन समय से पूर्व करते हुए मध्यावधि चुनाव कराये गये ।

समय से पूर्व लोकसभा का विघटन

क्रम	किस प्रधानमंत्री की सिफारिश पर	राष्ट्रपति ने विघटन किया	सन्
1	श्रीमती इन्दिरा गॉधी	1970	
2	श्रीमती इन्दिरा गॉधी	1977	
3	चौधरी चरण सिंह		1979
4	राजीव गॉधी		1984
5	चन्द्रशेखर सिंह		1991
6	अटल विहारी वाजपेयी		1998
7	अटल विहारी वाजपेयी		1999

यहॉ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि जब किसी एक दल को निरपेक्ष बहुमत रहा है तो लोकसभा पर प्रधानमंत्री का नियंत्रण बहुत ही प्रभावशाली रहा है परन्तु जब गठबंधन सरकारें रहीं हैं(जैसे 1977,1989,1991,1996,1998,1999,2004 और 2009 में) तब लोकसभा पर नियंत्रण की बात तो दूर की रही ,वे स्वयं ही अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हुए दिखाई देते रहे हैं ।

अभ्यास प्रश्न

1. प्रधानमंत्री की नियुक्ति की जाती है, या निर्वाचित होता है
2. निम्न सदन का नेता कौन होता है ?
3. प्रधानमंत्री की नियुक्ति कौन करता है ?
4. भारत की प्रथम प्रधानमंत्री जो राज्य सभा सदस्य थी
5. कोई मंत्री बिना संसद सदस्य रहे कितने माह मंत्री रह सकता है ?

6.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत हम संसदीय शासन में प्रधानमंत्री की नियुक्ति हेतु अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हुई | साथ ही यह भी देखा की किस प्रकार से प्रधानमंत्री इस शासन व्यवस्था में बहुत ही शक्तिशाली होकर उभरता है | यहाँ यह भी देखने को मिला कि प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य करता है |और समय समय पर मंत्रिपरिषद द्वारा लिए गए निर्णयों की जानकारी भी राष्ट्रपति को देता है |

उपरोक्त अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो गया कि किस प्रकार से इस शासन व्यवस्था में सम्पूर्ण शासन व्यवस्था के केंद्र में प्रधानमंत्री होता है |

6.5 शब्दावली

1. मंत्रिपरिषद = मंत्रिमण्डल , राज्यमंत्री ,उपमंत्री
2. निम्न सदन = लोक सभा को कहते है।
3. उच्चसदन = राज्य सभा को कहते है

6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1. नियुक्ति 2. प्रधानमंत्री 3. राष्ट्रपति 4. श्रीमती इन्दिरा गांधी 5. छः माह

6.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति - डॉ रूपा मंगलानी
भारतीय सरकार एवं राजनीति - त्रिवेदी एवं राय
भारतीय शासन एवं राजनीति - महेन्द्रप्रतापसिंह

6.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया

6.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत के प्रधानमंत्री की पद एवं स्थिति की विवेचना कीजिए ?
2. प्रधानमंत्री की सदन के नेता और सरकार के मुखिया के रूप में महत्व की व्याख्या कीजिए।
3 गठबन्धन सरकारों के युग में प्रधानमंत्री कमजोर हुआ है या मजबूत समीक्षा कीजिए।

इकाई 7 : संसद: लोकसभा - राज्यसभा

इकाई की संरचना

7 1. प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 भारतीय संसद
7.4 संसद का संगठन
7.5 राज्यसभा
7.6 लोकसभा
7.7 संसद की शक्तियॉ
7.8 सारांश
7.9 शब्दावली
7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.13 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

इकाई ६ में हमने यह अध्ययन किया है कि कि राष्ट्रपति के नाम से जिन शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद करती है। उस मन्त्रिपरिषद का प्रधान प्रधानमंत्री होता है । प्रधानमन्त्री का पद हमारे देश में संसदीय शासन प्रणाली होने के नाते बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है क्यों कि लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होने के नाते इस कारण से सदन का नेता होने के कारण और अन्ततः दलीय अनुशासन के कारण से शासन व्यवस्था को नेतृत्व प्रदान करता है। किन्तु यही शक्तिशाली प्रधानमंन्त्री की स्थिति, गठबंधन सरकार होने पर अत्यन्त कमजोर हो जाती है फिर भी वह केन्द्रीय सत्ता की धुरी होता है ।

इस इकाई ७ में हम संसद के संगठन ,कार्यों और शक्तियों का अध्ययन करेंगे | जिसमे हम यह अध्ययन करेंगे कि की किस प्रकार से राष्ट्रपति संसद का अंग है और उसके पद में संसदीय शासन की प्रमुखविशेषताका समावेश किया गया है | क्योकि संसदीय शासन की मुख्य विशेषता ,व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का मिश्रित स्वरूप है | कार्य पालिका के सभी सदस्यों के लिए व्यवस्थापिका का सदस्य होना अनिवार्य होता है | राष्ट्रपति के पद में ये दोनों विशेषताएँ पाई जाती है क्योकि एक तरफ वह कार्यपालिका का प्रमुख होता है तो दूसरी तरफ वह संसद का अंग होता है क्योंकि कोई भी विधेयक तबतक कानून का रूप नहीं लेता है जब तक कि उसे राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति नहीं प्रदान कर देता है |

इसके साथ ही साथ हम यह भी अध्ययन करेंगे कि किस प्रकार कानून निर्माण में राज्य सभा को ,लोक सभा केसमानशक्तियां न होते हुए भी वह महत्त्वपूर्ण है |

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के उपरान्त हम

1.संसद के संगठन के सम्बन्ध में जान सकेंगे

2.राज्य सभा की शक्तियों को जान सकेंगे

3.लोक सभा की शक्तियों को जान सकेंगे

4.अंततःकानून निर्माण में लोक सभा के सापेक्ष राज्य सभा की शक्तियों को जान सकेंगे

7.3 भारतीय संसद

जैसा कि हम पहले की इकाइयों में स्पष्ट कर चुके है कि ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए हमारे देश में भी संविधान के द्वारा संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई है| यह संसदीय प्रणाली संघ और राज्य दोनों ही स्तरों पर अपनाई गई है |संघीय स्तर के विधान निमा़त्री संस्था को संसद कहते है । राज्य स्तर पर क़ानून निर्मात्री संस्था को हम विधानमंडल कहते है। प्रस्तुत इकाई में सघीय विधायिनी संस्था संसद का ही अध्ययन करेंगे।

संसद का गठन द्विसदनीय सिद्धान्त के आधार पर किया गया है।

(1) उच्च सदन-राज्यसभा और (2) निम्न सदन-लोकसभा (जनप्रतिनिधि सदन)। यहॉ पर यह भी स्पष्ट करना आवश्यक हे कि यहीं दोनों सदन मिलकर ही संसद का गठन नहीं करते है वरन - लोकसभा, राज्यसभा और राष्ट्रपति से मिलकर संसद बनती है । चूंकि संसद का मुख्य कार्य कानून निर्माण है। और कोई भी विधेयक तब तक कानून का रुप नहीं ग्रहण करता है, जब तक कि उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति नहीं मिल जाती है। इसलिए राष्ट्रपति संसद का महत्वपूर्ण अंग है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 79 में स्पष्ट रुप से उल्लिखित है कि संघ के लिए एक संसद होगी जो राष्ट्रपति और दोनों सदनों से मिलकर बनेगी जिनके नाम क्रमशः राज्यसभा और लोकसभा होंगे।

भारतीय संसद के संगठन और उसके कार्यो आदि के सम्बन्ध में भारतीय संविधान के भाग-5 के अध्याय 2 में अनुच्छेद 79 से 122 तक प्रावधान किया गया है।

यद्यपि हमने ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली अपनाई है, परन्तु भारतीय संसद ब्रिटेन की संसद के समान सर्वशक्तिमान नहीं है। क्योंकि उसके सम्बन्ध में एक कहावत प्रचलित है कि वह स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री बनाने के सिवाय सब कुछ कर सकती है।

7.4 संसद का संगठन

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 79 के अनुसार संघ के लिए संसद होगी जो राष्ट्रपति और दो सदनों से मिलकर बनेगी। संसद के अंग - राष्ट्रपति और दो सदन - 1. राज्यसभा 2. लोकसभा

राष्ट्रपति - संसद का अंग है, जिसकी स्वीकृति के बिना कोइ्र भी विधेयक कानून का रुप नहीं ले सकता है। राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक मंडल द्वारा 5 वर्ष के लिए किया जाता है निर्वाचक मंडल में संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य, सभी राजयों की विधानसभाओं के निवा़रचित सदस्य है। राष्ट्रपति का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधितव की पद्धति से एकल संक्रमणीय मत पद्धति के द्वारा किया जाता है। समय से पूर्व वह उपराष्ट्रपति को त्यागपत्र दे सकता है या साबित कदाचार या संविधान के उल्लघंन के आरोप में महाभियोग की प्रक्रिया द्वारा पद से हटाया जा सकता है। जिसका उल्लेख संविधान केअनुच्छेद61 में किया गया है।

7.5 राज्यसभा

राज्यसभा की संरचना: भारतीय संविधान के अनुच्छेद 80 के अनुसार राज्यसभा संसद का उ्च्च सदन है, जिसकी सदस्य संख्या अधिकतम 250 हो सकती है। (यद्यपि वर्तमान समय में इसमें सदस्य संख्या 245 है।)

250 में से 238 सदस्य राज्यों और संघ-राज्य क्षेत्र से होगा जबकि 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होंगे। जो साहित्य, कला, विज्ञान, समाज सेवा के क्षेत्र में ख्यातिलब्ध व्यक्तित्व होंगे । इस उपबन्ध को रखने के पीछे संविधान निर्माताओं की मंशा यह थी कि सदन को समाज के योग्य और अनुभवी लोगों के अनुभव का लाभ प्राप्त हो सके।

भारतीय संविधान की चौथी अनुसूची में राज्य ओर संघशासित क्षेत्रों से प्रतिनिधियों की 233 की संख्या का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार से 233+12 = (राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत) कुल 245 सदस्य राज्यसभा में है। राज्य और संघ-राज्य क्षेत्र में राज्य सभा का प्रतिनिधित्व इस प्रकार है-

क्रम संख्या	राज्य	सीटों की संख्या
1.	आन्ध्र प्रदेश	11
2.	अरुणाचंल प्रदेश	1
3.	असम	7
4.	बिहार	16
5.	छत्तीसगढ	5
6.	गोवा	1
7.	गुजरात	11
8.	हरियाणा	5
9.	हिमांचल प्रदेश	3
10.	जम्मू कश्मीर -	4
11.	झारखंड	6
12.	कर्नाटक	12
13.	केरल	9
14.	मध्यप्रदेश	11
15.	महाराष्ट्र	19
16.	मणिपुर	1
17.	मेघालय	1
18.	मिजोरम	1
19.	नागालैण्ड	1
20.	राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली	3
21.	नामित सदस्य	12
22.	उड़ीसा	10
23.	पाण्डिचेरी	1
24.	पंजाब	7
25.	राजस्थान	10

26.	सिक्किम	1
27.	तमिलनाडू	18
28.	तेलंगाना	7
29.	त्रिपुरा	1
30.	उत्तरप्रदेश-	31
31.	उत्तराखंड	3
32.	पश्चिम बंगाल	16
कुल संख्या		245

राज्यसभा स्थायी सदन है। इसके सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रुप से एक निर्वाचक मंडल के द्वारा किया जाता है। राज्यों के प्रतिनिधियों का चुनाव राज्य विधान सभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति से एकल संक्रमणीय मत पद्धति द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार। यहॉ हम यह बताते चलें कि संघ शासित क्षेत्रों में केवल दिल्ली और पांडिचेरी को ही राज्यसभा में प्रतिनिधित्व प्राप्त है।

यद्यपि हमारे देश में संघात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है, जिसमें उच्च सदन में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाता है, चाहे वे राज्य छोटे हो या बडे हो। अमेरिका में 50 राज्य है सभी राज्यों से उच्च सदन (सीनेट)में दो प्रतिनिधि भेजे जाते है। इस प्रकार कुल 100 सदस्य होते है, जबकि हमारे यहॉ उच्च सदन (राज्य सभा) में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व न प्रदान कर जनसंख्या के आधार पर प्रदान किया गया है।

अवधि - राज्यसभा एक स्थायी सदन है जिसका कभी विघटन नहीं होता है। किन्तु इसके एक तिहाई सदस्य दो वर्ष की समाप्ति पर सेवानिवृत्त हो जाते है। यहॉ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि सदन तो स्थायी है इसके सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष का होता है।

योग्यताएँ- राज्यसभा की सदस्यता के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ अपेक्षित है-

1. वह भारत का नागरिक है।

2. उसकी आयु 30 वर्ष से कम न हो

3. वह किसी लाभ के पद पर न हो,

4. वह पागल या दिवालिया न हो,

5. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 102 में स्पष्ट उल्लेख है कि संघ अथवा राज्य के मंत्री पद लाभ के पद नहीं समझे जाऐंगे।

राज्यसभा के सन्दर्भ में दो पक्ष बहुत ही महत्वपूर्ण है-

1- राज्यसभा के लिए वह देश के किसी भी प्रदेश का हो,किसी भी प्रदेश में लड सकता है।

2- राज्यसभा के लिए मतदान खुला और पारदर्शी होगा।

पदाधिकारीः- राज्यसभा के पदाधिकारी

सभापति उपसभापति

उपराष्ट्रपति(निर्वाचन द्वारा) राज्यसभा से ही निर्वाचित

संसद के सभी सदस्यों द्वारा (लोकसभा ,राज्यसभा)

राज्यसभा में एक सभापति और एक उपसभापति होते है। उपराष्ट्रपति ही राज्यसभा के सभापति होते है। अनुच्छेद - 89 -राज्यसभा अपने सदस्यों में से ही उपसभापति का चुनाव करती है। उपसभापति सभापति की अनुपस्थिति में सभापति के रुप में कार्य करते है।

(अनुच्छेद 91 के अनुसार) सभापति और उपसभापति को वेतन भारत के संचित निधि से प्रदान किया जाता है। राज्य सभा की गणपूर्ति सदन के सम्पूर्ण सदस्यों की संख्या का 10 प्रतिशत । चूंकि वर्तमान में 245 सदस्य है। इसलिए इसकी गणपूर्ति संख्या 25 है।

राज्य सभा के सभापति को सदन को सुचारु संचालन हेतु व्यापक अधिकार प्राप्त होते है।

जब सभापति और उपसभापति दोनों अनुपस्थित हो तो , राज्यसभा के सभापति के कार्यो का निर्वहन राज्यसभा का वह सदस्य करेगा जिसे राष्ट्रपति नामित करेगा।

राज्य सभा के कार्य एवं शक्तियॉ-

1. विधायी शक्तियॉ - राज्य सभा, लोकसभा के साथ मिलकर कानून निर्माण का कार्य करती है। साधारण विधेयको (अवित्तीय विधेयकों) के सम्बन्ध में राज्यसभा को लोकसभा के समान शक्तियॉ प्राप्त है। साधरण विधेयक दोनों सदनों में से किसी में भी पहले पेश किया जा सकता है। दोनों सदनों द्वारा पारित होने के पश्चात राष्ट्रपति के पास उनकी स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। यद्यपि अधिकांश विधेयकों को लोकसभा में ही पहले प्रस्तुत किया जाता है।

यदि विधेयक एक सदन द्वारा स्वीकार कर लिया जाए और दूसरा सदन छ माह तक अपनी स्वीकृति नहीं देता है तो, राष्ट्रपति दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन आहूत करता है। इस संयुक्त अधिवेशन की अध्यक्षता लोकसभा के अध्यक्ष करते है। इसमें निर्णय बहुमत से होता है। सैद्धान्तिक रुप से तो दोनों सदनों को समान शक्तियॉ है परन्तु व्यवहारतः लोकसभा के सदस्यों की संख्या अधिक होती है, इसलिए लोकसभा का निर्णय ही निर्णायक होता है।

2- संविधान संशोधन की शक्ति - संविधान हेतु दोनों सदनों को समान शक्तियॉ प्राप्त है क्योंकि, यह विधेयक भी संसद के दोनों सदनों में से किसी में भी पेश किये जा सकते है। वे तभी पारित माने जाऐंगें जब दोनों सदनों ने अलग-अलग संविधान में उल्लिखित रीति से पारित किया हो, अन्यथा नहीं। क्योंकि संविधान संशोधन विधेयक के सन्दर्भ में दोनों सदनों में विवाद की स्थिति में किसी प्रकार से संयुक्त अधिवेशन की व्यवस्था नहीं है। इस प्रकार यदि राज्य सभा संशोधन से असहमत है तो वह, संशोधन विधेयक गिर जाएगा।

3- वित्तीय शक्तियॉ- वित्तीय शक्तियों के सन्दर्भ में राज्यसभा की स्थिति, लोकसभा के समक्ष अत्यन्त निर्बल है क्योंकि कोई भी वित्तीय विधेयक केवल लोकसभा में ही पेश किये जा सकते है। जब कोई वित्त विधेयक लोकसभा द्वारा पारित होने के पश्चात राज्यसभा में पेश किया जाता है तो राज्यसभा अधिकतम 14 दिन तक उस विधेयक पर विचार करते हुए अपने पास रोक सकती है। उसके विचार को लोकसभा माने या न माने यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। यदि राज्य सभा के विचार को लोकसभा न माने तो 14 दिन की समाप्ति पर विधेयक उसी रुप में पारित समझा जाएगा, जिस रुप में उसे लोकसभा ने पारित किया था।

4- कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियॉ - जैसा कि हम ऊपर देख चुके है कि भारत में संसदीय शासन प्रणाली प्रचलित है। इसमें कार्यपालिका निम्न सदन (लोकसभा) के प्रति सामूहिक रुप से उत्तरदायी होती है। न कि राज्यसभा के प्रति। इसलिए राज्यसभा के सदस्य विभागीय मंत्रियों से प्रश्न पूरक प्रश्न, तारांकित, अतारांकित प्रश्न पूछ सकते है, परन्तु मंत्रिपरिषद के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव नहीं ला सकते है। इस प्रकार की शक्ति केवल लोकसभा के पास है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कार्यपालिका शक्तियो के सन्दर्भ में राज्यसभा,लोकसभा से बहुत ही निर्बल है।

5- अन्य शक्तियॉ - ऊपर हमने राज्यसभा की शक्तियों का अध्ययन किया है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य शक्तियॉ भी राज्य सभा की है , जो निम्नलिखित है -

1. राष्ट्रपति के निर्वाचन में राज्यसभा के निर्वाचित सदस्य भाग लेते है।

2. उपराष्ट्रपति के निर्वाचन में राज्यसभा के सभी सदस्य (निर्वाचित+मनोनीत) 233+12 भाग लेते है।

3. यह लोकसभा के साथ मिलकर बहुमत से उपराष्ट्रपति को पदच्युत करती है।

4. जब देश में आपात काल लागू हो, तो उसे एक माह से अधिक और संवैधानिक तन्त्र की विफलता की घोषणा हो तो उसे 2 माह से अधिक लागू करने हेतु, लोकसभा के साथ राज्यसभा के द्वारा भी स्वीकृति आवश्यक होती है।

5. लोकसभा के साथ मिलकर राज्यसभा राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को भी पदमुक्त करती है।

राज्यसभा के विशेषाधिकार- उपरोक्त शक्तियों के अतिरिक्त राज्यसभा की कुछ ऐसी शक्तियॉ है, जिनका प्रयोग वह अकेले करती है। वे निम्नलिखित है-

1. भारतीय संविधान केअनुच्छेद112 में उल्लिखित है कि - यदि राज्यसभा अपने दो तिहाई बहुमत से नई अखिल भारतीय सेवा के प्रस्ताव पारित कर दे, कि नई अखिल भारतीय सेवा के सृजन का अधिकार मिल जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि राज्य सभा इस तरह के प्रस्ताव न पारित करे तो केन्द्र सरकार नई अखिल भारतीय सेवा का सृजन नहीं कर सकती है।

2. इसी प्रकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 249 - यदि राज्यसभा के, सदन में उपस्थित तथा मतदान में भाग लेने वाले दो तिहाई सदस्य राज्य सूची के किसी विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर दे तो उस पर संसद को कानून निर्माण का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार का प्रस्ताव प्रारम्भ में केवल एक वर्ष के लिए ही होता है, परन्तु राज्यसभा की इच्छा से इसे बार-बार 1 वर्ष के लिए बढाया जा सकता है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि राज्यसभा द्वितीय सदन है तो, साथ ही दूसरे स्तर के महत्व का भी सदन है।

7.6 लोकसभा

जैसा कि हम पहले भी पढ चुके है कि लोकसभा संघीय संसद का निम्न सदन है, जिसे लोकप्रिय सदन या जनप्रतिनिधि सदन भी कह सकते है क्योंकि इनका निर्वाचन जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से वयस्क मताधिकार (18 वर्ष की आयु के भारतीय) के द्वारा किया जाता है। भारतीय संविधान में इस बात का प्रावधान है कि लोकसभा में राज्यों से अधिकतम 530 सदस्य हो सकते है। 20 सदस्य संघ शासित क्षेत्रों से तथा 2 सदस्य आंग्ल भारतीय समुदाय के राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जा सकते है। इस प्रकार लोकसभा में अधिकतम सदस्यों की संख्या 552 हो सकती है।

योग्यता- 1. वह भारत का नागरिक हो।

2. वह भारतीय नागरिक 25 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो।

3. संघ सरकार या राज्य सरकार के अधीन, वह किसी लाभ के पद पर न हो।

4. वह, पागल या दिवालिया न हो ।

इसके अतिरिक्त अन्य योग्यताएँ जिसका निर्धारण समय-समय पर संसद करे।

कार्यकाल- मूल संविधान के अनुसार लोकसभा का कार्यकाल 5 वर्ष था। परन्तु 42 वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा इसका कार्यकाल 6 वर्ष कर दिया गया। परन्तु पुनः 44 वें संवैधानिक संशोधन 1978 के द्वारा कार्यकाल को घटाकर 5 वर्ष किया गया |5 वर्ष के पूर्व भी लोकसभा का विघटन किया जा सकता हैं । इस प्रकार 1970,1977,1979,1990,1997,1999 और 2004 में समय पूर्व विघटन किया गया।

राष्ट्रपति लोकसभा का अधिवेशन बुलाते है। यहॉ स्पष्ट करना आवश्यक है कि लोकसभा की दो बैठकों के बीच अन्तराल अर्थात बैठक की अन्तिम तिथि और दूसरी बैठक की प्रथम तिथि के बीच अन्तराल 6 मास से अधिक नहीं होना चाहिए। राज्यसभा के समान इसकी गणपूर्ति भी समस्त सदस्यों का दसवॉ भाग है।

लोकसभा की संरचना - प्रथम आम चुनाव के समय (1952) लोकसभा के सदस्यों की निर्धारित संख्या 500 थी। 31 वें संवैधानिक संशोसधन 1974 के द्वारा यह निर्धारित किया गया कि इनकी अधिकतम संख्या 500 हो सकती है। जिनमें 530 सदस्य जनता द्वारा प्रत्यक्ष रुप से निर्वाचित होंगे। राज्यों से । जबकि 20 सदस्य संघ-राज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधि होंगे। इसके साथ ही साथ 2 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किए जा सकते है। यदि राष्ट्रपति को ऐसा प्रतीत हो कि आंग्लभारतीय समुदाय को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त है | परन्तु व्यवहार में वर्तमान समय में 545 सदस्य है जिनमें 530 राज्यों का प्रतिनिधत्व करते है, 13 संघ राज्य क्षेत्रों से और 2 राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत। राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों को लोकसभा में स्थानों का आवंटन

निर्वाचन - लोकसभा के सदस्यों का निर्वाचन भारतीय नागरिकों द्वारा सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है । मूल संविधान के अनुसार मताधिकार हेतु न्यूनतम उम्र 21 वर्ष रखी गई थी जबकि 61 वें

संवैधानिक संशोधन के द्वारा इस आयु को घटाकर 18 वर्ष कर दी गई। अर्थात़ 18 वर्ष की आयु का भारतीय नागरिक अपनी पसन्द के प्रत्यासीको मतदान कर सकता है।

कार्यकाल- लोकसभा की अवधि का निर्धारण उसकी बैठक की तिथि से किया जाता है। अपनी बैठक की प्रथम तिथि से 5 वर्ष की अवधि होती है। परन्तु भारतीय संविधन के अनुच्छेद 83 (2) के अनुसार राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की सिफारिश पर 5 वर्ष के पूर्व भी विघटित कर सकता है। किन्तु यह विघटन अवधि 6 माह से अधिक नहीं हो सकती है। अर्थात् विघटन के 6 माह बीतने के पूर्व ही लोकसभा का निर्वाचन हो जाना चाहिए। इस प्रकार के उपबन्ध को रखने का कारण यह कि लोकसभा के दो सत्रों के बीच की अवधि 6 माह से अधिक का नहीं होनी चाहिए।

अधिवेशन - एक वर्ष में लोकसभा के कम से कम दो अधिवेशन होने चाहिए। साथ ही पिछले अधिवेशन की अन्तिम तिथि और आगामी अधिवेशन की प्रथम तिथि के बीच का अन्तराल 6 माह से अधिक का नहीं होना चाहिए। परन्तु यहॉ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह अवधि एक ही स्थिति में 6 माह से अधिक हो सकती है जब आगामी अधिवेशन के पूर्व लोकसभा विघटित हो जाए।

पदाधिकारी- लोकसभा में दो मुख्य पदाधिकारी होते हैं- 1. अध्यक्ष 2. उपाध्यक्ष।

अपने सभी सदस्यों में से ही लोकसभा अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का निर्वाचन करती है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष, अध्यक्ष के रुप में कार्य करते है। परन्तु यदि दोनों अनुपस्थित हो तो सदन का वह व्यक्ति अध्यक्ष के दायित्वों का निर्वहन करेगा जिसे राष्ट्रपति इस हेतु नियुक्त करे।

अध्यक्ष के द्वारा शपथ, अध्यक्ष के रुप में नहीं वरन लोकसभा के सदस्य के रुप में ग्रहण करता है। यह शपथ उसे लोकसभा का कार्यकारी अध्यक्ष (प्रोटेम स्पीकर) दिलाता है जो सदन का सबसे वरिष्ठ सदस्य होता है। इस परम्परा का अनुसरण फ्रान्स की परम्परा से लिया गया है।

अध्यक्ष को पद से हटाया जाना - लोकसभा के समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित प्रस्ताव के द्वारा, अध्यक्ष को हटाया जा सकता है। इस प्रकार के प्रस्ताव रखने के 14 दिन पूर्व सूचना देना आवश्यक है। यहॉ यह पक्ष महत्वपूर्ण है कि जब अध्यक्ष को हटाने का प्रस्ताव विचाराधीन हो तो, अध्यक्ष, लोकसभा की अध्यक्षता नहीं करेगा।

लोकसभा की शक्तियॉ - हमारे देश में लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है। जिसका तात्पर्य है कि अन्तिम रुप से सत्ता जनता में निहित है। लोकसभा जनप्रतिनिधि सदन है क्योंकि इनके सदस्यों का निर्वाचन जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रुप से किया जाता है। इसलिए लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों और परम्पराओं के अनुरुप लोकसभा को राज्यसभा की अपेक्षा शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया है। इसलिए संसद, लोकसभा,राज्यसभा और राष्ट्रपति से मिलकर होता है। अब हम लोकसभा के कार्यो और शक्तियों का अध्ययन करेंगे।

1. विधायी शक्ति- जैसा कि हम पहले ऊपर देख चुके है कि साधारण विधेयकों के सम्बन्ध में लोकसभा और राज्यसभा को समान शक्ति प्राप्त है। यह विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है। और यह तभी पारित समझा जाएगा जब दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग पारित हो।

परन्तु वित्तीय विधेयक लोकसभा में ही पेश किए जा सकते है। साथ ही वित्त विधेयक उसी रुप में पारित हो जाता है, जिस रुप में लोकसभा चाहती है। क्योंकि लोकसभा द्वारा पारित वित्त विधेयक को राज्य सभा केवल 14 दिन रोग सकती है। इसके पश्चात वह उसी रुप में पारित समझा जाएगा जिस रुप में उसे लोकसभा ने पारित किया था। राज्यसभा के किसी भी संशोधन को स्वीकार करना या अस्वीकार करना लोकसभा की इच्छा पर निर्भर है।

कार्यपालिका शक्ति-

भारतीय संविधान में स्पष्ट रुप से लिखा है भारत की संघीय कार्यपालिका सामूहिक रुप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है। यहॉ यह भी जानना आवश्यक है कि उसी दल को सरकार बनाने का अधिकार होता, और उसी दल के नेता को राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करते है,जिसे लोकसभा में समस्त सदस्यों का बहुमत प्राप्त हो। सरकार तभी तक अस्तित्व में रहती है जब तक उसकों लोकसभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त हो। मन्त्रिपरिषद पर प्रश्न पूछकर, पूरक पश्न, अविश्वास प्रस्ताव, कामरोको प्रस्ताव, कटौती प्रस्तावों के माध्यम से नियंत्रण रखते है।

संविधान संशोधन की शक्ति - संविधान संशोधन के महत्वपूर्ण कार्य में भी लोकसभा को शक्तियॉ प्राप्त है। संविधान संशोधन विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में पेश किए जा सकते है और यह तभी पारित समझा जाएगा जब दोनो सदन, अलग-अलग संविधान में वर्णित रीति से पारित करे।

महत्वपूर्ण तथ्य यह है इस सम्बन्ध में संयुक्त अधिवेशन का प्रावधान नहीं है। इसलिए दोनों की शक्तियॉ समान है।

निर्वाचन सम्बन्धी कार्य- लोकसभा , राज्यसभा के साथ मिलकर उपराष्ट्रपति का निर्वाचन तथा राज्यसभा और राज्य विधानसभा के साथ मिलकर राष्ट्रपति का निर्वाचन करती है।

7.7 संसद की शक्तियॉ

भारतीय संसद यद्यपि ब्रिटिश संसद के समान सर्वशक्तिमान नहीं है। परन्तु देश की सर्वोच्च विधायी संस्था है जिसकी प्रमुख शक्तियॉ निम्नलिखित है-

1- कानून निर्माण की शक्तियॉ- शासन के तीन अंग होते है। व्यवस्थापिका ,कार्यपालिका और न्यायपालिका जो क्रमशः कानून निर्माण, कार्यकारी कार्य और न्यायिक कार्य करते है। संसद को संघ सूची, समवर्ती सूची और अवशिष्ट शक्तियों पर कानून निर्माण का अधिकार है। इसके अतिरिक्त कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्यसूची के विषयों पर भी कानून निर्माण का अधिकार है-

1. जब राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा चल रही हो।

2. जब राज्यसभा,अनुच्छेद249 के अनुसार, दो तिहाई बहुमत से राज्यसूची के विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर संसद से विधि निर्माण हेतु आग्रह करें।

3. जब दो या दो से अधिक राज्य विधानमंडल द्वारा प्रस्ताव पारित कर राज्य सूची के विषय पर कानून निर्माण हेतु संसद से आग्रह करें।

2. कार्यकारी कार्य- संसद का अंग लोकसभा होती है। जिसके बहुमत प्राप्त दल के नेता को ही राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री उन्हीं में से अपने मन्त्रिपरिषद का गठन करते है।

अनु0 75 (3) के अनुसार मंत्रिपरिषद लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है।

वित्तीय कार्य- संसद ही संघ के वित्त नियंत्रण रखती है। वित्त का नियमन करने में संसद की भूमिका निर्णायक होती है। जिसमें उसकी दो महत्वपूर्ण समितियॉ लोकलेखा समिति, प्राक्कलन समिति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत के संचित निधि से धन, संसद की स्वीकृति से ही प्राप्त हो सकता है। वार्षिक बजट और रेल बजट संसद के समक्ष पेश किया जाता है। उक्त के साथ-साथ संसद विनियोग विधेयक, अनुपूरक अनुदान, अतिरिक्त अनुदान, लेखानुदान आदि के सम्बन्ध में निर्णायक शक्ति है।

निर्वाचन सम्बन्धी कार्य-

राज्यों से सम्बन्धित कार्य- नए राज्य के गठन, उसकी सीमा और नाम में परिवर्तन का अधिकार संसद को है। इसके तहत वह एक राज्य को विभाजित कर सकती है, दो या दो से अधिक राज्यों को मिलाकर एक राज्य बना सकती है।

महाभियोग सम्बन्धी कार्य- संविधान के अनुच्छेद 61में स्पष्ट उल्लेख है कि संसद साबित कदाचार या संविधान के अतिक्रमण के आरोप में राष्ट्रपति पर विशेष प्रक्रिया से महाभियोग लगा सकती है। इसी प्रकार उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को भी पदच्युत कर सकते है।

संविधान संशोधन की शक्ति - उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संसद की शक्तियॉ व्यापक है। परन्तु वे अमर्यादित नहीं है क्यों कि भारतीय संसद अपनी सीमाओं में ही कार्य करती है।

अभ्यास प्रश्न

1.राष्ट्रपति संसद का अंग है। सत्य / असत्य

2.संसद, राज्य सभा और लोक सभा से मिलकर बनती है। सत्य / असत्य

3.राज्य सभा संसद का जनप्रतिनिधि सदन है। सत्य / असत्य

4.लोक सभा के सदस्यों का जनता के द्वारा निर्वाचन किया जाता है। सत्य / असत्य

5.राज्य सभा का कार्य कल ६ वर्ष है। सत्य / असत्य

6.राज्य सभा के सदस्यों का चुनाव जनता करती है। सत्य / असत्य

7.राज्य सभा में वर्तमान समय में 543 सदस्य है । सत्य / असत्य

7.8 सारांश

इस इकाई में हमने संसद के संगठन और कार्यों का अध्ययन किया है जिसमें हमने यह देखा है कि किस प्रकार से राष्ट्रपति संसद का अंग है और उसके पद में संसदीय शासन की प्रमुख विशेषता का समावेश किया गया है | क्योकि संसदीय शासन की मुख्य विशेषता ,व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का मिश्रित स्वरूप है| कार्य पालिका के सभी सदस्यों के लिए व्यवस्थापिका का सदस्य होना अनिवार्य होता है | और राष्ट्रपति के पद में ये दोनों विशेषताएँ पाई जाती है क्योकि एक तरफ वह कार्यपालिका का प्रमुख होता है तो दूसरी तरफ वह संसद का अंग होता है| कोई भी विधेयक तबतक कानून का रूप नहीं लेता है जब तक कि उसे राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति नहीं प्रदान कर देता है |

साथ ही हमने इस इकाई में यह भी अध्ययन किया है कि राज्य सभा प्रथम दृष्टया तो कानून निर्माण मेंसमानदिखाई देती है परन्तु संवैधानिक संशोधन विधेयक के अतिरिक्त सामान्य विधेयक और वित्तीय विधेयक के मामले में स्थिति गौण है क्योंकि राज्य सभा सामान्य विधेयक को अधिकतम 06 माह तक रोक सकती है और वित्त विधेयक को केवल 14 दिन तक रोक सकती है ,इसके पश्चात वह उसी रूप में पारित होगा जिस रूप में लोक सभा चाहेगी |राज्य सभा की आपत्तियाँ का उस विधेयक पर कोई निर्णायक प्रभाव नहीं छोड़ सकती हैं | फिर भी जल्दबाजी में कोई विधेयक न पारित हो ,उसके सभी पक्षों पर विचार हो सके इस दृष्टि से राज्य सभा अति महत्वपूर्ण सदन है | उस समय तो और भी जबकि लोक सभा में किसी दल या संगठन को बहुमत हो जबकि राज्य सभा में किसी दल या संगठन को |

7.9 शब्दावली

संसद -- राष्ट्रपति + राज्य सभा + लोक सभा

नाम मात्र की कार्यपालिका – संसदीय शासन प्रणाली में नाम मात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में अंतर पाया जाता है | नाम मात्र की कार्यपालिका वह होता है जिसमें संवैधानिक रूप से सभी शक्तियां निहित होती हैं परन्तु उन शक्तियों का वह स्वयं प्रयोग नहीं करता है ,वरन मंत्रिपरिषद करती है | भारत में नाम मात्र की कार्यपालिका राष्ट्रपति और ब्रिटेन में सम्राट होते हैं |

वास्तविक कार्यपालिका – यह वह कार्यपालिका जो नाम मात्र की कार्यपालिका को प्रदान की गई शक्तियों का प्रयोग उसके नाम से करती है | जैसे भारत और ब्रिटेन में मंत्रिपरिषद |

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. असत्य 6. असत्य 7. असत्य

7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया

भारतीय लोक प्रशासन - अवस्थी एवं अवस्थी

7.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - डी.डी. बसु

भारतीय लोक प्रशासन - एस.सी. सिंहल

7.13 निबंधात्मक प्रश्न -1.संसद के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिये ?

इकाई 8 : केन्द्रीय सचिवालय, मत्रिमण्डल सचिवालय, प्रधानमंत्री कार्यालय

इकाई की संरचना

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 केन्द्रीय सचिवालय
  8.3.1 केन्द्रीय सचिवालय के कार्य
8.4 कैबिनेट(मत्रिमण्डल) सचिवालय
  8.4.1 कैबिनेट (मत्रिमण्डल) सचिवालय के कार्य
8.5 प्रधानमंत्री कार्यालय
  8.5.1 प्रधानमंत्री कार्यालय के कार्य
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
8.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.11 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

भारतीय प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने हेतु कई मंत्रालयों एवं विभागों में विभाजित किया गया है जिनसे मिलकर केन्द्रीय सचिवालय का निर्माण होता है। मंत्रियों द्वारा सचिवालय से विचार-विमर्श करके नितियों का निर्माण किया जाता है।

मंत्रिमण्डल सचिवालय की स्थापना एक ऐसे प्रशासनिक संस्थान के रूप में की गई है जो मंत्रिमण्डल के कार्यो में सहयोग देने के लिए है। मंत्रिमण्डल सचिवालय देश के एक नीति निर्माण अभिकरण के रूप में स्थापित किया गया है।

भारत में संसदीय प्रणाली होने के कारण व्यावहारिक शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री करता है। सरकार के अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री को शासन कार्यो में कार्यालयीन सहायता करने के लिए 15 अगस्त, 1947 को प्रधानमंत्री कार्यालय की स्थापना की गई। इस कार्यालय का निर्माण उन कार्यो का सम्पादन करने के उद्देश्य से किया गया है जिन्हें 15 अगस्त 1947 से पूर्व गवर्नर जनरल के व्यक्तिगत सचिव द्वारा किया जाता था।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात

1 - हम केन्द्रीय सचिवालय के संगठन और कार्यो को जान सकेंगे।

2 - हम मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय के संगठन और कार्यो को जान सकेंगे।

3- हम प्रधानमन्त्री कार्यालय के संगठन और कार्यो को जान सकेंगे

8.3 केन्द्रीय सचिवालय

भारतीय प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने हेतु कई मंत्रालयों एवं विभागों में विभाजित किया गया है जिनसे मिलकर केन्द्रीय सचिवालय का निर्माण होता है। मंत्रियों द्वारा सचिवालय से विचार-विमर्श करके नितियों का निर्माण किया जाता है। नीतियों को क्रियान्वित करने के लिए संलग्न, अधीनस्थ तथा क्षेत्रीय कार्यालय होते है। इस प्रकार सचिवालय एक अवधारणा है जिसका अभिप्राय केन्द्र सरकार के स्तर पर गठित मंत्रालयों एवं विभागों के समुच्चय से है जिनका राजनीतिक अध्यक्ष मंत्री होता है एवं प्रशासनिक अध्यक्ष सचिव होता है।

केन्द्रीय सचिवालय की अवधारणा दो विचारधाराओं पर आधारित है-

1 राजनीतिक-प्रशासन द्वैतभाव की विचारधारा:- जिसके अन्तर्गत नीति निर्माण को नीति क्रियान्वयन से पृथक किया गया है। इसके अन्तर्गत सचिवालय की भूमिका को नीति निर्धारण से जोड़ा गया है एवं क्रियान्वयन हेतु क्षेत्रीय संस्थान का निर्माण किया गया है।

2 अवधि प्रणाली की विचारधारा:- केन्द्रीय सचिवालय केन्द्र सरकार के मुख्यालय की हैसियत से नीति निर्माण के लिए उत्तरदायी है परन्तु नीति के क्रियान्वयन के लिए केन्द्रीय सचिवालय के अन्तर्गत क्षेत्रीय संस्थान का निर्माण किया गया है। केन्द्र सरकार के स्तर पर क्षेत्रीय संस्थान मुख्य रूप से दो प्रकार के होते है-

1.संबंधित कार्यालय या संलग्न कार्यालय:- इसके दो मौलिक कार्य है। पहला, नीति निर्माण की प्रक्रिया में तकनीकी परामर्श प्रस्तुत करना एवं दूसरा नीति के क्रियान्वयन का परिवीक्षण करना।

2.अधीनस्थ कार्यालय:- यह केन्द्र सरकार की नीति के वास्तविक एवं क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी माना गया है।

इन दोनों के अतिरिक्त क्षेत्रीय संस्थान निम्नांकित प्रकार के भी हो सकते हैं, जैसे - विभागीय उपक्रम, लोक निगम सरकारी कंपनी आदि। ये तीनों मौलिक स्वरूप है। जिनके माध्यम से सरकार वाणिज्यिक एवं व्यावसायिक कार्यो का संचालन करती है।

केन्द्रीय सचिवालय का संगठन:- केन्द्रीय सचिवालय में अनेक मंत्रालय और विभाग है जिनकी संख्या घटती बढ़ती रहती है। इसके संगठन को निम्नांकित तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

पदाधिकारी		स्तर
मंत्री		मंत्रालय का राजनीतिक अध्यक्ष
सचिव		मंत्रालय का प्रशासनिक अध्यक्ष
विशेष या अतिरिक्त सचिव		----------
अधिकारी वर्ग	संयुक्त सचिव	उपविभाग का अध्यक्ष
	उपसचिव/निदेशक	प्रभाग का अध्यक्ष

अवर सचिव शाखा

अनुभाग अधिकारी अनुभाग

सहायक अनुभाग अधिकारी का सहायक

कार्यालय ग्रुप- ब कर्मचारी

ग्रुप- क कर्मचारी

इस प्रकार निदेशक तथा उपसचिव के पदों को समान स्तर का मानते हुए केन्द्रीय सचिवालय के ढांचे को सचिव से लेकर निम्न श्रेणी तक 9 ग्रेडों में रखा गया है। सचिवालय में अधिकारियों की ये श्रेणियाँ अधिदित सिद्धान्त पर आधारित हैं जिसके अन्तर्गत प्रत्येक श्रेणी के अधिकारी का यह कर्त्तव्य है कि वह जितना अधिक कार्य कर सके, उतना करे और केवल महत्वपूर्ण मामले ही उच्च स्तर पर पहुँचे।

अधिकारी वर्ग प्रायः भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्य होते हैं। इन अधिकारीयों की भर्ती केन्द्रीय सरकार के द्वारा विभिन्न राज्यों की भारतीय प्रशासनिक सेवा श्रेणियों में से कार्यकाल पद्धति के अन्तर्गत की जाती है। यह पद्धति 1905 से लार्ड कर्जन के समय शुरू हुई। इस वर्ग में भर्ती के दूसरे स्त्रोत केन्द्रीय सचिवालय सेवा का गठन 1951 में किया गया । केन्द्रीय सचिवालय सेवा के अधिकारीयों को मंत्रालयों एवं विभागों से इसलिए सम्बद्ध किया जाता है ताकि सचिवालयी कार्यो में निरन्तरता बनी रही। सन् 1957 से केन्द्रीय सचिवालय के उच्चस्थ अधिकारीयों की नियुक्ति हेतु केन्द्रीय स्टाफिंग योजना प्रारंभ की गई है।

8.3.1 केन्द्रीय सचिवालय के कार्य

सरकारी हैण्डबुक के अनुसार सचिवालय के प्रमुख कार्य निम्नांकित है-

1. नीति का निर्धारण तथा समय -समय पर आवश्यकतानुसार नीति के संशोधन में मंत्री की सहायता करना।

2. नियम, विधान तथा विनिमय बनाना।

3. क्षेत्रीय कार्यक्रम और योजना तैयार करना।

4. मंत्रालय या विभाग के कार्यो के सन्दर्भ में बजट तैयार करना और व्यय पर नियन्त्रण करना।

5. प्रारम्भ होने वाले कार्यक्रमों और योजनाओं की वित्तीय तथा प्रशासनिक अनुमति देना और उनमें आवश्यक संशोधन करना।

6. कार्यपालिका विभागों एवं अर्द्ध स्वायत्त क्षेत्रीय अभिकरणों द्वारा निर्मित नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का पर्यवेक्षण करना।

7. नीतियों की व्याख्या करना एवं उनमें समन्वय लाना।

8. मंत्रालय या विभाग में कार्यरत कर्मचारियों एवं संगठन की क्षमता बढ़ाने के लिए कदम उठाना।

9. मंत्री को उसके संसदीय उत्तरदायित्व को पूरा करने में सहायता देना।

इस प्रकार सचिवालय एक प्रशासनिक परामर्शदात्री निकाय है। वह एक ओर तो नीति निर्धारक, समन्वयकर्ता और नियंत्रक निकाय है तो दूसरी ओर सरकार का प्रमुख कार्यपालिका निकाय ही है।

सचिवालय कार्यप्रणाली की आलोचना:- भारत में सचिवालय प्रशासन की रीढ़ है फिर भी सचिवालय की कार्यप्रणाली की निम्नांकित आधारों पर आलोचना की जाती है -

1 अनावश्यक रूप से बढ़ता हुआ आकार।

2 सचिवालय के कर्मियो की संख्या में इतनी अधिक वृद्धि कि वह एक भीड़ भरा संगठन बन गया है।

3 अत्यन्त खर्चिला।

4 विलम्बकारी प्रकिया।

5 विलंब की समस्या से प्रजातंत्र के स्वरुप में भ्रष्टाचार का उदय।

6 सचिवालय यद्यपि नीति निर्माण करने वाली संस्था है तथापि आजकल यह कार्यकारी विभागों के कार्यो का संचालन अधिकाधिक मात्रा में करने लगा है, परिणामस्वरूप एक ओर तो सचिवालय अपना ध्यान नीति निर्माण के कार्य पर क्रेन्द्रित नहीं कर पाता और दूसरी ओर कार्यकारी इकाईयों की शक्ति में हरास होता जा रहा है।

7 वर्तमान समय में सचिवालय अपना क्षेत्राधिकार बढ़ाने की मनोवृत्ति से पीड़ित।

8 सचिवालय के कार्यकारी अपने आपको इकाईयों के कार्मिकों से अधिक योग्य मानने की प्रवृति से पीड़ित दिखाई देते हैं।

सचिवालय सुधार के लिये प्रयास एवं सुझाव:- भारत सरकार सचिवालय के दोषों को दूर करने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रही है। प्रशासनीक सुधार आयोग के सुझावों पर आवश्यकतानुसार अमल किया गया है, जैसे -

1. निर्णय प्रक्रिया में पदसोपानों की संख्या में कमी करने की दिशा में कदम उठाए गये है।

2. निम्न स्तर पर प्रशासनिक कुशलता लाने के लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाती है।

3. सचिवालय में अनावश्यक नियुक्तियों को तथा अनावश्यक व्ययों को हतोत्साहित किया जा रहा है।

4. कर्मचारियों की पदोन्नति के नये नियम लागू हो रहे हैं और यह समझा जाने लगा है कि वरिष्ठ पदों को भरने के लिए आयु को अनावश्यक महत्व न दिया जाए।

5. यह भी सुझाव दिया गया है कि एक मंत्रालय के साथ संलग्न सचिव को दोवर्ष के स्थान पर लगातार पांच वर्ष के लिए नियुक्त किया जाना चाहिए।

इस के अतिरिक्त सचिवालय की कार्य पद्धति को सरल एवं गतिमान बनाया गया है और लालफीताशाही को समाप्त करने पर जोर दिया जा रहा है। सचिवालय सुधार के लिए कुछ सुझाव निम्नांकित है-

1. सचिवालय की कार्य प्रणली को अधिक गति दने के लिए यह आवश्यक है कि सचिवालय केवल नीति निर्माण का ही कार्य करें।

2. सचिवालय के कार्यो में कुशलता लाने के लिए विभागाध्यक्ष, सचिव तथा मंत्री तीनों के मध्य की दूरीयाँ कम की जाए।

3. प्रशासनिक विभागों की अध्यक्षता हेतु विशेषज्ञ अधिकारियों को प्राथमिकता दी जाए।

अवधि प्रणाली:- अवधि प्रणाली की शुरूवात लार्ड कर्जन के द्वारा 1905 में की गई। इसके अर्न्तगत क्षेत्रीय संस्थान के स्तर पर कार्य करने वाले अधिकारियों को एक निर्धारित अवधि के लिए मुख्यालय के स्तर पर पद स्थापित किया जाता था। आजादी के उपरांत अवधि प्रणाली से राज्य सरकार के स्तर पर कार्य कर रहे अखिल भारतीय सेवा के अधिकारियों को एक निश्चित समय तक कन्द्रीय सचिवालय में पद स्थापित किया जाता है। अपने इस कार्यकाल को पूरा करने के उपरान्त उन्हें पुनः संबधित राज्य सरकार की सेवा में वापिस भेज दिया जाता है।

अवधि प्रणाली के पक्ष में तर्क (गुण)-

1. केन्द्र एवं राज्य के वीच अधिक प्रभावी प्रशासनिक समन्वय प्राप्त किया जा सकता है।

2. अवधि प्रणाली केन्द्र एवं राज्य सरकार दोनों के लिए फायदे मन्द है। केन्द्र सरकार अधिक वास्तविक तरीके से स्थानीय अनुभव के आधार पर नीति का निर्माण कर सकती है क्योंकि राज्य सरकार के स्तर कार्य करने वाले अधिकारियों के पास जिला प्रशासन का वास्तविक अनुभव होता है। राज्य सरकार इन अधिकारियों के माध्यम से अपनी प्रशासनिक गतिविधियों में व्यापक राष्ट्रीय दृष्टिकोण को प्राप्त कर सकती है।

3. भारतीय प्रशासन में समरूपता प्राप्त करने के दृिष्टकोण से अवधि प्रणाली का विशेष योगदान है।

4. अवधि प्रणाली देश की एकता एवं अखण्डता बनाये रखने में सहयोगी है।

5. अवधि प्रणाली की विचारधारा भारतीय संघवाद की विचारधारा से मेल रखती है।

6. अवधि प्रणाली अधिकारियों के बीच समानता के अवसर उपलब्ध कराती है।

7. राज्य सरकार के स्तर पर कार्य करने वाले अधिकारी अधिक राजनीतिक निष्पक्षता के साथ अपने कार्यो का संचालन कर सकते है अर्थात् लोक सेवा के स्वतंत्र एवं निष्पक्ष कार्यो के सन्दर्भ में अवधि प्रणाली की भूमिका महत्वपूर्ण है।

8. अवधि प्रणाली के माध्यम से केन्द्र सरकार अपनी नीतियों पर जनता की सामान्य प्रतिक्रया को प्राप्त कर सकती है।

अवधि प्रणाली के विपक्ष में तर्क -

1. जब राज्य प्रशासन के अधिकारी केन्द्रीय सचिवालय के अन्तर्गत किसी पद को ग्रहण करते हैं तो ऐसी परिस्थिति में संबंधित मंत्रालय की कार्यपद्धति से परिचित न होने के कारण उस अधिकारी की निर्भरता कार्यालय पर बनी रहती है। अतः जिस अवधि प्रणाली के माध्यम से अधिकारियों की कार्यकुशलता को अधिक करने का प्रयास किया गया है उससे वैसा हो पाना संभव नहीं हो रहा है।

2. केन्द्र सरकार के स्तर पर कुछ एसी गतिविधियाँ संचालित की जाती है जिनमें जिला प्रशासन का स्थानीय अनुभव अनिर्वाय नहीं है। अतः ऐसे क्षेत्रों में अवधि प्रणाली की उपयोगिता काफी सीमित हो जाती है।

3. कई परिस्थितियों में ऐसा भी देखने को मिलता है कि राज्य प्रशासन के अधिकारी जब अवधि प्रणाली के अर्न्तगत केन्द्र सरकार के स्तर पर सेवा प्रदान करने जाते है तो इसके उपरांत पुनः राज्य प्रशासन की सेवा में वापिस जाने में दिलचस्पी नही रखते। अतः अवधि प्रणाली के माध्यम से जो लाभ राज्य प्रशासन को होना चाहिए वह संभव नही हो पाता।

4. केन्द्रीय सचिवालय सेवा को स्थापित करने के उपरांत अनुभाग अधिकारी पदोन्नति के माध्यम से उच्चतर अधिकारी वर्ग में शामिल किये जाते है। ऐसा होने के कारण अवधि प्रणाली के अन्तर्गत राज्य प्रशासन के अधिकारियों को सीमित अवसर प्राप्त होते है।

5. अवधि प्रणाली के अंतर्गत केन्द्रीय सचिवालय के स्तर पर आने वाले अधिकारियों की संख्या में अनिश्चितता बनी रहती है।

6. सचिवालय सेवा के अधिकारियों के पदोन्नति के अवसर कम, मनोबल प्रभावित, समन्वय की समस्या

8.4 मंत्रिमण्डल सचिवालय

मंत्रिमण्डल सचिवालय की स्थापना एक ऐसे प्रशासनिक संस्थान के रूप में की गई है जो मंत्रिमण्डल के कार्यो में सहयोग देने के लिए है। मंत्रिमण्डल सचिवालय देश के एक नीति निर्माण अभिकरण के रूप में स्थापित किया गया है। भारतीय शासन प्रणाली के अन्तर्गत मंत्रिमण्डल प्रमुख नीति निर्माणकर्ता अभिकरण है। अतः मंत्रिमण्डल सचिवालय के द्वारा सरकार की नीतियों का अंतिम निर्धारण किया जाता है।

मंत्रिमण्डल प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में अपने कार्यो को सम्पन्न करता है। प्रधानमंत्री मंत्रिमण्डल के अध्यक्ष के रूप में मंत्रिमण्डल सचिवालय से परामर्श एवं सहयोग प्राप्त करता है जिसकी अध्यक्षता मंत्रिमण्डल सचिव के द्वारा की जाती है। मंत्रिमण्डल सचिव पूरे देश का सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी है। विभिन्न मंत्रालयों के बीच समन्वय को प्राप्त करने के लिए मंत्रिमण्डल सचिवालय को उत्तरदायी माना गया है।

जब प्रधानमंत्री सरकार के अध्यक्ष के रूप में अपने कार्यो का निष्पादन करते हैं तो दैनिक प्रशासनिक सहयोग प्रधानमंत्री कार्यालय के द्वारा प्रदान किया जाता है। ऐसी स्थिति में मंत्रिमण्डल सचिवालय एवं प्रधानमंत्री कार्यालय के बीच आजादी के उपरान्त ही समय समय पर विवादस्पद मुद्दे उठते रहे है। संसदीय प्रणालीकी विचारधारा के अनुसार भारतीय शासन में मंत्रिमण्डलीय सचिवालय की भूमिका निर्णायक होनी चाहिए, परन्तु प्रधानमंत्री के बदलते हुए व्यक्तित्व के संदर्भ में मंत्रिमण्डल सचिवालय की निर्णायक भूमिका प्रधानमंत्री कार्यालय में देखने को मिलती है।

संगठन:- मंत्रिमण्डल सचिवालय सीधे प्रधानमंत्री के अधीन कार्य करता है। इसका सचिव कैबिनेट, सचिव होता है जो कि प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठ अधिकारी होता है। उसकी सहायता के लिए अन्य अधिकारी एवं कर्मचारी नियुक्त किये जाते है।

8.4.1 कैबिनेट सचिवालय के कार्य

कैबिनेट सचिवालय केन्द्रीय प्रशासन का केन्द्र-बिन्दु है। भारत में कैबिनेट की कार्यकुशलता तथा प्रशासन की सुव्यवस्था बहुत हद तक मंत्रिमण्डल सचिवालय की क्षमता पर निर्भर करती है। मंत्रिमण्डल सचिवालय के कार्यो का विवरण निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत दिया जा सकता है-

1. कैबिनेट सचिवालय के रूप में

केन्द्रीय मंत्रिमण्डल तथा उसकी समितियों को दैनिक कार्य से संबंधित सचिवालय सहायता प्रदान कराना।

कैबिनेट की बैठकों की कार्यसूची तैयार करना, वाद-विवाद तथा निर्णयों का अभिलेख रखना।

केन्द्रीय मंत्रिमण्डल, उसकी समितियों, राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति कोविभिन्नसरकारी संस्थाओं से संबंधित आवश्यक सूचनायें उपलब्ध कराना।

मंत्रिमण्डल की बैठकों के निर्णयों की सूचना संबंधित विभागों को पहुँचाना।

2. प्रारम्भकर्ता के रूप में:- इस रूप में कैबिनेट सचिवालय तीन प्रकार के प्रारम्भिक कार्य करता है-

मंत्रिपरिषद के मंत्रियों की नियुक्तियाँ, उनके बीच विभागों के वितरण, शपथ ग्रहण, त्यागपत्र आदि से संबंधित समस्त कार्य।

ऐसे कानूनों का निर्माण करना जो सरकार के कार्यो को सुविधापूर्वक सम्पन्न करने में सहायता करते हों।

सरकार की नितियों को लागू करने तथा उनमें समन्वय लाने से सम्बन्धित विभागों की देखरेख रखना।

3. समन्वयकर्ता विभाग के रूप में:- केन्द्रीय प्रशासनिक स्तर पर कैबिनेट सचिवालय एक प्रमुख समन्वय संस्था है। इस रूप में यह निम्नांकित कार्य करता है-

भारत सरकार में कार्यरत विभिन्न मंत्रालयों, विभागों, समितियों आदि के बीच समन्वय स्थापित करना।

सरकार की प्रमुख नीतियों और गतिविधियों में समन्वय।

केन्द्र सरकार एवं विभिन्न राज्य सरकारों के बीच समन्वय।

कैबिनेट सचिव विभिन्न समितियों का अध्यक्ष होने के नाते विभिन्न विभागों में समन्वय स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

4. मंत्रिमण्डल के निर्णयों को क्रियान्वित करने के रूप में-

प्रधानमंत्री तथा मंत्रियों को समय-समय पर महत्वपूर्ण विषयों से सम्बंधित नीतियों के निरूपण एवं निष्पादन के विषय में परामर्श देना।

मंत्रिमण्डल के समक्ष प्रस्तुत सभी विषयों के सम्बन्ध में मंत्रिमण्डल की सहायता और कार्यवाही करना जैसे -संसद में व्यवस्थापन के लिए प्रस्तुत किये जाने वाले प्रस्ताव तैयार करना, सार्वजनिक जांच समितियों की नियुक्ति, संसद के अधिवेशन प्रारम्भ करने, समाप्त करने आदि पर विचार, विदेशों के साथ सन्धियां एवं समझौते इत्यादि।

कैबिनेट सचिवालय का एक महत्वपूर्ण कार्य यह देखना भी है कि मंत्रिमण्डल या उसकी समितियों द्वारा लिये गये निर्णय लागू हो रहे है या नहीं। इस कार्य हेतु यह सचिवालय मासिक प्रतिवेदन तैयार करता है।

इस प्रकार प्रशासनिक व्यवस्था में मंत्रिमण्डल सचिवालय का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि प्रधानमंत्री कार्यालय की स्थापना के बाद इसके महत्व में धीरे-धीरे कुछ कमी अवश्य देखी जा सकती है। फिर भी मंत्रिमंडल सचिवालय, मंत्रिमण्डल के सचिवालय सम्बन्धी कार्यों के लिए स्टाफ भुजा के समान है। अतः उसे सरकारी कायों का सम्पादन करने हेतु एक सरकारी विभाग मात्र नहीं मान लेना चाहिए।

मंत्रिमण्डल सचिव –

कैबिनेट सचिवालय का प्रमुख कैबिनेट सचिव होता है जो प्रधानमंत्री के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में रहता है। कैबिनेट सचिव द्वारा मंत्रिमण्डल सचिवालय की एवं सचिवों के सम्मलेन की अध्यक्षता की जाती है। कैबिनेट सचिव भारतीय प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठतम सदस्य होता है। इसे भारतीय प्रशासन का सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न एवं प्रतिष्ठित पद माना जाता है।

प्रशासनिक सुधार आयोग के प्रतिवेदन के अनुसार-

1. योग्यतम एवं वरिष्ठतम अधिकारियों को ही कैबिनेट सचिव बनाया जाता है।

2. इस पद को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक है कि इसकी अवधि 3 या 4 वर्ष की हो।

3. कैबिनेट सचिव को अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा के वेतन का अधिकतम वेतनमान का अधिकतम वेतन दिया जाये।

4. आयोग के अनुसार महत्वपूर्ण नीति निर्धारक विषयों में उसे अधिक महत्व दिया जाना चाहिए, क्योकि वह प्रधानमंत्री, मंत्रिमण्डल तथा मंत्रिमण्डलीय समितियों का प्रमुख सलाहकार होता है ।

देशमुख टीम के अनुसार इस पद को अन्य सचिवों की तुलना में अधिक वेतनमान दिया जाए। यह टीम इस पद के क्रियान्वयन के तरीके से संतुष्ट नहीं थी और उसने इस पद की गरिमा एवं भूमिका में सुधार के लिए अनेक सिफारिशें की, जैसे -

1 दो या अधिक मंत्रालयों के बीच मतभेद की स्थिति में उन मामलों को कैबिनेट सचिव के पास भेजा जाना चाहिए।

2 कौन सा मामला किस मंत्रालय से संम्बंधित है इसका निराकरण कैबिनेट सचिव पर छोड़ देना चाहिए। साथ ही कैबिनेट सचिव को समय-समय पर अन्य सचिवों से सम्पर्क स्थापित करते रहना चाहिए।

मंत्रिमण्डल सचिवालय एवं मंत्रिमण्डल सचिव की स्थिति पर प्रतिकुल प्रभाव डालने वाले कारण -

1. मंत्रीमण्डलीय सचिव को प्रधानमंत्री का अपेक्षित संरक्षण न मिलना।

2. मंत्रियो और सचिवालय के उच्चस्थ अधिकारियों में पारस्परिक हितों के लिए गठजोड़, जिसका प्रभाव मंत्रिमण्डलीय सचिव के समन्वय सम्बधि कार्यो पर।

3. कार्मिक प्रशासन मंत्रालय का प्रधानमंत्री के नियंत्रण में रखा जाना और कई महत्वपूर्ण विषयों के सन्दर्भ में इस मंत्रालय का हस्तक्षेप तथा मंत्रिमण्डल सचिव की उपेक्षा।

4. प्रधानमंत्री कार्यालय की स्थापना के पश्चात कई बार प्रधानमंत्री की मंत्रिमण्डलीय सचिवालय के बजाय प्रधानमंत्री कार्यालय पर अधिक निर्भरता।

5. कई अवसरों पर मंत्रिमण्डलीय सचिवों की नियुक्ति, सेवा विस्तार कार्य आदि के सम्बन्ध में राजनीतिक हस्तक्षेप।

मंत्रिमंण्डल सचिव की कार्यात्मकता को सुदृढ़ करने हेतु कुछ सुझाव:- मंत्रिमण्डल सचिवालय एक प्रभावकारी समन्वयकर्ता निकाय है किन्तु यह प्रभावशाली समन्वय में उतना सक्षम नही हो पाता है। इसके पुनर्गठन और क्षमता के विकास के लिए निम्नांकित सुझाव दिये जा सकते हैं-

1. प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार सांख्यिकी विभाग को वित्तीय विभाग में मिला देना चहिए तथा सैन्य शाखा को रक्षा मंत्रालय को सौप देना चाहिए। ऐसा करने से इस सचिवालय के पास अधिकांशतः मंत्रिमण्डल मामलों से सम्बंधित विभाग ही बचे रहेगें।

2. कैबिनेट सचिव के पद का कार्यकाल तीन या चार साल किया जाना चाहिए।

3. मंत्रिमण्डल सचिव की नियुक्ति के पहले विभिन्न पदों पर प्राप्त प्रशासनिक अनुभव जैसे किसी राज्य में मुख्य सचिव की भूमिका, आदि पर ध्यान देना चाहिए।

4. मंत्रिमण्डल सचिव की नियुक्ति के लिए वरिष्ठता के साथ-साथ योग्यता, प्रभावशीलता, कर्त्तव्य- निष्ठा इत्यादि को ध्यान में रखा जाना चहिए।

5. मंत्रिमण्डल सचिव की नियुक्ति, सेवा-विस्तार आदि के सन्दर्भ में राजनैतिक कारकों को कम से कम किया जाना चाहिए।

6. प्रधानमंत्री कार्यालय और मंत्रिमण्डल सचिवालय के कार्य क्षेत्र को और अधिक स्पष्ट किया जाना चाहिए।

7. मंत्रिमण्डलीय सचिवालय एवं सचिव को प्रधानमंत्री का उपयुक्त संरक्षण प्राप्त होना चाहिए।

8.5 प्रधानमंत्री कार्यालय

भारत में संसदीय प्रणाली होने के कारण व्यावहारिक शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री करता है। सरकार के अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री को शासन कार्यो में कार्यालयीन सहायता करने के लिए 15 अगस्त, 1947 को प्रधानमंत्री कार्यालय की स्थापना की गई। इस कार्यालय का निर्माण उन कार्यो का सम्पादन करने के उद्देश्य से किया गया है जिन्हें 15 अगस्त 1947 से पूर्व गवर्नर जनरल के व्यक्तिगत सचिव द्वारा किया जाता था। ज्ञातव्य है कि प्रधानमंत्री ने इसी तिथि से वह सभी कार्य अपने हाथों में लिए, जो इसके पहले गवर्नर जनरल सरकार की कार्यपालिका के प्रमुख के रूप में किया करता था।

स्वतंत्रता के पश्चात विकास:- आजादी के उपरान्त पंडित नेहरू भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बने । नेहरू संसदीय प्रजातान्त्रिक विचारधारा का आदर करते थे एवं मंत्रिमंडल के सामूहिक निर्णय पर विश्वास करते थे। अतः प्रधानमंत्री कार्यालय का सम्बन्ध सीमित दैनिक प्रशासनिक कार्यो से था जो कि प्रधानमंत्री को सरकार के अध्यक्ष के रूप में चाहिए था। अतः इस समय महत्व की दृष्टि से प्रधानमंत्री कार्यालय, कैबिनेट सचिवालय के बाद आता था और प्रधानमंत्री कार्यालय को निर्णयकारी भूमिका प्राप्त नहीं थी ।

जब लालबहादुर शास्त्री प्रधानमंत्री बने, तब उनके पास प्रशासनिक दक्षता नही थी। अतः शास्त्री ने कार्यालय की भूमिका को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस समय प्रधानमंत्री कार्यालय की भूमिका देश के उच्चतर नीति निर्णायक अभिकरण के रूप में स्थापित हुई और शास्त्री के कार्यालय में एल. के. झा. जैसे प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले प्रशासनिक अधिकारी को प्रधानमंत्री कार्यालय का सचिव नियुक्त किया गया। झा काफी प्रभावशाली हो गये और उन्हें 'सुपर सचिव' की संज्ञा दी जाने लगी। शास्त्री के समय यह अत्यन्त शक्तिशाली होकर उभरा और प्रधानमंत्री कार्यालय का नामकरण प्रधानमंत्री सचिवालय कर दिया गया।

इन्दिरा गांधी द्वारा प्रधानमंत्री का पद ग्रहण करते समय उनके पास भी प्रशासनिक अनुभव तथा ज्ञान नहीं था अतः स्वाभाविक रूप से उनकी निर्भरता प्रधानमंत्री सचिवालय पर अधिक थी। देश की आर्थिक नीति एवं विदेश नीति जैसी जटिल विषय वस्तु पर इन्दिरा गांधी काफी हद तक प्रधानमंत्री सचिवालय पर निर्भर करती थी। ऐसी दशा में इन्दिरा गांधी के प्रधानमंत्रित्व काल में शास्त्री द्वारा शुरू की गई परम्परा को और अधिक प्रोत्साहन मिला और इस समय प्रधानमंत्री सचिवालय के आकार एवं भूमिका दोनों में वृद्धि हुई, विशेष कर राष्ट्रीय आपातकाल के समय प्रधानमंत्री सचिवालय एक वास्तविक प्रशासनिक सत्ता के एक अतिरिक्त संवैधानिक केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। प्रधानमंत्री सचिवालय एक निर्णायक अभिकरण के रूप में स्थापित हुआ एवं मंत्रिमण्डल सचिवालय एक ऐसा अभिकरण बन गया, जिसका कार्य प्रधानमंत्री सचिवालय के निर्णयों को लागू करना था।

जनता सरकार के समय प्रधानमंत्री सचिवालय का नामकरण पुनः प्रधानमंत्री कार्यालय के रूप में किया गया। इसकी भूमिका सत्ता एवं आकार दोनों की दृष्टि से सीमित करते हुए मंत्रिमण्डल सचिवालय को एक उचित नीति निर्णायक अभिकरण माना गया तथा प्रधानमंत्री कार्यालय की राष्ट्रीय मामलों में नीति निर्धारण की कोई भूमिका नही रही। यहां तक रॉ संगठन को भी इससे हटा दिया गया। कैबिनेट सचिवालय का कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार विभाग जो लोक सेवाओं पर नियंत्रण रखता है, पहले के समान गृह मंत्रालय को और राजस्व जांच विभाग वित्त मंत्रालय को लौटा दिया गया।

1980 में इन्दिरा गांधी पुनः प्रधानमंत्री बनी और उनके द्वारा जनता सरकार के समय किये गये अनेक कार्यो में परिर्वतन किये गये। साथ ही प्रधानमंत्री कार्यालय की भूमिका में बढ़ोत्तरी भी हुई, लेकिन प्रधानमंत्री कार्यालय वह स्थान प्राप्त न कर सका जो उसे पहले प्राप्त था।

1984 में राजीव गांधी के प्रधानमंत्री बनने के उपरान्त प्रधानमंत्री कार्यालय के प्रमुख प्रशासनिक विषयवस्तुओं पर परामर्शदाताओं की नियुक्ति की गई, जिससे भारतीय प्रशासनिक तंत्र में प्रधानमंत्री कार्यालय का प्रभाव अधिक हुआ। राजीव गांधी के पास भी प्रशासनिक दक्षता की कमी होने के कारण प्रधानमंत्री कार्यालय पर उनकी निर्भरता बनी रही। अतः इस समय मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनो दृष्टियों से विस्तार हुआ और वह अपनी खोई शक्ति एवं प्रतिष्ठा को प्राप्त करने में सफल हुआ।

नरसिंहाराव के प्रधानमंत्रित्व काल में विशेषकर अंतिम वर्षो में प्रधानमंत्री कार्यालय की भूमिका पुनः अपनी चरम सीमा पर पहुंच गई। नरसिंहाराव के द्वारा एक अल्पमत सरकार का नेतृत्व किया गया। अतः प्रधानमंत्री कार्यालय पर उनकी निर्भरता का अत्यधिक होना स्वाभाविक था।

इण्डिया टुडे के अनुसार वाजपेयी के नेतृत्व में प्रधानमंत्री कार्यालय केवल सजावटी चीज बन कर रह गया है। वैसे सर्वशक्तिमान प्रधानमंत्री कार्यालय को निष्प्रभाव करने का फैसला खुद वाजपेयी ने किया था। वाजपेयी के मित्रों का मानना है कि प्रधानमंत्री ने निगरानी और सुधार तंत्र को प्रभावी तरीके से विकसित किए बगैर अपने मंत्रियों को आजादी देकर गलती की। इससे जहां नियमों की चकाचौंध और उनका असर खत्म हो गया, वही वाजपेयी की निजी छवि को चोट पहुची। प्रधानमंत्री और उनके प्रमुख सचिव की रूचि अधिकतर रक्षा और विदेशी मामलों में होने से मौजूदा प्रधानमंत्री कार्यालय पहले के मुकाबले अन्य मामलों में बहुत कम हस्तक्षेप करता है। इसकी वजह आर्थिक मामले है जहां वाजपेयी कमजोर पड़ जाते है लेकिन धीरे-धीरे प्रधानमंत्री की सरकार पर पकड़ मजबूत होने के साथ ही प्रधानमंत्री कार्यालय की एवं प्रधानमंत्री के प्रधान सचिव ब्रजेश मिश्र की भूमिका में वृद्धि हुई। रक्षा, विदेश के अतिरिक्त अन्य कई मामलों में प्रधानमंत्री का हस्तक्षेप देखा गया एवं प्रधानमंत्री कार्यालय तथा प्रधान सचिव गतिविधियों में प्रत्यक्ष रूप से भूमिका निभाते नजर आये।

संयुक्त सरकार की विचारधारा के अन्तर्गत प्रधानमंत्री एक राजनैतिक असुरक्षा की भवना में कार्य करते हैं ऐसी स्थिति में प्रधानमंत्री कार्यालय पर उनकी निर्भरता स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त संयुक्त सरकार में कई अन्य राजनैतिक दलों के सदस्यों को मिलाकर मंत्रिपरिषद का निर्माण किया जाता है। अतः प्रधानमंत्री विश्वसनीय परामर्शो के लिए प्रधानमंत्री कार्यालय पर ज्यादा निर्भर होते है लेकिन संयुक्त सरकार में प्रधानमंत्री संतुलन एवं अवरोध के नियम के अर्न्तगत अपने कार्यो का संचालन करते है। ऐसी अवस्था में प्रधानमंत्री की तुलना में मंत्रिमण्डल का विशेष महत्व होता है। अतः मंत्रिमण्डल सचिवालय की भूमिका का विशेष महत्व होना स्वभाविक है।

संयुक्त सरकार के सन्दर्भ में प्रधानमंत्री कार्यालय गोपनीय विचार हेतु प्रधानमंत्री के लिए एक आरक्षित एवं सुरक्षित स्थान नही माना जाता है। अतः सत्ता का हस्तांतरण प्रधानमंत्री कार्यालय के निवास की ओर देखने को मिल रहा है।

आज भारतीय प्रशासन में प्रधानमंत्री कार्यालय का न केवल महत्व बढ़ा है बल्कि उसकी अहम भूमिका है। आज यह असाधारण रूप से शक्तिशाली संगठन है जिससे अनेक विशेषज्ञ सम्बद्ध है। प्रधानमंत्री कार्यालय जो केन्द्रीय सचिवालय संगठनों में सबसे छोटा है मंत्रिमण्डल सचिवालय से भी बड़ा हो गया है। वस्तुतः प्रधानमंत्री कार्यालय के सचिव की भूमिका मित्र, मार्गदर्शक और परामर्शदाता जैसी हो, तो वह अधिक उपयोगी होगा।

संगठन:- प्रधानमंत्री कार्यालय का शीर्षस्थ अधिकारी प्रधान सचिव कहलाता है अनुबंध के आधार पर नियुक्त किया जाता है। प्रधानमंत्री अपनी पसन्द के किसी भी व्यक्ति को इस पद पर नियुक्त कर सकते हैं और यह पद कार्याकाल पद्धति से मुक्त है। उपसचिव और उसे उपर के पदों पर नियुक्ति मंत्रिमण्डल की नियुक्ति समिति की स्वीकृति से होती है। अवर सचिव और नीचे के पद गृह मंत्रालय द्वारा भरे जाते है।

8.5.1 प्रधानमंत्री कार्यालय के कार्य:-

साधारणतः प्रधानमंत्री कार्यालय के क्षेत्राधिकार में वह सभी विषय आते हैं जो कि व्यक्तिगत विभाग या मंत्रालय को नही सौंपे गये है। प्रधानमंत्री कार्यालय की निम्नांकित भूमिकाएं है-

1. प्रधानमंत्री को सरकार के अध्यक्ष के रूप में या मुख्य कार्यापालिका के रूप में कार्य करते समय प्रधानमंत्री कार्यालय, प्रधानमंत्री को सहयोग देता है।

2. यदि कोई प्रशासनिक विषयवस्तु किसी मंत्री को न सौंपी गई हो, तो उस विषयवस्तु का कार्यभार प्रधानमंत्री पर होता है एवं उन विषयवस्तुओं पर प्रधानमंत्री कार्यालय, प्रधानमंत्री को सहयोग देता है।

३ . इस कार्यालय के माध्यम से प्रधानमंत्री अन्य केन्द्रीय मंत्रियों, राष्ट्रपति,राज्यपालों, मुख्यमंत्रियों, राजदूतों आदि से सम्पर्क सूत्र स्थापित करता है।

४ . यदि जनता की कोई शिकायत प्रधानमंत्री के पास भेजी जाए, तो प्रधानमंत्री कार्यालय उन शिकायतों का निराकरण सुनिश्चित करता है।

५ . प्रधानमंत्री कार्यालय में ससंद में सामान्य विषयों पर पूछे गये प्रश्नों का उत्तर किया जाता है जिन्हें किसी मंत्रालय को नही सौपा गया है।

६ . प्रधानमंत्री के आवश्यक रिकार्ड रखना, उनके अतिथियों के स्वागत सत्कार की व्यवस्था करना तथा प्रधानमंत्री द्वारा मांगी गई सूचना प्रदान करना प्रधानमंत्री कार्यालय के उत्तरदायित्व है।

७ . प्रधानमंत्री के आदेश एवं संदेश को मंत्रिमण्डलीय सचिवालय को सूचित करना भी प्रधानमंत्री कार्यालय का कार्य है। आजकल यह प्रधानमंत्री के महत्वपूर्ण भाषण तैयार करने, राज्यों की प्रशासनिक व्यवस्था की देखरेख करने तथा प्रधानमंत्री के विदेश यात्रा के कार्यक्रम बनाने का भी कार्य करने लगा है।

इसके अतिरिक्त भूकंप, बाढ़, सूखा आदि संकटों के समय या अन्य अवसरों पर प्रधानमंत्री कोष से राज्यों या व्यक्तियों को जो आर्थिक सहायता पहुचाई जाती है उसका लेखा-जोखा भी प्रधानमंत्री कार्यालय रखता है।

अभ्यास प्रश्न

1.केन्द्रीय सचिवालय सेवा का गठन 1951 में किया गया ।सत्य/असत्य

2.भारतीय प्रशासनिक सेवा श्रेणियों में कार्यकाल पद्धति ,1905 से लार्ड कर्जन के समय शुरू हुई । सत्य/असत्य

3.राजीव गांधी किस सन में प्रधानमंत्री नियुक्त किये गए थे । सत्य/असत्य

8.6 सारांश

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि, सचिवालय एक प्रशासनिक परामर्शदात्री निकाय है। वह एक ओर तो नीति निर्धारक, समन्वयकर्ता और नियंत्रक निकाय है तो दूसरी ओर सरकार का प्रमुख कार्यपालिका निकाय है ।

इसके साथ ही प्रशासनिक व्यवस्था में मंत्रिमण्डल सचिवालय का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि प्रधानमंत्री कार्यालय की स्थापना के बाद इसके महत्व में धीरे-धीरे कुछ कमी अवश्य देखी जा सकती है। फिर भी मंत्रिमंडल सचिवालय, मंत्रिमण्डल के सचिवालय सम्बन्धी कार्यो के लिए स्टाफ भुजा के समान है। अतः उसे सरकारी कायों का सम्पादन करने हेतु एक सरकारी विभाग मात्र नहीं मान लेना चाहिए।

आज भारतीय प्रशासन में प्रधानमंत्री कार्यालय का न केवल महत्व बढ़ा है बल्कि उसकी अहम भूमिका है। आज यह असाधारण रूप से शक्तिशाली संगठन है जिससे अनेक विशेषज्ञ सम्बद्ध है। प्रधानमंत्री कार्यालय जो केन्द्रीय

सचिवालय संगठनों में सबसे छोटा है मंत्रिमण्डल सचिवालय से भी बड़ा हो गया है। वस्तुतः प्रधानमंत्री कार्यालय के सचिव की भूमिका मित्र, मार्गदर्शक और परामर्शदाता जैसी हो, तो वह अधिक उपयोगी होगा। लेकिन यदि प्रधानमंत्री कार्यालय समानांतर सरकार का प्रतिरूप ग्रहण करने का प्रयास करता है तो उसके प्रशासनिक दृष्टि से लाभकारी परिणाम नहीं होगें।

8.7 शव्दावली

सचिवालय:- सरकार को नीति निर्माण में सहयोग करने वाला निकाय है। नीति निर्माण के उपरान्त, उसके क्रियान्वयन के संबंध में प्रमुख कार्यपालिका निकाय है।

प्रधानमंत्री कार्यालय:- प्रधानमंत्री को उनके कार्यो के सम्पादन में (कार्यपालिका प्रमुख के रूप में) सहयोग करने वाला निकाय है।

मंत्रिमंडलीय सचिवालय:- भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों, विभागों, समितियों के बीच समन्वय स्थापित करने वाला निकाय है।

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य

8.9 संदर्भ ग्रंथ सूची -

भारतीय शासन एवं राजनीति - डॉ रूपा मंगलानी

भारतीय सरकार एवं राजनीति - त्रिवेदी एवं राय

भारतीय शासन एवं राजनीति - महेन्द्रप्रतापसिंह

8.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया

8.11 निबंधात्मक प्रश्न

1- केन्द्रीय सचिवालय के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिए।

2- मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिए।

3- प्रधानमन्त्री कार्यालय के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिए।

इकाई 9 - राजनीति और प्रशासन में सम्बन्ध

इकाई की संरचना

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 राजनीति का अर्थ एवं महत्व
9.4 राजनीति की चिरसम्मतधारणा
9.5 राजनीतिक स्थिति की विशेषताएँ
9.6 प्रशासन
9.7 राजनीति एवं प्रशासन में सम्बन्ध
9.8 सारांश
9.9 शब्दावली
9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.11 संदर्भ ग्रन्थ
9.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.13 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

राजनीतक चिंतक आज के युग में राजनीति को मनुष्य की एक विशेष गतिविधि मानता है। मनुष्यों की यह गतिविधि समाज के विभिन्न समूहों के माध्यम से व्यक्त होती है। इसके क्षेत्र में वही सत्ता आती है जिसका प्रयोग या तो शासन स्वयं करता है अथवा जिसका प्रयोग शासन को प्रभावित करने के लिए होता है।

वर्तमान में शासन को प्रभावित करने के लिए जन लोकपाल एवं भ्रष्टाचार पर राजनीति विशेष रूप से हो रही है। प्रशासन का अर्थ कार्यों को प्रबन्ध करने से है। यद्यपि राजनीति एवं प्रशासन के सम्बन्ध को इस अध्याय में विस्तृत चर्चा की गई है।

प्रशासन एवं राजनीति एक दूसरे के पूरक है। दोनों में ही सत्ता एवं शक्ति का प्रयोग होता है। पूर्व में दोनों में काफी अन्तर एवं भेद की चर्चा होती थी परन्तु वर्तमान में यह भेद लगभग समाप्त हो चुका है और दोनों ही एक दूसरे के अंगीकार बन गये हैं।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत हम

1.राजनीति का अर्थ एवं महत्व को जान सकेंगे|
2.राजनीति की चिरसम्मतधारणा को जान सकेंगे।
3.राजनीतिक स्थिति की विशेषताओं के सम्बन्ध में जान सकेंगे।
4.राजनीति एवं प्रशासन में सम्बन्ध में जान सकेंगे।

9.3 राजनीति का अर्थ एवं महत्व

राजनीति शब्द का व्यवहार सामाजिक समूह के लिए किया जाता है जो क्लबों और परिवार जैसे छोटे मानव समूहों से लेकर संयुक्त राष्ट्र संघ तक व्याप्त है। मानव समाज में यूनानी दार्शनिक प्लेटो से लेकर अब तक के जितने चिंतक आदर्श लोक की कल्पना करते रहे हैं वे सभी अंत में समाज के राजनीतिक पुनर्गठन की बात किसी न किसी रूप में करते हैं। सामाजिक सहयोग, संघर्ष और प्रतिस्पर्धा नामक गतिविधियों को राजनीति कहते हैं।

अरस्तू ने कहा है कि मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है। इसका अर्थ है कि मनुष्य किसी न किसी राज्य ;पोलिस के अन्तर्गत रहता है, अर्थात् एक सामूहिक सत्ता के माध्यम से अपने जीवन को व्यवस्थित करता है ताकि एक नैतिक प्राणी के नाते वह सदजीवन और आत्म सिद्धि प्राप्त कर सके। अतः अरस्तू की दृष्टि में राजनीति मनुष्य के सम्पूर्ण अस्तित्व को समेट लेती है। मनुष्यों की गतिविधियॉ समाज के विभिन्न समूहों के माध्यम से व्यक्त होती है, जैसे राजनीतिक दलों के द्वारा। राष्ट्रों में यह गतिविधि शांति के समय राजनय के रूप मे व्यक्त होती है और अशांति के समय युद्ध के रूप में। परन्तु युद्ध राजनीति का उपयुक्त तरीका नहीं है | युद्ध का सहारा तब लिया जाता है जब राजनीति विफल हो जाती है। युद्ध के नियमों का पालन राजनीति का विषय अवश्य है। निष्कर्ष में राजनीतिक गतिविधि शक्ति के संघर्ष के रूप में व्यक्त होती है, यह संघर्ष अनेक राष्ट्रों के बीच हो सकता है, एवं एक ही राष्ट्र के भीतर विभिन्न समूहों के बीच भी चल सकता है। दूसरों के साथ प्रतिस्पर्धा की स्थिति में, समाज के दुर्लभ संसाधनों पर अपना प्रभुत्व और नियंत्रण स्थापित करने के प्रयास को राजनीति की संज्ञा दी जाती है। राजनीति के क्षेत्र में सत्ता वह कहलाती है जिसका प्रयोग या तो शासन स्वयं करता है, या जिसका प्रयोग शासन को प्रभावित करने के लिए होता है अरस्तू द्वारा रचित प्रसिद्ध कृति पालिटिक्स में इस तर्क का खंडन भी किया है कि सत्ता का स्वरूप एक ही होता है परन्तु सभी तरह की सत्ता एक जैसी नहीं होती है। मैक्स वेबर जो जर्मन समाज वैज्ञानिक थे उन्होंने भी सत्ता को वैधानिक एवं तार्किक बताया है। अरस्तू ने सत्ता, शक्ति को राजनीतिक सम्बन्ध का आवश्यक लक्षण माना है, वहीं मैक्स वेबर ने भी सत्ता के प्रयोग क्षेत्र की ओर संकेत किया है।

राजनीति शब्द दैनिक जीवन में बहुत प्रचलित है। राजनीतिक गतिविधियों को लेकर समाज मानता है कि इसका सरोकार केवल सार्वजनिक क्षेत्र से है। अर्थात् संसदों विधायकों, चुनावों और मंत्रिमंडलों से है। आम आदमी राजनीति को संकुचित दायरे में रखकर सोचता है। वह तो इसे या तो केवल मंत्रियों और विधायकों की गतिविधि समझ लेता है अथवा राजनितिज्ञों का चातुर्यपन और चुनाव के पैतरों के साथ जोड़ता है। परन्तु यदि हम राजनीति से घृणा करते हुए उससे दूर भागेंगे तो यह डर है कि राजनीति सचमुच गलत लोंगों के हाथों में चली जायेगी और सार्वजनिक समस्याओं का समाधान नहीं हो सकेगा। वर्तमान में राजनीति ऐसे ही लोगों के द्वारा की जा रही है।

9.4 राजनीति की चिरसम्मत धारणा

प्लेटों, अरस्तू एवं उनके समकालिक विचारकों का मत है कि राज्य मनुष्य के जीवन के लिए अस्तित्व में आता है और सदजीवन के लिए बना रहता है। राज्य के बगैर किसी मनुष्य को मनुष्य रूप में नहीं पहचाना जा सकता। राज्य में सद्जीवन की प्राप्ति के लिए मनुष्य जो कुछ भी करता है, जिन जिन गतिविधियों में भाग लेता है एवं जो नियम संस्थाएं और संगठन को निर्मित करता है, उन सबको अरस्तू ने राजनीति का विषय माना है। इसे ही राजनीति को चिरसम्मतधारणा कहते हैं। मनुष्य के समस्त सामाजिक सम्बन्धों और सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं का अध्ययन राजनीति के अन्तर्गत होता था। अरस्तू ने राजनीति को सर्वोच्च विज्ञान का रूतवा दिया। मानव समाज के अन्तर्गत विभिन्न सम्बन्धेां को व्यवस्थित करने में राजनीति निर्णायक भूमिका निभाता है। परन्तु आज के युग में राजनीति जनसाधारण के समर्थन पर आश्रित हो गई है, इसलिए यह जन साधारण के जीवन के साथ निकट से जुड़ गई है।

राजनीति की आधुनिक धारणा

राजनीति की चिरसम्मत धारणा के विपरीत, आज के युग में राजनीति का प्रयोग क्षेत्र तो सीमित हो गया है, परन्तु इसमें भाग लेने वालों की संख्या बहुत बढ़ गई है। राजनीति के अध्ययन में मनुष्य के सामाजिक जीवन की समस्त गतिविधियों पर विचार नही किया जाता, बल्कि केवल उन गतिविधियों पर विचार किया जाता है जो सार्वजनिक नीति और सार्वजनिक निर्णयों को प्रभावित करती हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सर्वाजनिक नीतियॉ और निर्णय इन गिने शासकों, विधायकों या सत्ता धारियों की इच्छा को व्यक्त नहीं करते बल्कि समाज के भिन्न भिन्न समूहों की परस्पर क्रिया के फलस्वरूप उभरकर सामने आते है। इस तरह राजनीति जन साधारण की उन गतिविधियों का संकेत देती है जिनके द्वारा भिन्न-भिन्न समूह अपने-अपने परस्पर विरोधी हितों में तालमेल स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं।

परम्परागत राजनीति शास्त्र का मुख्य सरोकार 'राज्य' से था, इसीलिए इसको राज्य के विज्ञान से भी परिभाषित करते हैं। उस काल के राजनीति शास्त्र के विद्वानों एवं लेखकों के लेख में भी इन्हीं बातों का अभिलेख मिलता है। इन लेखों में लेखकों ने अपना ध्यान निम्नलिखित समस्याओं पर ही केन्द्रित किया, जैसे राज्य के लक्षण, मूलतत्व एवं संस्थाएं, सर्वगुण सम्पन्न राज्य परन्तु आधुनिक काल में उपरोक्त विचारों के अतिरिक्त और भी पक्षों का समावेश किया है। उदाहरणार्थ 'राजनीति' मनुष्य की व्यापक क्रिया है, यह केवल राज्य की परिधि में हो नहीं निहित है वरन सम्पूर्ण सामाजिक संगठन के साथ जुड़ी रहती हैं। इसीलिए राजनीति को आज के संदर्भ में एक सामाजिक प्रक्रिया माना जाता है।

9.5 राजनीतिक स्थिति की विशेषताएँ

उपरोक्त कथन से स्पष्ट हो गया कि राजनीति एक विशेष मानवीय क्रिया है। इन क्रियाओं के कार्यान्वयन में मनुष्य का ही योगदान है तथा क्रियान्वित कार्य राजनीतिक स्थिति कहलाती है। इसके समर्थन में भिन्न विद्वानों ने अपने मत भी प्रकट किये हैं। जैसे एलेन बाल द्वारा रचित पुस्तक 'मार्डन पालिटिक्स एण्ड गवर्नमेंट' के अन्तर्गत लिखा हैः राजनीतिक क्रिया में मतभेद और उन मतभेदों का समाधान निहित होता है। जे. डी. बी. मिलर ने अपनी पुस्तक 'द नेचर और पालिटिक्स' में लिखा है कि राजनीतिक स्थित में संघर्ष के समाधान के लिए शासन या सरकार का प्रयोग किया जाता है। इसका तात्पर्य है कि राजनीतिक गतिविधि मतभेद की स्थिति से पैदा होती है और इसका सरोकार परिवर्तन की दिशा में या परिवर्तन की रोकथान के लिए संघर्ष के समाधान में प्रयोग से है। इस तरह राजनीतिक प्रक्रिया में दो बातों का होना आवश्यक है, पक्षों में मतभेद या संघर्ष की मौजूदगी एवं सरकार की सत्ता माध्यम से उस संघर्ष के समाधान का प्रयास।

राजनीति का संबंध समाज में 'मूल्यों' के आधिकारिक आवंटन से है। इस परिभाषा में तीन महत्वपूर्ण शब्दों का प्रयोग किया गया है ये शब्द हैं मूल्य, आधिकारिक एवं आवंटन | मूल्य का अभिप्राय समाज में मिलने वाली वे वस्तुएं जो दुर्लभ है जैसे रोजगार, स्वास्थ्य सेवा, परिवहन सेवा, शिाक्षा, मनोरंजन, मान प्रतिष्ठा इत्यादि से है। इसको ऐसे भी समझा जा सकता है कि वे अभीष्ठ वस्तुएं, लाभ अथवा सेवायें जिन्हें हर कोई पाना चाहता है, परन्तु वे इतनी कम है कि उनहें सभी नहीं पा सकते हैं।'आवंटन' शब्द का अर्थ विभिन्न व्यक्तियों या समूहों में इन वस्तुओं का वितरण या बंटवारें से है। इस बटवारें के लिए निर्णयन प्रक्रिया को अपनाना पड़ता है। निर्णय तो नीति के द्वारा सम्पन्न किया जाता है। निर्णय का अर्थ है, अनेक में से एक का चयन। नीति में निर्णय तक पहुँचना और उसे कार्यान्वित करना भी शामिल है।

उपरोक्त दो शब्दों की व्याख्या के बाद 'आधिकारिक' शब्द की विवेचना करना भी आवश्यक है। नीति जिन लोगों के लिए बनाई जाती है, और वही जोग जब नीति का पालन करना आवश्यक समझते हैं तब वह नीति आधिकारिक होती है। इस प्रकार से सम्पूर्ण प्रक्रिया में सरकार का ही योगदान है। शासन सत्ता पक्ष के द्वारा ही किया जाता है, सत्ता वैधानिक होती है एवं सत्ता में शक्ति भी निहित होती है। किसी विशेष निर्णय या कार्यवाही को लागू करने के लिए लोगों से सत्ता सहर्ष आज्ञापालन सुनिश्चित कराने की क्षमता रखता है। जब हम राजनीति की

परिभाषा मूल्यों के आधिकारिक आवंटन के रूप में देखते है तब हम उसे सार्वजनिक सामाजिक घटना के रूप में पहचानते हैं, अथवा राजनीति एक विश्वव्यापी गतिविधि है। समाज में अभीष्ट वस्तुए, लाभ और सेवाएं, इत्यादि थोड़ी होती है और उनकी मांग करने वाले लोग ज्यादा होते हैं। अतः वहॉ ऐसी आधिकारिक सत्ता की आवश्यकता पड़ती है जो परस्पर विरोधी मांगों को सामने रखकर कोई एक रास्ता निकाल सके और जिसे सब लोक स्वीकार कर लें। इसका अर्थ यह नहीं है कि सबके मॉगे पूरी कर दी जाती है या कोई समाधान हमेशा के लिए स्वीकार कर लिया जाता है। वास्तव में एक सामधान स्वीकार करने के पश्चात नई मांगे नये-नये रूपों में प्रस्तुत की जाती है, और फिर नए समाधान की तलाश की जाती है। अतः राजनीति एक निरंतर प्रक्रिया है। राजनीति के इस दृष्टिकोण को हम साधारणतयः उदारवादी दृष्टिकोण के रूप में पहचानते या पुकारते है। राजनीति का यह आधुनिक दृष्टिकोण है।

राजनीति के प्राचीन दृष्टिकोण के अन्तर्गत सामाजिक जीवन का लक्ष्य या ध्येय पूर्व में ही निर्धारित रहता था और समाज के सदस्यों को पूर्व निर्धारित व्यवस्था के ही अन्तर्गत अपने कर्तव्यों का पालन करना पड़ता था। परन्तु आधुनिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत संघर्ष को सामाजिक जीवन का स्वाभाविक लक्षण माना जाता है। इसे बल पूर्वक दबाने की चेष्टा नहीं की जाती है वरन इसका समाधान ढूढने पर बल दिया जाता है।

किसी भी मतदभेद या संघर्ष के समाधान के लिए आधिकारिक सत्ता का प्रयोग आवश्यक होता है। इस सत्ता के प्रयोग के कारण ही आधिकारिक नीतियॉ, नियम एवं निर्णय समाज में स्वीकार किये जाते हैं और प्रभावशाली ढंग से लागू भी किये जाते हैं। सत्ता के दो मुख्य घटक होते हैं, शक्ति और वैधता। पहले भी इन दोनों शब्दों का प्रयोग किया जा चुका है परन्तु अब विस्तार से इनकी व्याख्या यहां पर की जा रही है। वैधता से तात्पर्य है कि सरकार द्वारा लिए गये निर्णय और उनके अनुरूप बनाये गये नियम सारे समाज में लिए उपयुक्त और कल्याणकारी है इसलिए समाज के सभी वर्ग उसे मन से स्वीकार करते हुए और उन नियमों का अनुपालन सुनिश्चित करने की तत्पर रहते हैं। शक्ति का अर्थ है समाज की इच्छा के विरूद्ध किसी नियम या निर्णय को बल पूर्वक आदेशानुसार पालन करवाना। समाज में व्यवस्था स्थापित रखने के लिए वैधता और शक्ति एक दूसरे के पूरक हैं। चूंकि राजनीति में सत्ता का प्रयोग आवश्यक हे, और शक्ति के बिना सत्ता अधूरी है इसलिए राजनीति में शक्ति का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राजनीति में शक्ति के तीन प्रकार हैं राजनीतिक शक्ति, आर्थिक शक्ति और विचारात्मक शक्ति। राजनीतिक शक्ति का अर्थ है नीतियॉ एवं कानून का निर्माण करना, कानून को लागू करना, कर लगाना, और वसूल करना, कानून का पालन न करने वालों को दण्डित करना तथा शत्रुओं एवं आक्रमण कारियों को नष्ट करने से है। साधारणतः राजनीतिक शक्ति का उपयोग सरकार के तीन विभिन्न अंगों द्वारा किया जाता है, विधान मण्डल, कार्यपालिका एवं न्याय पालिका इन्हें शक्ति के औपचारिक अंग कहते हैं। परन्तु इनके अलावा कुछ अनौपचारिक अंग भी है जैसे विभिन्न दबाव समूह, राजनीतिक दल आदि। ये अपने ढंग से राजनीतिक शक्ति का प्रयोग करते हैं।

आर्थिक शक्ति का अर्थ है, धन सम्पदा, उत्पादन के साधनों या अन्य दुर्लभ साधनों के स्वामित्व के बल पर निर्धन लोगों या निधर्न राष्ट्रों के जीवन की परस्थितियों पर नियन्त्रण स्थापित करने से है। आर्थिक शक्ति राजनीति पर व्यापक प्रभाव डालती है। उदार लोकतंत्र के अन्तर्गत बडे-बड़े जमीदार, उद्योगपति और व्यापारिक घराने सार्वजनिक नीतियों और निर्णयों को व्यापक रूप से प्रभावित करते हैं और विकास की प्राथमिकताएं निर्धारित करने में अपने हित को सर्वोपरि रखते हैं। बड़े बड़े पूंजीपति अक्सर अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक दलों और चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों को भारी वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं। ऐसी सहायता पाने वाले राजनीतिज्ञ ऊपरी तौर पर जनसाधारण के हितों की दुहाई देते हैं परन्तु भीतर से वे अपने वित्तदाताओं के हितों के लिए प्रतिबद्ध होते हैं।

विचारात्मक शक्ति राजनीतिक शक्ति का एक गूढ़ आधार प्रस्तुत करती है। विचारात्मक शक्ति शासन की व्यवस्था को समाज की दृष्टि में उचित ठहराती है और इसीलिए उसे बैद्यता प्रदान करती है। समाज में शासक वर्ग सर्वोत्तम शासन प्रणाली के बारे में विचारों को बढ़ावा देते हैं जिन्हें राजनीतिक विचारधारा कहते हैं। आज के युग में भिन्न भिन्न देशों में विभिन्न प्रकार की सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक व्यवस्थाएं प्रचलित है और उन्हें उचित ढहराने के

लिए पूंजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, लोकतंत्रीय समाजवाद आदि सर्वोत्तम शासन प्रणाली सिद्ध करने को तत्पर रहती हैं ये सारे वाद विभिन्न विचारधाराओं के ही उदाहरण है।

9.6 प्रशासन

अंग्रेजी शब्द एडमिनिस्ट्रेसन की रचना लैटिन के दो शब्दों से मिलकर हुई है | वे शब्द है एड एवं मिनिस्टर, जिसका अर्थ है प्रबन्ध करना। अंग्रेजी शब्दकोष के अनुसार प्रशासन शब्द का अर्थ है कार्यों का प्रबन्ध। शासन करने से तात्पर्य है प्रबन्ध करना, निर्देशन करना इत्यादि। प्रशासन शब्द को विभिन्न विद्वानों ने निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया है।

पाल. एच. एपिलबी - यदि प्रशासन न हो तो सरकार तो केवल वाद विवाद का क्लब मात्र बन कर रह जायेगी बर्शते इस स्थिति में वह जीवित रह सके ।

ई. एन. ग्लेडन के अनुसार प्रशासन का अर्थ है ष्लोगों की परवाह करना या देखभाल करना, कार्यों का प्रबन्ध करना, किसी जाने बूझे कार्य की पूर्ति के लिए उठाया जाने वाल सुनिश्चित पग।

नीग्रो -किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए मनुष्य तथा सामग्रियों का जो संगठन तथा उपयोग किया जाता है उसे प्रशासन कहा जाता है।

एल. डी. व्हाइट ने प्रशासन को कुछ इस प्रकार पारिभाषित किया है किसी उद्देश्य अथवा लक्ष्य की पूर्ति के लिए बहुत से व्यक्तियों के निर्देशन, समन्वय तथा नियंत्रण को ही प्रशासन की कला कहते हैं।

फिफनर ने प्रशासन की परिभाषा इस प्रकार की है वांछित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मानवीय तथा भौतिक साधनों का संगठन तथा निर्देशन ही प्रशासन है।

हरबर्ट साइमन के शब्दों में प्रशासन सबसे अधिक व्यापक अर्थ में, समान लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए वर्गों द्वारा मिलकर की जाने वाली क्रियाओं को प्रशासन कहा जा सकता है ।

लूथर गूलिक के अनुसार प्रशासन का सम्बन्ध कार्यों के करवाने से, निश्चित उद्देश्य की पूर्ति कराने से है।

उपरोक्त परिभाषाओं से विदित है कि प्रशासन सर्वमान्य लक्ष्यों की पूर्ति के लिए सहयोग करने वाले वर्गों की क्रियाओं से तात्पर्य है। दूसरे शब्दों में प्रशासन में वे सभी क्रियाएं आती है जो किसी उद्देश्य या ध्येय की प्राप्ति के लिए की जाती है। प्रशासन शब्द का प्रयोग संकीर्ण अर्थ में भी किया जाता है जिसका अभिप्राय व्यवहार के उन सभी प्रतिरूपों से है जो विभिन्न प्रकार सहयोगी समूहों में एक जैसे होते है और जो उन निश्चित उद्देश्यों पर आधारित नहीं होते जिनके लिए वे परस्पर सहयोग करते हैं और न ही वे उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयोग की जा रही निश्चित पद्धतियों पर आधारित होते हैं।

9.7 राजनीति एवं प्रशासन में सम्बन्ध

प्रशासन को राजनीति से भिन्न रखने में आरम्भिक दौर के चिंतकों ने काफी भेद किया। उनकी दृष्टि में राजनीति नीतियों का निर्माण करती है, और प्रशासन का कार्य है कि वह यथासंभव कुशलता एवं मितव्ययिता से उन नीतियों को लागू करे। अतः क्रियाओं की दृष्टि से राजनीति और प्रशासन के क्षेत्र पृथक एवं भिन्न हैं। लोक प्रशासन के पितामह 'वुडरो विल्सन' ने अपने लेख 'स्टडी आफ एडमिनिस्ट्रेसन' में लिखा है कि प्रशासन का उचित क्षेत्र राजनीति से बाहर है।प्रशासनिकप्रश्न राजनीतिक प्रश्न नहीं होते। यद्यपि प्रशासन के ध्येय राजनीति निश्चित करती है, किन्तु यह अनुमति नहीं दी जानी चाहिए कि वह प्रशासन के कार्यों में हस्तक्षेप करें। ब्लंटश्ली को समर्थन देते हुए उन्होंने ब्लंटश्ली के शब्दों को दोहराया,राजनीतिमहान और सर्वव्यापी विषयों में राज्य की क्रिया है। अतः राजनीत राजमर्मज्ञ का विशेष क्षेत्र है और प्रशासन तकनीकी अधिकारी का विशेष क्षेत्र है।

कालान्तर में राजनीति एवं प्रशासन के भेद की काफी आलोचना हुई। प्रशासन के अराजनीतिक दृष्टिकोंण पर इतना बल दिया गया कि इसने प्रशासन को अपरिवर्तनीय परिभाषा बना दिया जो अपने स्वतंत्र सिद्धान्तों का अनुसरण करता है, चाहे सरकार का स्वरूप कुछ भी क्यों न हो, और जिन राजनीतिक मूल्यों के अधीन इसे काम करना है वे

कैसे ही क्यों न हों। यह दृष्टिकोंण पूर्णतया गलत है, क्यों कि किसी देश की राजनीतिक व्यवस्था उसकी प्रशासन व्यवस्था से न तो बाहर है और न असम्बन्धित, अपितु यही तो इसका ताना बाना है। राजनीति और प्रशासन के बीच सम्बन्धों का विकास कालान्तर में हुआ। जान लाक तथा मांटेस्क्यू के समय से लेकर आजतक विद्वान, प्रशासक राजनीतिज्ञ इस विषय पर वाद विवाद करते रहे हैं। अपने गणतंत्र के प्रारम्भिक समय से ही अमेरिका के राजनेता नीति-निर्माण तथा प्रशासनिक विषयों में भेद करते आये हैं। इससे राजनीति और प्रशासन में द्विभाजन का विकास हुआ। यद्यपि इस धारणा का द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात अन्तिम तौर पर परित्याग कर दिया गया।

प्रशासन व राजनीति में भेद को लेकर काफी आलोचना हुई और लोक प्रशासन के विद्वानों ने इस भेद को अस्वीकृत कर दिया एवं एक सिरे से नकार दिया। तथ्य इस बात को सिद्ध करते हैं कि प्रशासन का नीति निर्माण या निर्धारण के कार्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है और वह इसमें सक्रिय भाग लेता है। यह एक पूर्णतया अतार्किक तर्क है कि नीति निर्धारण कार्य प्रशासनिक अधिकारी वर्ग की सहायता या परामर्श के बिना भी सम्पन्न किया जा सकता है। मन्त्री गण अधिकांश विधेयक अपने उच्च प्रशासनिक अधिकारी के प्रेरणा पर ही पारित करते हैं। हस्तांरित विधान की सम्पूर्ण धारणा राजनीति व प्रशासन के विभाजन को अर्थहीन एवं तथ्यहीन सिद्ध करती है। तथ्यों व आंकडों के अभाव में किसी भी सफल नीति का निर्धारण असम्भव है। ये तथ्य तथा आंकड़े प्रशासनिक अधिकारी ही प्रदत्त करते हैं। कानूनों व नीतियों की व्यावहारिकता तथा अव्यावहारिकता प्रशासनिक अधिकारियों के परामर्श के आधार पर ही तय की जाती है। कहने का तात्पर्य है कि पग-पग पर राजनीति एवम प्रशासन परस्पर मिश्रित प्रतीत होते हैं, हर पल प्रशासन राजनीति को प्रभावित करता है। एपिलबी का कहना था कि नीति का निर्माण ही लोक प्रशासन है। उपरोक्त विचारों से यह सिद्ध हो गया कि राजनीति एवं प्रशासन अविभाज्य है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित तथ्य उसके साक्षी है।

राजनीतिक नेता को जटिल और तकनीकी विषयों पर नीति सम्बन्धी निर्णय करने के लिए ज्ञानपूर्ण परामर्श हेतु सर्वथा स्थायी कर्मचारियों पर आश्रित होना पड़ता है।

पेचीदा स्थितियों में नीति निर्माण तथा नीति परिपालन एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।प्रायः नीतियों की विभिन्न प्रकार से व्याख्या हो सकती है। ऐसी स्थिति में जो प्रशासक एक नीति का परिपालन करने के लिए उत्तरदायी होते है, उस नीति की व्याख्या करते हुए स्वेच्छा-निर्णय का प्रयोग भी करते हैं।

अभ्यास प्रश्न

१. राज्य के चार तत्व होते है |सत्य/असत्य

२. राजनीति का सम्बन्ध नीति निर्माण से होता है | सत्य/असत्य

३.प्रशासन का सम्बन्ध नीतियों के क्रियान्वयन से होता है | सत्य/असत्य

9.8 सारांश

उपरोक्त लेख अध्ययन करने के बाद राजनीति एवं प्रशासन शब्द से भली भॉति परिचित हो चुके होंगे। कानूनों व नीतियों की व्यावहारिकता तथा अव्यावकारिकता, प्रशासनिक अधिकारियों के परामर्श के आधार पर ही तय की जाती है। कहने का तात्पर्य है कि राजनीति एवं प्रशासन मिश्रित प्रतीत होते हैं।

इससे स्पष्ट है की नीति निर्माण और नीति क्रियान्वयन एक दूसरे से पूरी तरह से पृथक नहीं किये जा सकते है | क्योंकि मंत्री विभागाध्यक्ष होते हैं जो अपनी अनुभवहीनता और और विशेषज्ञता के अभाव में काफी हद तक प्रशासनिक अधिकारियों के परामर्श पर निर्भर करते है |

9.9 शब्दावली

राज्य –एक **निश्चित भूभाग** में रहने वाली **जनसंख्या**,जिसकी अपनी **सरकार** हो, जो अपने आंतरिक और वाह्य मामलों में पूरी तरह से स्वतन्त्र हो(संप्रभुता) |

आवंटन - व्यक्तियों या समूहों में वस्तुओं का विवरण

9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१. सत्य २. सत्य ३. सत्य

9.11 संदर्भ ग्रन्थ

1.गावा, ओ. पी. - राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा

2.जैन पुखराज - राजनीति विज्ञान

9.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

१ .शर्मा एवं सडाना- लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार

२ .एन. सी. ई. आर. टी.

9.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1.राजनीति को परिभाषित करते हुए विभिन्न धारणाओं की व्याख्या कीजिए।

2.राजनीतिक स्थिति की विशेषताओं पर एक निबन्ध लिखिए।

3.राजनीति एवं प्रशासन से आप क्या समझते हैं, दोनों के मध्य सम्बन्धों पर अपनी समीक्षा कीजिए

इकाई-10 उत्तराखण्ड का इतिहास-प्रशासनिक संदर्भ में

इकाई की संरचना

10.0 प्रस्तावना
10.1 उद्देश्य
10.2 उत्तराखण्ड का प्राचीन राजनीतिक इतिहास
- 10.2.1 कुणिन्द राजवंश
- 10.2.2 पौरव वंश
- 10.2.3. कत्यूरी प्रशासन
- 10.2.4 चंद वंश
- 10.2.5 रैका वंश
- 10.2.6 पंवार वंश
- 10.2.7 गोरखा शासन

10.3 अंग्रेजी शासन
10.4 उत्तराखण्ड ब्रिटिश राजतंत्र का उदय
10.5 सारांश
10.6 शब्दावली
10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
10.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.10 निबंधात्मक प्रश्न

10.0 प्रस्तावना

उत्तराखण्ड आन्दोलन ही दुनियाँ का ऐसा पहला आन्दोलन है जिसने गाँधीवादी सिद्धान्तों को सही मायने में आत्मसात किया है। पुलिस एवं प्रशासन की तरफ से इतनी हिंसा हुई पर प्रतिहिंसा की एक भी घटना आज तक देखने को नहीं मिली। गरीबी, विषमता, अभाव एवं शोषण की बुनियाद पर टिका यह एक अहिंसक आन्दोलन रहा। अभूतपूर्व धैर्य, आत्मसंयम और अनुशासन जिसकी खासियत रही। उत्तराखण्ड में विकास व प्रशासन का जो ढाँचा आज खड़ा है उसकी बुनियाद ब्रिटिश काल (1815-1947) में पड़ी थी। ब्रिटिश प्रशासकों ने विकास का जो ढाँचा उत्तराखण्ड में खड़ा किया था, उसमे यहॉ की जन और जमीनी सम्पदा से अधिक से अधिक राजस्व कमाने के साथ-साथ उत्तराखण्ड से लगी तिब्बत, नेपाल की सीमाओं को ध्यान में अधिक रखा गया था। कम्पनी राज के प्रथम कुमाऊँ कमिश्नर गार्डनर का कार्यकाल 1815 से प्रारंभ होता है। गार्डनर कुमाऊॅ मात्र छः वर्ष तक रहा। इन वर्षो में उसने राजस्व, सामान्य प्रशासन,फौज, मजदूरी व्यवस्था और खाद्यान्न जैसे कार्यक्रमों की शुरूआत की। गार्डनर के बाद 20 वर्षों तक जार्ज विलियम ट्रेल ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। ट्रेल के कार्यकाल में वन प्रबन्ध, डाक व्यवस्था, ट्रेजरी व्यवस्था, जेल, चिकित्सालय, सड़को, पुलों की व्यवस्था, पुलिस व्यवस्था, कुलियों के उत्थान, भूमि बन्दोबस्त आदि प्रारम्भ हुए।

इन कार्यों के अतिरिक्त प्राथमिक शिक्षा का वर्तमान स्वरूप तथा शराब की ब्रिक्री व्यवस्था कम्पनी शासन काल से प्रारंभ हो गयी थी। कम्पनी की भूमि बन्दोबस्त, शराब व्यापार, और वन व्यवस्था को लेकर लोग संतुष्ट नहीं थे। आजादी के संग्राम में यहाँ के लोगों का बढ़-चढ़ कर भाग लेने के पीछे मुख्य कारण भूमि बन्दोबस्त और बन प्रबन्ध को लेकर उपजा असंतोष प्रमुख थे। सन1815 में विकास का जो क्रम उत्तराखण्ड में प्रारम्भ हुआ था, आजादी के बाद उसी विकास व्यवस्था को आगे बढ़ाया गया। स्वतंत्रता आन्दोलन के बाद उत्तराखण्ड की धरती पर जो सबसे बड़ा आन्दोलन हुआ वो था उत्तराखण्ड राज्य की मॉग। इस आन्दोलन ने जो गति पकड़ी वो राज्य बनने के बाद ही थमी। इस अध्याय में आगे हम राज्य के उन सभी पहलुओं पर चर्चा करेंगे जो राज्य के गठन के प्रमुख कारक रहे।

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से हम समझेगें कि-

१. उत्तराखण्ड राज्य का प्राचीन राजनीतिक इतिहास क्या रहा।

२. राज्य गठन से पूर्व प्रशासनिक संरचना क्या थी।

३. ब्रिटिश काल में उत्तराखण्ड की प्रशासनिक व्यवस्था कैसी थी।

४. उत्तराखण्ड राज्य आन्दोलन के क्या कारण थे।

५. उत्तराखण्ड के प्रशासनिक संरचना का अध्ययन।

10.2 उत्तराखण्ड का प्राचीन राजनीतिक इतिहास

अलबरूनी जैसे साहित्यकारों का यह आशयपूर्ण कथन है कि भारतीय इतिहास लेखन की कला से अनभिज्ञ हैं। इस अर्थ में यह उचित प्रतीत होता है कि भारतीय इतिहासकारों ने अपनी कृतियों में तत्कालीन घटनाक्रम का वर्णन तो किया है लेकिन तिथिक्रम के सम्बन्ध में भारतीय इतिहासकार मौन साधे रहे हैं। उत्तराखण्ड में कत्यूरी शासकों से पूर्व भी कई शासकों का वर्णन इतिहास में मिलता है। उत्तराखण्ड के शासकों का हम क्रमबद्ध अध्ययन कर सकते हैं।

10.2.1 कुणिन्द राजवंश

कुणिन्द राजवंश उत्तराखण्ड में शासन करने वाले प्रारम्भिक राजवंशों में है। प्राचीन भारतीय साहित्य में कुणिन्दों का उल्लेख मिलता है। अष्टाध्यायी में पाणिनी के द्वारा भी कुणिन्द जनपद का उल्लेख किया जाना दर्शाता है कि चौथी, पाँचवी सदी ईसा पूर्व कुणिन्दों का अस्तित्व था। टाल्मी(87ई0 से 165 ई0) के विवरण में भी कुणिन्दों का उल्लेख दर्शाता है कि कुणिन्द दूसरी सदी में भी अस्तित्ववान थे। कुणिन्दों से पूर्व उत्तराखण्ड के पर्वतीय अंचल में कई अन्य जातियों का शासन स्थापित हो चुका था, जिनमें किरात, खश, तगण, परतगण, अम्बस्ष्ट इत्यादि का उल्लेख महाभारत में भी मिलता है। कुणिन्दों का उत्तराखण्ड की भूमि में अस्तित्व महाभारत काल के प्रारंभ(सम्भवतः 1000ई0पू0-900ई0पू0) से दूसरी तीसरी शताब्दी तक ज्ञात होता है। कुणिन्दों के शासन काल को कुणिन्द जनपद में तीन काल खण्डों में विभक्त किया जा सकता है।

प्रथम काल- महाभारत काल से 5वीं-6वीं ई0पू0 ।

दूसरा काल- 5-6 ई0पू0 से 2-3 सदी ई0पू0।

तीसरा काल- 2-3 ई0पू0 से 2-3 सदी ई0 तक।

प्रथम काल के सम्बन्ध में महाभारत से पर्याप्त सूचनाएं प्राप्त होती हैं। महाभारत में सुबाहु नामक जिस शक्तिशाली शासक का उल्लेख मिलता है वह कुणिन्द जाति से सम्बन्धित था। सुबाहु ने पांडवों के पक्ष में महाभारत युद्ध में भाग लिया था। इस काल के प्रारंभ में कुणिन्द जनपद एक स्वतंत्र जनपद था। बाद में उसने पांडवों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। द्वितीय काल समस्त उत्तर-भारत के लिये एक संक्रमण काल था। इस काल में धार्मिक क्षेत्र में महान क्रान्तियॉ हुई। परिणाम स्वरूप महावीर तथा बुद्ध जैसे धर्मज्ञों द्वारा जैन एवं बौद्ध धर्म जैसे विचार प्रधान धर्मो की स्थापना की गयी। कुणिन्द जनपद के तीसरे काल को कुणिन्दों के चर्मोत्कर्ष काल माना जा सकता है। मोर्य एवं शुंग शासन के ह्रास के कारण भारतवर्ष में केन्द्रीयकरण की प्रवृति नष्टप्रायः हो गयी थी। विकेन्द्रीकरण का प्रारंभ हो गया था। सम्भवतः इसी विकेन्द्रीकरण का प्रभाव था कि कुणिन्द जनपद अपने उत्कर्ष की ओर बढ़ चला।

किसी भी राजवंश का काल जानने या किसी कालखण्ड का इतिहास जानने में मुद्राओं का अपना महत्वपूर्ण स्थान होता है। कुणिन्द मुद्राएं खरोष्ठी एवं ब्राह्मी लिपी में उत्कीर्ण हैं। इस काल की कुछ मुद्राएं अल्मोड़े जिले से प्राप्त हुयी हैं। जिन्हें कुणिन्द शासनकाल में अल्मोड़ा प्रकार की मुद्राओं के नाम से जाना जाता था। ये मुद्राएं ताम्र धातु से निर्मित की गयी हैं। इनका वजन 119 ग्रेन से 327 ग्रेन है। अल्मोड़ा प्रकार मुद्राएं म-ग-ह-त-स, शिवदत्त, शिवपालित हरदत्त इत्यादि कुणिन्द शासकों द्वारा उत्कीण की गयी हैं। ये मुद्राएं ब्राह्मी लिपि से उत्कीर्ण हैं। इन

मुद्राओं में वृत्त, कुबड़ा बैल, वेदी, छत्र, लम्बवत् रेखाएं, नंदीपाद, नाग, मानवमूर्ति इत्यादि का अंकन किया गया है। अन्य प्रकार की मुद्राएं भी प्राप्त हुयी हैं। जो कि देहरादून, बेहट तथा भैड़ागॉव से प्राप्त हुयी हैं। इन मुद्राओं में भानू एवं रावण का नाम उत्कीर्ण किया गया है। कई ऐसी मुद्राएं भी प्राप्त हुयी हैं जिस पर कोई नाम उत्कीर्ण नहीं है। ये मुद्राएं ताम्र धातु से निर्मित हैं तथा इनमें ब्राह्मी लिपि का प्रयोग किया गया है। अब तक कुणिन्द काल की अनेक मुद्राएं भिन्न-भिन्न स्थानों से प्राप्त हुयी हैं। इन मुद्राओं में शासकों के नाम तथा उनकी उपाधियों का भी अंकन मिलता है। कई मुद्राएं तो ऐसी हैं जिनमें शासकों का नाम अंकित न होकर कुणिन्द इत्यादि शब्दों का अंकन किया गया है। कुणिन्द मुद्राओं से ज्ञात होता है कि कुणिन्द सत्ता स्वतंत्र रही होगी। किसी अन्य राज्य के अधीन नहीं रही होगी। कुणिन्द मुद्राओं से कुणिन्दों का अपने समकालीन अन्य गणराज्यों यथा यौद्येय तथा औदुम्बर से मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार कुणिन्द मुद्राएं तत्कालीन राजनीतिक स्थिति, साम्राज्य विस्तार तथा कुणिन्द शासकों की नीति तथा स्थिति पर व्यापक रूपेण प्रकाश डालती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. कुणिन्द शासन में अल्मोड़ा प्रकार की मुद्राएं किस धातु से निर्मित की गयी थी?

2. अष्टाध्यायी की रचना किसने की?

10.2.2 पौरव वंश

अल्मोड़ा जनपद के तालेश्वर नामक स्थान से ताम्र एवं अष्टधातु के अभिलेख प्राप्त हुए हैं। ये अभिलेख पौरव वंश से सम्बन्धित हैं। ये अभिलेख 1915 ई0 में प्राप्त हुए। पौरव वंश का उद्भव हर्ष के पश्चात तथा कत्यूरी एवं कन्नौज के यशोवर्मा से पूर्व हुआ था। हर्ष ने 600 ई0 से 647 ई0 तक शासन किया था। जबकि कन्नौज के शासक यशोवर्मा का शासनकाल डॉ0 आर0एस0त्रिपाठी 725 ई0 से 752 ई0 मानते हैं। पौरव वंश की सत्ता 647 ई0 के पश्चात से प्रारम्भ होकर 725 ई0 के आसपास तक अस्तित्व में रही होगी। पौरव वंश के सम्बन्ध में जानकारी देने वाले ताम्रपत्रों के अनुसार इस वंश की राजधानी ब्रह्मपुर थी। पौरव वंश का राज्य गढ़वाल से सम्बन्धित था। कनिंघम के मतानुसार ब्रह्मपुर राज्य में अलकनंदा और करनाली नदियों का मध्यवर्ती सम्पूर्ण पर्वतीय प्रदेश वर्तमान गढ़वाल एवं कुमाऊँ सम्मिलित रहा होगा। इस प्रकार पौरव वंश की राजसत्ता सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में स्थापित थी। इसमें भाबर का क्षेत्र भी शामिल था।

शासन प्रबन्ध

पौरव वंशीय ताम्र अभिलेखों से इस वंश के शासन प्रबन्ध का अनुमान लगाया जा सकता है। विद्वानों ने माना है कि इस वंश के अनेक पदाधिकारियों की समानता गुप्त व हर्ष के पदाधिकारियों से की जा सकती है। पौरव वंश चूंकि हर्ष का परवर्ती था। अतः पौरवों ने हर्ष की शासन व्यवस्था को अपनाया। पौरव शासन का सर्वोच्च अधिकारी राजा होता था। इसकी उपाधी महाराजाधिराज परम भट्टारक की थी। पौरव अपने को गौ ब्राह्मण हितैषी कहलाना पंसन्द करते थे। वे दानी प्रवृति के थे। उनके अभिलेख उनके द्वारा दिये गये दानों का उल्लेख करते हैं। वे निरंकुश नहीं थे।

शासन की सहायता हेतु मंत्री परिषद होती थी। मंत्रीपरिषद का कार्य शासक को विभिन्न कार्यों के सम्बन्ध में परामर्श देना होता था। परिषद की नियुक्ति शासन को चुस्त, दुरूस्त करने हेतु की जाती थी। मंत्री परिषद में अमात्य, बलाध्यक्ष, सन्धि विग्रहक, राजदौवारिक, कोटाधिकरण, कुमारमात्य, सर्व विषय प्रधान देव द्रोणाधिकृत तथा कारगिक इत्यादि अधिकारी सम्मिलित थे। राजा जिस स्थान पर परिवार के साथ रहता था उसे कोट कहते थे। कोट का सुरक्षा प्रबन्ध कोटाधिकरण नामक अधिकारी के पास था। जिसका कार्य राज परिवार को सुरक्षा प्रदान करना था। राज देवारिक राजप्रासादा में आने-जाने वालों की देख-रेख करता था। कारगिक नामक अधिकारी राजाज्ञाओं को तथा शासन को की गयी प्रार्थनाओ को उनके गन्तव्य तक पहुॅचाने का कार्य करता था। एक सुपकारपति नामक कर्मचारी होता था जो राजा के भोजनालय की व्यवस्था देखता था।

1.बालाध्यक्ष सैन्य प्रमुख था। सेना तीन भागों में विभक्त थी- गज, अश्व एवं पैदल जो सेनानायक के अधीन थे। इसके सेनानायक गजपति, अश्वपति जयनपति कहलाते थे। सन्धि विग्रहक युद्ध व संधि विभाग का प्रधान था। पौरव शासन प्रबन्ध में आन्तरिक शान्ति एवं सुरक्षा हेतु पुलिस विभाग की व्यवस्था थी। पौरव शासकों की आय का मुख्य श्रोत भूमि कर था। भूमिकर को भाग कहते थे। इसको वसूलने वाला अधिकारी भागिक कहलाता था। भूमिकर उपज का छठा भाग लिया जाता था। चूकी हिमालय की घाटियों में बसा होने के कारण पौरव वंश खनिज, वन तथा औषधियों से भरा पड़ा था अतः इनसे भी आय होती थी। भोटान्तिक व्यापार अवश्य ही राज्य की आय के लिये वृद्धिकारक रहा होगा। अभिलेखों में दिविरपति तथा कायस्थ का उल्लेख भी मिलता है। इनका कार्य राज्य की आय तथा भूमि सम्बन्धी सूचनाओं का आंकड़ा रखना था। इस काल में केदार एवं सारी नामक भूमि के दो वर्ग थे। केदार भूमि सिंचाई वाली भूमि कहलाती थी तथा सारी ऐसी भूमि थी जिसकी सिंचाई नहीं की जाती थी। भूमि नाप के लिये द्रोणवापम, खारीवापम तथा कुल्यवापम आदि विधियों का प्रचलन था। सम्पूर्ण भूमि शासक की थी वह भूमि का दान व विक्रय कर सकता था। उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि पौरव काल में उच्च प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित थी, उनकी प्रशासनिक व्यवस्था पूर्व काल में स्थापित बड़े राजवंशों की प्रतिलिपि प्रतीत होती है। ऐसा स्वभावतः उचित भी था क्योंकि मानव प्रवृति अपने से श्रेष्ठ की नकल की होती ही है।

अभ्यास प्रश्न-

3 -पौरव वंश में सेना कितने भागों में विभक्त थी?

4 - केदार भूमि से क्या क्या तात्पर्य है?

10.2.3. कत्यूरी वंश

उत्तराखण्ड में 750 ई0 के आस-पास तक नंद, मौर्य, कुषाण, मौखरी, वर्धन व पौरव वंशों का प्रभुत्व रहा। 750 से 1223 ई0 तक कत्यूरी राजाओं का एक छत्र राज्य रहा। महापंडित राहुल सांकृत्यायन इस वंश का शासन काल 850 से 1060 ई0 तक मानते हैं। विक्रम की 11वीं सदी में उत्तराखण्ड पश्चिमी व पूर्वी दो प्रशासनिक इकाईयों में विभाजित हुआ। लेकिन दोंनो पर ही कत्यूरी राजाओं का शासन बना रहा। उत्तराखण्ड भौगोलिक दृष्टि से एक स्वतंत्र इकाई होने के बाद भी उसके मध्य में स्थित नंदा देवी हिमालय, बधाण, चॉदपुर के पठार तथा रामगंगा-उपत्यका के घने वन उसे पश्चिमी व पूर्वी दो भागों में बॉटते हैं। उत्तर में इन भागों के बीच आवागमन की सुविधा पिंडर-उपत्यका तक उतरने पर ही प्राप्त होती है। दक्षिणी भाग में भाबर, घने वन व हिंसक पशुओं से भरे वन

आवागमन में बाधक रहे। इस प्राकृतिक बॉधा के कारण जोशीमठ से पूरे उत्तराखण्ड का शासन करना कठिन हो रहा था। अतः प्रकृति के प्रकोप व प्रशासनिक कठिनाईयों से बचने तथा उत्तराखण्ड के पश्चिमी व पूर्वी भागों पर सुदृण शासन रखने के लिये कत्यूरी नरेश नर सिंह देव ने चमोली जिले के जोशीमठ से बागेश्वर जनपद स्थित बैजनाथ में राजधानी स्थापित की थी। यह घटना सम्वत् 1057 विक्रमी(सन1000) की है। इससे उत्तराखण्ड के पूर्वी भाग कमादेश(कुमाऊॅ) पर शासन करना सरल हुआ। फलतः कत्यूरी नरेशों को 1191 तक इस प्रदेश पर अपनी सत्ता बनाये रखने में सफलता मिली। किन्तु उत्तराखण्ड के पश्चिमी भाग केदार भूमि गढ़देश पर उनका शासन शिथिल हो गया।

शासन प्रबन्ध

कत्यूरी वंश के सम्बन्ध में ज्ञान कराने वाले प्रमुख साधन इस काल के अभिलेख हैं। इन अभिलेखों से कत्यूरी काल के केन्द्रीय एवं प्रान्तीय प्रशासन के सम्बन्ध में अनेक सूचनाएं प्राप्त होती हैं। कत्यूरी शासन दो भागों में बटॉ था।

अ-केन्द्रीय प्रशासन

ब-प्रान्तीय प्रशासन

केन्द्रीय प्रशासन- केन्द्रीय प्रशासन का प्रधान शासक होता था। कत्यूरी वंश के अधिकांश शासक परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर की उपाधी धारण करते थे। उनकी अन्य उपाधियॉ परम माहेश्वर तथा परम ब्राहमण थी। परवर्ती कत्यूरी शासकों को छोड़कर सभी कत्यूरी शासक प्रजा हितेषी, विद्वानों के आश्रयदाता, दानी तथा धार्मिक प्रवृति के थे। उन्होंने अनेक मंदिरों का निर्माण किया तथा मंदिरों को अनेक ग्राम अग्रहार के रूप में भी दान दिये। अधिकतर कत्यूरी शासक शैव मतावलम्बी थे। परन्तु उन्होंने अन्य मतों या सम्प्रदायों को मानने वालों के साथ भेदभाव नहीं किया। उनके द्वारा वैष्णव मंदिरों को भी भूमि दान दी गयी। कत्यूरी काल में ब्राहमण धर्म को उत्ताखण्ड में व्यापक सम्मान मिला। कत्यूरी शासक अपने राजा का प्रशासन मंत्री परिषद के मंत्रियों तथा उच्च पदाधिकारियों द्वारा संचालित करते थे। कत्यूरी शासकों के अभिलेखों में मंत्रियों तथा पदाधिकारियों की एक लम्बी सूची उत्कीण मिलती है। इन मंत्रियों तथा पदिधिकारियों की नियुक्ति शासक द्वारा स्वयं की जाती थी। भिन्न-भिन्न कार्यो के लिये भिन्न मंत्री व अधिकारी नियुक्त किये जाते थे। कत्यूरी काल के कुछ प्रमुख पदाधिकारियों के नाम निम्नलिखित थे-

अमात्य, राजामात्य, महासंधिविग्रहाधिकृत, कुमारमात्य, महादानाक्षपटलाधिकृत, महादण्डनायक, महाप्रतिहार, महाराज प्रमातार, उपरिक, महाकर्ता, गौल्मिक एवं शौल्किक आदि। कत्यूरी वंश शासकों ने 250 वर्षो से भी अधिक समय तक उत्तराखण्ड में शासन किया। कत्यूरी सेना चार भागों में विभक्त थी- पैदल, अश्व, हाथी तथा ऊॅट। अन्तिम तीन सेनाओं के मुखिया अश्वबलाधिकृत, हस्तिबलाधिकृत, ऊष्टबलाधिकृत कहे जाते थे। इन तीनों का भी एक संयुक्त सर्वोच्च अधिकारी होता था। जिसे हस्त्यश्वोष्ट्रबलाधिकृत कहा जाता था। सेना का संचालन शासक द्वारा ही होता था। कत्यूरी सेना के हाथी एवं ऊॅटों का प्रयोग तराई, भाबर के क्षेत्रों में ही होता था। प्रांतपाल नामक एक अधिकारी का भी उल्लेख मिलता है जो कि राज्य की सीमाओं की सुरक्षा करता था। नदी घाटों पर आवागमन की सुविधा कर वसूली तथा अवांछित व्यक्तियों के कार्यकलापों की देख रेख का कार्य तरपति नामक अधिकारी करता था। पुलिस अधिकारियों के अतिरिक्त दण्डिक, चाट भाट आदि कर्मचारी भी थे। अपराधियों को धर पकड़ने वाला अधिकारी दोषापराधिक कहलाता था। गुप्त चर विभाग की व्यवस्था भी थी। इस विभाग का मुख्य अधिकारी

दुःसाध्य साधनिक था। चोरोंद्धरणिक नाम अधिकारी भी होता था जो चोर लुटेरों को पकड़ता था। इससे ज्ञात होता है कि कत्यूरी शासकों ने राज्य की आंतरिक शान्ति एवं जनसुरक्षा का पूर्ण ध्यान रखा। कत्यूरी काल में उत्तराखण्ड का मुख्य व्यवसाय कृषि था। भूमिकर राज्य की आय का प्रमुख साधन था। भूमिकर के अतिरिक्त वन एवं खनिजों से भी कर लिया जाता था। प्रमावतार भूमि नाप करने वाला अधिकारी था। भूमि नापने हेतु द्रोणवापम तथा नालीवापम प्रणाली प्रचलित थी। भूमि के पट्टे या अभिलेख पट्टकोपचरिक नामक अधिकारी के पास रहते थे। कत्यूरी अभिलेखों ने उत्कीर्ण भोगपति, शौल्किक अधिकारी भोग शुल्क आदि करों को वसूला करते थे। कत्यूरी शासक के आय के अन्य श्रोत वन खनिज तथा पशु थे। वनों की रक्षा के लिये खण्ड रक्ष तथा पशुओं के लिये गायभैंस अधिकारियों की भी नियुक्ति की जाती थी। दान में दी गयी अग्रहार भूमि करमुक्त थी। भौटान्तिक व्यापार से भी कत्यूरी राज्य को अवश्य कुछ न कुछ आय होती होगी।

प्रान्तीय प्रशासन-कत्यूरी शासकों द्वारा उत्कीर्ण लेखों में उपरिक नामक अधिकारी का उल्लेख मिलता है। इसकी समानता गुप्त कालीन प्रांतपति से की जा सकती है। प्रांत पति या उपरिक के अधीन अनेक आयुक्त होते थे जो प्रान्तीय प्रशासन की देख रेख करते थे। सम्भवतः इस काल मे पूर्ववर्ती भारतीय साम्राज्यों की भॉति प्रान्तों को भुक्ति कहा जाता था। कत्यूरी अभिलेखों में जय कुल भुक्ति का उल्लेख मिलता है। कत्यूरी वंश के अभिलेखों में कार्तिकेयपुर, टंकणपुर, अन्तरागविषय तथा एशालविषय का उल्लेख मिलता है। जिससे सिद्ध होता है कत्यूरी प्रांत अनेक विषयों में विभक्त था। राज्य में प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी। ग्रामों में राज्य की ओर से महामनुष्यम् तथा मुकद्दम नामक अधिकारी नियुक्त किये गये थे।

अभ्यास प्रश्न-

5-कत्यूरी काल में उत्तराखण्ड का मुख्य व्यवसाय क्या था?

6- इस काल में राज्य में प्रशासन की सबसे छोटी इकाई क्या थी?

10.2.4 चंद वंश

चंद वंश उत्तराखण्ड के इतिहास का एक महत्वपूर्ण राजवंश था। इस वंश का प्रारम्भ 10वीं-11वीं सदी से प्रारम्भ हो गया था, तथा 18वीं सदी तक इसका अस्तित्व उत्तराखण्ड की धरती पर बना रहा । इस वंश का सबसे पुरातन अभिलेख 1317 ई0 में राजा अभय चंद द्वारा प्रचलित किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य परवर्ती चंद राजाओं के समय उत्कीर्ण किये गये अभिलेख भी प्राप्त हुए हैं। ये अभिलेख दानपात्रों के रूप में उत्कीर्ण किये गये हैं। चंद कालीन अभिलेखों के अतिरिक्त इस काल से सम्बन्धित अनेक मंदिर, महल, किले, नौले उत्तराखण्ड की भूमि में यत्र-तत्र प्राप्त हुए हैं।

शासन प्रबन्ध

चंद वंश पूर्वी उत्तराखण्ड का अंतिम क्षेत्रीय राजवंश था। इस वंश के पतन के पश्चात 132 वर्षों तक यहॉ विदेशी शासन रहा जो कि क्रमशः गोरखों तथा अंग्रेजों द्वारा स्थापित किया गया। चंद काल में प्रशासन का मुख्य कार्यकारी अधिकारी राजा होता था। वह अनेक पदाधिकारियों की नियुक्ति करता था जिसकी सहायता से राजा के विभिन्न कार्य सम्पन्न किये जाते थे। चंद राजा वीर, साहसी, धैर्यवान, दानदाता, धार्मिक, विद्या प्रेमी, विद्वानों के आश्रयदाता

होने के साथ-साथ कुशल प्रशासक, कुशल राजनीतिज्ञ थे। चंद राजाओं ने शासन प्रबन्ध में सहायता हेतु अनेक पदाधिकारियों की नियुक्ति की। युवराज, मंत्री, दीवान, राजगुरू, राजपुरोहित, सेनापति, फौजदार, रसोई दरौगा, खजानची, ह्यूपाल काराखेड़ा, राजचेली(राजमहल की दासी) आदि अधिकारियों एवं कर्मचारियों की सहायता से चंद राजा अपनी प्रशासनिक व्यवस्था का संचालन करते थे। उन्होने प्रशासनिक सुविधा हेतु प्रजा को कई भागों में विभाजित किया था यथा- चार बुढ़ा, पॉच थोक, चार चौथानी, छः धरिया, बारह अधिकारी, पंचबिडिया, खतीमन ब्राहमण, पौरी पन्द्रह विश्वा। चंद काल में ग्रामों का प्रशासन ग्राम प्रधान के द्वारा चलाया जाता था उसका कार्य भू-राजस्व वसूलना तथा ग्रामों की सुरक्षा प्रबन्ध की देख-रेख होता था। उसकी सहायता के लिये कोटाल तथा पहरी गॉव की चौकीदारी करता था। पहरी निम्न जाती से सम्बन्धित होता था।

आय के स्रोत

1.भू-राजस्व- भू-राजस्व भूमि के आधार पर निर्धारित किया जाता था। उपजाऊ भूमि पर अन्य भूमि की अपेक्षा अधिक कर लगाया जाता था। भूमि कर कठोरता से वसूला जाता था। यद्यपि प्राकृतिक प्रकोपों का लाभ कृषकों को मिलता था। भू-राजस्व के अतिरिक्त चंद राज्य की आय के अन्य स्रोत राजाओं द्वारा प्रजा पर लगाये गये अन्य विभिन्न प्रकार के कर थे। यथा झूलिया, सिरती बैकर, कूत, भेंट, घोड़ियालों, कुकरियालों, मॉगाकरक, स्यूक गरखानेगी, भुकड़िया बाजदार बाजनियौ, चराई कर, गृह कर इत्यादि। इन करों के अतिरिक्त वन तथा खनिजों से सम्बन्धित कर भी आय के स्रोत थे। भोटान्तिक-तिब्बत व्यापार से भी चंदों को अच्छी आय प्राप्त होती थी।

2.सेना- चंद राज्य के पास शक्तिशाली सेना थी। सेना पैदल तथा घुड़सवारों से मिलकर बनी थी। सेना का मुख्य अधिकारी सेनापति होता था। सेनिकों व सेनाधिकारियों को उनका वेतन जागीर के रूप में दिया जाता था। अपनी शक्तिशाली सेना के कारण ही चन्द राजाओं ने पंवार, डोटी जैसे शत्रु राज्यों को पराजित करने में सफलता प्राप्त की।

3.लोकहितकारी कार्य-चंद राजाओं ने लोकहितकारी कार्यों की ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया। उन्होंने पेय जल हेतु अनेक नौलों का निर्माण कराया। मंदिरों का निमार्ण एवं पुर्ननिर्माण करवाया। फलदार बाग लगवाये। संस्कृत शिक्षा हेतु विद्यालय तथा छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की। विद्वानों को आश्रय दिया। मंदिरों को भू-दान दिया।

अभ्यास प्रश्न-

7-चन्द वंश का प्रारम्भ किस सदी से हुआ?

8-चंद काल में प्रशासन का मुख्य अधिकारी कौन होता था?

9-चंद काल में ग्रामों का प्रशासन किसके द्वारा होता था?

10.2.5 रैका वंश

कत्यूरी वंश की राजशक्ति कमज़ोर पड़ जाने के कारण एक शक्तिशाली शासक के अभाव में कत्यूरी वंश के सामन्तों ने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली, तथा एक स्वतंत्र राजा की भॉति अपनी अधिकृत क्षेत्र में राज्य करने लगे। सीरा व डोटी भी ऐसे ही क्षेत्रों में थे जहॉ कत्यूरी वंश के सामन्तों ने अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित की। इन्हें कत्यूरियों की एक शाखा माना गया तथा रैका नाम से जाना गया। रैका वंश के इतिहास के

सम्बन्ध में जानकारी देने वाले मुख्य स्रोत इस वंश सम्बन्धित ताम्र अभिलेख तथा डोटी एवं सीरा से प्राप्त वंशावलियॉ हैं। रैका वंश के सम्बन्ध में रैकाओं द्वारा लिखित अभिलेख तथा चंद राजाओं के अभिलेख महत्वपूर्ण जानकारी देते हैं। सीरा तथा डोटी के रैका कत्यूरी शासकों की भॉति ब्राहमण धर्म को **मानने वाले थे।**

10.2.6 पंवार वंश

मध्यकालीन उत्तराखण्ड के इतिहास में दो राजवंशो का स्थान महत्वपूर्ण है। पूर्वी उत्तराखण्ड का चंद वंश तथा पश्चिमी उत्तराखण्ड का पंवार वंश। कत्यूरी वंश के पतन के बाद कत्यूरी वंश के वंशजों ने अनेक स्थानों पर अपने-अपने स्वतंत्र राज्यों की स्थापना कर ली। पश्चिमी उत्तराखण्ड में भी कत्यूरी राज्य क्षेत्र अनेक छोट-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। ये छोटे-छोटे राज्य गढ़ कहलाने लगे। गढ़ उस समय संख्या में 52 थे। इनमें एका न था। ये छोटी-छोटी बातों के लिये लड़ते रहते थे। पंवार वंश के राजाओं के गढ़ का नाम चॉदपुर था। पंवार राजा शक्तिशाली थे। इन्होंने अपनी शक्ति के बल पर समस्त गढ़ों को अपने अधीन कर लिया और एक गढ़ देश की स्थापना की। इसी गढ़ देश को गढ़वाल कहा जाता है। पश्चिमी राजाओं के दरबारी कवियों के अनुसार ये राजा चन्द्र वंश से सम्बन्धित थे। जबकि इस वंश के परवर्ती राजाओं ने अपने वंश को पंवार वंश कहा। विशेषकर राजा सुदर्शन शाह ने (1815-1859ई0) को अपने वंश को पंवार वंश कहा।

पंवार वंशीय प्रशासन:

पंवार वंश के राजाओं ने जिस प्रकार पक्षी तिनका-तिनका कर घोंसले का निर्माण करते हैं ठीक वैसे ही 52 गढ़ों को मिला कर पंवार राज्य का निर्माण किया। पंवार राज्य का प्रधान राजा होता था। वह समस्त भूमि, वन तथा खनिज का स्वामी समझा जाता था। वह भूमिदान कर सकता था। पंवार वंशी राजा निरंकुश नहीं थे। वे प्रजा की धार्मिक भावनाओं का सम्मान करते थे। प्रजाहित का ध्यान रखते थे। विद्वानों तथा कलाकारों के संरक्षक भी थे। राजकार्यो में कार्य करने के लिये वे उच्च अधिकारियों की नियुक्ति भी करते थे। राजा द्वारा निम्न उच्चाधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। यथा वजीर, दिवान, फौजदार, दफ्तरी, नेगी, धर्माधिकारी गोलदार, वकील इत्यादि।

राजा के बाद सबसे शक्ति सम्पन्न अधिकारी मुख्तार होता था। वह वजीर या दीवान के समान था। शक्तिहीन राजाओं के काल में वह राज्य का सर्वेसर्वा बन जाता था। दफ्तरी का कार्यालय सचिवालय की भॉति था। वह राज्य के कर्मचारियों की नियुक्ति, स्थानान्तरण, वेतन, पुरस्कार, दण्ड, जागीर आदि से सम्बन्धित होता था। वह राजा के आदेशों का प्रसार भी करता था। फौजदार सैनिक अधिकारी थे। जो परगनों में नियुक्त किये जाते थे। पंवार राज्य में नेगी भी उच्चाधिकारी होते थे। ये कुलीन परिवारों के प्रतिनिधि थे। राजा इनसे महत्वपूर्ण मामलों में परामर्श लेता था। नेगी का पद वंशानुगत था। धर्माधिकारी धर्म विभाग का प्रधान था। वह वंशानुगत पद था। गोलदार का कार्य राज्य के प्रमुख स्थलों राजमहल राजकोष आदि की सुरक्षा करना था। वकील दूत का कार्य करते थे। इन अधिकारियों के अतिरिक्त अनेक कर्मचारी भी होते थे। यथा खवास-खवासिन(सेवक-सेविकाएं), चोपदार यह राजा के साथ चॉदी का दण्ड लेकर चलता था। सोदी राजपरिवार के लिये भोजन की व्यवस्था करता था। चन्ड संदेशवाहक का कार्य करता था। उच्चपदाधिकारियों को वेतन, जागीर के रूप में दिया जाता था। दैनिक व्यय व कर्मचारियों को व्यय के लिये कुछ नकद राशि भी दी जाती थी। कुछ कर्मचारियों को प्रत्येक फसल के समय गॉव से कुछ अन्न नाली के रूप में दिया जाता था।

आय के स्रोत-पंवार राज्य के आय का प्रमुख स्रोत कृषि से प्राप्त भू-राजस्व था। राजा को समस्त भूमि का स्वामी माना जाता था। किसी भी व्यक्ति को भूमि दान में दे सकता था। भूमि रौत, जागीर तथा संकल्प के द्वारा दान में दी जाती थी। रौत उस भूमि को कहा जाता था जो सैनिकों को युद्ध में वीरता तथा साहस दिखाने के लिये दी जाती थी। भूमि अनेक थातों में विभक्त थी। प्रत्येक थात थातवान के अर्न्तगत आता था। वह एक जमींदार की भॉति था। उसका कार्य अपनी थात का भू-राजस्व एकत्रित कर राजकोष में जमा करना था। खायकर एक प्रकार के स्थाई कृषक थे जबकि सिरतान अस्थाई कृषक। ये जमींदार को भू-कर के अतिरिक्त समय-समय पर भेंट, दस्तूर तथा मिठाई के रूप में कर देते थे। भू-राजस्व की वसूली करने वाले अन्य अधिकारी थोकदार प्रधान तथा बूढ़ा थे। थोकदार परगनों से भू-राजस्व एकत्रित करते थे प्रधान ग्रामों से राजस्व की वसूली करते थे। भोटान्तिक भू-राजस्व वसूली करने वाले अधिकारी को बूढ़ा कहा जाता था। थोकदार को समाणा नाम से भी जाना जाता था। सम्पूर्ण राज्य के भू-राजस्व के दस्तावेज तथा आकंड़े राज्य की राजधानी में दफ्तरी के पास रहते थे। भूमि नाप की इकाई नाली थी। भू-राजस्व की दर उपज के 1/3 भाग से 1/2 भाग तक थी। साधारण भूमि से भू-राजस्व उपज का 1/3 भाग तथा उपजाऊ भूमि से भू-राजस्व उपज का 1/2 भाग लिया जाता था। कुल 68 प्रकार के आय के अन्य स्रोत थे जिनमें से 36 कर थे तथा 32 देय।

इस प्रकार पंवार राजाओं ने एक व्यवस्थित प्रशासन की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की। निरन्तर युद्धों में उलझे रहने पर भी राज्य का प्रशासन सुचारू रूप से चलता रहता था।

10-पंवार वंश में खायकर किन्हें कहा जाता था?

11-पंवार वंश में भूमि नाप की इकाई क्या थी?

10.2.7 गोरखा शासन

गोरखा राज्य के उद्भव से पूर्व नेपाल अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था। यथा भाट गॉव वेलपा, डूलू, डोटी, जुमला काठमांडू या कांतिपुर इत्यादि। इन राज्यों में किरात एवं वैश्य वंश के राजा राज्य करते थे। चंद राज्य पर आक्रमण के समय गोरखों का राजा रणबहादुर शाह(1777-1804ई0) था। इसके सत्ता प्राप्त करने तक गोरखा राज्य में नेपाल के अनेक छोटे-छोटे राज्यों का समावेश हो चुका था। एक शक्तिशाली गोरखा सेना का संगठन भी हो चुका था। सन1790 ई0 तक गोरखा राजा ने चंद राजा द्वारा पदच्युत हर्षदेव जोशी से भी समझौता कर उसे अपनी सहायता हेतु मना लिया। चंद राज्य पर विजय प्राप्त करने के पश्चात 1791ई0 में गोरखा सेना ने पंवार राज्य पर आक्रमण कर दिया। गोरखा सेना पंवार राज्य पर विजय बनाने की योजना बनाती उसी समय चीन ने नेपाल पर आक्रमण किया गया। अतः गोरखा सेनापतियों ने पंवार राजा प्रद्युम्मन शाह से श्रीनगर की सन्धि कर ली। यह सन्धि 1792 में हुई। सन्धि की शर्तानुसार पंवार राजा को नेपाल की अधीनता स्वीकार कर उसे कर देना था। सन1803 ई0 तक पंवार राज्य की स्थिति अत्यन्त कमजोर हो चुकी थी। उसे प्राकृतिक प्रकोपों को भी सहना पड़ा। गोरखा सेना ने सुअवसर जान 1803 ई0 में पंवार राज्य में आक्रमण कर दिया और श्रीनगर पर अधिकार कर लिया।

गोरखा प्रशासन:गोरखों का उत्ताखण्ड में शासन 1815 ई0 तक रहा। गोरखों ने उत्तराखण्ड को सैन्य शक्ति के द्वारा विजित किया था। अतः उनका प्रशासन भी सैन्य प्रशासन के द्वारा नियंत्रित होता था। फिर भी उन्होंने नेपाल तथा उत्तराखण्ड में प्रचलित शासन व्यवस्था के मिश्रित रूप को अपनाया। गोरखा शासन सैनिक शासन था। उसके

सभी उत्तराधिकारी सेना सम्बन्धित होते थे। गोरखा सेना एक शक्तिशाली सेना थी। अपनी शक्ति के द्वारा ही उन्होंने विस्तृत भू-भाग पर अधिकार करने में सफलता प्राप्त की। गोरखा सेना में प्रतिदिन परेड, उपस्थिति तथा प्रशिक्षण की व्यवस्था थी। सैनिक सामान्यतः एक वर्ष के लिये ही नियुक्त किये जाते थे। नियुक्ति काल में सैनिक जागरिया कहलाते थे। एक वर्ष बाद नई नियुक्तियॉ पुरानों के स्थान पर की जाती थी। जिन सैनिकों को एक वर्ष बाद परिवर्तित किया जाता था। इन्हें दो वर्षों तक सेना में नहीं लिया जाता था। ये सैनिक ढाकरिया कहलाते थे। आपात काल में इन्हें पुनः सैन्य सेवा में रख लिया जाता था। अस्थायी सेना में गोरखा लोंगो से भिन्न लोगों की नियुक्ति की जाती थी। गोरखा जिन क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करते थे उन क्षेत्रों की जनता से भी सैनिकों की भर्ती कर लेते थे। सैनिक विजित क्षेत्र में शान्ति एवं सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान देते थे। अस्थाई सेना से कभी उच्च एवं निम्न अधिकारी नहीं बनाया जाता था। गोरखा प्रशासन सैनिक प्रशासन था अतः उसका न्याय प्रशासन भी सैनिक न्याय व्यवस्था पर आधारित था। मामलों की सुनवाई विचारी नामक अधिकारी द्वारा की जाती थी। विचारी की सहायता के लिये सेना होती थी। विचारी निरंकुश होता था। इस पर राजा के नियंत्रण की कोई व्यवस्था नहीं थी।

आय के स्रोत-गोरखा शासन के लिये मजबूत आर्थिक स्थिति का होना आवश्यक शर्त थी। गोरखा अधिकारी अधिकांशतः युद्धों में ही अपना समय व्यतीत करते थे। अतः उनके पास नई राजस्व नीति निर्मित करने का समय नहीं था। भू-राजस्व वसूलने वाले अधिकारी भी पूर्व काल की भॉति रहे। राजस्व की वसूली में कमीण, सयाणा एवं ग्राम के प्रधान का महत्व बना रहा। भूमिकर का निर्धारण करते समय कृषक के हित के बजाय सैनिकों के हित का ध्यान रखा जाता था। सैनिकों को वेतन देने के लिये मुख्य स्रोत भू-राजस्व ही था। जो लोग भूमि-कर देने में असमर्थ होते थे उन्हें दास बना कर बेच दिया जाता था।

अन्य स्रोत- गोरखा शासकों द्वारा भू-राजस्व के अतिरिक्त अन्य प्रकार के अनेक कर भी लिये जातें थे। पूर्व काल मे प्रचलित कर समाप्त कर दिये गये थे। इनके स्थान पर नये कर लगाये गये। कुछ प्रमुख कर निम्नलिखित थे- जैसे मौकर(गृहकर), बुनाई कर, घी कर, सलामी या नजराना जो उच्चाधिकारी को उपहार स्वरूप दिया जाता था। गोरखा शासन में लोगों को दास बना कर बेचा जाता था जिसकी आय भी गोरखों की प्रमुख स्रोत थी। गोरखा शासन में उत्तराखण्ड के अनेक पुरूष स्त्रियों को दास बना कर बेचा गया था।

इस प्रकार गोरखा शासन में सैनिक शासन होने के कारण गुणों की अपेक्षा दुर्गुण अधिक थे। गोरखा सैनिकों के अत्याचारों से जनता पीड़ित थी। सैनिक स्वयं लूटमार तथा व्यभिचार में लिप्त रहते थे। गोरखा शासन की न्याय तथा राजस्व व्यवस्था अन्यायपूर्ण थी।

4 गोरखा शासन किस प्रकार का शासन था?

5 गृहकर को गोरखा प्रशासन में क्या कहते थे?

10.3 अंग्रेजी शासन

अप्रेल 1815 ई0 में उत्तराखण्ड क्षेत्र के गोरखा प्रशासक चौतरिया बमशाह तथा अंग्रेजो के प्रतिनिधि ई0 गार्डनर द्वारा एक सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर किये गये। इस प्रकार उत्तराखण्ड का राज्य भी अंग्रेजों के अन्तर्गत आ गया। सम्पूर्ण उत्तराखण्ड पर अंग्रेजों का शासन स्थापित हो गया। उत्तराखण्ड एक बार फिर विदेशी शासकों के चंगुल में

जा फसॉ। इस स्थिति के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि आसमान से गिरे खजूर पर अटके। अंग्रेजों ने सम्पूर्ण उत्तराखण्ड के दो भाग कर दिये। एक भाग को अन्य देशी रियासतों की भॉति टेहरी रियासत के रूप में जाना गया। दूसरा भाग अंग्रेजी सरकार के अधीन हो गया। टेहरी रियासत पूर्व पंवार वंश के वंशजो के अधीन कर दी गयी। टेहरी रियासत की राजधानी टेहरी थी। टेहरी रियासत नाममात्र को पंवार वंश अधीन थी उसका वास्तविक शासन तो अंग्रेजों के द्वारा ही चलाया जाता था। टेहरी रियासत का प्रथम राजा सुदर्शन शाह था। जिसने 1815ई0 से 1859 तक शासन किया। उसके वंशजों ने 1949 ई0 तक टेहरी रियासत में शासन किया। टेहरी रियासत में अंग्रेजी सरकार का एक ऐजेन्ट भी नियुक्त किया जाता था। प्रारम्भ में यह ऐजेन्ट कुमाऊॅ का कमीश्नर होता था परन्तु 1825 ई0 से 1842 ई0 तक देहरादून जिले के डिप्टी कमीश्नर को टेहरी रियासत में सरकार का ऐजेन्ट बनाया गया। परन्तु 1842 ई0 में पुनः कुमाऊॅ कमीश्नर को यह जिम्मेदारी सौंपी गयी। टेहरी रियासत को 1937ई0 में पंजाब हिल स्टेट ऐजेन्सी के साथ संयुक्त कर दिया गया था। 1949 ई0 में टेहरी रियासत का भी अन्य भारतीय रियासतों की भॉति विलीनीकरण कर दिया गया तथा टेहरी रियासत के राजा को पेन्शन दे दी गयी। टेहरी रियासत के अतिरिक्त सम्पूर्ण उत्तराखण्ड अंग्रेजों के द्वारा शासित किया गया। इसे प्रारम्भ में बंगाल प्रेसिडेन्सी से सम्बद्ध किया गया था। उत्तराखण्ड में प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिये उसे कमीश्नरियों में बॉटा गया था। कमीश्नरियों का प्रमुख कमीश्नर होता था। उसकी सहायता के लिये डिप्टी कमीश्नर, डिप्टी कलेक्टर, तहसीलदार, नायब तहसीलदार, पटवारी, थोकदार, प्रधान, सयाणा आदि अधिकारी होते थे। उत्तराखण्ड में कमीश्नर का पद एक शक्तिशाली पद था। उत्तराखण्ड के प्रारंभिक कमीश्नरों ने तो स्वतंत्र रूप से निरंकुश शासक की भॉति राज्य किया। प्रारम्भ में उत्तराखण्ड एक ज़िला था परन्तु 1839 ई0 में गढ़वाल ज़िले का निर्माण किया गया। इस प्रकार उत्तराखण्ड में दो ज़िले कुमाऊॅ तथा गढ़वाल(ब्रिटिश) हो गये। कालांतर में इनमें और वृद्धि की गयी यथा तराई ज़िला 1842 व नैनीताल ज़िला 1891। कुमाऊॅ कमीश्नरी के प्रारम्भिक कमीश्नर बहुत शक्तिशाली थे। हैनरी रामजे तक यह स्थिति बनी रही। रामजे के बाद कमीश्नरों की स्थिति पूर्व की भॉति न रही वह केवल प्रशासक बने रहे। इन्हें अनेक न्यायिक व प्रशासनिक अधिकार प्राप्त थे। सन1815 ई0 से 1947 ई0 तक उत्तराखण्ड में अनेकों कमीश्नरों का प्रशासन रहा।

10.4 उत्तराखण्ड में ब्रिटिश राजतंत्र का उदय

उत्तराखण्ड में इस समय हैनरी रामजे का शासन चल रहा था। 1857 की क्रान्ति का प्रभाव अभी तक उत्तराखण्ड की धरती पर नहीं पड़ा था। इस पर अंग्रेजी प्रशासन सतर्क था। अपने प्रशासनिक क्षेत्र में उन्होंने मार्शल लॉ लगा दिया। उत्तराखण्ड के कुछ इलाकों में छोटी-छोटी घटनाएं घटित होने लगी। 17 सितम्बर 1857 में आन्दोलनकारियों द्वारा हल्द्वानी पर अधिकार कर लिया गया। परन्तु कैप्टन मैक्सवल ने उन्हें पराजित कर दिया। बाद में 16 अक्टूबर को आन्दोलनकारी हल्द्वानी पर पुनः अधिकार करने में सफल रहे। परन्तु इस बार फिर उन्हें अंग्रेजी सेना ने खदेड़ दिया। उत्तराखण्ड का पड़ोसी क्षेत्र बरेली 1857ई0 में क्रान्ति का प्रमुख केन्द्र रहा। सन1858 ई0 में भारत का शासन कम्पनी सरकार से जाता रहा। अब भारत ब्रिटिश सरकार के हाथों प्रत्यक्ष रूप से आ गया। महारानी विक्टोरिया को भारत के साम्राज्ञी घोषित कर दिया गया। साथ में भारतवर्ष में सुशासन का आश्वासन भी दिया गया। इस प्रकार सन1858 ई0 से उत्तराखण्ड भी साम्राज्ञी के अधीन आ गया।

10.5 सारांश

उत्तराखण्ड की शासन व्यवस्था में यहॉ के शासकों की शासन व्यवस्था व उनकी प्रशासनिक संरचना का प्रभाव आज भी देखने को मिलता है। उत्तराखण्ड क्षेत्र का प्राचीनतम् उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में मिलता है। पांचवी सदी ईसा

पूर्व में कई बौद्ध हरिद्वार क्षेत्र में वास करते थे। चौथी सदी ईसा पूर्व में चन्द्रगुप्त मौर्य के हाथों नन्दों की पराजय के बाद यह क्षेत्र मौर्य साम्राज्य का अंग बन गया। इसके बाद उत्तराखण्ड में कई राजवंश आये। उनकी शासन प्रणालियों व प्रशासनिक व्यवस्थाओं ने यहॉ के सामाजिक ताने बाने में अपना प्रभाव छोड़ा जो आज भी हमें देखने को मिलता है। हमने अपने अध्ययन में पाया कि उत्तराखण्ड में प्रारंभ के राजवंशों में कुणिन्दों का उल्लेख मिलता है। कुणिन्द शासकों की सत्ता स्वतंत्र रही है। इसके बाद पौरव वंश का उल्लेख आता है। जिनकी प्रशासनिक व्यवस्था बहुत मजबूत थी। पौरव वंशीय शासक धार्मिक प्रवृति के थे तथा शासन को धार्मिक ग्रन्थों व स्मृतियों के अनुसार चलाने में विश्वास करते थे। उत्तराखण्ड के महत्वपूर्ण राजवंशों मे कत्यूरी शासन रहा है। कत्यूरी शासन सुव्यवस्थित व जनहितकारी था। इसके बाद चंद, पंवार, गोरखा व अंग्रेजी शासन का प्रभाव उत्तराखण्ड में रहा जिसने उत्तराखण्ड की राजनीतिक चेतना को दिशा देने का काम किया।

10.6 शब्दावली

विकेन्द्रीकरण - प्रान्तों या प्रेदेशों के अधिकार में सत्ता का आवंटन करना।

ग्रेन - वजन नापने की इकाई।

भोटान्तिक व्यापार - भोटिया जनजाति के साथ होने वाला क्रय-विक्रय

अधिवेशन - सम्मेलन

उत्कीर्ण - उकेरे हुए या धातुओं में छपे हुए

10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ताम्र धातु 2. पाणिनी 3. तीन 4. सिचाई वाली भूमि 5. कृर्षि 6. ग्राम 7. 10-11वीं सदी 8. राजा 9. ग्राम प्रधान 10. एक प्रकार के स्थाई कृषक 11. नाली 12. सैनिक शासन 13. मौकर।

10.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. उत्तराखण्ड का इतिहास - शिव प्रसाद डबराल
2. कुमाऊॅ का इतिहास - बद्री दत्त पाण्डे
3. पाणिनी कालीन भारतवर्ष - बासुदेव शरण अग्रवाल
4. केदार खण्ड - शिवानंद नौटियाल
5. कुमाऊॅनी भाषा साहित्य - त्रिलोचन पाण्डे

10.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. गढ़वाल का इतिहास - पं0 हरिकृष्ण रतूड़ी
2. स्वतंत्रता संग्राम में कुमाऊॅ गढ़वाल का योगदान - धर्मपाल सिंह मनराल
3. उत्तराखण्डः इतिहास एवं संस्कृति - घनश्याम जोशी, चन्द्रशेखर दुम्का

10.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. कुणिन्द राजवंश के प्रशासन पर निबन्ध लिखिये?
2. पौरव वंश में शासन प्रबन्ध किस प्रकार से होता था?
3. कत्यूरी काल की केन्द्रीय प्रशासन व्यवस्था के विषय में जानकारी दें?
4. चन्द वंश व उसके शासन प्रबन्ध पर एक लेख लिखिये?
5. पंवार वंशीय प्रशासन का विस्तृत वर्णन करिए?
6. गोरखा राज्य में प्रशासन सम्बन्धी व्यवस्था को स्पष्ट कीजिए?

इकाई-11 उत्तराखण्ड में राज्य प्रशासनः एक पारिस्थिकी विश्लेषणइकाई की संरचना

11.0 प्रस्तावना
11.1 उद्देश्य
11.2 उत्तराखण्ड में आरम्भिक पुलिस व्यवस्था
11.2.1 तहसीलें
11.2.2 कमीश्नर
11.2.3. तहसीलदार
11.2.4 कानूनगो
11.2.5 पटवारी
11.2.6 थोकदार, परगने और पट्टीयॉं
11.3 स्वतंत्रता के बाद उत्तराखण्ड का प्रशासनिक ढॉचा
11.4 उत्तराखण्ड राज्य गठन के बाद प्रशासनिक संरचना
11.4.1 विशेष राज्य की श्रेणी
11.4.2 राज्य में आरक्षण की स्थिती
11.5 हिमालयी राज्यों की तुलना
11.6 सारांश
11.7 शब्दावली
11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
11.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.11निबंधात्मक प्रश्न

11.0 प्रस्तावना

इससे पूर्व इकाई-1 में हमने उत्तराखण्ड के प्रशासनिक इतिहास पर विस्तृत चर्चा की और उत्तराखण्ड के सभी राजवंशों व उनके प्रशासनिक संगठनों व उनके कार्य प्रणालियों को समझने का प्रयास किया। पिछले अध्याय में हमने जाना कि उत्तराखण्ड क्षेत्र का प्राचीनतम् उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में मिलता है। पांचवी सदी ईसा पूर्व में कई बौद्ध हरिद्वार क्षेत्र में वास करते थे। चौथी सदी ईसा पूर्व में चन्द्रगुप्त मौर्य के हाथों नन्दों की पराजय के बाद यह क्षेत्र मौर्य साम्राज्य का अंग बन गया। इसके बाद उत्तराखण्ड में कई राजवंश आये। उनकी शासन प्रणालियों व प्रशासनिक व्यवस्थाओं ने यहाँ के सामाजिक ताने बाने में अपना प्रभाव छोड़ा जो आज भी हमें देखने को मिलता है।

उत्तराखण्ड की पारिस्थिकी हिमालयी प्रर्वतन-प्रक्रिया के महत्वपूर्ण एवं अत्यन्त जटिल इतिहास को प्रस्तुत करती है। हिमालय की पारिस्थितिकी के अध्ययन को हिमालय से अलग करके नहीं समझा जा सकता है। राज्य का प्रथक नियोजन व प्रबंधन प्रशासनिक इकाई के गठन का सशक्त आधार है। उत्तराखण्ड राज्य के गठन की अवधारणा भी यही थी कि भौगोलिक क्षेत्रफल के आधार पर बड़े राज्यों में समुचित प्रबन्ध नहीं हो पाता है। बड़े राज्य अपने जातीय-सांस्कृतिक समुदायों की आकांक्षाएं पूरी नहीं कर पाते हैं। उत्तर-प्रदेश का पर्वतीय क्षेत्र अपने आप में भाषा, संस्कृति सहित विभिन्न भौगोलिक विशिष्टताएं लिये हुए है। इसका समुचित प्रबन्ध अलग राज्य बनने से ही हो सकता था।

इस क्षेत्र की विषम भौगोलिक परिस्थिति को देखते हुए जिस प्रशासनिक ढाँचें को अंग्रेजी शासन ने बनाया और जो आज भी लगभग उसी तरह उत्तराखण्ड में लागू है। उस संरचना को भी हम इस अध्याय में अध्ययन करेंगे। अंग्रेजी शासन में प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिये उत्तराखण्ड में छोटी सी प्रशासनिक इकाई का सृजन किया गया उसे पटवारी हल्का कहा गया। जनता की सुविधा व प्रशासन की कुशलता के लिये पटवारी को राजस्व व पुलिस दोनों के अधिकार दिये गये। यह व्यवस्था आज भी पर्वतीय क्षेत्र में मौजूद है। जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ के लिये पूर्व से ही पृथक व्यवस्थाएं थी। उत्तराखण्ड के इन सभी प्रशासनिक पहलूओं पर हम इस इकाई में चर्चा करेंगे।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई से हम जान पायेंगे कि-

1. ब्रिटिश काल में उत्तराखण्ड की प्रशासनिक संरचना क्या थी।
2. उत्तराखण्ड की वर्तमान प्रशासनिक स्थिति क्या है।
3. राज्य की विशेष परिस्थितियाँ क्या हैं जिस कारण ये भारत के अन्य राज्यों से भिन्न है।
4. वर्तमान में उत्तराखण्ड राज्य की स्थिति क्या है।
5. राज्य की प्रशासनिक ईकाइयाँ कौन-कौन सी हैं तथा वो अपना काम कैसे करती है।
6. प्रशासनिक तंत्र की कार्य प्रणाली क्या है।

11.2 उत्तराखण्ड में आरम्भिक पुलिस व्यवस्था

ब्रिटिश काल में इस पर्वतीय राज्य को लेकर अंग्रेजो की नीति भिन्न थी। ट्रेल ने इस व्यवस्था पर विशेष टिप्पणी करते हुए कहा कि- '' इस प्रांत में चोरी का नितान्त अभाव और लोगों की परम नैतिकता को देखते हुए किसी भी प्रकार की पुलिस व्यवस्था अनावश्यक समझी जायेगी। '' पर्वतीय क्षेत्र में पुलिस प्रशासन का दायित्व मुख्यरूप से पटवारी, पेशकार आदि राजस्व अधिकारियों के हाथों में छोड़ दिया गया। अपने कार्य में उन्हें थोकदार व पधानों से सहायता मिलती थी। कुमाऊँ कमिश्नर रामजे ने इस व्यवस्था को संतोषजनक बताते हुए कहा कि- मैं समझता हूँ कि हमारा ग्रामीण पुलिस प्रशासन पूरे भारतवर्ष में सर्वोत्तम है। इसमें परिर्वतन करना समझदारी नहीं होगी। ग्रामीण पुलिस व्यवस्था बहुत कम खर्चीली है, क्योंकि सरकार को उस पर कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ता है (भाबर पुलिस को छोड़ कर) साथ ही वेतनभोगी पुलिसकर्मियों के खर्चे से होनी वाली चिन्ताएं और मुसीबतें भी यहाँ पर नहीं हैं। ये तथ्य उसके पक्ष में हैं। ये व्यवस्था आज भी अधिकांश पर्वतीय हिस्सों में लागू है। आज भी पर्वतीय क्षेत्रों में पटवारी संचालित पुलिस प्रशासन व्यवस्था है।

पुलिस प्रशासन के लिये समस्त कुमाऊँ जिला एक पुलिस अधीक्षक के अधीन था। उसकी सहायता के लिये सहायक पुलिस सुपरिन्टेंडेंट, इन्सपेक्टर और सब-इन्सपेक्टर होते थे। पुलिस चौकियाँ, हैड कान्सटेबल के अधीन होती थी। 1838 में कुमाऊँ जिले का पुनर्गठन कर गढ़वाल और कुमाऊँ दो जिलों का निर्माण किया गया। उनके मुख्यालय क्रमशः श्रीनगर और अल्मोड़ा में स्थापित किये गये। गढ़वाल राज्य का वह भाग जो अंग्रेजों ने गढ़वाल नरेश से हस्तगत किया था 1815 में कुमाऊँ जिले का एक परगना बना दिया गया था। दोनों नवगठित जिलों को सीनियर असिस्टेंट कमीश्नर के अधीन कर दिया गया। गढ़वाल जिले के मुख्यालय को 1840 में श्रीनगर से पौढ़ी तब्दील कर दिया गया। 1842 में भाबर और तराई क्षेत्र को, जिसे कि अच्छी पुलिस व्यवस्था के उदेश्य से कुमाऊँ जिले से अलग कर दिया गया था पुनः कुमाऊँ में शामिल कर दिया। 1891 में कुमाऊँ जिले को अल्मोड़ा और नैनीताल दो जिलों में बॉट दिया गया और इन नवगठित जिलों के प्रधान प्रशासक को डिप्टी कमीश्नर कहा गया। इस नये जिले के निर्माण का मुख्य कारण कुमाऊँ जिले का आकार घटा कर उसे प्रशासनिक दृष्टि से अधिक सुविधा जनक बनाना था।

11.2.1 तहसीलें -- अंग्रेजी शासन काल में तहसील प्रशासनिक ढाँचें की एक महत्वपूर्ण इकाई थी। आरंभ में कुमाऊँ जिले की सात तहसीलें अल्मोड़ा, काली कुमाऊँ, पाली-पछौं, कोटा, सीर, फल्दाकोट और रामनगर में स्थापित थी। गढ़वाल तब कुमाऊँ जिले का एक परगना था और 1815 में वहाँ पर श्रीनगर और कैन्यूर(चाँदपुर) में दो तहसीलें थी। 1823 में प्रशासनिक खर्चे में कमी करने के उदेश्य से कुमाऊँ जिलें में कुल चार तहसीलों का प्रावधान किया गया। हजूर और काली कुमाऊँ, कुमाऊँ क्षेत्र में और श्रीनगर और चाँदपुर गढ़वाल क्षेत्र में । इस प्रकार जिलों और तहसीलों के संगठन में समय-समय पर फेर बदल होते रहे।

11.2.2 कमिश्नर--अंग्रेजी शासन के दौरान एक मात्र कमिश्नर ही ऐसा अधिकारी था जो सरकार का प्रतिनिधित्व करता था। उसके कार्य में कानून व व्यवस्था, पुलिस, कारागार, न्यायिक कार्य, राजस्व, यातायात, उत्पाद शुल्क, वन, प्रशासन आदि शामिल थे। 1894 तक उसे मृत्यु दण्ड देने का अधिकार भी था। 1894 से 1914 तक कमिश्नर ने सेशन जज का कार्य भार भी सम्भाला और तभी वहाँ पर एक अलग अदालत की भी स्थापना हुई। धीरे-धीरे मैदानी प्रदेश के नियम भी वहाँ लागू हो गये। प्रशासन की दृष्टि से देहरादून को एक अलग श्रेणी में रखा गया था। सन1815 में उसे सहारनपुर जिले में शामिल किया गया था। 1815 में देहरादून को कुमाऊँ के कमीश्नर के अधीन

कर दिया गया क्यों कि मैदानी क्षेत्रों के कायदे कानून देहरादून के पर्वतीय लोगों के लिये अनुपयोगी थे। सुपरिन्टेंडेंट देहरादून उस समय जिले का सर्वोच्च अधिकारी था। 1 मई 1829 को देहरादून को मेरठ डिवीजन में शामिल कर दिया गया। 1947 में सुपरिन्टेंडेंट का पदनाम जिला मजिस्ट्रेट अथवा कलेक्टर में बदल दिया गया। वो राजस्व और अन्य करों की वसूली और कानून व्यवस्था बनाये रखने के लिये उत्तरदायी था। कलेक्टर का दफ्तर कलक्ट्रेट कहलाता था, जो कि जिला मुख्यालय में स्थित होता था। कलक्ट्रेट में रिकार्ड रूम, कोर्ट स्टाफ, तहसील स्टाफ और लैन्ड रिकार्ड आफिस शामिल होते थे। आफिस सुपरिन्टेंडेंट सभी कर्मचारियों का मुखिया होता था। प्रशासन की यह पद्धति मामूली परिर्वतन के साथ आज भी लागू है।

11.2.3. तहसीलदार- जिलों को राजस्व वसूली के लिये तहसीलों में बाँटा गया। इसका कार्यभार तहसीलदार को सौंपा गया। तहसीलदार के दफ़्तर के मुख्य कर्मचारियों में मोहरिर माल, न्यायिक मोहरिर, अहलमद, नाज़िर, अमीन और कुर्क अमीन शामिल थे। रजिस्ट्रार कानूनगो भूमि सम्बन्धी दस्तावेजों के संकलन और रखरखाव के लिये जिम्मेदार था। तहसील के प्रधान अधिकारी को सब-डिवीजनल आफिसर(एस.डी.ओ.) कहते थे। एस.डी.ओ. को सब-डिवीजनल मजिस्ट्रेट(प्रथम श्रेणी) और असिस्टेंट कलेक्टर(प्रथम श्रेणी) भी कहते थे। एस.डी.ओ. का कार्य शान्ति और व्यवस्था सम्बन्धी दायित्वों के अलावा राजस्व सम्बन्धी व अन्य आपराधिक मामले निपटाना, भूमि के नक़्शे व दस्तावेज तैयार करना तथा राजस्व का निर्धारण और वसूली करना था।

11.2.4 कानूनगो -कानूनगो राजस्व सम्बन्धी मामलों में परगने का सर्वोच्च अधिकारी होता था। परगना तहसील से छोटी प्रशासनिक इकाई थी। हालांकि अंग्रेजों के आने से पहले भी उत्तराखण्ड परगनों में विभक्त था। कानूनगो के पास पुलिस अधिकार होते थे। राजस्व भी उनके अधीन होती थी। इतिहास में इस बात की जानकारी भी मिलती है कि राजाओं के शासन काल में कानूनगों पद पर कुछ परिवारों का वंशानुगत अधिकार माना जाता था। आज कानूनगों पद पूर्ण रूप से सरकारी हो गया है। जो राजकीय स्तर पर महत्वपूर्ण कार्यों को अपने अधिकारियों के निर्देशानुसार सम्पन्न करके अपना योगदान दे रहे हैं।

11.2.5 पटवारी- परगना कई पट्टियों में विभक्त होता था। उत्तराखण्ड में राजवंश काल में पट्टी एक प्रशासनिक इकाई थी। अंग्रेजी शासन काल में एक अंग्रेज अधिकारी वैकेट ने पटवारियों के लिये सुविधाजनक मण्डल या हल्का बनाने के उद्देश्य से इसका पुनर्गठन किया। पटवारी पट्टी का राजस्व अधिकारी था। उसे पुलिस के कुछ अधिकार भी सौंपे गये थे। पटवारी के दफ़्तर को पटवारी चौकी भी कहा जाता था। वहीं उसका निवास भी होता था। उसके क्षेत्र में यदि कोई आपराधिक घटना होती थी तो उसकी सूचना तुरन्त पटवारी को दी जाती थी। पटवारी पद की स्थापना सन1819 में कमीश्नर ट्रेल ने लिखवाड़ के स्थान पर की थी। लिखवाड़ पहले कानूनगो के सहायक के रूप में काम करते थे। हर पट्टी में कई गाँव होते थे ।गाँवों के मुखिया को पधान अथवा मालगुजार कहते थे, जिसका कार्य राजस्व सम्बन्धी एवं पुलिस दायित्वों को निभाना होता था। जिसके बदले में उसे थोड़ी ज़मीन आवंटित की जाती थी जिसे पधानचारी कहते थे। पधान एक सहायक को भी नियुक्ति देता था जिसे कोतल कहते थे। आज भी उत्तराखण्ड में परगने पट्टियों में विभक्त हैं तथा पटवारी पर्वतीय क्षेत्रों में आज भी एक महत्वपूर्ण प्रशासनिक पद है। वो राजस्व कार्यो के साथ-साथ पुलिस का काम भी उसी भाँति कर रहा है जैसे अंग्रेजी शासन काल में कर रहा था।

11.2.6 थोकदार, परगने और पट्टीयॉं -थोकदार एक महत्वपूर्ण व्यक्ति रहा है। राजाओं के शासनकाल में थोकदार एक मंत्रीवर्गीय अधिकारी होता था। थोकदार सामान्यतः वंशागत होता था। थोकदार का कार्य पुलिस और प्रशासनिक दायित्व निभाना होता था। अंग्रेजों ने थोकदार व्यवस्था को उपयोगी बनाने के उद्देश्य से थोकदार पट्टा

देने की प्रथा शुरू की, जिसमें थोकदार के अधीन आने वाले गाँव ,उसके दायित्व व उसकी फीस का उल्लेख होता था। 'हक़ थोकदारी' और दस्तूर थोकदारी ऐसे शुल्क थे जो गाँव के पधान थोकदारों को देते थे। थोकदारों को सयाना, कुमीन अथवा बूढ़ा कहा जाता था। 1821 में राजस्व वसूली की जिम्मेदारी थोकदारों के बजाय मालगुजारों अथवा पधानों को दे दी गयी। 1856 में उनके पुलिस अधिकार भी छीन लिये गये परन्तु अंग्रेजी शासन के अंत तक थोकदारों का पहाड़ी समाज में एक विशिष्ठ स्थान बना रहा।

उत्तराखण्ड के राजवंशीय काल में परगने और पट्टियाँ थीं, जिन्हें भली प्रकार से संगठित नहीं किया गया था। प्रशासनिक सुविधा के लिये 1821 में उन्हें पुनर्गठित करने का प्रयास किया गया। परिणामस्वरूप कई पट्टियों का विलय कर दिया गया व कई परगनों को समाप्त कर दिया गया। कुमाऊँ क्षेत्र में परगनों की संख्या 19 से घटाकर 14 कर दी गयी। गढ़वाल क्षेत्र में यह संख्या 17 से घटाकर 12 कर दी गयी। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि उचित भूमि व्यवस्था के लिये अंग्रेजी सरकार ने 1815 से 1928 के बीच गढ़वाल में 12 और कुमाऊँ में 10 बन्दोबस्त किये। टिहरी राज्य में इस प्रकार के 5 बन्दोबस्त किये गये। स्वतंत्रता के बाद उत्तराखण्ड क्षेत्र में केवल एक बन्दोबस्त हुआ है।

राजस्व प्रबन्ध के लिये अल्मोड़ा जिले के 12 परगनों को 4 तहसीलों में संगठित किया गया था। रानीखेत अथवा पल्ली तहसील, अल्मोड़ा, चम्पावत और पिथौरागढ़। जौहार, दर्मा, सीरा, सोर, अस्कोट के परगने तथा अठिगाँव बल्ला और अठिगाँव पल्ला परगनों के कुछ गाँवों को मिला कर 1960 में पिथौरागढ़ जिला संगठित किया गया। इस नवनिर्मित जिलें में 5 तहसीलों की व्यवस्था की गयी। मुनस्यारी, धारचूला, डीडीहाट, पिथौरागढ़ एवं चम्पावत।

नैनीताल जिले के राजस्व प्रबन्ध के लिये 4 परगनों को 6 तहसीलों में संगठित किया गया। नैनीताल, हल्द्वानी, किच्छा, बाजपुर, खटीमा और काशीपुर। 1997 में तराई और भाबर के परगनों और काशीपुर पट्टी को मिला कर उधम सिंह नगर जिले का गठन किया गया। इस नवगठित जिले की 5 तहसीलों में काशीपुर, बाजपुर, रूद्रपुर, किच्छा और खटीमा शामिल हैं।

1823 में अंग्रेजों ने अपने अधीनस्थ गढ़वाल को 11 परगनों में संगठित किया व भाबर को इसका 12वाँ परगना बनाया। गढ़वाल जिलें में राजस्व व्यवस्था के लिये 12 परगनों को चार तहसीलों में विभाजित किया गया था। पौढ़ी, लैन्सडाउन, थैलीसैण और कोटद्वार। टिहरी रियासत 1949 में भारतीय संघ में शामिल हुयी। उसमें 11 परगने शामिल थे। राजस्व व्यवस्था के लिये इन परगनों को टेहरी, प्रतापनगर, देवप्रयाग तहसीलों में बाँटा गया। 1960 में रवाई और उत्तरकाशी परगनों को मिला कर उत्तरकाशी जिले का निर्माण किया गया।

11.3 स्वतंत्रता के बाद उत्तराखण्ड का प्रशासनिक ढाँचा

आजादी के समय कुमाऊँ मण्डल में अल्मोड़ा, नैनीताल और गढ़वाल जिले थे। 1949 में टेहरी रियासत को एक जिला बना कर कुमाऊँ मण्डल में शामिल कर दिया गया। यह व्यवस्था 1960 तक चली। उस दौरान चीन के साथ बिगड़ते सम्बन्धों के कारण सुरक्षा के दृष्टि से टेहरी, गढ़वाल और अल्मोड़ा के सीमान्त प्रदेशों को क्रमशः उत्तरकाशी, चमोली और पिथौरागढ़ जिलों में संगठित किया गया। इस प्रकार कुमाऊँ मण्डल में 7 जिले हो गये। जिलों की बढ़ती संख्या को देख कर 1970 में गढ़वाल मण्डल की स्थापना की गयी। जिसमें उत्तरकाशी, चमोली, गढ़वाल और टेहरी जिले शामिल किये गये। 1975 में देहरादून जिले को भी गढ़वाल मण्डल में मिला दिया गया। 1997 में गढ़वाल, चमोली और टेहरी जिलों के कुछ भागों को मिला कर रूद्रप्रयाग जिले का गठन हुआ। इसे भी

गढ़वाल मण्डल में शामिल किया गया। 1970 में गढ़वाल मण्डल बन जाने के बाद कुमाऊँ मण्डल में अल्मोड़ा, नैनीताल और पिथौरागढ़ जिले रह गये। 1996 में नैनीताल जिले का तराई प्रदेश जिला उधम सिंह नगर नाम से गठित कर दिया गया। कुछ समय बाद बागेश्वर व चम्पावत क्षेत्र भी जिलें बना दिये गये। ये तीनों जिले भी कुमाऊँ मण्डल में शामिल कर दिये गये।

उत्तराखण्ड के जनपदों, इनकी तहसीलों और क्षेत्रों को हम निम्न सूची के माध्यम से देख सकते हैं-

जनपद	तहसील/उपतहसील	विकासखण्ड
1. देहरादून	1 देहरादून	1 रायपुर
	2 ऋषिकेश	1 डोईवाला
	3 विकासनगर	1 सहसपुर 2- विकासनगर
	4 चकराता	1 चकराता 2- कालसी
1 हरिद्वार	1 हरिद्वार	1 बहादराबाद
	2 लक्सर	1 खानपुर 2- लक्सर
	3 रूड़की	1 रूड़की 2- भगवानपुर 3-नारसन
3 टिहरी	1 टिहरी	1 चम्बा 2- जौनपुर 3.थौलधार
	2 प्रतापनगर	1 प्रतापनगर 2- जखनीधार
	3 घनश्याली	1 भिलंगना
	4 देवप्रयाग	1 कीर्तिनगर 2- देवप्रयाग (हिदोंलाखाल)
	5 नरेन्द्रनगर	1 नरेन्द्रनगर (फकोट)
4 रूद्रप्रयाग	1 रूद्रप्रयाग	1 अगस्तमुनि
	2 ऊखीमठ	1 ऊखीमठ
	3 उपतहसील जखोली	1 जखोली
5 चमोली	1 जोशीमठ	1 जोशीमठ
	2 चमोली	1 दशोली 2- घाट
	3 पोखरी	1 पोखरी
	4 कर्णप्रयाग	1 कर्णप्रयाग
	5 गैरसैण	1 गैरसैण
	6 थराली	1 देवाल 2- थराली 3- नारायणबेगढ़

6 उत्तरकाशी	1 डुन्डा	1चिन्यालीसौरा 2. डुन्डा
	2. भटवाड़ी	1. भटवाड़ी
	3. राजगढ़ी या बरकोट	1. नौगाँव
	4. पुरोला	1. पुरोला 2. मोरी
7. पौड़ी	1. पौड़ी	1. पौड़ी 2. कोट 3.कजलीखाल 4.पाबा
	2. श्रीनगर	1.खिरसू
	3. कोटद्वार	1. दुगड्डा 2 यमकेश्वर
	4. लैन्सडाउन	1. जहरीखाल 2. पोखड़ा 3. पणखेत (एकेश्वर) 4. रिकणीखाल 5. द्वारीखाल
	5. दमवाकोट	1. नैनीडॉडा
	6. थैलीसैण	1. थैलीसैण 2. बीरोंखाल
8. अल्मोड़ा	1. अल्मोड़ा	1. ताकुला 2. हवालबाग 3. लमगड़ा 4. धोलादेवी 5. भैसियाछाना
	2. रानीखेत	1. द्वाराहाट 2. चौखुटिया 3. ताड़ीखेत
	3. भिकियासैण	1. भिकियासैण 2. स्याल्दे 3. सल्ट
9. बागेश्वर	1. बागेश्वर	1. बागेश्वर 2. गरूड़
	2. कपकोट	1. कपकोट
10. नैनीताल	1. हल्द्वानी	1. हल्द्वानी 2. रामनगर
	2. नैनीताल	1. कोटाबाग 2. रामगढ़ 3. भीमताल
	3. कोश्याकुटोली	1. बेतालघाट
	4. धारी	1. धारी 2. ओखलकाण्डा
11. चम्पावत	1. चम्पावत	1. बाराकोट 2. पाटी 3. चम्पावत 4. लोहाघाट
12.पिथौरागढ़	1.पिथौरागढ़	1.पिथौरागढ़ 2. मुनाकोट
	2. डीडीहाट	1. कनालीछीना 2. डीडीहाट 3. बेरीनाग
	3. गंगोलीहाट	1. गंगोलीहाट
	4. धारचूला	1. धारचूला
	5. मुन्स्यारी	1. मुन्स्यारी
13. उधमसिंह नगर	1. काशीपुर	1. जसपुर
	उपतहसील बाजपुर	1. बाजपुर
	उपतहसील गदरपुर	1. गदरपुर
	2. किच्छा	1. रूद्रपुर
	3. सितारगंज	1. सितारगंज
	4. खटीमा	1. खटीमा

11.4 उत्तराखण्ड राज्य गठन के बाद प्रशासनिक संरचना

9 नवम्बर, 2000 को उत्तर प्रदेश पुनर्गठन विधेयक 2000' के अन्तर्गत उत्तरांचल (वर्तमान में उत्तराखण्ड) राज्य को देश का 27वाँ राज्य बनाया गया। 13 पर्वतीय जिलों को इस राज्य में स्थान दिया गया। राज्य के प्रथम मुख्यमन्त्री नित्यानन्द स्वामी बनाये गए तथा प्रथम राज्यपाल श्री सुरजीत सिंह बरनाला थे।

संवैधानिक प्रावधान

संविधान के अनुच्छेद 3 के अनुसार संसद को यह अधिकार प्राप्त है कि यह राज्यों, जिसमें संघ राज्य क्षेत्र भी सम्मिलित है, के क्षेत्रों को मिलाकर नए राज्यों का निर्माण कर सकती है। संसद सामान्य बहुमत अथवा सामान्य संवैधानिक प्रक्रिया द्वारा नए राज्य का निर्माण, सीमा परिवर्तन या नाम बदल सकती है, लेकिन इससे पूर्व नए राज्य के निर्माण से सम्बन्धित विधेयक राष्ट्रपति द्वारा अनुममि प्राप्त होना चाहिए। राष्ट्रपति सम्बन्धित राज्यों को विधेयक विचारार्थ भिजवाता है। राज्य का विधानमण्डल विधेयक पर विचार-विमर्श करके अपने सुझावों सहित विधेयक को निर्धारित अवधि में वापस कर देता है। सुझावों को मानना संसद के लिए आवश्यक नहीं है। राष्ट्रपति द्वारा विचार-विमर्श की अवधि को बढ़ाया जा सकता है। लेकिन यदि राज्य इस विधेयक को निर्धारित अवधि में प्रेषित नहीं करता है, तो राष्ट्रपति विधेयक को संसद में ऐसे ही प्रस्तुत करवा सकता है। जम्मू-कश्मीर राज्य में इस आशय का विधेयक पारित होना अनिवार्य है।

11.4.1 विशेष राज्य की श्रेणी

केन्द्र सरकार द्वारा उत्तराखण्ड को 01 अप्रैल, 2001 से विशेष राज्य का दर्जा प्रदान करने का निर्णय लिया गया। विशेष राज्य का दर्जा पाने वाले सभी 11 राज्य पर्वतीय है।

विशेष श्रेणी का दर्जा प्राप्त राज्यों को केन्द्रीय सहायता एक विशेष रियायती पैमाने पर मिलती है। अब उत्तराखण्ड को मिलने वाली केन्द्रीय सहायता में 90% हिस्सा अनुदान का और 10% ऋणों का है। जबकि अन्य राज्यों को मिलने वाली सहायता में अनुदान का भाग 70% ऋण का हिस्सा 30% होता है। विशेष श्रेणी प्राप्त राज्यों को ये सुविधाएँ स्थायी रूप में जारी रहेंगी।

11.4.2 राज्य में आरक्षण की स्थिति

उत्तराखण्ड सरकार ने राज्याधीन सेवाओं, शिक्षण संस्थाओं, सार्वजनिक उद्यमों, निगमों एवं स्वायत्तशासी संस्थाओं में आरक्षण हेतु शासनादेश जारी किया जिसके तहत-

अनुसूचित जाति	19%
अनुसूचित जनजाति	04%
अन्य पिछड़ा वर्ग	14%

महिलाओं, भूतपूर्व सैनिकों, विकलांग व्यक्तियों तथा स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों के आश्रितों को क्षैतिज आरक्षण अनुमन्य होगा।

भूतपूर्व सैनिक 02%
विकलांग 03%
स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों के आश्रित 02%

आरक्षण के सम्बन्ध में स्थायी रूप से नीति का निर्धारण पृथक रूप से किया जाएगा। आरक्षण का लाभ उत्तराखण्ड के मूल निवासियों को ही प्राप्त होगा। मूल निवासी केवल उन्हीं व्यक्तियों को माना जाएगा जो कम-से-कम 15 वर्षो से राज्याधीन क्षेत्र में निवास कर रहे हैं।

विशेष श्रेणी प्राप्त राज्य

क्र0सं0	राज्य	श्रेणी प्राप्ति वर्ष
1.	असोम	1969
2.	नागालैण्ड	1969
3.	जम्मू-कश्मीर	1969
4.	हिमाचल प्रदेश	1971
5.	मणिपुर	1972
6.	मेघालय	1972
7.	त्रिपुरा	1972
8.	सिक्किम	1975
9.	मिजोरम	1975
10.	अरूणाचल प्रदेश	1975
11.	उत्तराखण्ड	2001

11.5 हिमालयी राज्यों की तुलना

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय असोम भारत का केवल एकमात्र हिमालयी राज्य था। देश के शेष हिमालयी क्षेत्र कसी-न किसी राज्य/रियासतों का भाग थे। 26 अक्टूबर, 1947 को जम्मू तथा कश्मीर के भारत में विलय होने के उपरान्त वह भारत का दूसरा हिमालयी राज्य बना था। जब भारत में विकास कार्यक्रम तथा पंचवर्षीय योजनाएँ क्रियान्वित हुई तो देखा गया कि मैदानी क्षेत्रों की तुलना में पर्वतीय क्षेत्र विकास दौड़ में कहीं अधिक पिछड रहे हैं। यह भी अनुभव किया जाने लगा कि मैदानी क्षेत्रों के साथ पर्वतीय क्षेत्रों का विकास भी सम्भव नहीं है तथा व्यावहारिक दृष्टि से पर्वतीय क्षेत्रों का विकास मैदानी क्षेत्रों की अपेक्षा कहीं अधिक कठिन है, क्योंकिकि दोनों के विकास की मूल आवश्यकताएँ, प्राथमिकताएँ, आधार तथा मानक न केवल भिन्न हैं बल्कि दोनों के विकास की आपसी समझ तथा अवधारणा भी भिन्न-भिन्न है। पर्वतीय क्षेत्रों के विकास की भिन्न अवधारणा का सबसे प्रमुख कारण उनकी भौगोलिक, आर्थिक एवं संसाधनिक संरचना का मैदानी भागों से भिन्न होना था। भाषायी एवं सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना इस भिन्न अवधारणा का एक महत्वपूर्ण कारण था जिसके परिणामस्वरूप भारत में दूसरा महत्वपूर्ण कारण था, हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों को विकास के लिए एक भिन्न क्षेत्र अथवा 'विकास की एक भिन्न इकाई' के रूप में स्वीकार किया जाने लगा था। इन्हें भारत की भिन्न सामाजिक-सांसकृतिक इकाइयों के रूप में भी चिन्हित किया गया था। इसी क्रम में पर्वतीय (हिमालयी) राज्यों की अवधारणा का जन्म और विकास हुआ। देश के अनेक बुद्विजीवियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, योजनाकारों और विभिन्न हिमालयी क्षेत्रों के निवासियों ने इस माँग को समय-समय पर आन्दोलनों के माध्यम से उठाया, फलतः हिमालयी राज्यों की अवधारणा ने मूर्त रूप ले

लिया और वर्तमान समय के सभी हिमालयी राज्य अस्तित्व में आए। देखा जाए तो भारत के दक्षिण में भी पर्वतीय क्षेत्र हैं, पर वे न तो सांस्कृतिक रूप से भिन्न थे और न ही आर्थिक संसाधनों की दृष्टि से ही। भारत में पर्वतीय राज्यों की अवधारणा मूलतः हिमालयी राज्यों की ही अवधारणा है। भारत में हिमालयी राज्यों के इतिहास क्रम को हम इस प्रकार समझ सकते है-

1.स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय सिर्फ असोम ही देश का एकमात्र हिमालयी राज्य था।

2.26 अक्टूबर, 1947 को जम्मू तथा कश्मीर का भारत में विलय हुआ और उसके उपरान्त वह भारत का दूसरा हिमालयी राज्य बना।

3.सन1963 में नागालैण्ड राज्य का गठन किया गया, जो तदुपरान्त भारत का तीसरा हिमालयी राज्य बना।

4.जनवरी, 1971 में हिमालयी प्रदेश को पूर्ण राज्य का दर्जा प्रदान किया गया। इससे पूर्व में सन1966 में पंजाब के पहाड़ी भागों को भौगोलिक-सांस्कृतिक आधार पर हिमालयी प्रदेश में मिला दिया गया था।

5.सन1972 में त्रिपुरा तथा मणिपुर भी हिमालयी राज्यों के रूप में अस्तित्व में आए।

6.सन1972 में मेघालय एक नया पर्वतीय राज्य बनाया गया। इससे पूर्व सन1970 में असोम के दो जिलों को राजनीतिक, भाषायी एवं समाजिक-सांस्कृतिक आधार पर उपरान्त का दर्जा दिया गया था।

7.सन1975 में सिक्किम अपनी इच्छा से भारतीय गणराज्य में शामिल हुआ। इस प्रकार एक नया हिमालयी राज्य अस्तित्व में आया।

8.9 नवम्बर, 2000 में उत्तराखण्ड को भारतीय गणराज्य का 27वाँ तथा 11वाँ हिमालयी राज्य बनाया गया है।

वर्तमान समय में इन हिमालयी राज्यों की संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार

राज्य निर्माण अवधि	राज्य	क्षेत्रफल (हजार वर्ग किमी)	जनसंख्या (लाखमें)	विधायक संख्या	सांसद संख्या		
					लोक सभा की कुल सीटें	आरक्षित	
						ST	SC
1947 से पूर्व	असोम	78,438		126	14	2	1
1947	जम्बू कश्मीर	2,22,236		766	6	-	-
1966	नागालैण्ड	16,579		60	1	-	-
1971	हिमाचल प्रदेश	55,673		68	4	-	-
1972	मणिपुर	22,327		60	2	1	-

1972	मेघालय	22,429		60	2	2	-
1972	त्रिपुरा	10,492		60	2	1	-
1975	सिक्किम	7,096		32	1		-
1987	मिजोरम	21,081		40	1	1	-
1987	अरूणाचल प्रदेश	83,743		40	2	2	-
2000	उत्तराखण्ड	53,483		70	5		1

हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों में 11 राज्य बनाने के उपरान्त भी वर्तमान समय में फिर यह महसूस किया जाने लगा है कि देश के सामान्य भाग विकास और हिमालयी क्षेत्रों के विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं में भी अन्तर है। विकास के सन्दर्भ में सभी हिमालयी राज्यों के अनुरूप भिन्न-भिन्न रहे हैं। हिमालयी राज्यों के पूर्ण विकास पर विमर्श के लिए एक नयी परिषद् के लिए 'हिमालयी विकास प्राधिकरण' की माँग की जाने लगी है।

अभ्यास प्रश्न- अभ्यास प्रश्न-

1. कुमाऊँ जिले को कुमाऊँ और गढ़वाल में कब बाँटा गया?
2. 1838 में कुमाऊँ और गढ़वाल जिले का मुख्यालय कहाँ-कहाँ था?
3. तहसील के प्रधान अधिकारी को क्या कहते थे?
4. तहसील की छोटी प्रशासनिक इकाई को क्या कहा जाता था?
5. थोकदार को अन्य किन नामों से जाना जाता था?
6. उत्तराखण्ड को विशेष राज्य का दर्जा कब प्राप्त हुआ?
7. केन्द्रीय सहायता में कितना भाग अनुदान का होता है?
8. उत्तराखण्ड राज्य में लोक सभा की कितनी सीटें हैं?
9. हिमालयी राज्यों में उत्तराखण्ड का कौन सा स्थान है?
10. भारतीय गणराज्य में उत्तराखण्ड का कौन सा स्थान है?

11.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से हमने ये जाना कि पर्वतीय जिलों में प्रशासन की एक अनोखी व्यवस्था थी। जो भारत में अन्य कहीं नहीं पायी जाती थी। पटवारी की पुलिस के रूप में कार्य करना यहाँ की सबसे अनूठी प्रणाली है। पटवारी पट्टी का सबसे बड़ा प्रशासनिक अधिकारी के रूप में कार्य करता है। यह प्रणाली अंग्रेजी शासन काल से आज भी जस की तस चली आ रही है। राजस्व कार्यों के अलावा राजस्व पुलिस की यह व्यवस्था केवल उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में पायी जाती है। तहसीलदार, कानूनगो, परगनों के अधिकारी लगान व राजस्व के कार्यों के साथ-साथ न्याय का कार्य भी करते थे। यह परम्परा आज भी चली आ रही है। देश में स्वाधीनता के बाद शासन में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिये त्रिस्तरीय पंचायत प्रणाली का सुभारंभ किया गया है। इसका

प्रमुख उद्देश्य है कि जनता हितकारी विकास कार्यों में स्वयं पहल करे। इस प्रणाली को स्वशासन के नाम से जाना जाता है। स्वशासन की इस प्रणाली ने उत्तराखण्ड राज्य में नये प्रशासकीय व्यवस्था को विस्तार देने का काम किया है।

11.7 शब्दावली

परगना –प्रशासन की छोटी इकाई
होरिजेंटल – क्षेतिज
लगान –एक प्रकार का कर
त्रिस्तरीय – तीन सारीय

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.1838 में 2. अल्मोड़ा व श्रीनगर 3. एस.डी.ओ. 4. परगना 5.सयाना, कुमीन, बुढ़ा 6. 90 प्रतिशत 7. 1अप्रैल 2001 8. पॉच 9. 11वॉ 10 27वॉ

11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.जे.एच.बैटन - आफिसीयल रिपोर्ट आन द प्राविन्स ऑफ कुमाऊँ
2.एम.एस.बर्थवाल - गढ़वाल में कौन कहाँ
3.एस.पी.डबराल - उत्तराखण्ड का इतिहास
4.एस.पी.नैथानी - उत्तराखण्ड संस्कृति, साहित्य और पर्यटन

11.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.उमा प्रसाद थपलियाल - उत्तरांचल ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक आयाम
2.पी.एस.नयाल - स्वतंत्रता संग्राम में कुमाऊँ का योगदान
3.बी.डी.पाण्डे - कुमाऊँ का इतिहास
4.शेखर पाठक - संपादक, पहाड़

11.11निबंधात्मक प्रश्न-

1.अंग्रेजी शासन काल में प्रशासनिक ढ़ाँचे का विस्तृत वर्णन कीजिये?
2.कमिश्नर के अधिकार क्षेत्र को समझाइये?
3.उत्तराखण्ड राज्य में आरक्षण की स्थिति पर अपने विचार दें?
4.विशेष राज्य की श्रेणी वाले राज्यों को क्या-क्या लाभ प्राप्त होते हैं?
5.हिमालयी राज्यों के इतिहास पर एक निबन्ध लिखिये?

इकाई-12 केन्द्र राज्य सम्बन्ध: विधायी और प्रशासनिक

इकाई की संरचना

12.0 प्रस्तावना
12.1 उद्देश्य
12.2 केन्द्र राज्य सम्बन्धों को लेकर संवैधानिक शक्तियों का विभाजन
12.3 विधायी सम्बन्ध
12.4 प्रशासनिक संबंध
12.5 अवशिष्ट शक्तियाँ
12.5.1 संसद की राज्यों के विषयों के सम्बन्ध में विधि निर्माण की शक्ति
12.6 उत्तराखण्ड की विधायी संरचना
12..6.1 राज्यः विधायी संरचना
12.6.2 राज्य कार्यपालिका (साधारण संरचना) राज्यपाल
12.6.3 राज्य मंत्रिपरिषद
12.6.4 राज्य मंत्रिपरिषद का गठन
12.6.5 अन्य मंन्त्रियों की नियुक्ति
12.6.6 राज्यपाल और मंत्रिपरिषद के मध्य सम्बन्ध
12.6.7 मुख्यमंत्री की नियुक्ति
12.6.8 शासन के विभाग एवं कार्यालय
12.6.9 भारत सरकार द्वारा उत्तराखण्ड के कार्मिकों का विभाजन
12.7 सारांश
12.8 शब्दावली
12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
12.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.12 निबंधात्मक प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

पिछली इकाई-2 में हमने उत्तराखण्ड में प्रशासनिक इकाईयों का विस्तृत अध्ययन किया। इस इकाई से हमने जाना कि उत्तराखण्ड में राजवंशीय काल व अंग्रेजी शासन काल में किस प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था को अपनाया गया था। कमिश्नरी से लेकर पटवारी तक किस प्रकार प्रशासनिक तंत्र कार्य करता था। इस पर विस्तृत चर्चा की गयी। इस इकाई में ये भी जाना गया कि उत्तराखण्ड की वर्तमान प्रशासनिक संरचना क्या है और वह कैसे काम कर रही है तथा इस बात का भी अध्ययन किया गया कि आज भी बहुत सी प्रशासनिक प्रणाली वैसे ही कार्य कर रही है जैसे कि अंग्रेजी या राजवंशीय शासन काल में करती थी। अब हम इकाई-3 में राज्यों का केन्द्र के साथ सम्बन्धों की चर्चा करने जा रहे हैं।

भारतीय संविधान ने देश में संघीय व्यवस्था की स्थापना की है। परन्तु उसका रूझान एकात्मकता की ओर है। कुछ आलोचक हालांकि यह कहते नहीं चूकते कि केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण जिस आधार पर किया गया है, उससे राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं की भाँति हो गयी है। आलोचक चाहे कुछ भी कहें भारतीय संविधान ने केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण कर दोनों को मजबूती देने का प्रयास किया है।

हमारे संविधान के अनुच्छेद 1 में भारत को ''राज्यों का संघ'' कहा गया है। भारतीय संविधान ने देश में संघीय व्यवस्था की स्थापना की है परन्तु निश्चय ही उसका रूझान एकात्मकता की ओर है। भारत वास्तव में एक संघ है यद्यपि यहाँ केन्द्र अन्य संघीय देशों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है। वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि हम संघ और राज्यों के आपसी सम्बन्धों की समीक्षा करे। भारत इस समय कठिन दौर से गुजर रहा है। केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों के संवैधानिक विभाजन के अतिरिक्त केन्द्र राज्य का एक विशिष्ट लक्षण है -केन्द्र राज्य सम्बन्धों को निर्धारित करने वाला अतिरिक्त संवैधानिक तत्व। इन सभी तत्वों व संविधान द्वारा दिये गये प्रावधानों का हम इस इकाई अध्ययन करेंगे तथा केन्द्र और राज्य के बीच विधायी व प्रशासनिक सम्बन्धों को भी जानने का प्रयास करेंगे।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान पायेंगे कि-

केन्द्र और राज्य कैसे काम करते है।

1- केन्द्र और राज्य सम्बन्धों की संवैधानिक व्यवस्था क्या है।

2- केन्द्र राज्यों के बीच शक्तियों का आवंटन किस प्रकार होता है।

3. केन्द्र राज्यों के बीच विधायी सम्बन्ध।

4. केन्द्र और राज्यों के बीच प्रशासनिक सम्बन्ध

5. केन्द्र और राज्यों के सम्बन्ध उत्तराखण्ड के परिपेक्ष में क्या रहे हैं।

6. राज्य गठन से पूर्व केन्द्र की भूमिका व राज्य गठन के बाद केन्द्र की भूमिका क्या रही है।

12.2 केन्द्र राज्य सम्बन्धों को लेकर संवैधानिक शक्तियों का विभाजन

हम उपर चर्चा कर चुके हैं कि संविधान के अनुच्छेद-1 में कहा गया है कि ''इण्डिया अर्थात भारत राज्यों का संघ होगा।'' संघ तथा घटक इकाईयों के बीच सम्बन्धों की चर्चा संविधान के भाग-11, 12, 13 और 18 में पर्याप्त रूप से की गयी है। भाग-11 दो अध्यायों में विभाजित है। अध्याय-1 में विधायी शक्तियों और सम्बन्धों की (अनु. 245 से 363) चर्चा की गयी है। अध्याय-2 प्रशासनिक सम्बन्धों से सम्बंधित है। संविधान के अनु. 256 से 263 तक इन सम्बन्धों के बारे में चर्चा की गयी है। भाग-12 में चार अध्याय हैं, जिनमें वित्तीय मामलों का वर्णन किया गया है। संविधान का भाग 18 संकटकालीन उपबन्धों से सम्बन्धित है। इन सम्बन्धों की चर्चा संविधान के अनु.352 से 360 में की गयी है। केन्द्र व राज्यों के सम्बन्धों को जानने के लिये दोनों के बीच विधायी व प्रशासनिक सम्बन्धों को जानना अति-आवश्यक है।

12.3 विधायी सम्बन्ध

अनुच्छेद 245-255 में संघ तथा राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण का घोषणा पत्र है। संसद भारत के समूचे राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए विधियां बना सकती है। केन्द्र तथा राज्यों के बीच विधायी सम्बन्धों का संचालन तीन सूचियो संघ, राज्य व समवर्ती सूची के आधार पर होता है। इन सूचियों को संविधान की सातवीं अनुसूची में रखा गया है। किसी राज्य का विधान मंडल समूचे राज्य या उसके किसी भाग के लिए विधियां बना सकता है। राज्य की कोई विधि शून्य हो जाऐगी, यदि उसका राज्य क्षेत्रातीत प्रवर्तन होता है। (कोचीन बनाम मद्रास राज्य, ए आई आर 1960 एस सी 1080) और जब तक कि उद्देश्य तथा राज्य के बीच पर्याप्त संबंध नहीं दर्शाया जा सकता (बंबई राज्य बनाम आर.एम.डी.सी., ए आई बार 1957 एस सी 699,टाटा आइरन एण्ड स्टील कंपनी बनाम बिहार राज्य, ए आई आर 1958 एस सी 452)। लेकिन संसद द्वारा बनाए गए कानूनों के बारे में राज्य क्षेत्रातीत प्रवर्तन के आधार पर आपत्ति नहीं की जा सकती (अनुच्छेद 245)। संविधान की सातवीं अनुसूची में तीन सूचियां है अर्थात् संघ सूची, समवर्ती सूची और राज्य सूची जिनमें क्रमशः 97, 52 और 66 मदें हैं। अनुच्छेद 246 में व्यवस्था है कि संघ सूची की मदों के बारे में संसद को विधियां बनाने की अनन्य अधिकारिता होगी, राज्य सूची की मदों में राज्य के विधान मण्डल को विधियां बनाने की अनन्य शक्तियां प्राप्त होगी और समवर्ती सूची में शामिल मदों में केन्द्र एवं राज्य दोनों को ही विधियां बनाने का अधिकार होगा। यदि समवर्ती सूची के मदों के बारे में संघ के संसद एवं राज्य के विधान मण्डलों द्वारा बनाई गई विधियों के बीच कोई असंगति हो तो उन परिस्थितियों में संघ के संसद द्वारा बनाई गई विधियां प्रभावी रहेगी और राज्य की विधि उस विसंगति की मात्रा तक शून्य रहेगी सिवाय उस स्थिति के जहाँ राज्य की विधि राष्ट्रपति के पर विचार हेतु आरक्षित रखी गई हो और उस पर उसकी सहमति मिल गई हो (अनुच्छेद 245) ।साथ ही संसद को यह शक्ति दी गई है कि वह किसी अन्तर्राष्ट्रीय संधि, करार, अभिसमय अथवा विनिश्चय को कार्यरूप देने के लिए समूचे देश या उसके किसी भाग के लिए कोई विधि बना सके।

संघ सूची में ऐसे विषय ष्शामिल है जिनका संबन्ध संघ के सामान्य हित से है और जिनके बारे मे समूचे संघ के भीतर विधान की एकरूपता अनिवार्य है। राज्य सूची में ऐसे विषय शामिल किये गये हैं, जो हित तथा व्यवहार की विविधता की छूट देते हैं। समवर्ती सूची में ऐसे विषय ष्शामिल किये गये हैं जिनके बारे में समूचे संघ के भीतर विधान की एकरूपता वांछनीय तो है पर अनिवार्य नहीं है। भले ही राज्य सूची में शामिल विषयों के बारे में राज्यों को अनन्य शक्तियां प्रदान की गई है पर इस सामान्य नियम के दो अपवाद है। अनुच्छेद 249 के अधीन यदि राज्य

सभा के उपस्थित तथा मत देने वाले दो तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थित संकल्प के जरिए यह घोषणा कर दी जाए कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक या समीचीन है कि राज्य सूची में ष्शामिल किसी विषय के बारे में संसद विधियां बनाए तो समूचे भारत या उसके किसी भाग के लिए उस विषय के बारे में संसद विधियां बनाने के वास्ते सक्षम होगी। ऐसा संकल्प एक वर्ष तक वैध रहता है। उसकी अवधि को और एक वर्ष के लिए बाद के संकल्प द्वारा बढाया जा सकता है। ऐसे संकल्प के अधीन बनाई गई विधि संकल्प की अवधि बीत जाने के बाद 6 मास की समाप्ति पर प्रभावी नहीं रहेगी। पुनः अनुच्छेद 250 के अधीन, जब आपात की घोषणा लागू हो तो संसद को अधिकार दिया गया है कि वह समूचे भारत या उसके किसी भाग के वास्ते राज्य सूची में शामिल किसी मद के लिए विधियां बना सकती है। ऐसी विधियों की वैधता की अधिकतम अवधि आपात की समाप्ति के बाद छह मास की होगी।

यदि अनुच्छेद 249 तथा 250 के अधीन संसद द्वारा बनाई गई विधियां तथा राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा बनाई गई विधियों के बीच कोई असंगति हो तो संसद द्वारा बनाई गई विधि अभिभावी और राज्य की विधि विरोध की मात्रा तक शून्य होगी और संसद द्वारा बनाई गई विधि प्रभावी रहेगी। (अनुच्छेद 251)

अनुच्छेद 252 के अनुसार दो या दो अधिक राज्यों के विधानमंडल एक संकल्प पारित करके संसद से अनुरोध कर सकते हैं कि वह राज्य सूची के किसी विषय के बारे में विधियां बनाए। ऐसी विधियों का विस्तार अन्य राज्यों पर किया जा सकता है बशर्ते कि संबद्ध राज्यों के विधानमंडल उस आशय के संकल्प पारित करें।

12.4 प्रशासनिक संबंध

संविधान के अनुच्छेद 73 के अनुसार केन्द्र की प्रशासनिक शक्ति उन विषयों तक सीमित है जिन पर संसद को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है। इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद 162 के अनुसार राज्यों की शक्तियॉ उन विषयों तक सीमित हैं जिन पर राज्य विधानमण्डलों को कानून बनाने का अधिकार है। अनुच्छेद 256 से अनुच्छेद 265 तक संघ तथा राज्यों के बीच प्रशासनिक संबंधों के विनियमन की व्यवस्था करते है। संघात्मक प्रणालियों में सामान्यतया ऐसा होता है कि संघ तथा राज्यों के आपसी प्रशासनिक संबंध झमेलों से ग्रस्त रहते हैं। भारत के संविधान का उद्देश्य है कि दोनो स्तरों के बीच संबंधों का निर्वाह सहज रूप से होता रहे। वह उपबंध करता है कि राज्य सरकार की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार हो कि संसद द्वारा बनाई गई विधियों का पालन सुनिश्चित हो सके। संघ की कार्यपालिका को राज्यों को ऐसे निर्देश देने का भी अधिकार प्राप्त है जो भारत सरकार को इस प्रयोजन के लिए आवश्यक प्रतीत हों।

इसी प्रकार अनुच्छेद 257 का उपबंध है कि हर राज्य की कार्यपालिका ष्शक्ति का प्रयोग इस प्रकार किया जाए कि वह संघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में बाधक न हो। संघ इस संबंध में तथा रेलों के संरक्षण एवं राष्ट्रीय या सैनिक महत्व के संचार-साधनों को बनाए रखने के बारे में आवश्यक निर्देश जारी कर सकता है। केन्द्रीय निर्देशों के पालन में जो अतिरिक्त व्यय राज्य करेगा, केन्द्र उसकी भरपाई राज्य को करेगा। अनुच्छेद 261 का उपबंध निर्देश देता है कि भारतीय राज्य क्षेत्र के सभी भागों में संघ तथा राज्यों के सार्वजनिक कार्यो, अभिलेखों तथा न्यायिक कार्यवाहियों को पूरा विश्वास एवं पूरी मान्यता दी जाएगी। यह बात संघ एवं राज्यों के आपसी संबंधों के सुचारू निर्वाह में अति सहायक होती है। अंतर्राज्यिक नदियों पर संसदीय नियंत्रण तथा अंतर्राज्यिक जल-विवादों के न्याय-निर्णयन संबंधी उपबंधों के कारण संघ तथा राज्यों के बीच तथा स्वयं राज्यों के बीच संघर्ष की ढेर सारी

संभावनाएं समाप्त हो गई हैं (अनुच्छेद 262)। वास्तविकता तो यह है कि संविधान-निर्माता किसी बात की संभावना नहीं छोड़ना चाहते थे। अतः उन्होंने अंतर्राज्यिक परिषदों की व्यवस्था की। अनुच्छेद 263 राष्ट्रपति को अंतर्राज्यिक परिषद की स्थापना का अधिकार प्रदान करता है। इन परिषदों को उद्देश्य है कि वे राज्यों के आपसी विवादों तथा राज्यों के या संघ एवं राज्यों के सामन्य हित के आपसी मामलों के बारे में जाँच करें और उन्हे सलाह दे और नीति एवं कार्यवाही के बेहतर समन्वय के बारे में सिफारिशें करे।

अनुच्छेद 258 के अधीन राष्ट्रपति किसी राज्य सरकार की सहमति से उस सरकार को या उसके अधिकारियों को ऐसे किसी विषय से संबंधित कृत्य सौंप सकेगा जिन पर संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है। इसी प्रकार अनुच्छेद 258 के अधीन किसी राज्य का राज्यपाल भारत सरकार की सहमति से उस सरकार को या उसके अधिकारियों को ऐसे किसी विषय से संबंधित कृत्य सौंप सकेगा जिन पर उस राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है।

प्रशासनिक सम्बन्धों के क्षेत्र में केन्द्रीय सरकार राज्यों पर आश्रित रहती है। प्रत्येक संघ में दो प्रकार की सेवाओं का प्रावधान होता है। प्रथम संघीय या केन्द्रीय सेवाएं व द्वितीय राज्य की सेवाएं। ये दोनों सेवाएं अपने-अपने क्षेत्र में काम करती हैं। भारत में संघीय सेवाएं न होने के कारण उसे अपनी विधियों को लागू करने के लिये राज्य की सेवाओं पर निर्भर रहना पड़ता है। भारत में केवल अखिल भारतीय सेवाएं हैं।

12.5 अवशिष्ट शक्तियाँ

अवशिष्ट शक्तियाँ वे शक्तियाँ होती हैं,जिनका उल्लेख किसी भी सूची में नहीं होता। यह तथ्य है कि संविधान निर्माता चाहे कितने ही सावधान और सतर्क क्यों न रहें वे ऐसी व्यापक सूची नहीं बना सकते जिसमें समस्त शासकीय शक्तियां का स्पष्टतः उल्लेख कर दिया गया हो। वर्तमानकाल की परिर्वतनशील परिस्थितियों में नित्य नये विषय उत्पन्न होते रहते हैं। आज से दो पीढ़ी पूर्व कोई भी यह नहीं समझता था कि वायुपथ पर भी शासकीय नियंत्रण की आवश्यकता होगी। परन्तु विभागों के विकास और वायु यातायात के प्रसार के कारण वायुपथ पर सरकारी नियम होना आवश्यक ही नहीं वरन् परम आवश्यक हो गया है। अतः प्रत्येक संघीय संविधान की अवशिष्ट शक्तियों को संघ के किसी पक्ष को सौंप देता है। वर्तमान संघ राज्यों में से संयुक्त राज्य अमेरिका, स्विट्जरलैण्ड और आस्ट्रेलिया के संविधान ऐसे हैं जो इकाईयों को अवशिष्ट शक्तियाँ प्रदान करते है , परन्तु कनाडा के संविधान में यह शक्ति केन्द्र सरकार को प्रदान की गयी है। यही शक्ति भारतीय संविधान द्वारा भी केन्द्र को सौंपी गयी है। संघ सूची में से किसी भी विषय पर संसद अतिरिक्त न्यायालय स्थापित कर सकती है। साथ ही संसद को यह अधिकार भी है कि किसी देश अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संस्था से की गई संधि, करार अथवा उपसंधि के क्रियान्वयन के लिये आवश्यक कानून बनाये। इन सब का प्रभाव है कि संघीय शासन, राज्यों की तुलना में सबल रहेगी।

12.5.1 संसद की राज्यों के विषयों के सम्बन्ध में विधि निर्माण की शक्ति

राज्य सूची में दिये गये विषयों पर राज्य विधान-मण्डलों को विधि निर्माण करने को अनन्य अधिकार प्राप्त है। किन्तु इके कुछ अपवाद भी हैं। कुछ विशिष्ट उद्देश्यों के लिये तथा कुछ विशेष अवस्थाओं में संघीय संसद उन विषयों पर भी विधि-निर्माण कर सकती है जो केवल राज्यों के क्षेत्राधिकार में है। इन विधि-निर्माण के क्षेत्रों को हम निम्न रूप से देख सकते हैं-

प्रथम- यदि राज्य सभा उपस्थित व मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत द्वारा यह प्रस्ताव पारित कर देती है कि वैसा करना राष्ट्रीय हित की दृष्टि से आवश्यक है तो संसद राज्य सूची में वर्णित किसी भी विषय पर विधि निर्माण कर सकती है। यह प्रस्ताव एक बार पारित हो जाने के उपरान्त एक वर्ष तक प्रभावी रहेगा परन्तु राज्य सभा जितनी बार चाहे उसे पुनः पारित करके उसकी अवधि बढ़ाती रह सकती है। जब तक यह प्रस्ताव प्रभावी रहेगा तब तक संसद उसमें वर्णित विषयों पर विधि निर्माण कर सकती है।

द्वितीय- अनुच्छेद 352 के अर्न्तगत राष्ट्रपति द्वारा की गयी आपातकालीन घोषणाओं के दौरान, राज्य सूची के किसी भी विषय पर समस्त भारत व उसके किसी भी भाग के लिये, संसद विधि निर्माण कर सकती है। आपातकालीन घोषणा की समाप्ति के छः माह बाद ऐसी विधियाँ, उस मात्रा में जिसमें वे संसद के अधिकार क्षेत्र से बाहर हों प्रभावहीन हो जायेंगी।

तृतीय- यदि किसी भी राज्य में संवैधानिक व्यवस्था विफल हो जाती है तो राष्ट्रपति संवैधानिक विफलता से उत्पन्न आपात की घोषणा करके सम्बन्धित राज्य के लिये विधियाँ निर्मित करने की शक्ति संसद को दे सकता है। ऐसे सम्बन्धित राज्य के लिये संसद राज्य सूची में वर्णित विषयों पर विधियाँ बना सकती है।

चतुर्थ- यदि दो या दो अधिक राज्यों के विधान मण्डल प्रस्ताव पारित करके संसद से अनुरोध करे वह उनके लिये किसी राज्य सूची के विषय पर संयुक्त विधि बना दे तो वह ऐसा कर सकती है। बाद में इस प्रकार की विधि को अन्य राज्य भी अपने यहाँ के विधान मण्डलों द्वारा इस आशय का प्रस्ताव पारित करके स्वीकार कर सकते हैं।

पंचम- संसद को किसी संधि अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संविदा को कार्यान्वित कराने के लिये ऐसी विधियां निर्मित करने की शक्ति है जो आवश्यक हो, भले ही उन विधियों का सम्बन्ध राज्य सूची के विषयों से ही संबन्धित क्यों न हो।

12.6 उत्तराखण्ड की विधायी संरचना

फरवरी, 2002 में उत्तराखण्ड विधानसभा के लिए पहली बार चुनाव सम्पन्न हुए। 927 व्यक्तियों ने चुनाव में भाग लिया जिसमें 58 महिला उम्मीदवार थी। मात्र 4 महिलाएँ ही चुनाव जीत सकीं जो कुल विधानसभा सदस्यों की संख्या का 3.67% है। कुल 54.34% मतदान हुआ। 70 सदस्यों की विधानसभा में 3 क्षेत्र अनुसूचित जनजाति व 12 क्षेत्र अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित थे।

जनपदवार राज्य के विधानसभा क्षेत्र

सारणी-1

क्र0सं0	जनपद	क्षेत्र
1	उत्तरकाशी	3
2	टिहरी	6
3	देहरादून	9
4	हरिद्वार	9
5	पौड़ी गढ़वाल	8

6	रूद्रप्रयाग	2
7	चमोली	4
8	बागेश्वर	3
9	अल्मोड़ा	7
10	नैनीताल	5
11	ऊधमसिंह नगर	7
12	चम्पावत	2
13	पिथौरागढ़	5

प्रथम निर्वाचित विधानसभा में कांग्रेस ने 36 क्षेत्र जीतकर बहुमत प्राप्त कर लिया। तीन बार उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री रहे नारायण दत्त तिवारी को राज्य के राज्यपाल सुरजीत सिंह बरनाला ने मुख्यमन्त्री पद की शपथ दिलाई। नित्यानन्द स्वामी तथा भगत सिंह कोश्यारी के पश्चात श्री तिवारी राज्य के तीसरे मुख्यमन्त्री बने। श्री तिवारी राज्य के प्रथम निर्वाचित मुख्यमन्त्री थे। श्री तिवारी ऐसे प्रथम व्यक्ति है, जिन्हें दो राज्यों का मुख्यमन्त्री बनने का श्रेय प्राप्त है।

1. श्री यशपाल आर्या को विधानसभा का अध्यक्ष चुना गया।
2. श्री भगत सिंह कोश्यारी को विधानमण्डल दल का नेता चुना गया जो विधानसभा में विपक्ष के नेता चुने गए थे।
3. श्री निजामुद्दीन बहुजन समाज पार्टी तथा श्री काशी सिंह उत्तराखण्ड क्रान्ति दल के नेता चुने गए थे।
4. राज्य के प्रथम चुनावों में प्रमुख राष्ट्रीय दलों तथा सभी क्षेत्रीय दलों ने विधानसभा के लिए अपने-अपने प्रत्याशियों को उम्मीदवार बनाया। वर्तमान परिसीमन के आधार पर जिलेवार विधान सभा क्षेत्रों की स्थिति इस प्रकार हो गयी है।

क्र0सं0	जनपद	क्षेत्र
1	उत्तरकाशी	3
2	टिहरी	6
3	देहरादून	9
4	हरिद्वार	9
5	पौड़ी गढ़वाल	8
6	रूद्रप्रयाग	2
7	चमोली	4
8	बागेश्वर	2
9	अल्मोड़ा	5
10	नैनीताल	5
11	ऊधमसिंह नगर	9
12	चम्पावत	3
13	पिथौरागढ़	5

अनूसुचित जनजातियों हेतु आरक्षित विधानसभा क्षेत्र (03)

देहरादून - चकराता

ऊधमसिंह नगर - खटीमा

पिथौरागढ़ - धारचूला

12.6.1 राज्यः विधायी संरचना

राज्य में कुल लोकसभा क्षेत्रों की संख्या 5

राज्य के लोकसभा निर्वाचन क्षेत्र-

गढ़वाल, अल्मोड़ा, नैनीताल, टिहरी व हरिद्वार (सुरक्षित)

राज्य में कुल राज्यसभा क्षेत्रों की संख्या 3

राज्य में कुल विधानसभा क्षेत्रों की संख्या 70

(1-विधायक राज्यपाल द्वारा एंग्लो-इण्डियन समुदाय से मनोनीत, कुल 71 विधायक)

(आर0वी0 गार्डनर-एंग्लो इण्डियन, राज्यपाल द्वारा नामित)

विधानमण्डल एक सदनात्मक (विधानसभा)

अनुसूचित जाति 12 क्षेत्र आरक्षित

अनुसूचित जनजाति 3 क्षेत्र आरक्षित

12.6.2 राज्य कार्यपालिका (साधारण संरचना): राज्यपाल

भारत के संविधान के अनुच्छेद 1 में भारत को राज्यों का संघ कहा गया है। केन्द्र में जिस प्रकार राष्ट्रपति, कार्यपालिका का प्रमुख (अध्यक्ष) होता है उसी प्रकार राज्यों में राज्यपाल, राज्य की कार्यपालिका का अध्यक्ष होता है। भारत में केवल जम्मू-कश्मीर को छोड़कर शेष सभी राज्यों में लगभग वैसी ही शासन व्यवस्था अपनायी गई है, जैसी केन्द्र में अर्थात् संसदीय शासन व्यवस्था। संसदीय शासन में कार्यपालिका का अध्यक्ष वास्तविक शक्तियों का उपयोग नहीं करता, बल्कि वास्तविक अधिकार मंत्रिपरिषद के हाथों में होते है। राज्य की कार्यपालिका में राज्यपाल और एक मंत्रिपरिषद होती है। आमतौर पर राज्यपाल अपनी शक्तियों का उपयोग मुख्यमन्त्री व मन्त्रिमण्डल की सलाह से करेगा, जो कि राज्य विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी है, परन्तु संविधान के अनुसार राज्यपाल को कुछ विवेकाधिकार प्राप्त है। इन अधिकारों का उपयोग करते समय राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी होता है। संसदीय शासन व्यवस्था में राज्यपाल, राज्य की कार्यपालिका का वैधानिक प्रधान होता है, जबकि मंत्रिपरिषद राज्य की कार्यपालिका की वास्तविक प्रधान होती है।

संविधान के अनुच्छेद 153 के अनुसार प्रत्येक राज्य के लिए एक राज्यपाल होगा। सन1956 में किए गए संशोधन के अनुसार एक ही व्यक्ति दो या दो से अधिक राज्यों के लिए राज्यपाल एक ही व्यक्ति दो या दो से अधिक राज्यों के लिए राज्यपाल के रूप में भी नियुक्त किया जा सकता है। सन्1972 में उत्तर-पूर्व क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम के अनुसार उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के पाँच राज्यों नागालैण्ड, असोम, मणिपुर, त्रिपुरा और मेघालय के लिए एक ही राज्यपाल नियुक्त किया गया। अनुच्छेद 154 के अनुसार राज्य की समस्त कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में उसी प्रकार निहित होगी, जैसी कि संघ में राष्ट्रपति को प्राप्त हैं। राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति के समान किसी निर्वाचक मण्डल द्वारा निर्वाचित नहीं होता, बल्कि अनुच्छेद 155 के तहत राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है।

राज्यपाल की स्थिति- संविधान द्वारा राज्यों में भी संघीय क्षेत्र के समान संसदीय शासन की व्यवस्था की गई है और संसदीय व्यवस्था में शासन की शक्तियाँ ऐसी मंत्रिपरिषद में निहित होती है, जो विधायिका के निम्न सदन के प्रति उत्तरदायी हो। अतः मंत्रिपरिषद राज्य की वास्तविक प्रधान है और राज्यपाल केवल एक संवैधानिक प्रधान। संविधान के अनुच्छेद 163 (1) के अनुसार जिन बातों में संविधान द्वारा या संविधान के अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कार्यो को स्वविवेक से करे, उन बातों को छोड़कर राज्यपाल को अपने कार्यो का निर्वहन करने में सहायता और मन्त्रणा देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होती है। संविधान, राज्यपाल की स्वविवेकी शक्तियों का विशेष रूप से उल्लेख नहीं करता। केवल असम, अरूणाचल प्रदेश, मिजोरम, सिक्किम, मेघालय, त्रिपुरा और नागालैण्ड के राज्यपाल को ही इस प्रकार की स्वविवेक की शक्तियाँ प्राप्त हैं। अतः राज्यपाल राज्य शासन का निर्विवाद वैधानिक अध्यक्ष है।

राज्यपाल की वास्तविक स्थिति- राज्य प्रसाशन में राज्यपाल की वही स्थिति है जो संघीय शासन में राष्ट्रपति की होती है अर्थात् राज्यपाल राज्य शासन का संवैधानिक अध्यक्ष तो है किन्तु वास्तिविक शक्तियाँ मंत्रिपरिषद में निहित है। राज्यपाल केवल स्वविवेकी शक्तियों को छोड़कर अपनी अन्य सभी शक्तियों का उपयोग मंत्रिपरिषद के परामर्श से करता है। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के अनुसार, ""उन सिद्वान्तों के अनुसार, जिन पर राज्यों का शासन आधारित है, राज्यपाल को प्रत्येक दशा में मंत्रिपरिषद का परामर्श अवश्य मानना होगा और ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना होगा, जिसके कारण उसे अपने स्वविवेक या व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग करना पड़े।""

राज्यपाल की स्वविवेक की शक्तियाँ उसकी वास्तविक स्थिति को बहुत अधिक शक्तिशाली बनाती है। किन्तु, हाल के वर्षो में राज्यपाल का पद काफी विवादास्पद हो गया है।

12.6.3 राज्य मंत्रिपरिषद

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 163 के अनुसार राज्य में राज्यपाल को परामर्श देने के लिए एक मंत्रिपरिषद की व्यवस्था की गई है। राज्यपाल द्वारा स्वविवेकी कार्यो को छोड़कर अन्य सभी शासकीय कार्यो में मंत्रिपरिषद, राज्यपाल को परामर्श देगी। राज्य मंत्रिपरिषद राज्य की वास्तविक कार्यापालिका है, क्योकि वास्तव में राज्य की सम्पूर्ण कार्यपालिका शक्ति राज्य मंत्रिपरिषद में निहित है। राज्य मंत्रिपरिषद का प्रधान मुख्यमन्त्री होता है।

12.6.4 राज्य मंत्रिपरिषद का गठन

अनुच्छेद 163 के अनुसार, राज्यपाल को उसके विवेकाधीन कृत्यों को छोड़कर अन्य कार्यो में सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी जिसका प्रधान मुख्यमन्त्री होगा। मन्त्रिपरिषद का गठन राज्यपाल द्वारा किया जाता है। राज्यपाल मुख्यमन्त्री की नियुक्ति करता है तथा मुख्यमन्त्री की सलाह पर वह अन्य मन्त्रियों को भी नियुक्त करता है। मंत्रिपरिषद में सामान्यतः उन्ही व्यक्तियों को शामिल किया जा सकता है। जो राज्य विधानसभा या राज्य विधानपरिषद् के सदस्य हों, किन्तु विशेष परिस्थियों में मंत्रिपरिषद में ऐसे व्यक्तियों को भी शामिल किया जा सकता है, जो इनके सदस्य न हों। किन्तु, इस प्रकार नियुक्त सदस्य को 6 माह के भीतर इनमें से किसी का सदस्य बनना आवश्यक है। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो उनका मन्त्री पद स्वतः ही समाप्त हो जाता है, किन्तु संविधान में यह व्यवस्था नहीं दी गई है कि ऐसा व्यक्ति त्यागपत्र देकर पुनः मंत्रिपरिषद का सदस्य बन सकता है या नहीं। सरकार इस प्रावधान का लाभ उठाते हुए पुनः उस व्यक्ति को मंत्रिपरिषद में शामिल कर लेती है।

कार्यकाल- मंत्रिपरिषद तब तक कार्यरत रहती है, जब तक मुख्यमन्त्री अपने पद बना रहता है। मुख्यमन्त्री के त्यागपत्र देने या बर्खास्त होने से मंत्रिपरिषद स्वतः ही विघटित हो जाती है।

राज्यपाल और मन्त्रिपरिषद

राज्यपाल नाममात्र का कार्यकारी है और मंत्रिपरिषद वास्तिविक कार्यपालिका होती है । संविधान में वर्णित राज्यपाल की सत्ता को स्वीकृत कर लिया जाए तो राज्यपाल राज्य का वास्तविक शासक बन जाता है। मन्त्रिगण राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त ही पदासीन रहेंगे अर्थात् मंत्रिपरिषद तब तक पदासीन रहेगा जब तक उसे विधानसभा का बहुमत या समर्थन प्राप्त है। सामान्य स्थिति में राज्यपाल से मंत्रिपरिषद के परामर्श के आधार पर ही कार्य करने की आशा की जाती है। अनुच्छेद 167 के अनुसार मुख्यमन्त्री का यह कर्त्तव्य है कि वह राज्य प्रशासन सम्बन्धित मंन्त्रिपरिषद् के निर्णयों की सूचना राज्यपाल को दे। कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्यपाल मंन्त्रिपरिषद् की सलाह के बिना भी कार्य कर सकता है। जैसे संवैधानिक तन्त्र की विफलता पर इस परिस्थितियों में राज्यपाल मंन्त्रिपरिषद् को बर्खास्त कर सकता है।

अन्य मंन्त्रियों की नियुक्ति

मुख्यमंत्री के परामर्श पर राज्यपाल मंन्त्रिपरिषद् के अन्य मंन्त्रियों की नियुक्ति करता है। संविधान में न तो मन्त्रियों की संख्या निश्चित की गई है और न ही श्रेणियाँ। मंत्रिपरिषद का आकार राज्य की परिस्थिति तथा मुख्यमन्त्री की इच्छानुसार बदलता रहता है। किसी राज्य का मुख्यमन्त्री चाहे तो उपमुख्यमंत्री पद की व्यवस्था कर सकता है। राज्य स्तर पर भी मंत्रिपरिषद में चार स्तर के मंत्री होते है- कैबिनेट मंत्री, राज्यमंत्री, उपमंत्री तथा संसदीय सचिव। कैबिनेट स्तर तथा राज्य स्तर के मंत्री एक या एक से अधिक विभागों का कार्यभार सम्भालते हैं। उपमंत्री तथा संसदीय सचिव नीचे दर्जे के मंत्री होते है। वे कैबिनेट मन्त्रियों व राज्यमन्त्रियों के सहायक के रूप में कार्य करते है। उन्हे मंत्रिपरिषद की बैठकों में भाग लेने का अधिकार नहीं होता है। मन्त्रिमण्डल की बैठकों में वे तब भी भाग ले सकते है, जबकि उनके विभाग से सम्बन्धित मंत्री अनुपस्थित होता है। मुख्यमंत्री ही मन्त्रियों में विभागों के बटवारे से सम्बन्धित आदेश जारी करवाता है।

कार्यकाल- सभी मन्त्री, राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त अपना पद धारण करेंगे। प्रसादपर्यन्त का तात्पर्य है- राज्यपाल के प्रति मन्त्रि का व्यक्तिगत उत्तरदायित्व। अर्थात् मुख्यमंत्री के आदेशों का उल्लंघन करने या मंत्रिपरिषद के विरूद्व आचरण करने पर किसी भी मंत्री को राज्यपाल, मुख्यमंत्री की सलाह पर बर्खास्त कर सकेगा। मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होगी और विधानसभा का विश्वास प्राप्त रहने तक ही अपने पद रह सकेगी।

मंत्रिपरिषद का कोई भी मंत्री, जो निरन्तर छः मास ही अवधि तक राज्य के विधानमण्डल का सदस्य नही है अर्थात् यदि कोई मंत्री अपना पद धारण करते समय राज्य विधानमण्डल का सदस्य नहीं है अर्थात् यदि कोई मंत्री अपना पद धारण करने के पश्चात भी वह छः मास तक राज्य विधानमण्डल का सदस्य नहीं था, तो छः माह की अवधि बीत जाने पर वह मंत्री, मन्त्रिपद पर नहीं रह सकेगा।

12.6.6 राज्यपाल और मंत्रिपरिषद के मध्य सम्बन्ध

अनुच्छेद 163 (1) के अनुसार यद्यपि राज्यपाल भी मुख्यमंत्री (मंत्रिपरिषद) की सलाह के अनुसार कार्य करेगा तथापि इस अनुच्छेद में राज्यपाल की कुछ 'विवेकाधीन शक्तियों' का भी उल्लेख है, जिनके पालन में वह

मुख्यमंत्री की सलाह लेने को बाध्य नहीं है। अनुच्छेद 163 (2) के अनुसार यदि वह प्रश्न उठता है कि कोई विषय ऐसा है या नहीं, जिसमें राज्यपाल को संविधान के अनुसार अपने विवके से कार्य करना चाहिए, तो उस स्थिति में राज्यपाल का निर्णय अन्तिम होगा और राज्यपाल द्वारा की गई किसी भी कार्यवाही के सम्बन्ध में किसी भी न्यायालय में इस आधार पर कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता कि राज्यपाल को अपने विवेकानुसार कार्य करना चाहिए था या नहीं। यह उल्लेखनीय है कि राज्यपाल अपनी विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग राष्ट्रपति के नियन्त्रण के अधीन रहते हुए करता है।

शपथ- प्रत्येक मंत्री को राज्यपाल के सम्मुख अपना पद ग्रहण करने से पूर्व पद एवं गोपनीयता की शपथ लेनी पड़ती है।

वेतन तथा भत्ते- संविधान के अनुच्छेद 164 के अनुसार मन्त्रियों को जो मासिक वेतन तथा भत्ते मिलते है, वह समय-समय पर राज्य विधानमण्डल द्वारा निश्चित किये जाते है।

12.6.7 मुख्यमंत्री की नियुक्ति

मंत्रिपरिषद के निर्माण के लिए सबसे महव्वपूर्ण कार्य मुख्यमंत्री की नियुक्ति करना है। अनुच्छेद 164 के अनुसार मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा और अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राज्यपाल, मुख्यमन्त्री के परामर्श कर करेगा। मुख्यमन्त्री की नियुक्ति राज्यपाल करता है, परन्तु वास्तव में राज्यपाल बहुमत दल के नेता को ही सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित करता है। यदि विधानसभा में किसी भी दल का बहुमत न हो तो मुख्यमंत्री की नियुक्ति में राज्यपाल एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है।

अ- मुख्यमन्त्री के कार्य एवं शक्तियाँ -

राज्य सरकार का वास्तिविक प्रधान मुख्यमन्त्री होता है। जिस प्रकार केन्द्र में राष्ट्रपति को संवैधानिक अध्यक्ष बनाया गया है, परन्तु वास्तविक शक्तियाँ प्रधानमन्त्री में निहित है, उसी प्रकार राज्य में राज्यपाल संवैधानिक प्रमुख है, किन्तु वास्तविक प्रधान मुख्यमंत्री होता है। मुख्यमंत्री बहुमत दल का नेता होता है। वह राज्य का नायक और मुख्य प्रवक्ता भी होता है। मुख्यमन्त्री के व्यक्तित्व तथा राजनीतिक स्थिति पर ही राज्य का आर्थिक तथा समाजिक विकास निर्भर है।

राज्य का सम्पूर्ण शासन उसी के संकेत के माध्यम से चलाया जाता है। वह राज्य शासन का कप्तान है तथा राज्य मन्त्रिमण्डल में उसकी विशिष्ट स्थिति होती है अर्थात् वह राज्य का वास्तविक शासक होता है।

राज्य के शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए मुख्यमंत्री को अनेक शक्तियाँ प्रदान की गई है। जैसे-

1.मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष होने के कारण वह मन्त्रिमण्डल का गठन करता है।

2.मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष होने के कारण मन्त्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करता है।

3.राज्यपाल को राज्यशासन या व्यवस्थापन सम्बन्धी निर्णयों से अवगत कराता है।

4.कार्यपालिका का वास्तविक प्रधान होने के कारण उसे समस्त प्रशासन के निरीक्षण का अधिकार प्राप्त है

5.विधानसभा में शासकीय नीतियों तथा कार्यो की घोषणा और स्पष्टीकरण करने का उत्तरदायित्व मुख्यमन्त्री पर भी होता है।

6.मन्त्रिमण्डल के सदस्यों के मध्य विभागों का बँटवारा करता है।

7.मन्त्रिमण्डल के पुनर्गठन की शक्ति भी मुख्यमन्त्री को प्राप्त है। यदि वह आवश्यक समझे तो मन्त्रिमण्डल का विस्तार या संकुचन कर सकता है।

8.मुख्यमन्त्री राज्यपाल का प्रमुख सलाहकार होता है।

9.राज्य के प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए मुख्यमंत्री अनेक महत्वपूर्ण नियुक्तियाँ राज्यपाल से परामर्श करके करवाता है।

10.मुख्यमन्त्री ही राज्य प्रशासन का मुख्य शासक होता है।

ब-महाधिवक्ता

अनुच्छेद 177 के अनुसार प्रत्येक राज्य का एक महाधिवक्ता होगा जो भारत के महान्यायवादी के समान होगा। भारत के महान्यायवादी के कृत्यों के समान वह राज्य में कार्य करेगा। राज्य का राज्यपाल उसे नियुक्त करेगा तथा राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त वह पद पर बना रहेगा। महाधिवक्ता पद के लिए वे योग्यताएं आवश्यक हैं, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए निर्धारित की जाती हैं। इसका पारिश्रमिक राज्यपाल द्वारा निर्धारित होगा। महाधिवक्ता राज्य विधानमण्डल के सदनों की कार्यवाहियों में भाग ले सकता है। अपने विचार प्रकट कर सकता है, किन्तु उसे सदन में मतदान का अधिकार प्राप्त नहीं है।

12.6.8 शासन के विभाग एवं कार्यालय

उत्तराखण्ड सरकार ने राज्य में 38 विभागों को गठित किया है, जिनमें से 15 विभागों के मुख्यालय राजधानी देहरादून में तथा 6 विभागों के मुख्यालय नैनीताल रखें गए है। कई प्रमुख शहरों में एक या दो विभागों के मुख्यालय बनाये गये हैं।

1. देहरादून- सम्पति, खाद्य, बॉट-माप, एवं उपभोक्ता संरक्षण, चुनाव कार्यालय पुलिस, सतर्कता, सिंचाई, जल निगम, कोषागार चिकित्सा, मुद्रणालय, नगर एवं ग्राम्य निदेशालय।

2. श्रीनगर- विकास आयुक्त उद्योग एवं हथकरघा खादी वस्त्रोद्योग, चीनी उद्योग, सूचना प्रौद्योगिकी, इलेक्ट्रॉनिक्स एवं खनिज विभाग।

3. नैनीताल- वन संरक्षण, ऊर्जा निगम, विधुत सेफ्टी,।

4. हल्द्वानी (नैनीताल)- श्रम, सेवायोजन, समाज कल्याण, परिवहन एवं आवास।

5. पौड़ी- विभागीय विशेषज्ञ संवर्ग।

6. नरेद्र नगर (टिहरी)- होमगार्ड कमाण्डेन्ट।

7. उधमसिंह नगर- महानिरीक्षक कारागार, उप गन्ना आयुक्त।

8. अल्मोड़ा- लोक निर्माण विभाग, निदेशक वैकल्पिक ऊर्जा सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार।

9.रानीखेत- कृषि एवं उद्यान, सैनिक कल्याण।

10. गोपेश्वर- पशुधन एवं मत्स्य विकास।

11.रामनगर - शिक्षा।

12.6.9 भारत सरकार द्वारा उत्तराखण्ड के कार्मिकों का विभाजन

उत्तराखण्ड राज्य गठन के बाद कार्मिकों का विभाजन सबसे पेचीदा मुद्दा रहा है। भारत सरकार द्वारा किये गये अंतिम आबंटन के बाद भी कई कर्मचारी इच्छा के विपरीत उत्तर-प्रदेश से उत्तराखण्ड आने को तैयार नहीं हुए। दूसरी तरफ कई ऐसे कर्मचारी थे जिन्होंने उत्तराखण्ड से उत्तर-प्रदेश जाना मंजूर नहीं किया। उत्तराखण्ड के विकल्पधारी इसलिये भी उत्तराखण्ड में कार्यभार ग्रहण नहीं कर पाये क्योंकि सम्बंधित विभाग ने उन्हें उत्तर-प्रदेश

से नये राज्य के लिये कार्य मुक्त नहीं किया था। जिसका सीधा प्रभाव उत्तराखण्ड की प्रशासनिक व्यवस्थाओं में देखा गया।

भारत सरकार द्वारा उत्तराखण्ड के विभिन्न विभागों हेतु कार्मिकों का जो आबंटन किया गया उसके अनुसार 'क' श्रेणी के कार्मिकों की संख्या 403, 'ख' श्रेणी के कार्मिकों की संख्या 1209, 'ग' श्रेणी के कार्मिकों की संख्या 16825 तथा 'घ' श्रेणी के कार्मिकों की संख्या 2875 थी। वर्ष 2007 के मध्य तक भी इसमें से क-श्रेणी के 31, ख-श्रेणी के 193, ग-श्रेणी के 2895 तथा घ-श्रेणी के 415 कार्मिकों ने उत्तराखण्ड में कार्यभार ग्रहण नहीं किया। अनेकों कर्मचारियों के न्यायालय में चले जाने के कारण भी मामले लटके रहे। युवा कल्याण विभाग, व्यापार कर विभाग, मनोरंजन कर, स्टाम्प एवं निबन्धन, आबकारी विभाग, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति, गृह विभाग-विधि विज्ञान, पुलिस विभाग, नागरिक सुरक्षा, कारागार, अर्थ व संख्या प्रभाग के कार्मिकों के मामले न्यायालय में विचाराधीन है।

उत्तराखण्ड से उत्तर-प्रदेश हेतु क-श्रेणी में 134, ख-श्रेणी में 663, ग-श्रेणी में 7200 तथा घ-श्रेणी में 218 कार्मिक अवमुक्त किये जाने के आदेश हैं। इनमें से भी खेल, ग्रामीण अभियन्त्रण विभाग, आबकारी, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति तथा सिंचाई विभाग से सम्बन्धित कुछ कार्मिकों के मामले न्यायालय में लम्बित होने के कारण उन्हें कार्यमुक्त नहीं किया जा सका है। पुलिस कार्मिकों का विभाजन भी अभी तक पूर्ण नहीं हो पाया है। इसी प्रकार लगभग सभी विभागों में कार्मिकों के बटवारें को लेकर अभी तक समस्या बनी हुयी है।

अभ्यास प्रश्न

1. संविधान में केन्द्र राज्यों को लेकर कितनी सूचियाँ हैं ?
2. समवर्ती सूची राज्य और केन्द्र की व्यवस्थापिका को समवर्ती शक्तियों के द्वारा कितने विषयों पर अधिकार प्रदान करती है?
3. विधायी शक्तियाँ किस अनुच्छेद में वर्णित हैं?
4. संकटकालीन उपबन्ध संविधान के किस भाग में हैं?
5. राज्य की कार्यपालिका का अध्यक्ष कौन होता है?
6. केन्द्र -राज्य सम्बन्धों को लेकर कौन से आयोग बनाये गये हैं?
7. राज्य मंत्री परिषद का गठन किस अनुच्छेद के अन्तर्गत किया गया है?
8. राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल को किस अनुच्छेद के आधार पर सौंपी गयी है?
9. उत्तराखण्ड राज्य में कुल कितने विधान सभा क्षेत्र हैं ?
10. उत्तराखण्ड राज्य में लोकसभा व राज्य सभा की कितनी सीटें हैं?

12.7 सारांश

केन्द्र राज्य सम्बन्धों में सुधार की दृष्टि से अनेकों प्रयास होते रहें हैं। सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाने को लेकर राज्य और केन्द्र दोनों ने सार्थक प्रयास किये हैं। केन्द्रीय प्रशासनिक सुधार आयोग, सरकारिया आयोग, आदि ने इस दिशा में महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। अब समय आ गया है कि केन्द्र राज्य सम्बन्धों की समस्या पर शान्तिपूर्वक व सकारात्मक विचार-विमर्श हो। देश संकटों से घिरा है ऐसे में केवल एक दूसरे पर दोषारोपण करने से काम नहीं

चलेगा। सही राजनीतिक पहल समय की माँग है। छोटे राज्यों की माँगों को उनकी सार्थकता के आधार पर गठन किया जाना आवश्यक है। आज की स्थितियों को देखते हुए सहकारी संघवाद एकमात्र समाधान है।

नये राज्य जो कुछ वर्ष पूर्व ही अस्तित्व में आये हैं। उन पर केन्द्र को विशेष ध्यान देने की जरूरत है। नये राज्य भी केन्द्र के सहयोगी बने तभी दोनों की बीच सही तारतम्यता बनी रहेगी। देश के संविधान में वर्णित कल्याणकारी राज्य की परिकल्पना को साकार करने हेतु नवसृजित उत्तराखण्ड राज्य में स्वायत्त शासन को अधिक महत्व दिया गया है। राज्य में जनसंख्या के आधार पर नगरीय, ग्रामीण स्वायत्त संस्थाओं एवं संगठनों का वर्गीकरण ग्राम पंचायत, न्याय पंचायत, नगर परिषद् तथा नगर निगम के रूप में किया गया है।

सारांशतः हम ये कह सकते हैं कि इस अध्याय में हमने केन्द्र राज्य सम्बन्धों को लेकर संविधान में संवैधानिक शक्तियों का विभाजन व दोनों के बीच विधायी व प्रशासनिक सम्बन्धों पर गंभीरता से चिन्तन किया। इसके साथ ही हमने ये भी जानने का प्रयास किया कि उत्तराखण्ड की विधायी व प्रशासनिक संरचना क्या है और वह किस प्रकार कार्य कर रही है।

12.8 शब्दावली

परिक्षेप – परिदृश्य
विनियम - अधिनियम
अभिलेख – लेख
कृत्य -कार्य
परिसीमन – सीमा निर्धारण

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.3(संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची), 2. 52 विषयों पर , 3. अनुच्छेद 245 से 363,
4. भाग-18, 5. राज्यपाल, 6. प्रशासनिक सुधार आयोग, सरकारिया आयोग, 7. 163 में,
8. 154 के तहत्, 9. 70, 10. 5 व 3

12.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी-अवस्थी - भारतीय प्रशासन
2. टी. सी. भट्ट - उत्तराखण्ड, राज्य आन्दोलन का नवीन इतिहास
3. पी.सी.जोशी - उत्तराखण्ड के आईने में हमारा समय
4. शेखर पाठक - पहाड़, सम्पादक

12.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. पुखराज जैन, वी.एन.खन्ना, चन्द्रकुमार सक्सेना -भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं गणतन्त्र का संविधान।

2. एम. वी. पायली -भारत की संवैधानिक सरकारें

3. नन्द किशोर -क्षेत्रीय परिषदों की प्रभावी भूमिका

12.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. अवशिष्ट शक्तियाँ क्या होती हैं? इस पर अपना लेख लिखिए?
2. राज्य के विधानमण्डलों को विधि निर्माण में क्या-क्या अधिकार प्राप्त है बतायें?
3. उत्तराखण्ड की विधायी संरचना के बारे में आप की जानकारी क्या है?
4. मुख्यमंत्री की नियुक्ति कैसे होती है व उसके कार्य क्षेत्र क्या हैं?
5. उत्तर-प्रदेश व उत्तराखण्ड में कार्मिकों के विभाजन की स्थिति क्या है समझायें?

इकाई-13 भारत में केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध-उत्तराखण्ड के वित्तीय सन्दर्भ में

इकाई की संरचना

13.0 प्रस्तावना
13.1 उद्देश्य
13.2 संघ एवं राज्यों के वित्तीय सम्बन्ध
13.3 केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध-संवैधानिक प्रावधान
13.4 वित्त आयोग
13.5 13वें वित्त आयोग की कुछ महत्वपूर्ण शिफारिशें
13.6 केन्द्र और उत्तराखण्ड राज्य
13.7 केन्द्रीय योजना आयोग द्वारा उत्तराखण्ड में दी गयी वित्तीय सहायता
13.8 आस्तियों तथा दायित्वों का विभाजन
13.9 सारांश
13.10 शब्दावली
13.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची
13.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.14 निबंधात्मक प्रश्न

13.0 प्रस्तावना

इससे पहले इकाई-3 में हमने जाना कि संविधान द्वारा केन्द्र राज्य सम्बन्ध को लेकर क्या- क्या शक्तियाँ दी गयी हैं तथा इनका बटवारा संविधान में कैसे किया गया है। साथ ही हमने पिछली इकाई में केन्द्र तथा राज्य के विधायी और प्रशासनिक सम्बन्धों को भी विस्तृत रूप से जानने का प्रयास किया। उत्तराखण्ड की विधायी व प्रशासनिक संरचना का भी इस इकाई में अध्ययन किया गया। साथ ही इस बात का भी अध्ययन किया गया कि केन्द्र सरकार द्वारा कार्मिकों का बटवारा दोनों राज्यों(उत्तर-प्रदेश व उत्तराखण्ड) के बीच कैसे किया गया और उसकी वर्तमान स्थिति क्या है। अब अगली इकाई-4 में हम भारत में केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध उत्तराखण्ड के वित्तीय संदर्भ में चर्चा करेंगे।

केन्द्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय संबंधो के बारे भी हम केन्द्रीय प्रधानता वाली भारतीय संघवाद की सामान्य प्रवृति के दर्शन कर सकते हैं। यह कहा जा सकता है कि वित्तीय दृष्टि से संघ अधिक शक्तिशाली है। लेकिन राज्यों के भी अपने संसाधन हैं। सुनियोजित अर्थव्यवस्था के माध्यम से देश की जरूरतों के स्वरूप को देखते हुए संघ राज्यों के लिये सारवान राशियों की व्यवस्था करता है।

नये राज्यों को सरकार द्वारा उचित सहयोग व विशेष अनुदान देकर आर्थिक रूप से मजबूत व सबल बनाने का प्रयास किया जाता रहा है। उत्तराखण्ड को भी केन्द्र सरकार द्वारा सहायता प्रदान की गयी है जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे। उत्तराखण्ड को लेकर वित्त आयोग की रिपोर्ट व योजना आयोग द्वारा उत्तराखण्ड राज्य को विशेष राज्य के दर्जे के रूप में विशेष आर्थिक पैकेज दिया गया है जिसकी चर्चा हम अन्य राज्यों के साथ तुलनात्मक अध्ययन के रूप में करेंगे।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से हम जान पायेंगे कि-

1. केन्द्र राज्य के वित्तीय सम्बन्धों का संवैधानिक रूप क्या है।
2. राज्यों को लेकर 13वें वित्त आयोग की रिपोर्ट की सिफारिशें क्या हैं।
3. केन्द्र द्वारा उत्तराखण्ड को दिये जाने वाला बजट व उसकी समीक्षा।
4. परिसम्पत्तियों एवं दायित्वों का उत्तर-प्रदेश व उत्तराखण्ड के बीच बटवारें की स्थिति।

13.2 संघ एवं राज्यों के वित्तीय सम्बन्ध

केन्द्र तथा राज्य की सरकारों के बीच केवल विधायी व प्रशासनिक शक्तियों का ही बटवारा नहीं होता, वित्तीय स्रोतों का भी बटवारा होता है। भारत के संविधान के अलावा वित्तीय क्षेत्र में केन्द्र और राज्यों के सम्बन्धों का इतना विस्तृत अध्ययन अन्य किसी देश के संविधान में नहीं मिलता है। भारत में संविधान द्वारा एक वित्त आयोग की व्यवस्था की गयी है। इसका मुख्य उद्देश्य है केन्द्र तथा राज्यों के मध्य साधनों से होने वाली प्राप्तियों का वितरण तथा समायोजन करना। इस वितरण प्रणाली में कभी-कभी केन्द्र और राज्यों के बीच मतभेद व तनाव भी उभर जाते हैं। भारतीय संविधान ने संघात्मक राज्यों की इस कठिन समस्या को सुलझाने के लिये एक मौलिक कदम उठाया है। भारत सरकार अधिनियम 1935 ने भी इस समस्या को सुलझाने का अच्छा प्रयास किया था। इस सारी समस्या को दूर करने के लिये राजस्व के समस्त स्रोत केन्द्र और प्रान्तों के मध्य बाँट दिये गये। कुछ विषय में केन्द्र कर लगाता व इक्कठा करता था परन्तु जो कुछ भी प्राप्त होता था वह उसे प्रान्तों में बाँट देता था। इस अधिनियम की वास्तविक त्रुटि यह थी कि प्रान्तों को बहुत ही कम राजस्व स्रोत दिये गये थे। वर्तमान संविधान निर्माताओं ने 1935 के अधिनियम की त्रुटियों को छोड़ते हुए, उसकी व्यवस्था का अनुसरण किया है। संविधान में केन्द्र और राज्य के बीच साधनों के वितरण की व्यवस्था की गयी है किन्तु वितरण की व्यवस्था के लिये राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त वित्त आयोग को विस्तारपूर्वक वितरण करने का कार्य सौंपा गया है।

13.3 केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध-संवैधानिक प्रावधान

केन्द्र तथा राज्यों के मध्य राजस्व के साधनों के विभाजन के आधारभूत सिद्धान्त हैं। जिनकों हम निम्न रूप में देख सकते हैं।

अ-कार्यक्षमता

ब-पर्याप्तता

स-उपयुक्तता इन तीनों उद्देश्यों की एक साथ ही प्राप्ति अत्यन्त कठिन थी। अतः भारतीय संविधान में समझौते की चेष्टा की गयी। संविधान द्वारा केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय सम्बन्धों के निरूपण को इस प्रकार देखा जा सकता है।

13.3.1 कर निर्धारण, शक्ति का वितरण और करों से प्राप्त आय का विभाजन

भारतीय संविधान में वित्तीय प्रावधानों की दो विशेषताएं हैं। प्रथम- केन्द्र तथा राज्यों के मध्य कर निर्धारण की शक्ति का पूर्ण निर्धारण कर दिया गया है। द्वितीय- करों से प्राप्त आय का बटवारा किया जाता है।

केन्द्र के प्रमुख राजस्व स्रोत इस प्रकार हैं- निगम कर, सीमा शुल्क, निर्यात शुल्क, कृर्षि भूमि को छोड़ कर अन्य सम्पति पर सम्पदा शुल्क, विदेशी ऋण, रेलें, रिजर्व बैंक, शेयर बाजार, आदि। राज्यों के राजस्व श्रोत निम्न हैं- प्रति व्यक्ति कर, कृर्षि भूमि पर कर, सम्पदा शुल्क, भूमि और भवनों पर कर, पशुओं और नौकाओं पर कर, बिजली के उपयोग तथा विक्रय पर कर, वाहनों पर चुंगी कर आदि । केन्द्र द्वारा आरोपित तथा संग्रहीत, विनियोजित किये जाने वाले शुल्कों के उदाहरण निम्नवत् हैं- बिल, विनियमों, प्रोमिसरी नोटों, हुण्डिया, चेकों आदि पर मुद्रांक शुल्क और दवा तथा मादक द्रव्य पर कर, शौक-श्रृंगार की चीजों पर कर तथा उत्पादन शुल्क।

केन्द्र द्वारा आरोपित तथा संग्रहित विनियोजित किये जाने वाले करों के उदाहरण निम्न हैं- कृर्षि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति के उत्तराधिकार पर कर, कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पति पर सम्पदा शुल्क, रेल, समुद्र, वायु द्वारा ले जाने वाले माल तथा यात्रियों पर सीमान्त कर, रेल भाड़ों तथा वस्तु भाड़ो पर कर शेयर बाजार तथा सट्टा बाजार के आदान-प्रदान पर कर, मुद्रांक शुल्क के अतिरिक्त कर, समाचार पत्रों के क्रय-विक्रय तथा उनमें प्रकाशित किये गये विज्ञापनों पर और समाचार पत्रों से अन्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा वाणिज्य के माल के क्रय-विक्रय पर कर।

कतिपय कर केन्द्र द्वारा आरोपित तथा संग्रहीत किये जाते हैं, पर उनका विभाजन केन्द्र तथा राज्यों के बीच होता है। आय कर व दवा तथा शौक-श्रृंगार सम्बन्धी चीजों के अतिरिक्त अन्य चीजों पर लगाया गया उत्पादन शुल्क इसके अन्तर्गत आता है।

13.3.2 सहायक अनुदान तथा अन्य सार्वजनिक उद्देश्यों के लिये दिया जाने वाला अनुदान

संविधान के अन्तर्गत केन्द्र तथा राज्यों को चार तरह के सहायता अनुदान प्रदान करने की व्यवस्था की गयी है।

प्रथम-पटसन या उससे बनी वस्तुओं के निर्यात से जो शुल्क प्राप्त होता है उसमें से कुछ भाग अनुदान के रूप में जूट पैदा करने वाले राज्यों को दिया जाता है। द्वितीय- बाढ़, भूकम्प व सूखाग्रस्त क्षेत्रों में पीड़ितों की सहायता के लिये भी केन्द्रीय सरकार राज्यों को अनुदान दे सकती है। तृतीय- आदिम जातियों व कबीलों की उन्नति व उनके कल्याण की योजनाओं के लिये भी सहायक अनुदान केन्द्र द्वारा दिया जाता है। चतुर्थ- राज्य को आर्थिक कठिनाईयों से उबारने के लिये केन्द्र राज्यों की वित्तीय सहायता करता है।

13..3.3 ऋण लेने सम्बन्धी उपबन्ध

संविधान केन्द्र को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह अपनी संचित निधि की साख पर देशवासियों व विदेशी सरकारों से ऋण ले सके। ऋण लेने का अधिकार राज्यों को प्राप्त होता है, परन्तु वह विदेशों से धन उधार नहीं ले सकते। यदि किसी राज्य पर केन्द्र सरकार का कोई कर्ज बाकी है तो राज्य सरकार अन्य कर्ज केन्द्र सरकार की अनुमति से ही ले सकती है। इस प्रकार का कर्ज देते समय केन्द्र सरकार किसी प्रकार की शर्त भी लगा सकती है।

13.3.4 करों से विमुक्ति

राज्यों द्वारा केन्द्र की सम्पति पर कोई कर तब तक नहीं लगाया जा सकता जब तक संसद विधि द्वारा कोई प्रावधान न कर दे। भारत सरकार या रेलवे द्वारा प्रयोग में आने वाली बिजली पर संसद की अनुमति के अभाव में राज्य किसी प्रकार का शुल्क नहीं लगा सकते। इसी प्रकार केन्द्र सरकार भी राज्य सम्पति और आय पर कर नहीं लगा सकती।

13.3.5 भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक द्वारा नियन्त्रण

भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक की नियुक्ति केन्द्रीय मंत्रीमण्डल के परामर्श से राष्ट्रपति करता है। यह भारत सरकार तथा राज्य सरकार के हिसाब का लेखा रखने के ढंग और उनकी निष्पक्ष रूप से जाँच करता है। नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक के माध्यम से ही भारतीय संघ राज्य की आय पर अपना नियंत्रण रखता है।

13.3.6 वित्तीय संकटकाल

वित्तीय संकटकालीन घोषणा की स्थिति में राज्यों की आय सीमा राज्य सूची में चर्चित करों तक ही सीमित रहती है। वित्तीय संकट के प्रवर्तन काल में राष्ट्रपति को संविधान के उन सभी प्रावधानों को स्थगित करने का अधिकार है जो सहायता अनुदान अथवा केन्द्र के करों की आय में भाग बाटने से संबन्धित हो। केन्द्रीय सरकार वित्तीय मामलों में राज्यों को निर्देश भी दे सकती है।

13.4 वित्त आयोग

वित्तीय आयोग की परिकल्पना भारतीय संविधान के अनुच्छेद 280 में की गयी है। इसके अनुसार भारत का राष्ट्रपति अपने स्वविवेक से प्रति पाँच वर्ष के बाद एक नवीन वित्त आयोग गठित करेगा। वित्त आयोग में एक अध्यक्ष के साथ-साथ चार अन्य सदस्यों की संवैधानिक व्यवस्था है। इसका अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति होता है जिसे सार्वजनिक कार्यों में व्यापक अनुभव होता है। शेष चार सदस्यों में एक उच्च न्यायालय का न्यायाधीश या इसी प्रकार का योग्यताधारी, एक ऐसा व्यक्ति किसी सरकार के वित्त तथा लेखाओं का विशेष ज्ञान हो, एक ऐसा व्यक्ति जिसे वित्तीय विषयों तथा प्रशासन के बारे में व्यापक अनुभव हो तथा एक व्यक्ति जिसे अर्थशास्त्र का विशेष ज्ञान हो, होता है। वित्त आयोग का कार्य केन्द्र तथा राज्यों के बीच विभाजन योग्य करों की आय का वितरण तथा केन्द्र द्वारा राज्य सरकारों को सहायता देना आदि विविध बातों के सम्बन्ध में सुझाव राष्ट्रपति को देना है। राष्ट्रपति वित्त आयोग की संस्तुतियों को संसद के समक्ष रखता है। अनुच्छेद 280 के अतिरिक्त संविधान के अनुच्छेद 270, 273, 275, भी इसकी पुष्टि करते हैं। भारतीय संविधान में वित्त आयोग के कतिपय कार्य सुनिश्चित किये गये हैं। इसके कार्यों में केन्द्र और राज्यों के बीच विभाजन योग्य करों की शुद्ध आगमों का वितरण भारत की संचित निधि में से राज्यों के सहायता अनुदान को शासित करने वाले सिद्धान्त सुनिश्चित करना एवं सुदृढ़ वित्त के हित में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को सौंपे गये किसी अन्य विषय के बारे में राष्ट्रपति को सिफारिश देना प्रमुख है।

वर्तमान में 13वाँ वित्त गठित किया जा चुका है। अब तक भारत में 12 वित्त आयोग गठित हो चुके हैं। जिनको निम्न तालिका में देखा जा सकता है -

अब तक के वित्त आयोग

वित्त आयोग	गठन का वर्ष	अध्यक्ष का नाम	क्रियान्वय का वर्ष	रिपार्ट देने का वर्ष
प्हला	1951	के.सी. नियोगी	1952 - 57	1952
छूसरा	1956	के. सन्थानम	1957 -62	1956’ व 1957
तीसरा	1960	ए. के. चन्दा	1962 - 66	1961
चौथा	1964	डॉ. पी.वी. राजामन्नार	1966 - 69	1965
पाचवां	1968	महावीर त्यागी	1969 - 74	1968’ 1969
छठा	1972	ब्रह्मानन्द रेड्डी	1974 - 79	1973
सातवाँ	1977	जे.एम.शेलट	1979 - 84	1978
आठवॉ	1983	वाई. बी. चव्हाण	1984 - 89	1983’ 1984
नवॉ	1987	एन.के.पी.साल्वे	1989 - 95	1988’ 1989
दसवॉ	1992	के.सी.पंत	1995 - 2000	1995
ग्यारहवॉ	1998	ए.एम. खुसरो	2000 - 2005	2000

बारहवॉं	2002	सी.रंगराजन	2005 - 2010	2004 ' अन्तरिम रिपोर्ट

13.5 13वें वित्त आयोग की कुछ महत्वपूर्ण सिफारिशें

सरकार ने पूर्व वित्त सचिव विजय केलकर की अध्यक्षता वाले 13वें वित्त आयोग की रपट संसद में पेश की। केन्द्र और राज्यो के बीच केन्द्रीय करों के विभाजन से संबंधित वित्त आयोग की प्रमुख सिफारिशे निम्न हैं-

1. विभाज्य केन्द्रीय करों की शुद्ध निबल प्राप्तियों में राज्यों का हिस्सा 32 प्रतिशत हो।
2. विभिन्न करों के साथ लगाये गये उपकरों तथा अभिकरों की समीक्षा की जाये।
3. केन्द्र की सकल राजस्व प्राप्तियों में राज्यों को दिया जाने वाला हिस्सा 39.5 प्रतिशत रखा जाये।
4. राज्यों में वित्त उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबन्धन () अधिनियमों का अनुपालन बनाया जाये।
5. राज्यों में 2011-12 तक राजकोषीय सुधार मार्ग पर वापस आने की उम्मीद ।
6. राष्ट्रीय आपदा आकस्मिक निधि को राष्ट्रीय आपदा अनुक्रिया निधि में मिला दिया जाय।

7.राष्ट्रीय आपदा राज्यों के लिये अनुशंसा अवधि (अप्रैल 2010-मार्च 2015) के दौरान आयोजन भिन्न राजस्व अनुदान के तहत 51,800 करोड़ रुपये आवंटित किये जाये। आयोजन भिन्न राजस्व घाटे की स्थिति से उबर चुके तीन विशेष श्रेणी के राज्यों के लिये 1500 करोड़ रुपये का निष्पादन अनुदान दिये जाये।

8.चार वर्षो के 2010-12, से 2014,15 के लिये सड़कों और पुलों के लिये अनुदान के रुप में 19,930 करोड़ रुपये की राशि की सिफारिश

9.वन, अक्षय उर्जा तथा जल क्षेत्र प्रबन्ध के लिये 5000 करोड़ रुपये की राशि आवंटित की जाय।

10.प्रारंभिक शिक्षा के लिये अनुदान के रुप में 24,068 करोड़ रुपये की राशि आवंटित की जाय।

11.राज्यों की सहायता अनुदान के रुप में सिफारिश अवधि के लिये 3,18,581 करोड़ रुपये की राशि की सिफारिश।

12.वित्त आयोग ने वस्तु एवं सेवा कर के क्रियान्वयन के कारण राज्यों को होने वाले राजस्व नुकसान की भरपायी के लिये 50,000 करोड़ रुपये का प्रावधान किये जाने की सिफारिश। जी.एस.टी. का क्रियानवयन अप्रैल 2013 या उसके बाद होने पर यह राशि घटकर 40,000 करोड़ रुपये तथा अप्रैल 2014 या उसके बाद इसका क्रियानवयन होने पर 30,000 करोड़ रुपये का प्रावधान।

13.6 केन्द्र और उत्तराखण्ड राज्य

उ.प्र. राज्य के साथ परिसम्पत्तियों के बटवारें के बाद केन्द्र सरकार से नवगठित राज्य को सहायता मिलनी शुरु हो गयी है। देश के हिमालयी क्षेत्रों में 6 प्रतिशत से कम जनसंख्या रहती है। योजना आयोग भारत सरकार के आफिस मैमोरेंडम संख्या -एफ-संख्या 4/28/2000 एफ.आर(बी)दिनांक 21 जनवरी 2002 के अनुसार राष्ट्रीय विकास परिषद की 1 सितम्बर 2001 को सम्पन्न बैठक में उत्तराखण्ड को वर्ष 2001-02 से विशेष श्रेणी राज्य का दर्जा दिया गया, किन्तु यह विधि बहुत लाभकारी सिद्ध नहीं हो पायी। निर्णय के अनुसार केन्द्रीय सरकार को सभी केन्द्र अनुदानित योजनाओं के लिये 90 प्रतिशत अनुदान देना चाहिये था, किन्तु केन्द्र सरकार ने 2001-10 तक विशेष दर्जा प्राप्त राज्य को मिलने वाली अनुदान राशि आवंटित नहीं की, यह अनुदान तभी मिल सकता है जब केन्द्र सरकार का वित्त तथा नियंत्रण मंत्रालय इसे स्वीकार करें।वित्त तथा नियंत्रण मंत्रालय सीधे प्रधानमंत्री के अधीनस्थ है। इस मंत्रालय ने उत्तराखण्ड को विशेष राज्य का दर्जा देने वाली अनुदान राशि का प्रतिशत नहीं बढ़ाया। केन्द्र सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय के आफिस मेमोरेण्डम संख्या 11015/1/2007 एन.इ. दिनांक 16 अक्टूबर

2000 के द्वारा उत्तर पूर्वी राज्यों को विशेष श्रेणी वाले राज्यों की भातिं 9:10 के अनुपात में अनुदान देने के निर्देश जारी किये। 1:10 के अनुपात के अनुसार 2009-10 में उत्तराखण्ड को लगभग 2500 करोड़ रुपये की सहायता कम मिलि है।

पिछले दो वर्षो में केन्द्र सहायतित योजनाओं पर व्यय किये गये धनराशि निम्न रुप में देखी जा सकती है।

क्रम सं	2008-2009(करोड़ रूपये में)	2009-2010(करोड़ रूपये में)
1	परिव्यय 1275.85	1358.44
2	बजट प्राविधान 1683.52	1794.48
3	स्वीकृति 1552.59	1071.21
4	व्यय 870.73	995.01

इस आकड़े से अनुमान लगाया जा सकता है कि उत्तराखण्ड को राष्ट्रीय विकास परिषद के निर्णय के बावजूद लगभग 20 प्रतिशत अनुदान पिछले 10 वर्षो से कम मिल रहा है। केन्द्रीय बजट से राज्यों को एक मुश्त रकम दी जाती है। विशेष श्रेणी के राज्यों को भारत सरकार या केन्द्र द्वारा दी जाने वाली प्रति व्यक्ति अनुदान राशि व प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद प्रतिशत को हम सारणी के माध्यम से देख सकते हैं-

क्रम संख्या	विशेष श्रेणी राज्य	प्रति व्यक्ति अनुदान (रूपये में)	प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद प्रतिशत
1.	मिजोरम	48,193	48.5
2.	नागालैंड	29,543	36.2
3.	मणिपुर	28,229	51.2
4.	हिमांचल प्रदेश	29,897	17.7
5.	त्रिपुरा	26,091	26.1
6.	अरुणांचल प्रदेश	23,264	58.1
7.	जम्मू और कश्मीर	33,197	36.0
8.	मेघालय	27,209	24.7
9.	सिक्किम	27,554	57.8
10.	उत्तराखण्ड	15,468	13.6

सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि ,सकल घरेलू उत्पादन में वृद्धि राज्य सरकार की उपलब्धी है। उत्तराखण्ड के 09 पहाड़ी जिलों का योगदान 35 है तथा सकल उत्पाद दर में 65 प्रतिशत वृद्धि हुयी है।

वर्ष 2008-09 में प्रति व्यक्ति आय में निम्न आकड़ों में देखा जा सकता है

क्रम संख्या	जनपद	प्रति व्यक्ति आय (08-09) रूपये में
1.	उत्तरकाशी	25,379
2.	चमौली	32,038
3.	रुद्रप्रयाग	24,474
4.	पौड़ी	28,139
5.	पिथौरागढ़	28,596
6.	बागेश्वर	22,709
7.	अल्मोड़ा	28,896
8.	टिहरी	33,999
9.	नैनीताल	41,180
10.	चंपावत	27,374
11.	उधमसिंह नगर	33,895
12.	हरिद्वार	50,227
13.	देहरादून	43,522

13.7 केन्द्रीय योजना आयोग द्वारा उत्तराखण्ड में दी गयी वित्तीय सहायता

राज्य के आर्थिक विकास को मजबूती प्रदान करने के लिये वार्षिक परियोजिना के परिव्यय में निरन्तर वृद्धि हुई है। नौवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कुल रू. 4430 करोड़ का परिव्यय था। दसवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत राज्य के लिये रू. 9000 करोड़ की योजना स्वीकृत की गयी। दोनों योजनाओं के परिव्यय से स्पष्ट होता है कि वार्षिक योजनाओं हेतु अनुमोदित परिव्यय और व्यय में निरन्तर वृद्धि हुयी है। केन्द्र की सहायता का लाभ उत्तराखण्ड सरकार को मिलता रहा है। राज्य के विकास में केन्द्रीय अनुदान का विशेष महत्व है। केन्द्रीय योजना आयोग ने राज्य की वर्ष 2005-2006 की सालाना योजना के परिव्यय में एक साथ 45 प्रतिशत की वृद्धि की जो राज्य के लिये एक बड़ी उपलब्धि थी। वर्ष 2004-2005 में प्रदेश की योजना के लिये 1865 करोड़ का परिव्यय

अनुमोदित था, जबकि इसे 2005-2006 में 2700 करोड़ रूपये कर दिया गया। इसके बाद भी केन्द्र सरकार द्वारा राज्य के विकास के लिये निरन्तर अनुदान दिया गया।

13.8 आस्तियों तथा दायित्वों का विभाजन

उत्तर- प्रदेश से जब उत्तराखण्ड अलग राज्य के रूप में उभर के आया तब चूल्हें चौके के अलग होने से कई तरह के हिस्से बटवारें होने थे। कुछ परिसम्पत्तियों पर दोनों के बीच एक सहमति न होने के कारण केन्द्र को हस्तक्षेप करना पड़ा। केन्द्र सरकार के स्पष्ट आदेशों के बाद भी अनेकों मामलों में उत्तर-प्रदेश रोड़े अटकाता रहा। जबकि दोनों प्रदेशों के शीर्ष अधिकारियों की बैठकों में महत्वपूर्ण मुद्दों पर वार्ता हो चुकी थी। नवम्बर 2007 के मध्य में अधिकारियों की इस बैठक में उत्तराखण्ड के अधिकारियों ने पहली माँग यही रखी कि जो सम्पत्ति नहर व रहवाहों के अलावा डैम आदि हैं वह सभी उत्तराखण्ड को सौंप दिये जाएं। इस बात पर उत्तर-प्रदेश के अधिकारियों ने कहा कि नहरों के प्रमुख कार्य गंगा प्रबन्धन बोर्ड को सौंपे जायें। इससे किसी एक राज्य का किसी भी नहर के संचालन पर एकाधिकार नहीं हो सकेगा। उत्तराखण्ड में स्थित नानक सागर, बेगुल, धौराबाउर व तुमड़िया जलाशयों में से निकलने वाली नहरों की नीलामी को लेकर उत्तराखण्ड और उत्तर-प्रदेश में ऐसी ठनी कि मामला पहले ही न्यायालय में पहँच गया था। 15 सितम्बर 2003 को नैनीताल हाईकोर्ट ने उत्तराखण्ड के पक्ष में फैसला देते हुए कहा था कि नानक सागर, बेगुल, धौराबाउर व तुमड़िया जलाशय पूरी तरह उत्तराखण्ड राज्य में हैं और इस जलाशयों से निकलने वाली मछली की भी नीलामी का यू.पी. विकास निगम लि. को कोई अधिकार नहीं है। उत्तराखण्ड या उसका निगम ही इन जलाशयों की मछली की नीलामी कर सकता है। जबकि शारदा सागर जलाशय उत्तराखण्ड व उत्तर-प्रदेश दोनों राज्यों में पड़ता है इसलिये इनमें से निकलने वाली मछलियों की नीलामी दोनों राज्य मिलकर कर सकते हैं।

आस्तियों एवं दायित्वो के विभाजन के लिये भारत सरकार की राय के अनुसार उत्तर-प्रदेश एवं उत्तराखण्ड के लिये 1 मार्च 2001 को मुख्य सचिव समिति का गठन किया गया। इसके अतिरिक्त विभागों के स्तर पर उत्तराखण्ड एवं उत्तर प्रदेश की संयुक्त विभागीय सचिव समितियों का गठन किया गया। 6 मार्च 2001 को उत्तराखण्ड और उत्तर-प्रदेश के मुख्यमन्त्रियों , के मध्य उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम के अन्तर्गत कार्यवाही के सम्बन्ध में लखनऊ में बैठक आयोजित हुई। जिन 17 महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर बैठक में विचार विमर्श हुआ उसमें नई दिल्ली स्थित उत्तर प्रदेश निवास उत्तराखण्ड को देने तथा उत्तर प्रदेश तराई बीज विकास निगम को दोनों राज्यों के सयुक्त स्वामित्व एवं प्रबन्धन में संचालित करने पर सहमति बनी। 10 अप्रेल 2006 को गृह मंत्रालय भारत सरकार के स्तर पर सम्पन्न समीक्षा बैठक में प्राप्त निर्देशों के अनुपालन की समीक्षा हेतु 30 अगस्त 2006 को प्रमुख सचिव उत्तर प्रदेश पुनर्गठन समन्वयक विभाग की अध्यक्षता में बैठक आयोजित हुई। भारत सरकार ने कतिपय प्रकरणों का निस्तारण दोंनों उत्तरवर्ती राज्यों द्वारा समन्वित रूप से मई व जून 2006 तक किये जाने के निर्देश दिये थे। इसी परिप्रेक्ष्य में भारत सरकार द्वारा उनकी प्रगति की स्थिति से अवगत कराये जाने की भी अपेक्षा की गयी थी। उक्त सम्बन्धी प्रकरणों की प्रगति की समीक्षा प्रमुख सचिव उत्तर-प्रदेश पुनर्गठन समन्वय विभाग द्वारा 30 अगस्त 2006 को की गयी और सिंचाई विभाग, औद्योगिक विकास विभाग, उर्जा, कृर्षि, गन्ना एवं चीनी उद्योग, पंचायती राज, मत्स्य विकास, शिक्षा, कारागार, श्रम, सैनिक कल्याण/ समाज कल्याण तथा नगर विकास विभाग से जुड़े 13 प्रस्तावों पर चर्चा और प्रगति की समीक्षा की गयी।

दूसरी ओर वन विकास निगम की लगभग 2 अरब रूपये की रकम को लेकर उत्तर प्रदेश का रवैया काफी हैरत भरा रहा। इस मुद्दे पर केन्द्र सरकार ने 13 फरवरी व 28 जुलाई 2004 को स्पष्ट आदेश किया कि उत्तराखण्ड को वन निगम की करीब 4 अरब रूपये की निधि से 54 प्रतिशत भाग दे दिया जाए लेकिन केन्द्र के आदेश के बाद भी वन विकास निगम को अपना हक पाने के लिये काफी मेहनत करनी पड़ी।

पुलिस विभाग की परिसम्पत्तियों के बंटवारे के सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखण्ड के सचिवों के बीच जो बैठक हुई उनका कोई परिणाम नहीं निकला। लिये गये निर्णयों के आधार पर पुनर्गठन आयुक्त उत्तराखण्ड शासन, विकास भवन, सचिवालय, उत्तर-प्रदेश, लखनऊ के माध्यम से पुलिस विभाग के विभिन्न मुख्यालयों के स्टोर से वर्तमान मूल्य रूपये 4,87,85,270 की सूची प्राप्त हुई जिसके आधार पर अंकित मूल्य से पुलिस मुख्यालय उत्तराखण्ड सहमत नहीं था। किन्तु केाई विकल्प न होने के कारण अंकित वर्तमान मूल्य का 16 प्रतिशत भाग रूपये 78,05,643.20 उत्तराखण्ड राज्य को उपलब्ध कराये जाने की अपेक्षा की गयी।

31 मार्च 2001 के पूर्ववर्ती उत्तर प्रदेश वन निगम के आर्थिक पत्र में दर्शित आरक्षित एवं अधिशेष की राशि रूपये 425.11 करोड़ की 54 प्रतिशत राशि जो उत्तराखण्ड को सौंपी जानी चाहिए थी उसमें अभी भी विवाद बना हुआ है। उत्तर प्रदेश वन निगम की परिसम्पत्तियों का उत्तर प्रदेश और उत्तराखण्ड राज्य के वन निगमों के मध्य भारत सरकार के हस्तक्षेप के उपरान्त ही 13 फरवरी 2004 के आदेशों के क्रम में किया जाना शुरू हुआ। इससे पहले दोंनो राज्यो के बीच यह मामला उलझा रहा। 31 मार्च 2001 को ,कर सम्पत्तियों का 54:46 के अनुपात में उत्तराखण्ड व उत्तर प्रदेश वन निगम के मध्य विभाजन का आदेश केन्द्र सरकार द्वारा किया गया था।

उत्तराखण्ड वन विकास निगम का गठन 1 अप्रेल 2001 को किया गया था। परिसम्पत्तियों के बंटवारे को लेकर उत्तर प्रदेश व उत्तराखण्ड के बीच एका नहीं बन पाया। परिसम्मत्तियों को लेकर उत्तर प्रदेश का रूख सकारात्मक नहीं रहा जिस कारण केन्द्र सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ा। भारत सरकार द्वारा दोंनों पक्षों को सुनने के उपरान्त दोनों राज्यों के मध्य परिसम्पत्तियों के सम विभाजन के आदेश निर्गत किये गये ,किन्तु भारत सरकार के आदेश के विरूद्ध उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 28 अप्रैल 2004 को भारत सरकार को पुनर्विचार हेतु आवेदन किया। जिस पर भारत सरकार ने 28 जुलाई 2004 को निर्णय देते हुए अपने पूर्व निर्णय यथावत रखा।

उत्तर प्रदेश व उत्तराखण्ड के बीच आज कई परिसम्पत्तियों का विभाजन होना शेष है। दोनों के बीच केन्द्र सरकार ने अपनी अहम भूमिका निभाई है। उत्तराखण्ड को केन्द्र द्वारा वित्तीय सहायता के अतिरिक्त अन्य सहयोग भी दिया जाता रहा है।

अभ्यास प्रश्न :

1. भारत में अब तक कितने वित्त आयोग गठित हो चुकें हैं?
2. पहला वित्त आयोग का गठन कब हुआ?
3. 13वें वित्त आयोग के अध्यक्ष कौन हैं?
4. केन्द्रीय स्तर पर योजनाओं का निर्माण कौन करता है?
5. केन्द्र व राज्यों के बीच करों का बंटवारा कौन करता हैं?
6. आस्तियों एवं दायित्वों के विभाजन के लिये उ0प्र0 एवं उत्तराखण्ड के लिये मुख्य सचिव समिति का

गठन कब हुआ?

7. वित्त आयोग की परिकल्पना भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद में है?
8. राज्यों की वित्तीय आवश्यकता को केन्द्र कौन-कौन से तरीकों से पूरा करता है?
9. एफ.आर.बी.एम. का पूरा नाम क्या है?
10. पहले वित्त आयोग का क्रियान्वयन का वर्ष कब से कब तक था?

13.9 सारांश

केन्द्र और राज्यों के बीच विधायी व प्रशासनिक सम्बन्धों के साथ-साथ वित्तीय सम्बन्ध भी अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय सम्बन्धों के विस्तृत विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि केन्द्र सरकार राज्यों के विकास के लिये और राज्यों को आर्थिक रूप से सम्पन्न व शक्तिशाली बनाने के लिये प्रयासरत रहा है। राज्यों के आर्थिक विकास में केन्द्र हमेशा सहयोगी रहा है । शायद यही कारण है कि भारतीय संविधान में केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। इस अध्याय में हमने केन्द्र तथा राज्यों के वित्तीय सम्बन्धों का अध्ययन करने के साथ-साथ इस बात का भी अध्ययन किया कि केन्द्रीय योजना आयोग कैसे राज्यों के लिये योजनाएं तैयार करता है। वित्त आयोग केन्द्र तथा राज्यों के बीच करों का निर्धारण करता है। जो दोनों के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य करता है।

केन्द्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय सम्बन्धों से स्पष्ट होता है कि भारतीय संविधान द्वारा एक शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना की गयी है। जो नये राज्यों को आर्थिक रूप से विशेष सहयोग प्रदान करता है तथा उनकी आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाने में अपना योगदान देता है। यही कारण है कि बार-बार यह कहा जाता है कि केन्द्र को भारत के संविधान में बहुत शक्तिशाली बनाया गया है जो कि समय की माँग भी है।

13.10 शब्दावली

विनियोजित - उचित,संगत

प्रोमिसरी नोट -वचन पत्र ,इकरारनामा

हुंडिया --निर्गत आदेश

परिकल्पना --अवधारणा

13.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 13, 2. 1951, 3. विजय केलकर, 4. योजना आयोग, 5. वित्त आयोग, 6. 1मार्च2001,

7. 280, 8. राज्यों को अनुदान देकर व ऋण देकर, 9. वित्त उत्तरदायित्व व बजट प्रबन्धन, 10. 1952 से 1957

13.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुभाष कश्यप - हमारा संविधान

2. डी.डी.बसु - भारत का संविधान

3. उत्तराखण्ड शासन की रिपोर्ट - संतुलित समयबद्ध विकास, 5 वीं वर्षगांठ

13.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. जगदीश शंकर शुक्ला - भारतीय संविधान तथा प्रशासन

2. जैन व खन्ना - भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन व गणतंत्र का विकास

3. त्रिलोक चन्द्र भट्ट - उत्तराखण्ड, राज्य आन्दोलन व नवीन इतिहास

13.14 निबंधात्मक प्रश्न

1-निम्नलिखित पर टिप्पणी दें?

अ-कर निर्धारण व करों से प्राप्त आय का विभाजन।

ब-केन्द्र व राज्य के बीच वित्तीय सम्बन्धों का संवैधानिक पहलू।

स-सहायक अनुदान।

2-वित्त आयोग से आप क्या समझते हैं?

3-13वें वित्त आयोग की महत्वपूर्ण सिफारिशों पर एक लेख लिखिए?

4-विशेष श्रेणी के राज्यों पर निबन्ध लिखिये?

इकाई-14 राज्यपाल, मुख्यमंत्री

इकाई की संरचना

14.0 प्रस्तावना
14.1 उद्देश्य
14.2 राज्यपाल
14.2.1 राज्यपाल का कार्यकाल
14.2.2 राज्यपाल की शक्तियां और कार्य
14.2.3 राज्यपाल और मुख्यमंत्री के सम्बन्ध
14.2.4 राज्यपाल की वास्तविक स्थिति
14.2.5 राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति
14.3 मंत्रीपरिषद और मुख्यमंत्री
14.3.1 मुख्यमंत्री की शक्तियां
14.3.2 मुख्यमंत्री के कार्य
14.3.3 मंत्रीपरिषद और व्यवस्थापिका
14.3.4 मुख्यमंत्री का अपना व्यक्तित्व
14.4 राज्यपाल और मुख्यमंत्री
14.5 सारांश
14.6 शब्दावली
14.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
14.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.10 निबंधात्मक प्रश्न

14.0 प्रस्तावना

भारत में जम्मू और कश्मीर राज्य को छोड़कर सभी राज्यों में शासन की वही पद्धति है जो केन्द्रीय स्तर पर मान्य है। दूसरे शब्दों में सभी राज्यों में संसदीय व्यवस्था है। प्रत्येक राज्य में कार्यपालिका का एक प्रमुख है जिसे राज्यपाल कहा जाता है। साथ में एक मन्त्रिपरिषद है, जिसका प्रमुख मुख्यमंत्री है जो राज्यपाल की सहायता करता है तथा परामर्श देता है। मन्त्रिपरिषद राज्य की विधानसभा के प्रति उत्तरदायी है।

राज्य का प्रशासन राज्यपाल के नाम से चलता है। राज्य की कार्यकारिणी शक्तियाँ राज्यपाल में निहित है। आमतौर पर एक राज्य का एक राज्यपाल होता है लेकिन कभी-कभी दो राज्यों का भी एक राज्यपाल होता है। यह व्यवस्था 1956 में की गयी थी।

14.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप-

1. राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति को समझ पायेंगे।
2. राज्यपाल की शक्तियों और कार्यो की जानकारी ले सकेंगे।
3. राज्यपाल और मुख्यमन्त्री के सम्बन्धों को जान सकेंगे।
4. राज्यपाल की आपातकालीन शक्तियों को समझ सकेंगे।
5. राज्य की राजनीति में राज्यपाल की भूमिका को समझ सकेंगे।
6. तुलनात्मक दृष्टि से राज्यपाल और राष्ट्रपति की शक्तियों की जानकारी लेंगे।
7. मुख्यमंत्री और विधानसभा के रिश्तों की जानकारी लेंगें।

14.2 राज्यपाल

संविधान के अनुसार राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा होती है। केवल भारत का ऐसा नागरिक जो 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो, राज्यपाल के पद पर नियुक्त हो सकता है। संविधान राज्यपाल की नियुक्ति के लिए कोई निश्चित योग्यता तय नहीं करता है। लेकिन साधारणतया विशिष्ट लोग इस पर नियुक्त किये जाते है। इसमें अवकाश प्राप्त राजनीतिक, सेना के पदाधिकारी, सेवी वर्ग के अधिकारी, प्रसिद्ध शिक्षाविद् इत्यादि होते है।

14.2.1 राज्यपाल का कार्यकाल

साधारणतया एक राज्यपाल पांच वर्ष के लिए नियुक्त होता है । वह राष्ट्रपति की मर्जी तक बना रहता है। अतः एक राज्यपाल पांच वर्ष से पूर्व राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकता है। राज्यपाल यदि स्वयं चाहे तो राष्ट्रपति को अपना त्यागपत्र दे सकता है।

महाभियोग के द्वारा राज्यपाल को हटाने का कोई प्रावधान नही है और न ही उसको हटाने में व्यवस्थापिका या न्यायपालिका की कोई भूमिका है।

राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल को उसके पद से हटाने की कोई संवैधानिक व्यवस्था नहीं है लेकिन पद के दुरूपयोग, भ्रष्टाचार, पक्षपात पूर्ण व्यवहार, संविधान के उल्लंघन, नैतिक पतन आदि के आधार पर राज्यपाल को हटाया जा सकता है। व्यवहार में यह देखा गया है कि केन्द्र में सत्ता परिवर्तन के साथ राज्यों के राज्यपाल भी बदल दिये जाते है।

एक राज्यपाल अनेक बार राज्यपाल हो सकता है।

14.2.2 राज्यपाल की शक्तियाँ और कार्य

संवैधानिक रूप से राज्यपाल की अनेक शक्तियाँ है जिनमें कार्यकारिणी विधायनी तथा न्यायिक प्रमुख है। परन्तु यहाँ याद रखना होगा कि व्यवहार में राज्यपाल की यह शक्तियाँ नाम मात्र की है। संक्षेप में इनका वर्णन इस प्रकार हैः-

कार्यकारिणी शक्तियाँ

1.राज्यपाल मुख्यमन्त्री की नियुक्ति करता है और उसके परामर्श से मन्त्रिपरिषद के अन्य सदस्यों की नियुक्ति करता है ।

2.महाधिवक्ता तथा राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल के द्वारा होती है।

3.राज्यपाल की मर्जी तक महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल) अपने पद पर बना रह सकता है। वह राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों को बर्खास्त कर सकता है लेकिन पदच्युत नहीं कर सकता।

4.यद्यपि राज्यपाल को उच्चतम न्यायालय के न्यायधीशों को नियुक्त करने का अधिकार नहीं है, लेकिन राष्ट्रपति इन न्यायधीशों को राज्यपाल के परामर्श से नियुक्त करता है।

5.यदि राज्यपाल सन्तुष्ट हो कि एंग्लो इण्डियन सम्प्रदाय का कोई सदस्य यथावत् निर्वाचित नही हो सकता तो विधान सभा के लिए एक एंग्लो इण्डियन को मनोनीत कर सकता है।

6.यदि राज्य में विधान परिषद है तो राज्य पाल को विधान परिषद के 1/6 सदस्यों को नामित करने का अधिकार है परन्तु ऐसे सदस्य साहित्य, कला, विज्ञान,समाजसेवा और सहकारिता आन्दोलन के क्षेत्र में ख्यातिप्राप्त व्यक्ति हो ।

विधायनी शक्तियां--राज्यपाल राज्य व्यवस्थापिका का एक अंग है। वह सदन का सत्र बुलाता है अथवा व्यवस्थापिका के किसी भी सदन के सत्र को स्थगित कर सकता है। वह सम्पूर्ण विधान सभा को भी भंग कर सकता है।

राज्यपाल को विधान सभा और विधान परिषद के सत्रों को अलहदा अथवा संयुक्तरूप से सम्बोधित करने का अधिकार है। वह दोनों सदनों को संदेश भी भेज सकता है।

राज्यपाल राज्य व्यवस्था के सामने वार्षिक वित्त लेखा जोखा (बजट) प्रस्तुत करने की संस्तुति देता है। राज्यपाल की संस्तुति के बिना वित्त विधेयक विधान सभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।

राज्य व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत विधेयक तब तक कानून नहीं बन सकते जब तक कि राज्यपाल की अनुमति न मिले। जब एक विधेयक राज्यपाल के सम्मुख उसकी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है तो वह-

1.विधेयक को अपनी संस्तुति प्रदान कर सकता है और विधेयक कानून बन जाता है।

2.या वह विधेयक पर अपनी संस्तुति रोक सकता है और विधेयक कानून नहीं बनता।

3.या वित्त विधेयक को छोडकर साधारण विधेयक को राज्य व्यवस्थापिका के पास पुर्नविचार के लिए वापस भेज देता है। यदि पुर्नविचार के बाद व्यवस्थापिका विधेयक को राज्यपाल के पास भेजती है तो वे विधेयक पर संस्तुति देने के लिए बाध्य हैं।

4.वह विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित कर लेता है। ऐसा विधेयक तब ही कानून होगा जब राष्ट्रपति अपनी संस्तुति प्रदान करेंगे।

अध्यादेश जारी करने की शक्तियाँ

यदि व्यवस्थापिका के सदन सत्र में नहीं है, और किसी विषय पर कानून बनाने की तुरन्त आवश्यकता है, इस संदर्भ में राज्यपाल एक अध्यादेश जारी कर सकता है। इस अध्यादेश का वही प्रभाव और दर्जा होगा जो व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत कानून का होता है। राज्यपाल उन्हीं विषयों पर अध्यादेश जारी करता है जो राज्य सूची या समवर्ती सूची में निहित हैं

अध्यादेश जारी करने की शक्ति राज्यपाल के औचित्य या स्वतंत्र निर्णय लेने की शक्ति नही है। वह मन्त्रिपरिषद की सलाह पर ही अध्यादेश जारी करता है।

निम्न मामलो पर राज्यपाल तब तक अध्यादेश जारी नहीं कर सकता जब तक पहले से उस पर राष्ट्रपति की अनुमति न हो-

1.ऐसा विषय जिस से सम्बन्धित विधेयक को राज्य व्यवस्थापिका में प्रस्तुतिकरण से पूर्व राष्ट्रपति की अनुमति की आवश्यकता हो: या

2.राज्यपाल ऐसे विषय से संबन्धित विधेयक पर राष्ट्रपति की अनुमति की आवश्यकता महसूस करता हो।

राज्यपाल द्वारा जारी अध्यादेश राज्य व्यवस्थापिका के सम्मुख तब रखना अनिवार्य होता है जब उसका सत्र आरम्भ होता है और यदि 6 सप्ताह के भीतर वह अध्यादेश व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत नहीं किया जाता है, तो वह समाप्त हो जाता है। यदि ऐसा अध्यादेश व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत हो जाता है तो कानून बन जाता है।

राज्यपाल की न्यायिक शक्तियाँ

राज्यपाल की न्यायिक शक्तियों का सम्बन्ध ऐसे कानून से है जिनका उल्लंघन कार्यपालिका अर्थात मंत्रीमंडल करता है। वह कानूनों का रखवाला है।

राज्यपाल कठोर दण्ड को हल्के दण्ड में (कम्यूटेशन) बदल सकता है, सजा को माफ (रेमीशन) कर सकता है, वह सजा या फता को राहत (रेस्पाइट) दे सकता है। लेकिन राज्यपाल का क्षमादान का अधिकार मृत्युदण्ड से सम्बन्धित नही है।

आपातकालीन शक्तियाँ

यदि राज्यपाल सन्तुष्ट हैं कि राज्य का शासन संविधान के प्रावधानों के अनुसार नहीं चल रहा है तो संविधान के अनुच्छेद 356 के तहत राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश कर सकता है। जैसे ही राष्ट्रपति शासन राज्य में लागू होता है, राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में राज्यपाल राज्य का प्रशासन संभाल लेता है। परन्तु राज्यपाल की यह शक्ति बडी विवादास्पद रही है। उस पर आरोप लगता रहता है कि वह अकसर अपने औचित्य का गलत प्रयोग करता है।

विवेकाधीन शक्तियाँ

राज्यपाल को विवेकाधीन शक्तियाँ प्रयोग करने का अधिकार है। ऐसी शक्तियाँ-न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से बाहर है। इस सम्बन्ध में राज्यपाल को यह भी स्वतन्त्रता है कि वह तय करें कि उसे किस मामले पर विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग करना है और इस बारे में उसका निर्णय अंतिम है।

कुछ ऐसी शक्तियाँ जिनके प्रयोग के लिए राज्यपाल मन्त्रिपरिषद से परामर्श के लिए बाध्य नहीं है। संभव है उसका ऐसा कदम मन्त्रिपरिषद की इच्छा के विरूद्ध हो। उदाहरण के लिए -

1.जब राज्यपाल अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति को राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने की सलाह दे।

2.राष्ट्रपति शासन के दौरान राज्यपाल को अपनी विवेकाधीन शक्तियों के प्रयोग का अवसर मिलता है ।

3.राज्यपाल अपने विवेक का प्रयोग करके यह तय करता है कि राज्य व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत किस विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित रखा जाये।

कुछ राज्यपालों के पास अपने राज्यों से सम्बन्धित विशिष्ट उत्तरदायित्व भी है। इन राज्यों में नागालैण्ड, मणिपुर, आसाम, गुजरात और सिक्कम के राज्यपाल आते है।

14.2.3 राज्यपाल और मुख्यमंत्री के सम्बन्ध -

विधानसभा में बहुसंख्यक दल के नेता को राज्यपाल मुख्यमन्त्री नियुक्त करता है। मुख्यमन्त्री की सलाह पर राज्यपाल अन्य मंत्रियों को नियुक्त करता है । यदि मन्त्रि परिषद विधान का विश्वास खो देती है तो राज्यपाल मन्त्रिपरिषद को बर्खास्त कर सकता है।

राज्यपाल द्वारा मुख्यमन्त्री को नियुक्त करने की तथा मन्त्रिपरिषद को बर्खास्त की शक्ति समय-समय पर विवादास्पत रही है। ऐसी स्थिति तब आती है जब विधान सभा में चुनाव के बाद बहुमत स्पष्ट न हो अथवा किसी समय विधान सभा में शासक दल में टूट फूट हो और बहुमत स्पष्ट न हो। तब राज्यपाल अपने विवेक से काम लेता है। परन्तु उसका यह विवेक परिस्थितियों के अनुसार होता है। क्योंकि वह केन्द्र के प्रति वफादार होता है । इसलिए ऐसी स्थिति में जब राज्य और केन्द्र में दो विपरीत दलो की सरकारे हो, तब वक केन्द्र के हितो को ध्यान में रखकर विवेक का प्रयोग करता है जो किसी भी स्थिति में विवेकपूर्ण नही होता। ऐसी स्थिति में पीडित दल न्यायालय की शरण लेता है। राज्यपाल के पक्षपातपूर्ण रवैये की कडी आलोचना हुई है।

राज्यपाल और मुख्यमन्त्री के मध्य टकराव का एक बड़ा कारण संविधान का अनुच्छेद 356 है। केन्द्र में सत्ताधारी दल सदा ही राज्यों की ऐसी सरकारों को गिराने का प्रयास करता है जहाँ राज्य सरकारें केन्द्रीय सरकार के विपरीत

होती हैं। यह काम केन्द्रीय सरकार अपने प्रतिनिधि राज्यपाल से लेता है। वह केन्द्र के इशारे पर दुविधापूर्ण स्थिति का लाभ उठाकर अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति शासन की सिफारिश कर देता है, इससे राज्यपाल और मुख्यमन्त्री के बीच टकराव बढता है और संघात्मक सरंचना पर आंच आती है। यद्यपि इस व्यक्तिगत पसन्द को अक्सर न्यायपालिका ने नापसन्द किया है।

14.2.4 राज्यपाल की वास्तविक स्थिति

भारत में एक ओर संघात्मक व्यवस्था है तो दूसरी ओर संसदात्मक जो केन्द्र मे भी है और राज्यों में भी । केन्द्र के समान राज्यपाल राज्य कार्यपालिका का संवैधानिक प्रधान (हैड) है। कार्यपालिका की वास्तविक शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद करती है जिसका मुखिया मुख्यमंत्री होता है। मन्त्रिपरिषद अपने सभी कृत्यों के लिये व्यवस्थापिका के निम्न सदन के प्रति उत्तरदायी है। यह स्थिति बिल्कुल केन्द्र के समान है।

इन समानताओं के बावजूद, जो केन्द्र और राज्यों में पाई जाती है, राज्यपाल की स्थिति और भूमिका राष्ट्रपति की स्थिति के समान नहीं है। कारण है राज्यपाल की दोहरी भूमिका। एक ओर राज्यपाल राज्य शासन का मुखिया है तो दूसरी ओर वह राज्य में केन्द्र का प्रतिनिधि है। यह एक विषम स्थिति है क्योंकि संविधान में राज्यपाल की शक्तियाँ स्पष्ट नहीं हैं। वास्तविकता यह है कि राज्यपाल को हटाने या उसको नियन्त्रित करने की शक्ति राज्य में निहित नहीं है। इस स्थिति ने राज्यपाल की कुर्सी को मजबूत किया है और वह केन्द्र में सत्ताधारी दल से सरलता से प्रभावित होता है। परिणामस्वरूप राज्य के सत्ताधारी दलों से उसका टकराव बढ़ जाता है ।सक्रिय अथवा अवकाश प्राप्त राजनीतिज्ञो ने इस पद पर पहुँचकर स्थिति को और गंभीर बनाया है।

वास्तव में अनुच्छेद 356 का अक्सर दुरूपयोग करके राज्यपाल ने स्वंय को राज्य का एक संवैधानिक मुखिया कम एक कुशल राजनीति अधिक सिद्ध किया है । इससे राज्य में अस्थिरता, दल- बदल और जोड़-तोड़ की राजनीति को बढ़ावा मिलता हैं।उदाहरण के लिये 1960 से 1967 तक राज्यों में विरोधी दलों की ग्यारह बार सरकारें बर्खास्त की गई जबकि 1967 से 1977 तक 8 बार ऐसी सरकारें बर्खास्त की गई। 1977 के आम चुनावों के बाद केन्द्र में जनता दल की सरकार ने राज्यों में कांग्रेस की नौ राज्यों की सरकारों को बर्खास्त किया । 1980 में काग्रेस ने बदले में विरोधी दलों की ग्यारह राज्य सरकारों को अपदस्थ किया , और यह सब कुछ केन्द्र ने राज्यपालों के माध्यम से कराया ।

14.2.5 राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति

राज्य के शासनतंत्र में राज्यपाल की एक महत्वपूर्ण हैसियत है। यथार्थ उस से राज्य में शासन के मुखिया की हैसियत से कार्य करने की अपेक्षा की जाती है, और इसलिये वह मन्त्रिपरिषद की सलाह पर कार्य करता है, परन्तु उसे मात्र रबर की मोहर नहीं कहा जा सकता । राज्यपाल की स्थिति के बारे में संविधान में दो प्रावधान है । अनुच्छेद 159 के तहत राज्यपाल को जो शपथ लेनी होती है उसके अनुसार यह स्पष्ट है कि वह पूरी निष्ठा से अपने पद का निर्वाह करेगा,अपनी पूरी योग्यता से संविधान और कानून की रक्षा करेगा, और राज्य के लोगों की सेवा में स्वंय को समर्पित करेगा । इस शपथ से यह स्पष्ट होता है कि लोगों की सेवा से संबन्धित उसकी सोच और मन्त्रिपरिषद की सोच में अन्तर हो सकता है, जो टकराव का कारण बन सकता है।

उधर अनुच्छेद 163(1)स्पष्ट करता है कि अपने कार्यों के निष्पादन के लिये राज्यपाल को परामर्श और सहायता प्रदान करने के लिये एक मन्त्रिपरिषद होगी, लेकिन वहीं तक जहाँ राज्यपाल की स्वतन्त्र शक्तियों के निष्पापदन का प्रश्न न हो। स्वतंत्र शक्तियों के प्रयोग में राज्यपाल का निर्णय अन्तिम होगा।

अनुच्छेद 163(2) पुनः व्यवस्था करता है कि राज्यपाल का कौन सा कार्य उसके क्षेत्राधिकार में आता है और कौन सा नहीं, यह राज्यपाल ही तय करेगा और वह जो भी करेगा उस पर जबाब तलब नहीं किया जायेगा।

प्रत्येक राज्यपाल परिस्थितियों के अनुसार अपने औचित्य की शक्ति का प्रयोग करता है, समान परम्पराऐं नही हैं। यद्यपि इस व्यवहार की आलोचना की गई है, लेकिन संवैधानिक दृष्टि से यह उचित है। राज्यपाल की हैसियत राजनीतिक है इसलिये पूरी निष्पक्षता के साथ उसका व्यवहार करना असंभव है। वास्तव में अक्सर विधायक स्वंय ऐसी परिस्थितियॉ पैदा करते है जहॉ राज्यपाल को बडे कदम उठाने पडते हैं।

14.3 मन्त्रिपरिषद और मुख्यमन्त्री

प्रत्येक राज्य में एक मन्त्रिपरिषद होती है जिसका मुखिया मुख्यमंत्री होता है। मन्त्रिपरिषद का कार्य राज्यपाल को उसके कार्यो के निष्पादन के लिये सहायता करना और परामर्श देना है लेकिन राज्यपाल के स्वविवेकी कार्य मन्त्रिपरिषद के क्षेत्राधिकार से बाहर है।

मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल के द्वारा होती है और उसके परामर्श से राज्यपाल अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। आम या मध्यावधि चुनावों के बाद यदि विधान सभा में दल के नेता को बहुमत प्राप्त होता है तो राज्यपाल का कार्य सरल हो जाता है। वह बहुमत दल के नेता को मुख्यमंत्री पद पर नियुक्त कर देता है। अगर किसी भी दल का बहुमत नहीं होता तो स्थिति जटिल हो जाती है और राज्यपाल को अपने विवेक का प्रयोग करना होता है। यही वह स्थिति है जो अक्सर विवादास्पद बन जाती है।

14.3.1 मुख्यमन्त्री की शक्तियाँ

मुख्यमंत्री की हैसियत मन्त्रिपरिषद में महत्वपूर्ण और विशिष्ट है। वास्तव में मन्त्रियों की नियुक्ति वही करता है और उन्हें बर्खास्त करने का अधिकार भी उसी के पास है। वह अपने मंत्रियों में विभाग आवंटित करता है। वह कैबिनेट की मीटिंगों की अध्यक्षता करता है। आमतौर पर मुख्यमन्त्री स्वंय अनेक विभाग अपने पास रखता है। इसके अतिरिक्त शासन के सभी विभागों का निरीक्षण करना भी मुख्यमंत्री का उत्तरदायित्व है।

भारतीय संविधान में मुख्यमंत्री की शक्तियों का कोई उल्लेख नहीं है परन्तु व्यवहार में राज्य में उसकी वही स्थिति है जो केन्द्र में प्रधानमंत्री की है। दूसरी ओर राज्यपाल के संदर्भ में संविधान की यह व्यवस्था है कि मुख्य मंत्री के कुछ उत्तरदायित्व हैः

(अ) मुख्यमन्त्री का यह कर्तव्य है कि वह राज्य से संबन्धित प्रशासन तथा विधि प्रस्तावों से राज्यपाल को अपने निर्णयों के बारे में अवगत कराये।

(आ) मुख्यमंत्री का यह कर्तव्य है कि राज्य के मामलों से सम्बन्धित प्रशासन के बारे में तथा विधि प्रस्तावों के बारे में यदि राज्यपाल कोई सूचना मांगे तो वह उसे मुहैय्या कराये तथा

(इ) राज्यपाल मुख्यमंत्री से ऐसे मामलों पर सूचना मांग सकता है जिसका निर्णय मंत्री ने तो लिया है पर जिसे मन्त्रिपरिषद के सम्मुख न रखा गया हो।

मुख्यमन्त्री की एक महत्वपूर्ण शक्ति यह है कि वह विधान सभा को भंग करने की सिफारिश ,राज्यपाल से कर सकता है।

14.3.2 मुख्यमन्त्री के कार्य

शक्तियों और कार्यो की दृष्टि से मुख्यमन्त्री की अपनी हैसियत उसके व्यक्तित्व में निहित है। यदि उसका व्यक्तित्व मजबूत है तो वह प्रभावशाली मुख्य मंत्री होता है। परन्तु सच यह है कि मुख्य मंत्री की सारी शक्तियॉ और कार्य मंत्री परिषद में निहित है जिसका व्यक्तित्व सामुहिक है।

मन्त्रिपरिषद वास्तव में राज्य की मुख्य कार्यपालिका है। यह प्रशासन की नीतियों का निर्माण करती है। विधि निर्माण के कार्य को तैयार और प्रक्रिया आगे बढाती है और कानून पास हो जाते है तो उनके कार्यान्वयन का निरीक्षण करती है। कैबिनेट द्वारा वार्षिक बजट तैयार किया जाता है और विधान सभा में प्रस्तुत किया जाता है। लगभग सभी वित्तीय शक्तियाँ परिषद में निहित है यद्यपि यह राज्यपाल के नाम से पहिचानी जाती है।

संविधान ने राज्यपाल को व्यवस्थापिका के सत्र की अनुपस्थिति में अध्यादेश जारी करने का अधिकार दिया है परन्तु यथार्थ में यह शक्ति भी कैबिनेट के पास है। राज्यपाल व्यवस्थापिका केा सम्बोधित करता है तथा संदेश भेजता है परन्तु उसका अभिभाषण कैबिनेट द्वारा तैयार किया जाता है। राज्यपाल को विधान सभा को बर्खास्त करने का अधिकार है लेकिन इस अधिकार का प्रयोग भी मन्त्रिपरिषद करती है। ऐसा राज्य जिसमें विधान परिषद होती है उसमें कुछ सदस्य नामित करने का अधिकार राज्यपाल को है परन्तु व्यवहार में यह कार्य भी राज्यपाल कैबिनेट की सिफारिश पर करता है। इसी तरह राज्य की क्षमादान या क्षमा को कम करने की शक्ति भी मन्त्रि परिषद की सिफारिश पर आधारित है।

14.3.3 मन्त्रिपरिषद और व्यवस्थापिका

मन्त्रिरिषद के मंत्री व्यवस्थापिका के सदस्यों से लिये जाते है और वे सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होते हैं। यदि एक म़ंत्री विधान सभा में पराजित हो जाता है तो सब को त्यागपत्र देना चाहिए। यह सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के अनुसार है। इसलिए सभी मंत्री व्यवस्थापिका के सदन पर एक दूसरे का बचाव करते हैं।

व्यवस्थापिका सदस्य प्रश्नों और पूरक प्रश्नों के माध्यम से मंत्रियों को नियंत्रित करते हैं। इस तरह वे सरकार की कमियों और गलतियों को उजागर करते हैं। वे मंत्रालय के विरूद्ध स्थगन और निन्दा प्रस्ताव लाते हैं। अन्त में विधान सभा के सदस्य सरकार के विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव लाते है। यदि यह प्रस्ताव पारित हो गया, तो सरकार को त्यागपत्र देना होता है। इसी तरह यदि सरकार द्वारा पारित और समर्थित विधेयक विधान सभा मे पराजित हो गया तो इसको अविश्वास का मत समझा जायेगा और सरकार को त्यागपत्र देना होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि मन्त्रिपरिषद का अस्तित्व पूरी तरह सदन के विश्वास पर टिका होता है।

मन्त्रिपरिषद भी व्यवस्थापिका पर नियंत्रण रखती है। वास्तव में व्यवस्थापिका में पूरी कार्यवाही को नियंत्रित करते है। अधिकांश विधेयक मंत्रालयों द्वारा लाये जाते है और क्योंकि उनको बहुमत दल का विश्वास प्राप्त होता है, यह विधेयक सफलता से पास हो जाते हैं। कोई भी ऐसा विधेयक जिसे सरकार का समर्थन प्राप्त नहीं होता, पास नहीं हो सकता। संविधान के 52वें संशोधन ने जिस दल-बदल विरोध कानून कहा जाता है, मन्त्रिपरिषद की स्थिति को मजबूत किया है।

जब दल-बदल आम बात थी, राज्य के मंत्रियों के सिर पर तलवार लटकी रहती थी। यह अस्थायित्व का काल था लेकिन अब यदि कोई सदस्य दल बदलता है तो वह अपने सदन की सीट खो देता है। इससे दल-बदल की परम्परा समाप्त हुई है।

मन्त्रिपरिषद के हाथों में एक और ऐसा शक्तिशाली हथियार है जो व्यवस्थापिका को उसके नियंत्रण में रखता है। विधान सभा को भंग कराने का अधिकार मुख्यमंत्री के पास है। यदि उसके दल के सदस्य अनुशासनहीन होते हैं और सरकार के विरूद्ध मतदान करते हैं, तो मुख्यमंत्री विधान सभा को भंग करने की सिफारिश कर सकता है। सीट खोने का भय सदस्यों को अनुशासित रखता है। फिर भी मिला-जुला मन्त्रि मण्डल सदा अस्थिर होता है और ऐसी स्थिति में मुख्यमंत्री की स्थिति कमजोर होती है। यहाँ तक कि दल-बदल विरोधी कानून भी मिली जुली सरकार को स्थिरता की गारण्टी नहीं दे सकता।

14.3.4 मुख्यमन्त्री का अपना व्यक्तित्व

मुख्यमंत्री की स्थिति बहुत कुछ हद तक उसके अपने व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (सी0पी0एम0) के पश्चिमी बंगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु एक लम्बे समय तक अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण अपने बहुमत दल का विश्वास प्राप्त करके अपने पद पर बने रहे। उनका अपना दल, सी0पी0एम0 कभी केन्द्र में सत्ताधारी दल नहीं रहा।

कोई भी मुख्यमन्त्री जिसका प्रभावशाली व्यक्तित्व है, शक्तिशाली समझा जाता है। उसके सहयोगी उसके लिए वफादार होते है । ऐसी सरकार जनहित के कार्य करती है। वह केन्द्र के दबावों से मुक्त रहता और खुलकर काम करता है।

14.4 राज्यपाल और मुख्यमंत्री

मुख्यमंत्री और राज्यपाल के रिस्तों में अक्सर कडवाहट रहती है। इस कडवाहट का कारण हैं दलीय द्वन्द। राज्यपाल केन्द्र का प्रतिनिधित्व करता है । जब केन्द्र में और राज्य में एक ही दल की सरकारें होती है ,तब राज्यपाल और मुख्यमन्त्री में सामंजस्य बना रहता है। लेकिन जब केन्द्र और राज्य में विरोधी दलों की सरकारें होती हैं तो टकराव की स्थिति आ जाती है। विशेष रूप से जहाँ राज्य में मिली जुली सरकारें है वहाँ राज्यपाल स्थिति का लाभ उठाकर राज्य सरकार को बर्खास्त करने का प्रयास करता है। ताजा उदाहरण उडीसा का जहाँ, भारतीय जनता पार्टी की येदुरप्पा की सरकार को राज्यपाल ने बर्खास्त करने का प्रयास किया।

1992 में भारतीय जनता पार्टी की तीन सरकारों को केन्द्र के इशारे पर राज्यपाल ने बर्खास्त कर दिया। कारण था 06 दिस्मबर 1992 को अयोध्या के विवादित ढाँचे को कारसेवकों द्वारा ध्वस्त किया जाना। सरकारों को बर्खास्त

करना एक राजनीतिक फैसला था। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण था कि मध्य प्रदेश में बी0जे0पी0 सरकार की बर्खास्तगी गैर कानूनी थी क्योंकि राज्यपाल ने केन्द्र को जो रिपोर्ट भेजी थी, वह पर्याप्त रूप में यह सिद्ध नहीं करती थी कि राज्य में सरकार संविधान के अनुसार चलने में असफल हो गयी है। लेकिन जब यह विवाद सर्वोच्च न्यायालय पहुँचा तो उसने यह फैसला दिया कि राज्यपालों का फैसला, जो वास्तव में ग्रेस सरकार का फैसला था औचित्यपूर्ण था क्योंकि बर्खास्तगी का आधार ''धर्म निरपेक्षता'' था। जो भारतीय संविधान की मूल आत्मा है। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले में कहा कि तीनों राज्यों की बी0जे0पी0 सरकारें अपना धर्म निरपेक्ष आचार खो चुकी थी। इसलिए उनका बना रहना संविधान की आत्मा के विपरीत था।

सर्वोच्च न्यायालय के इस फैसले से राज्यपाल को अपने औचित्य की शक्ति को सशक्त करने का और अवसर मिला और इसका एक नतीजा यह निकला कि मुख्यमन्त्री, राज्यपालों की नियुक्ति से पूर्व अपनी पसंद और नापसंद की बात करने लगे।

मुख्यमन्त्रियों ने भी सरकारी आयोग का हवाला दिया। सरकारी अयोग ने अपनी सिफारिशों में कहा कि राज्यपाल अपने पद से सेवानिवृत होने के बाद किसी प्रकार की राजनीति में भाग नहीं लेगा। इस सिफारिश को अंतर्राज्यपरिषद ने दिसमबर 1991 में स्वीकार कर लिया। दूसरी सिफारिश यह थी कि राज्यपाल की नियुक्ति से पहले उस राज्य के मुख्यमन्त्री से सलाह ली जाये।

अक्सर यह देखा गया है कि राज्यपाल के पद से सेवानिवृत्त होने के बाद राज्यपाल सक्रिय राजनीति में दाखिल हो गये, मुख्यमन्त्री बनाये गये, चुनाव लडा और संसद सदस्य बने तथा अन्य लाभ के पदों पर नियुक्त किये गये। इसका नतीजा यह निकलता है कि राज्यपाल एक निष्पक्ष भूमिका अदा नहीं करते और परिणाम स्वरूप राज्यपाल और मुख्यमंत्री के मध्य खटास उत्पन्न होती है ।

अभ्यास प्रश्न :

1.राज्यपाल की नियुक्ति कौन करता है ?
2.राज्यपाल की नियुक्त हेतु न्यूनतम आयु क्या हो?
3.राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता किस अनुच्छेद के तहत होती है?
4.भारत में एकात्मक शासन है या संघात्मक?
5.राज्य में मंत्रिपरिषद का मुखिया कौन होता है ?
6.राज्य में संवैधानिक प्रधान कौन होता है?
7.दलबदल विरोधी कानून सर्वप्रथम किस संवैधानिक संशोधन द्वारा बनाया गया?
8.अयोध्या का विवादित ढांचा १९९२ में किस तिथि को गिराया गया ?

14.5 सारांश

भारत में संसदीय व्यवस्था है, केन्द्र में भी, राज्य में भी। राज्यों में कार्यपालिका दो भागों में विभक्त है-राज्यपाल जो नियुक्त है और मुख्यमंत्री जो निर्वाचित है। राज्यपाल केन्द्र का प्रतिनिधि है और राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी है। लेकिन मुख्यमन्त्री जनता का प्रतिनिधि है और विधानसभा के प्रति उत्तरदायी है । इसलिए मुख्यमन्त्री राज्यपाल से अधिक महत्वपूर्ण है।

राज्यपाल की जो शक्तियाँ है वह संवैधानिक है लेकिन इन शक्तियों का प्रयोग राज्यपाल के नाम से मन्त्रिपरिषद करती है। इसलिए मुख्यमन्त्री, मन्त्रिपरिषद का मुखिया होता है ,इसलिए वह अधिक सशक्त है।

मन्त्रिपरिषद जो एक सामूहिक उत्तरदायित्व वाली संस्था है। मुख्यमंत्री इस संस्था को नेतृत्व करता है।

राज्यपाल अपने विवेकाधीन शक्तियों के कारण शक्तिशाली भी है और विवादास्पद भी। अनुच्छेद-356 का प्रयोग करके अक्सर राज्यपाल को बदनामी मिली है।

सशक्त मुख्यमंत्री वह है जिसका व्यक्तित्व प्रभावशाली है। उ0प्र0 के प्रथम मुख्यमंत्री पं0 गोविंद वल्लभ पंत अदम्य साहस और अद्वितीय प्रतिभा से सम्पन्न व्यक्ति थे। वह एक कुशल वक्ता और कुशाग्र बुद्धि के धनी थे।

राज्यपाल बडी गरिमा का पद है। उदाहरण उ0प्र0 की पहली राज्यपाल श्रीमती सरोजनी नायडू ने इस पद को गौरवान्वित किया है।

राज्य में मुख्यमन्त्री के कार्य वही है जो केन्द्र में प्रधानमंत्री के। यद्यपि राज्य सरकार की वास्तविक शक्ति मंत्री परिषद में निहित है, लेकिन मुख्यमंत्री कार्यपालिका की केन्द्रीय धुरी है। वह समानों में प्रथम ही नहीं है, वरन राज्य शासन का मुख्य संचालक है।

14.6 शब्दावली

कन्वेंशन	परम्परा
रेमीशन	सजा को कम करना या उसका स्वरूप बदलना
रेपरीव	सज़ा माफ करना या टालना
डिसक्रीशन	छूट की स्वतंत्रता
रेस्पाइट	सज़ा में राहत देना

14.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१.राष्ट्रपति २. ३५ वर्ष ३. अनुच्छेद ३५६ ४.संघात्मक ५.मुख्यमंत्री ६.राज्यपाल ७.५२वे संवैधानिक संशोधन ८.६ दिसम्बर

14.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

दुबे, एस0एन0	भारतीय संविधान और राजनीति
माहेश्वरी, श्रीराम	स्टेट गवर्नमेंटस इन इण्डिया
पाण्डे, लल्लन बिहारी	दि स्टेट एक्ज़ीक्यूटिव
पायली, एम0वी0	इण्डियाज़ कान्सटीटयूशन

14.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय शासन एवं राजनीति	-	डॉ रूपा मंगलानी
भारतीय सरकार एवं राजनीति	-	त्रिवेदी एवं राय
भारतीय शासन एवं राजनीति	-	महेन्द्रप्रतापसिंह
भारतीय संविधान	-	ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय लोक प्रशासन	-	बी.एल. फड़िया

14.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. राज्यपाल और मुख्यमंत्री के सम्बन्धों की समीक्षा कीजिए।
2. राज्य में वास्तविक कार्यपालिका कौन है और उसका स्वरूप क्या है?
3. मंत्री परिषद क्या है? मुख्यमंत्री से उसके सम्बन्ध क्या है?
4. मुख्यमंत्री और व्यवस्थापिका के सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।

इकाई-15 राज्य सचिववालय, मंत्रीमण्डलीय सचिवालय, मुख्य सचिव

इकाई की संरचना

15.0 प्रस्तावना
15.1 उद्देश्य
15.2 सचिवालय का अर्थ
15.2.1 सचिवालय की स्थिति और भूमिका
15.2.2 सचिवालय की संरचना
15.2.3 राज्य सचिवालय में संगठनात्मकता की प्रतिकृति
15.2.4 सचिवालय विभाग तथा कार्यकारिणी विभाग में अंतर
15.2.5 नीति और प्रशासन
15.2.6 नीति निर्माण और विधायन में प्रशासकों की भूमिका
15.2.7 सचिवालाय समालोचना
15.3 मंत्रीमण्डलीय सचिवालय
15.4 मुख्य सचिव
15.5 सारांश
15.6 शब्दावली
15.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
15.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
15.10 निबंधात्मक प्रश्न

15.0 प्रस्तावना

सरकार के दो घटक होते है। राजनीति और प्रशासकीय दोनों एक दूसरे के पूरक है। वह राजनीतिक घटक नीतियां बनाता है। नीतियों से सम्बन्धित कानून बनाता है निर्णय लेता है। प्रशासकीय घटक इन नीतियों निर्णयों और कानूनों को क्रियान्वित करता है । रानीतिक घटक प्रशासकीय घटक की सहायता के बिना नीतियों और कानूनों का निमार्ण नहीं कर सकता। जहाँ प्रशासकीय प्रक्रिया चलती है उसे सचिवालय कहा जाता है। इस इकाई में इसी राज्य सचिवालय की संरचना और कार्यो पर बहस की गयी है। यह समझाया गया है कि सचिवालय विभागीय पद्धति क्या है? तथा सचिवालय विभाग तथा कार्यकारिणी विभाग में अंतर क्या है? इसके अतिरिक्त राज्य प्रशासन में मुख्य सचिव की भूमिका स्थिति और कार्यो को भी समझाया गया है।

15.1 उद्देश्य

1.इस इकाई का अध्ययन करने के बाद राज्य सचिवालय का अर्थ महत्व और उसकी भूमिका समझ सकेंगे।

2.सचिवालय की सीधी संरचना को और राज्य सचिवालय में विभागीयकरण की पद्धति समझ पायेंगे।

3.सचिवालय विभाग मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय तथा कार्यकारिणी विभाग के प्रमुख का अंतर समझ सकेंगे।

4.आपको शब्द नीति और प्रशासन के अर्थ समझ में आयेंगे और यह जान सकेंगे कि नीति और प्रशासन एक विवेकशील प्रक्रिया है या सत्त प्रक्रिया है।

5.राज्य सचिवालय व्यवस्था में मुख्य सचिव के महत्व को और उसकी भूमिका को समझ पायेंगे।

15.2 सचिवालय का अर्थ

राज्य स्तर पर शासन के तीन घटक होते है- मंत्री, सचिव तथा कार्यपालिका प्रमुख अंतिम को अक्सर निर्देशक कहा जाता है। मंत्री और सचिव मिलकर सचिवालय का निर्माण करते हैं। जबकि कार्यपालिका प्रमुख के कार्यालय को निदेशालय कहा जाता है।

शाब्दिक तौर पर सचिवालय का अर्थ है सचिव का कार्यालय । यह तब अस्तित्व में आया जब भारत में शासन सचिवों द्वारा चलाया जाता था। स्वतंत्रता के बाद शासन करने की शक्ति जनप्रतिनिधि मंत्रियों के हाथ में चली गयी और इस तरह मंत्रालय सत्ता का केन्द्र बन गया। नई परिस्तिथियों में शब्द सचिवालय मंत्री के कार्यालय का पर्यायवाची बन गया है। क्योंकि मंत्री को सलाह देने का कार्य सचिव करता है इसलिए मन्त्रालय में मंत्री के बाद सचिव प्रमुख होता है और अपने स्थाई चरित्र के कारण वह अधिक महत्वपूर्ण होता है। सरल शब्दों में सचिवालय वह भवन है जिसमें मंत्री और सचिव के कार्यालय होते है। मंत्री राजनीतिक प्रमुख होता है और सचिव प्रशासकीय प्रमुख।

15.2.1 सचिवालय की स्थिति और भूमिका

राज्य प्रशासन की सर्वोच्च सतह की हैसियत से सचिवालय का कार्य नीति निर्माण में राज्य सरकार की सहायता करना तथा विधायनी कार्यो में उसे सहयोग करना है। प्रशासकीय सुधार आयोग ने राज्य प्रशासन पर अपनी जो रिर्पोट दी है वह इस प्रकार है -

(क) निति निर्माण समय-समय पर नीतियों के संशोधन तथा विधायनी उत्तरदायित्वों के निर्वाह में सचिवालय सहायता प्रदान करे।
(ख) विधायन, नियमों और अधिनियमों का प्रारूप तैयार करे।
(ग) नीतियों और योजनाओं में समन्वय स्थापित करे, उनके क्रियान्वन पर नजर रखें, तथा परिणामों की समीक्षा करे।
(घ) बजट तैयार करे और व्यय को नियन्त्रित करे।
(ड़) भारत सरकार तथा अन्य राज्य सरकारों से सम्पर्क बनाये रखे।
(च) प्रशासकीय तंत्र के संचालन पर पैनी नजर रखे तथा कार्यकर्ता वर्ग की योग्यता तथा दक्षता को विकसित करे।

नीति निर्माण तथा नीति क्रियान्वन दो अलग पहलू है। इनको एक दूसरे से पृथक रहना चाहिए । यह प्रशासकीय दर्शन का मूल मंत्र है। यदि ऐसा होता है तो उसके अनेक लाभ है:-

1.यदि नीति निर्माण उपकरण, नीति क्रियान्वयन से पृथक रहता है तो नीति निर्माण की प्रक्रिया शासन के वृहत लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर अग्रसर होती है न कि संकुचित, वर्गीय हितों की ओर।

2.नीति निर्माण के लिए समय चाहिए। यदि नीति निर्माण और उसका क्रियान्वयन एक ही हाथ में होगा तो नीति निर्माण प्रक्रिया में विलम्ब होगा। नीति निर्माण का सम्बन्ध भावी योजनाओं से है लेकिन इस पर ध्यान न देकर दिन-प्रतिदिन के कामों पर ध्यान अधिक लगाना राज्य के लिए हानिकारक होता है।

3.सचिवालय ,मंत्री का एक निष्पक्ष परामर्शदाता है। सचिव शासन का सचिव है न कि मंत्री का। वह मंत्री के हितों को ध्यान में न रखकर, राज्य के हितों को ध्यान में रखता है। सचिवालय से जो प्रस्ताव आये वे दूरगामी परिणामों के होते है। इसलिए प्रस्तावों को संतुलित होना चाहिए।

4.नीति निर्माण तत्कालीन प्रशासन से पृथक होना चाहिए तथा दिन प्रतिदिन का कार्य अन्य निकायों पर छोडना चाहिए। इस से सत्ता हस्तान्तरण निश्चित होता है।

यहाँ सचिवालय की वृहत भूमिका को समझना अनिवार्य है:-

(अ) सचिवालय की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका नीति-निर्माण में है। यह मन्त्रियों को सरकारी नीतियों के निर्माण में सहायता प्रदान करता है। ऐसा वह दो तरीके से करता है: प्रथम, सचिव नीति निर्माण के लिए अनिवार्य आंकडो और सूचना उपलब्ध कराता है। दूसरे, सचिव मन्त्रियों के सामने उन योजनाओं को रखता है जिनके वायदे मन्त्रियों ने जनता से किये थे। वह इन योजनाओं का पूरा प्रारूप तैयार करता है ।

(आ) सचिवालय मन्त्रियों को उनके विधायनी कार्यो में सहायता प्रदान करता है। विधायन के प्रारूप जो मंत्री व्यवस्थापिका के पटल पर रखते है, सचिवों के द्वारा तैयार किये जाते है।

(इ) व्यवस्थापिका में प्रश्नों का उत्तर देने के लिए मन्त्रियों को जो सूचना चाहिए, सचिव ऐसी तार्किक सूचनाओं से मन्त्रियों को अवगत कराता है। सचिव उन सूचनाओं को भी उपलब्ध कराता है जो व्यवस्थापिका की समितियाँ चाहती है ।

(ई) सचिवालय एक संस्थागत स्मरण शक्ति (मेमोरी) के रूप में काम करता है। इसका अर्थ है कि पैदा होने वाली समस्याओं का परीक्षण साक्ष्यों की रौशनी में करना । सचिवालय में जो दस्तावेज और फाइलें सुरक्षित होती है, वे संस्थागत स्मरण शक्ति का काम करती है और किसी मामले के निबटारे में सहायता प्रदान करती है।

(उ) सचिवालय एक सरकार तथा दूसरी सरकार के मध्य सूचना एवं संचार माध्यम है। यह एक सरकार तथा योजना आयोग और वित्त आयोग के मध्य भी ऐसा ही माध्यम है।

(ऊ) अंत में सचिवालय नीति निर्माण के क्रियान्वयन का मूल्यांकन करता है और क्रियान्वयन को क्षेत्रीय निकायों के माध्यम से संचालित करता है।

15.2.2 सचिवालय की संरचना

सीधे रूप में (लम्बात्मक) किसी सचिवालय विभाग की दो प्रकार की पद सोपानीय बनावट होती है। एक पदाधिकारी तथा कार्यालय।

पदाधिकारी:-

पारम्परिक रूप में अधिकारियों की पदसोपानीय व्यवस्था के तीन स्तर होते हैं। इसके अन्तर्गत, विशिष्ट रूप से एक प्रशासकीय प्रमुख के अन्तर्गत होता है। जिसे सचिव कहते हैं । सचिव की सहायता के लिए उप-सचिव तथा सहायक सचिव होते हैं । क्योंकि विभिन्न सचिवालय विभागों का काम बढ गया है, इसलिए सचिव और उपसचिव के मध्य, कुछ राज्यों मे, अतिरिक्त सचिव और संयुक्त सचिव भी होते हैं।

कार्यालय:-

भारत में सचिवालय पद्धति की एक विशेषता यह है कि कार्यालय के दो भाग होते हैं। पहले उच्चतर अधिकारियों का एक संक्रमण (आने जाने वाला) संवर्ग (पदाधिकारियों का समूह) तथा स्थायी कार्यालय। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक विभाग में उच्च प्रशिक्षित पदाधिकारी आते जाते रहते हैं, लेकिन कार्यालय स्थायी कर्मचारियों से सम्पन्न

होता है। यह कार्यालय सचिवालय विभाग की निरन्तरता को बनाये रखता है। कार्यालय में अधीक्षक या अनुभाग अधिकारी, सहायक, उच्चतर और निम्नतर खण्ड लिपिक, स्टेनों टाइपिस्ट (और सम्पूर्ण कमप्यूटर नेटवर्क में प्रशिक्षित सेवी वर्ग) इत्यादि आते हैं। कार्यालय अधिकारियों को वह सामग्री जुटाता है जो नीति निर्माण के लिए आवश्यक होती हैं। वह क्रियान्वयन का कार्य दिन - प्रतिदिन के हिसाब से निबटाता है।

सचिवालय के एक विभाग की संगठनात्मक संरचना निम्न प्रकार की होती है:-

विभाग - सचिव
खण्ड - अतिरिक्त /संयुक्त सचिव
मुख्य विभाग - उप सचिव/निदेशक
कार्यालय - सह सचिव
अनुभाग - अनुभाग अधिकारी

(अंग्रेजी में डिपार्टमेंट, विंग, डिवीजन, ब्रांच सेक्शन)

अनुभाग सब से निचली संगठनात्मक इकाई है जो अनुभाग अधिकारी के अन्तर्गत रहती है। अनुभाग में सहायक, लिपिक, टाइपिस्ट, कम्पयूटर संचालक आते हैं । वास्तव में अनुभाग ही कार्यालय है। दो अनुभागों से ब्रांच बनती है यह एक सह सचिव के अंतर्गत होती है। दो ब्रांचो से एक डिवीजन या मुख्य विभाग बनता है जो उप सचिव के अंतर्गत आता है। जब एक विभाग का काम बढ जाता है तब कई खण्ड या विंग बनाये जाते है जो अतिरिक्त सचिव या संयुक्त सचिव के अन्तर्गत होते है। संगठनात्मक पदसोपान पर सचिव होता है जो विभाग का कार्यभार संभालता है।

15.2.3 राज्य सचिवालय में संगठनात्मकता की प्रतिकृति

1. सामान्य प्रशासन विभाग
2. गृह विभाग
3. राजस्व विभाग
4. खाद्य एवं कृषि विभाग
5. वित्त और योजना विभाग (योजना खण्ड)
6. वित्त और योजना विभाग (वित्त खण्ड)
7. विधि विभाग
8. सिंचाई और विद्युत विभाग
9. चिकित्सा और स्वास्थ्य विभाग
10. शिक्षा विभाग
11. उद्योग विभाग
12. व्यवस्थापिका विभाग
13. पंचायत राज्य विभाग
14. नियंत्रक क्षेत्र विकास विभाग
15. परिवहन, सडक और भवन विभाग
16. आवास और नगरपालिका प्रशासन तथा शहरी विकास विभाग
17. श्रम, रोजगार और तकनीकि शिक्षा विभाग

18. सामाजिक कल्याण विभाग

19. वन एवं ग्रामीण विकास विभाग

15.2.4 सचिवालय विभाग तथा कार्यकारिणी विभाग में अंतर

सचिवालय विभागों को कार्यकारिणी विभागों से अलग करके देखा जाना चाहिए। सचिवालय का कार्य राजनीतिक कार्यकारिणी को उसके कार्यों में सहायता करना तथा परामर्श देना है। कार्यकारिणी विभागों के अध्यक्ष जिनको निदेशक कहा जाता है, राजनीतिक कार्यकारिणी द्वारा निर्मित नीतियों को क्रियान्वित करते हैं। दूसरे शब्दों में सचिव नीति निर्माण में सहायता करता है और निदेशक नीति क्रियान्वयन में।

प्रत्येक सचिवालय विभाग के अन्तर्गत अनेक कार्यकारिणी विभाग आते हैं। लेकिन यहाँ यह याद रखना होगा कि सभी सचिवालय विभागों में कार्यकारिणी विभाग नहीं आते हैं। कुछ सचिवालय विभागों का सम्बन्ध केवल परामर्शदाता तथा नियन्त्रक के रूप में होता है। उदाहरण के लिए कानून और वित्त विभाग ऐसे ही हैं ।

सचिवालय विभाग तथा कार्यकारिणी विभाग जिनका उद्देश्य नीति निर्माण तथा नीति क्रियान्वयन से होता है, वास्तव में मन्त्रिपरिषद के व्यक्तित्व का विस्तार है। दूसरे अर्थो में यह दोनों मन्त्रियों का मस्तिष्क और हाथ है। मन्त्रिपरिषद इनके माध्यम से सोचता है और निर्णय लेता है तथा इनके माध्यम से अपनी नीतियों को क्रियान्वित कराता है।

सचिवालय विभाग के मुखिया सेवी वर्ग (आई0ए0एस0) के होते हैं जबकि कार्यकारिणी विभाग के प्रमुख विशिष्ट होते है । अर्थात विशिष्ट प्रमुख सामान्य प्रमुखों के निरीक्षण में काम करते है। दूसरे शब्दों में निदेशक सचिव के निरीक्षण में कार्य करता है। उदाहरण के लिए उत्तराखण्ड में शिक्षा निदेशक जो शिक्षा में विशिष्ट होता है सचिव के निरीक्षण में काम करता है जो आई0ए0एस0 होता है।

15.2.5 नीति और प्रशासन

हम सचिवालय तथा निदेशालय की स्पष्ट भूमिका के बारे में लिख चुके है। दोनों एक दूसरे से पृथक हैं। अब सवाल यह उठता है कि वास्तव में क्या दोनों एक दूसरे से पृथक है। उत्तर यह कि अवधारणात्मक स्तर पर वे एक दूसरे से पृथक हैं। दोनों को स्पष्ट घटनाक्रम के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। लेकिन व्यावहारिक स्तर पर नीति और प्रशासन एक दूसरे से जुडे हुए हैं। वास्तव में यह कहना कठिन है कि कहाँ नीति का अन्त होता है और कहाँ से प्रशासन का आरम्भ।

नीति का सम्बन्ध राजनीतिक चुनावों से होता है और वह वृहत मूल्यों के इर्द- गिर्द घूमती है, जबकि प्रशासन का सम्बन्ध कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से है। अतः प्रशासन क्रियान्वयन की समीक्षा, संगठनात्मक संरचनाओं के निर्माण, संगठन में भर्ती, क्रियाओं में समन्वय, निदेशन, नियन्त्रण और प्रोत्साहन से सम्बन्धित है।

प्रशासन प्रशासकों का दायरा है जो उन नीतियों को क्रियान्वित करते है जो कानून में निहित है। एक अवधारणा यह है कि राजनीति प्रशासन से परे होनी चाहिए मेक्स बेबर ने नीति और प्रशासन के पृथकता के औचित्य को स्वीकार किया है। उसका तर्क है कि राजनीतिज्ञों के उत्तरदायित्व सेवी वर्ग के उत्तरदायित्वों से पृथक होते हैं। राजनीति का सार है एक बात पर जमे रहना, नीतियों की वैयक्तिक जिम्मेदारी लेना और राजनीतिक भूमिका अदा करना। प्रशासन का सार है राजनीतिक सत्ता के आदेश का विवेकपूर्ण क्रियान्वयन, भले ही वह प्रशासक को गलत लगे। प्रशासक राजनीतिक तौर पर तटस्थ रहता है। वह, उन कार्यो को करता है जो उससे करने को कहा जाता है।

फिर भी शासकीय विषमताओं के कारण प्रशासकों को नीति निर्माण या राजनीतिक निर्णयों में सम्मिलित होना पडता है। इसलिए व्यावहारिक रूप से नीति और प्रशासन में स्पष्ट विभाजन रेखा खींचना कठिन है। इसके मुख्य कारण है:

1.प्रशासक अपने कार्य में दक्ष होते है जिसका प्रयोग नीति निर्माण में राजनीतिज्ञ करते हैं क्योंकि प्रशासक स्थायी होते हैं, इसलिए वह समस्याओं को अच्छी तरह समझते है। राजनीतिज्ञ आते जाते रहते है, इसलिए प्रशासकों पर निर्भर करते है। अतः प्रशासकों का अपना महत्व है।

2.इसके अतिरिक्त प्रशासक तथ्यों, आंकडो और सूचनाओं से सम्पन्न होते हैं। एक विशेष क्षेत्र में उनकी बुद्धि कुशाग्र और पैनी होती है। राजनीतिज्ञों को नीति निर्माण के लिए आंकडे और तथ्य चाहिए होते हैं।

3.सरकारें, डाक्टरों, इंजीनियरों, वैज्ञानिकों तथा अर्थशास्त्रियों को भी प्रशासक नियुक्त करती है जो सरकारों को अपना ज्ञान और दक्षता प्रदान करते है। वे तकनीकि ज्ञान प्रदान करते हं।

4.प्रशासक योग्यता के आधार पर चुनकर आते हैं। इसलिए उनका महत्व राजनीतिज्ञों से अधिक होता है और वे नीति निर्माण का एक अभिन्न अंग बन जाते हैं।

15.2.6 नीति निर्माण और विधायन में प्रशासकों की भूमिका -

सेवी वर्ग की दक्षता में वृद्धि, सरकारी कार्यो में बढोत्तरी तथा प्रशासकीय जटिलता ने राजनीतिज्ञों को पूरी तरह प्रशासकों पर निर्भर कर दिया है। वे नीति निर्माण में बिना प्रशासकों की सहायता के एक कदम भी आगे नहीं चल सकते। इसके अनेक कारण हैं -

1.नीति निर्माण तथ्यों, आंकड़ों, सूचनाओं इत्यादि के आधार पर होता है । यह नौकरशाही द्वारा उपलब्ध कराये जाते हैं। इसके लिए राजनीतिज्ञ प्रशासकों पर निर्भर रहते है।

2.सेवी वर्ग अपने प्रशासकीय अनुभव के आधार पर अनुभवहीन राजनीतिज्ञों को प्रशासकीय, तकनीकि और वित्तीय सम्बन्धी परामर्श देता है जो नीति निर्माण के व्यावहारिक पहलू हैं।

3.सेवी वर्ग विधायन (विधेयक) का प्रारूप तैयार करते हैं। मन्त्रालय की स्वीकृति के बाद यह विधेयक व्यवस्थापिका के पटल पर उसकी स्वीकृति के लिए रखे जाते हैं। अर्थात नीति निर्माण या विधायन की पहल प्रशासक ही करते हैं।

4.प्रशासकों के पास विवेक के प्रयोग की स्वतंत्रता होती है । कहाँ किस रूप में और किसे किसी बात को चुनने का अधिकार प्रशासक को है। इस तरह प्रशासक अतिरिक्त विधि निर्माता होते हैं। राजनीतिज्ञों को तथा व्यवस्थापिका को प्रशासकों के फैसले को मानना पडता है। विधायन का कार्य बडा तकनीकि होता है और यह तकनीकि ज्ञान केवल दक्ष प्रशासकों को ही होता है। अतः राजनीतिज्ञों का प्रशासकों पर निर्भर रहना एक मजबूरी है। दूसरे कब, कहाँ और किस स्थिति में कानूनों को लागू करना होता है, यह भी प्रशासक की विवेक की शक्ति पर निर्भर है। अतः यहाँ यह कहना उचित होगा कि राजनीतिज्ञ तो नीतियों की मात्र रूप - रेखा तैयार करते हैं, वास्तविक नीति निर्माता और विधि निर्माता प्रशासक ही है।

15.2.7 सचिवालय: समालोचना

वर्तमान समय में सचिवालय की अनेक बिंदुओं पर आलोचना हुई है। विचारात्मक दृष्टि से सचिवालय का औचित्य है। यह श्रम विभाजन को प्रोत्साहित करता है। श्रम का विशिष्टीकरण होता है।यह निति निर्माण और निति क्रियान्वयन को पृथक करता है, जिससे केन्द्रीयकरण हतोत्साहित होता है।

लेकिन व्यवहार में कहानी कुछ और है। सिद्धान्त और व्यवहार में अन्तर है। सचिवालय के आचरण से सचिवालय और निदेशालय में तनाव पैदा होता है। तनाव के कारण अनेक हैं -

1.सचिवालय का रूख विस्तारवादी है। अर्थात यह उन कार्यो को करता है जो इसके नहीं है। यह मात्र नीति निर्माण तक सीमित नहीं रहता है। यह क्रियान्वयन में भी हस्तक्षेप करता है। इससे क्रियान्वयन अभिकरणों की सत्ता कमजोर होती है।

2.सचिवालय सत्ता का हस्तान्तरण करने से हिचकिचाता है। परिणाम स्वरूप नीति क्रियान्वयन में विलम्ब होता है। सारा समय सचिवालय से परामर्श करने और स्वीकृति प्राप्त करने में लग जाता है।

3.कार्यकारिणी विभागों द्वारा प्रस्तुत प्रस्तावों की जाँच सचिवालय में लिपिक स्तर पर होती है ,जो विलम्ब का कारण होता है। यह अनावश्यक है क्योंकि जाँच निदेशालय स्तर पर अच्छी तरह होती है।

4.सामान्यज्ञों (जेनरलिस्ट) द्वारा, विशेषज्ञों (स्पेशलिस्ट) पर नजर रखना, उनके प्रस्तावों का निरीक्षण करना इस दौर में अतार्किक है।

इस स्थिति ने सचिवालय को शासकीय सत्ता का केन्द्र बना दिया है। जिसकी वजह से सचिवालय तथा निदेशालय में तनाव बना रहता है। लेकिन सचिवालय को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। उसके पक्ष में भी अनेक तर्क दिये जा सकते हैं -

1.लोक प्रशासकीय व्यवस्था में सचिवालय एक अनिवार्य संस्था है। अपनी दुर्बलताओं के बावजूद सचिवालय ने प्रशासन को संतुलन, स्थायित्व और निरन्तरता प्रदान की है। वह मन्त्रालय तन्त्र का केन्द्रीय बिन्दु है। उसके माध्यम से अन्तःमन्त्रालय समन्वय पैदा होता है, जो व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायित्व के लिए अनिवार्य है।

2.सचिवालय व्यवस्था नीति निर्माण को, नीति क्रियान्वयन से पृथक करने में सहायता करती है। इसने श्रम विभाजन, विशिष्टीकरण और सत्ता के हस्तान्तरण को सुलभ किया है।

3. सचिवालय ने स्वयं को नीति क्रियान्वयन से मुक्त रखा है, उसके पास राज्य के बृहत हितों की पूर्ति के लिए दूरदर्शी कार्यक्रम तैयार करने का पर्याप्त समय होता है।

4.मन्त्री नीति निर्माण के तकनीकी पहलुओं से अनभिज्ञ होता है। पूरी तरह सचिवों पर निर्भर रहता है जो उसको तार्किक वस्तुगत परामर्श देते हैं। इस तरह मन्त्री विशेषज्ञ के चंगुल से बच जाता है।

5.सचिवालय उन कार्यक्रमों का वस्तुगत मूल्यांकन करता है, जो क्षेत्रों में क्रियान्वित होते हैं। यह कार्यकारिणी संस्थाओं पर नहीं छोड़ा जा सकता, क्यों कि जो कार्य वे करती है, उनका समीक्षक उन्हें नही बनाया जा सकता।

6.कुल मिलाकर सचिवालय एक उपयोगी संस्था है। इसने समय की मांग को पूरा किया है। सचिवालय का स्थान कोई संस्था नहीं ले सकती। सचिवों की सेवा अवधि के स्थायित्व ने इस संस्था को शक्ति, तेजस्विता और गतिशीलता प्रदान की है।

15.3 मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय

सचिवालय और मन्त्रिमण्डल के मध्य के कार्यालय को मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय कहा जाता है। यह एक कर्मचारी (स्टाफ) समूह है जिसकी नीति निर्माण की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण समन्वयक की भूमिका होती है। यह मुख्यमन्त्री जी के निर्देशन में कार्य करता है। मुख्यमन्त्री तथा अन्य मन्त्रियों के निजी सचिव और उनके कार्यालय इसका निमार्ण करते हैं। मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय की परम्परा सर्वप्रथम 1948 में पड़ी जब केन्द्रीय कैबिनेट ने आर्थिक और सांख्यिकी समन्वय इकाई को केन्द्रीय कैबिनेट का एक अंग बना दिया है। इसका उद्देश्य विभिन्न

मन्त्रालयों, विभागों से तत्कालीन सांख्यिकी इकाइयों से संबन्धित सूचना एकत्रित करके समय-समय पर कैबिनेट के सामने रखना था। इसका कार्य विभिन्न मन्त्रालयों के कार्यालयों को समन्वित करके परामर्श देना भी था।

मन्त्रिमण्डल की सक्षमता बहुत कुछ हद तक मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय की कार्यकुशलता पर निर्भर करती है। इसका मुख्य कार्य कैबिनेट की नीतियों के लिए एक अर्थपूर्ण कार्यक्रम (ऐजेन्डा) तैयार करना होता है तथा तार्किक कार्यवाही के लिए अनिवार्य सूचना तथा सामग्री प्रदान करना होता है। इसके साथ ही इसका कार्य कैबिनेट और समितियों की बहसों और निर्णयों का लेखा जोखा रखना भी होता है।

मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय, मन्त्रिमण्डल और राज्यपाल के मध्य एक संवाद माध्यम है। वह सभी मन्त्रालयों से संबन्धित कार्यक्रम तय करता है तथा उन्हें मन्त्रालयों को आवंटित करता है। इसके अतिरिक्त मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय कैबिनेट समितियों को कार्यालयी सहायता प्रदान करता है।

संसदीय व्यवस्था में समितियों (कमेटीज़) का बडा महत्व है। यह समितियाँ अन्तः मन्त्रालयों के मामलों की समीक्षा करती हैं और उसके नतीजों से शासन को अवगत कराती हैं। मन्त्रिमण्डलीय सचिव इन समितियों की अध्यक्षता करता है तथा लिये गये निर्णयों की सिफारिश सरकार से करता है।

15.4 मुख्य सचिव

प्रत्येक राज्य में एक मुख्य सचिव होता है। यह अधिकारी राज्य सचिवालय का केन्द्रीय बिन्दु होता है। यह सचिवालय के सभी विभागों को नियन्त्रित करता है। यह मात्र समानों में प्रथम ही नहीं है, यह सचिवों के प्रमुख है। राज्य प्रशासन में उसकी विभिन्न भूमिकाएं हैं और यही उसकी सर्वोच्च स्थिति निश्चित करती है।

मुख्य सचिव, मुख्यमन्त्री और राज्य कैबिनेट सचिव का परामर्शदाता होता है। वह सामान्य प्रशासन विभाग का मुखिया होता है। जिसका राजनैतिक मुखिया मुख्यमन्त्री होता है। राज्य प्रशासन में इसकी स्थिति अद्वितीय है। राज्य में जो कार्य वह करता है, केन्द्र में वही काम समान स्तर के तीन प्रमुख करते हैं अर्थात कैबिनेट सचिव, गृह सचिव तथा वित्त सचिव ,मुख्य सचिव राज्य में सेवी वर्ग का भी प्रमुख है। वह राज्य सरकार, केन्द्र तथा अन्य राज्य सरकारों के मध्य संचार माध्यम है। वह सरकार का प्रमुख प्रवक्ता है। वह राज्य प्रशासकीय व्यवस्था को नेतृत्व प्रदान करता है। पूरी प्रशासकीय व्यवस्था में उसके स्तर का कोई अधिकारी नहीं होता है ।

यहाँ एक विशेष बात यह है कि मुख्य सचिव, कार्यकाल की अवधि से मुक्त है। वह या तो मुख्य सचिव की हैसियत से सेवा निवृत्त होगा या फिर यहाँ से केन्द्रीय शासन में अधिक महत्वपूर्ण पद पर जायेगा।

एक और बात को भी याद रखना होगा। यह आवश्यक नहीं है कि इस पद पर सर्वाधिक वरिष्ठ सेवी वर्ग का अधिकारी ही तैनात किया जाये। 1973 तक यही स्थिति थी। राजनीतिक पसंद इस पद का मापदण्ड था। अब स्थिति यह है कि केन्द्रीय स्तर का अधिकारी ही इस पर पहुंचता है और उसको वेतन भी भारत सरकार के सचिव के बराबर मिलता है।

यहाँ यह सवाल भी उठता है कि राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू हो जाने के बाद मुख्य सचिव की हैसियत क्या होती है? जहाँ राष्ट्रपति शासन के दौरान केन्द्र सलाहकार नियुक्त नहीं करता है वहाँ मुख्य सचिव के पास वे सारी शक्तियाँ होती है जो मुख्य मंत्री की होती हैं। लेकिन सलाहकार नियुक्त हो जाते हैं तो मुख्य सचिव अपनी प्रशासकीय हैसियत में काम करता है, क्योंकि सलाहकार वरिष्ठ सेवी वर्ग के अधिकारी होते हैं।

15.4.1 मुख्य सचिव के कार्य

मुख्य सचिव के प्रमुख कार्य निम्न है:-

1.मुख्य सचिव मुख्यमन्त्री का मुख्य सलाहकार है। इस स्थिति में वह मंत्रियों द्वारा तय किये गय प्रस्तावों को संयोजित करके उनके प्रशासकीय नतीजों पर काम करता है।

2.मुख्य सचिव, कैबिनेट का सचिव है और इस हैसियत से वह कैबिनेट की मीटिंग का ऐजेन्डा तैयार करता है, उनकी व्यवस्था करता है, इन मीटिंगो के रिकार्ड सुरक्षित रखता है, यह निश्चित करता है कि मीटिंग के फैसलों पर अमल हो और वह कैबिनेट समितियों की सहायता करता है।

3.मुख्य सचिव सिविल सेवा का राज्य में मुखिया है। इस हैसियत से वह सिविल सेवा के अधिकारी को तैनाती तथा स्थानान्तरण सुनिश्चित करता है।

4.मुख्य सचिव अपनी शक्तिशाली स्थिति के कारण सचिवालय विभागों का मुख्य समन्वयक बन जाता है। वह अंतर - विभागों में सहयोग और समन्वय स्थापित करता है। इस उद्देश्य के लिए वह सचिवालय तथा अन्य स्तरों पर बैठकें बुलाता है और उनकी अध्यक्षता करता है। बैठकों के माध्यम से वह विभिन्न अभिकरण के मध्य सहयोग और समन्वय स्थापित करता है।

5.सचिवों के प्रमुख की हैसियत से मुख्य सचिव अधिकांश समितियों की अध्यक्षता करता है और उनकी सदस्यता ग्रहण करता है। इसके अतिरिक्त वह उन सभी मामलों पर जो अन्य सचिवों के क्षेत्राधिकार में नहीं आते हैं, उनकी देख-रेख भी करता है। इस अर्थ में मुख्य सचिव अवशेष वारिस है।

6.मुख्य सचिव, बारी बारी से, जोनल परिषद का सदस्य होता है यदि राज्य उस परिषद का सदस्य हो।

7.वह सचिवालय भवनों पर पूरा नियन्त्रण रखता है और कौन सा स्थान किसको आवंटित करना है, यह तय करता है। वह केन्द्रीय अभिलेख खण्ड, सचिवालय, पुस्तकालय तथा आरक्षित स्थानों पर नजर रखता है। मन्त्रियों से सम्बन्धित सेवी वर्ग पर भी नियन्त्रण रखता है।

8.संकट के समय मुख्य सचिव राज्य के स्नायू केन्द्र का काम करता है। वह संकट से सम्बन्धित अभिकरणों को नेतृत्व और मार्ग दर्शन देता है ताकि वह संकटो का सामना करके समाधान खोज सके। यह स्वीकार करना होगा सूखा, बाढ़ या साम्प्रदायिक दंगो के समय वह वास्तव में सरकार का प्रतिनिधित्व करता है और सम्बन्धित अभिकरणों के माध्यम से राहत पहुँचाता है।

9.संक्षेप में मुख्य सचिव राज्य का व्यस्ततम अधिकारी है। प्रशासकीय सुधार आयोग ने मुख्य सचिव की इस प्रकार की व्यस्त शैली को आनावश्यक बताया है। उसने लिखा ''यह दुर्भागय की बात है कि राज्य का सर्वोच्च अधिकारी नियुक्तियों के गज़ेट नोटिफिकेशन पर हस्ताक्षर करता है, पदोन्नतियों, स्थानान्तरणों अवकाश पर गौर करता है। ''अतः मुख्य सचिव को इन कार्यो से मुक्ति मिलनी चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1. मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय की परंपरा सर्वप्रथम १९४८ में पड़ीं. सत्य/असत्य
2.मैक्स बेबर ने नीति और प्रशासनके पृथकता के औचित्य को स्वीकार किया है. सत्य/असत्य
3.सचिवालय वह भवन है जिसमे मंत्री और सचिव के कार्यालय होते हैं. सत्य/असत्य
4.मंत्री राजनीतिक प्रमुख होता है और सचिव प्रशासनिक प्रमुख. सत्य/असत्य
5.सचिव शासन का सचिव है न की मंत्री का . सत्य/असत्य
6.अनुभाग सबसे निचली संगठनात्मक इकाई है जो अनुभाग अधिकारी के अंतर्गत रहती है. सत्य/असत्य

15.5 सारांश

शब्द सचिवालय का अर्थ है ऐसे विभागो का भवन, जो राजनीतिक स्तर पर मंत्रियों और प्रशासन के स्तर पर मंत्रियों और प्रशासन के स्तर पर सचिवों के अधीनस्थ होते है। सचिव मंत्रियों को उनकी नीति निर्माण तथा विधायनी कार्यो में सहायता करते हैं।

संगठनात्मक तौर पर कार्यकारिणी विभागों के अध्यक्ष या प्रभारी पृथक एवं विशिष्ट प्रशासकीय इकाईयों का निमार्ण करते हैं, जो पदसोपानीय दृष्टि से सचिवालय विभागों के अधीन होते हैं। अधिकांशतः कार्यकारिणी विभागों को निदेशालय कहा जाता है और उनके प्रमुखों को निदेशक कहा जाता है। निदेशालय नीति को क्रयान्वित करते है। प्रत्येक सचिवालय अनेक निदेशालय के प्रभारी होते है।

मुख्य सचिव राज्य के प्रशासकीय ढ़ांचे के प्रमुख की हैसियत से प्रशासन को नेतृत्व प्रदान करता है तथा कार्यो में समन्वय लाता है। यह अधिकारी राज्य सचिवालय का स्नायू केन्द्र है।

15.6 शब्दावली

डिपार्टमेन्ट	विभाग
इण्टर आलिय	अन्य बातों के अतिरिक्त
स्पेडवर्क	दिन-प्रतिदिन का काम
रेसीहुअल लेगाटी	वे मामले जो अन्य सचिवों के क्षेत्राधिकार में नही आते और मुख्य सचिव उनका निष्पादन करता है।

15.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.सत्य 2.सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य 6. सत्य

15.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

अवस्थी ए केन्द्रीय प्रशासन

महेशवरी, एस.आर. भारतीय प्रशासन

महेशवरी, एस.आर. स्टेट गवर्नमेन्ट इन इण्डिया

15.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय शासन एवं राजनीति - डॉ रूपा मंगलानी

भारतीय सरकार एवं राजनीति - त्रिवेदी एवं राय

भारतीय शासन एवं राजनीति - महेन्द्रप्रतापसिंह

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया

15.10 निबंधात्मक प्रश्न

1-सचिवालय का अर्थ 500 शब्दों में समझाइये।

2-सचिवालय की स्थिति और भूमिका 500 शब्द लिखिये

3-सचिवालय को संरचना पर 500 शब्द लिखे।

4-सचिवालय विभाग तथा कार्यकारिणी विभाग का अन्तर 500 शब्दों में लिखे।

5-नीति और प्रशासन में सम्बन्ध क्या है? 500 शब्द लिखे।

इकाई-16 राज्य योजना आयोग

इकाई की संरचना

16.0 प्रस्तावना
16.1 उद्देश्य
16.2 राज्य योजन आयोग की संरचना
16.2.1 राज्य योजना आयोग का उद्देश्य/कार्य
16.2.2 राज्य योजना आयोग द्वारा किये गये कार्य
16.3 उत्तराखण्ड की वर्तमान आर्थिक-सामाजिक स्थिति
16.4 उत्तराखण्ड की 2010-11 की वार्षिक योजना पर एक नज़र
16.5 योजना आयोग की उपलब्धियां और लक्ष्य
16.6 योजना और आर्थिक विकास: सुझाव
16.7 सारांश
16.8 शब्दावली
16.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
16.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
16.11 निबंधात्मक प्रश्न

16.0 प्रस्तावना

भारत में नियोजित आर्थिक विकास 1951 में प्रथम पंचवषीय योजना से आरंभ होता है। नियोजित आर्थिक विकास का दृष्टिकोण एम0 विश्वेश्वरय्या ने अपनी पुस्तक 'प्लान्ड एकोनामी फार इण्डिया' में 1934 में रखा था। बाद में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1938 में 'नेशनल प्लानिंग कमेटी' की स्थापना की। योजना आयोग की स्थापना 15 मार्च, 1950 में की गयी। यहाँ यह याद रखना होगा कि योजना आयोग का कोई उपबन्ध संविधान में नहीं है। अर्थात योजना आयोग एक परा संवैधानिक संस्था है। यह एक सलाहकारी संगठन है। इसके प्रारम्भिक कार्य देश के आर्थिक विकास से सम्बन्धित तार्किक परामर्श देना तथा आर्थिक तत्वों का निष्पक्ष विश्लेषण करना है। यह सब कुछ देश के संसाधनों को ध्यान में रखकर किया जाता है।

राज्यों में भी केन्द्र के आधार पर राज्य योजना आयोग बनाये गये है। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय योजना आयोग की सिफारिश पर उत्तर प्रदेश राज्य में 1972 में राज्य आयोग की, मुख्यमन्त्री की अध्यक्षता में स्थापना की गयी। पृथक राज्य का दर्जा पाने के बाद उत्तराखण्ड में भी राज्य योजना आयोग अस्तित्व में आया है। इस आयोग का एक उपाध्यक्ष भी होता है। इसके सदस्य विभिन्न विषयों के सरकारी और गैर सरकारी नामचीन व्यक्ति होते हैं।

16.1 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत आप -

1. राज्य योजना आयोग की संरचना को समझ पायेंगे।
2. राज्य योजना आयोग के उद्देश्यों को जान सकेंगे।
3. राज्य योजना आयोग ने जो कार्य किये है वह समझ पायेंगे।
4. योजना के अर्थ को आप समझ सकेंगे।
5. विभिन्न योजनाओं की समीक्षा की जायेगी जिसे आप जान सकेंगे।

16.2 राज्य योजना आयोग की संरचना -

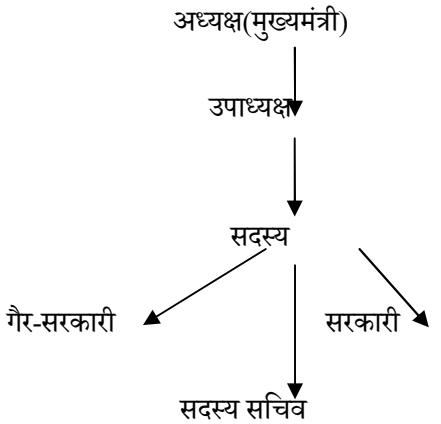

16.2.1 राज्य योजना आयोग का उद्देश्य/कार्य

1.राज्य के भौतिक, वित्तीय और मानवीय संसाधनों का अनुमान लगाना तथा उन से सम्बन्धित उचित निर्णय लेना।

2.राष्ट्रीय योजना के उद्देश्यों और वरीयताओं के अनुसार राज्य योजनाएं तैयार करना।

3.दोनों अल्प अवधि और दीर्घ अवधि के क्षेत्रीय और अचलीय योजनाओं को स्वीकृति देना और राज्य के संसाधनों का संतुलित और प्रभावशाली उपयोग सुनिश्चित करना।

4.उन तत्वों की पहचान करना जो आर्थिक और सामाजिक विकास को रोकते हैं और उन उपायों पर विचार करना जो योजनाओं को सफलतापूर्वक पूरा कर सके ।

5.राज्य के भीतर क्षेत्रीय असंतुलन के निराकरण के लिये नीतियाँ तैयार करना।

6.वार्षिक योजना की रूप रेखा तैयार करने के लिये आवश्यक निर्देश देना।

7.पंचवर्षीय योजनाओं की तैयारी के लिये आवश्यक रूप रेखा प्रदान करना।

8.अन्य कार्य जो राज्य सरकार सौपें।

9.संसाधनों के प्रभावकारी और संतुलित उपयोग के लिये योयजनाएं तैयार करना।

10.योजनाओं के प्रभावकारी और सफल क्रियान्वयन के लिये उचित कार्यतन्त्र को प्रस्तावित करना।

11.प्रत्येक चरण पर योजनाओं की सफलता को आंकना और उनको अधिक सफलता के लिये सुधारात्मक उपाय सुझाना।

12.आयोग को सौपें गये मामलों पर परामर्श देना तथा/अथवा उन समस्याओं से सरकार को अवगत कराना जिनका सामना आयोग करता है।

16.2.2 राज्य योजना आयोग द्वारा किये गये कार्य

1.पंचवर्षीय और वार्षिक योजनाएं बनाना।

2.राष्ट्रीय विकास योजना के अनुरूप राज्य की पंचवर्षीय योजना का खाका तैयार करना और यह ध्यान रखना कि यह राज्य सरकार के दृष्टिकोण के अनुसार हो।

3.राज्य सरकार के दृष्टिकोण राष्ट्रीय विकास परिषद (एन.डी.सी.) के सामने रखना।

4.राज्य की पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य और रणनीति को निष्चित करना।

5.योजना आयोग के अध्यक्ष (मुख्यमन्त्री) तथा उपाध्यक्ष से परामर्श करके राज्य की पंचवर्षीय योजनाओं तथा वार्षिक योजना की लागत (व्यय) को अन्तिम रूप देना।

6.राज्य की पंचवर्षीय योजना तथा वार्षिक योजना का प्रारूप तैयार करना।

7.विकास विभागों को आरंभिक लागत आवंटित करना।

8.विभागीय प्रस्तावों की जांच पड़ताल करना।

9.विभागीय प्रस्तावों को अन्तिम रूप देकर योजना आयोग की स्वीकृति प्राप्त करना।

10.प्रत्येक वित्तीय वर्ष के अन्त में लागत के संशोधन के लिये समायोजन प्रस्ताव प्रस्तुत करना।

11.वार्षिक योजना की वित्तीय भौतिक प्रगति के मूल्यांकन के लिये विकास विभागों की मासिक बैठकें बुलाना।

12.केन्द्रीय प्रतिभूत (स्पान्सर्स) योजनाओं का लेखा जोखा विकास विभागों/केन्द्रीय योजना आयोग/केन्द्रीय मंत्रियों को देना और समन्वयन लाना।

13.वे कार्य करना जिसका सम्बन्ध वित्त आयोग से है।

14.जिला योजनाओं के लिये रूप रेखा तैयार करना और जिलों को लागत आवंटित करना।

15.जिला योजनाओं की जाँच पड़ताल करना और उन्हें अन्तिम रूप देना।

16.3 उत्तराखण्ड की वर्तमान आर्थिक-सामाजिक स्थिति

उत्तराखण्ड एक नया राज्य है जो 2000 में अस्तित्व में आया है। जनगणना 2011 के अनुसार इसकी कुल आबादी 1,01,16,752 है। साक्षरता में इसने 9.2 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की है। विकास के अन्य मुद्दों पर यद्यपि अभी जानकारी उपलब्ध नहीं कराई गयी हैं,लेकिन संक्षेप में 2002 में प्राप्त विभिन्न आंकडों के आधार पर उत्तराखण्ड के आर्थिक और सामाजिक विकास पर एक नजर डाली जा सकती है। यहाँ यह भी याद रखना होगा कि केन्द्र ने उत्तराखण्ड को विशेष राज्य का दर्जा दिया है, जिस कारण अपनी योजनाओं के लिये 90 प्रतिशत से अधिक राशि सहायता के रूप में केन्द्र से प्राप्त होती है। विभिन्न मुद्दो की संक्षिप्त विवेचना इस प्रकार है-

16.3.1 निर्धनता और मानव विकास

उत्तराखण्ड राज्य आयोग की रिर्पोट के अनुसार 4,16,018 लोग राज्य में गरीबी की रेखा से नीचे रहते थे (2002) लेकिन 2001 की जन गणना के अनुसार 29-28 लाख लोग 2001 में गरीबी की रेखा से नीचे रहते थे । योजना आयोग ने इसकी पुष्टि की है। इस तरह राष्ट्रीय पैमाने पर यह आंकडे अधिक थे। यह स्थिति तब थी जब 320.00 करोड रूपया वार्षिक उत्तराखण्ड के प्रवासियों द्वारा भेजा जाता था। आज भी पहाड. के लोगों के अस्तित्व का यही सब से बडा आधार है।

16.3.2 कैलोरी की दृष्टि से गरीबी रेखा

योजना आयोग ने निम्नतम प्रति व्यक्ति, प्रति दिन कैलोरी (भोजन द्वारा प्राप्त ऊर्जा की इकाई) लेने की सीमा भारत में 2400 आंकी है। पहाड़ में भौगोलिक दृष्टि से कैलोरी लेने की सीमा 2875 प्रति दिन होनी चाहिए, लेकिन वास्तविकता यह है कि लोगों को 2400 कलोरी भी नहीं मिल पाती जो गरीबी रेखा को अंकित करती है।

16.3.3 पेयजल की उपलब्धता -

उत्तराखण्ड में पेयजल का मुख्य स्रोत प्राकृतिक संसाधन है। गावों में पेयजल का सदियों से यही आधार है। योजना आयोग का इस ओर ध्यान भ्रामक है। जो योजनाए इस दिशा में बनी है वे त्रुटिपूर्ण है। पेयजल के मौजूद स्रोत प्रायः सूख रहे है। कारण जंगल कटान है। पहाड़ी नगरों में पेयजल की स्थिति और भी चुनौतीपूर्ण है।

16.3.4 विद्युत उपलब्धता -

अनेक बार उत्तराखण्ड को विद्युत प्रदेश कहा गया है लेकिन विद्युत प्रणाली इतनी त्रुटिपूर्ण है कि राज्य में विद्युत का संकट सदा बना रहता है। मुख्य विद्युत लाइन प्रत्येक क्षेत्र तक जाती है परन्तु अपर्याप्त विद्युत होने के कारण उसका कोई लाभ नहीं हो पाता। स्थिति यह है कि जो वर्ष 1985-88 में खम्बे लगाये गये थे उनको विद्युत सप्लाई 2000 में दी गयी। दूसरे पहाड़ के गावों में विद्युत एक अनिवार्यता नहीं है क्योंकि उसका व्यय वहन करने की लोगो में क्षमता नहीं है। स्थिति यह है कि, यद्यपि प्रत्येक गाँव तक विद्युत लाइनें पहुँची हैं लेकिन 2010 तक 50 प्रतिशत् लोगों ने कनैक्शन नहीं लिये थे।

16.3.5 उत्तराखण्ड स्वास्थ्य की स्थिति

स्वास्थ्य से संबन्धित आंकडें पूरी तरह उपलब्ध नहीं है, लेकिन जो आंकड़े उपलब्ध हैं उनके आधार पर कहा जा सकता है कि स्थिति अन्य राज्यों से बेहतर है। कारण है साक्षरता में वृद्धि, ठन्डी जलवायु तथा रहने के परम्परागत तरीके। लेकिन कुपोषण की समस्या बनी हुई है। पुरूषों की अपेक्षा, स्त्रियाँ और बच्चे अधिक बीमार हैं।

16.3.6 विकलांग लोगों की समस्या-

सरकारी आंकडो के अनुसार उत्तराखण्ड में कुल आबादी का 10 प्रतिशत्,लगभग 9 लाख से अधिक लोग विकलांग है परन्तु गैरसरकारी संगठनों के अनुसार यह संख्या 15,000 है। सरकारी पहुँच विकलांगो तक नहीं है परन्तु विकलांगो को स्वयं जिला मुख्यालय आकर पंजीकृत कराना होता है। इस दिशा में सरकार का कोई नियोजित कार्यक्रम नहीं है।

16.3.7 बच्चों के श्रम की स्थिति

उत्तराखण्ड में न तो ऐसी फैक्ट्रीयां है और न ही ऐसे कुटीर उद्योग धन्धे जहाँ बच्चों से काम लिया जाता हो। अधिकांश लोग छोटे पैमाने पर कृषि पेशे से जुडे. हैं । वे ही भू-स्वामी है और वे ही मज़दूर । ऐसी स्थिति में बच्चों से काम लेने का न तो अवसर है और न औचित्य। इसलिए इस दिशा में सरकार की न तो कोई सोच है और न कोई योजना।

यह एक कटु सत्य है कि पहाड़ के बच्चे जिनके मां बांप बहुत निर्धन है, वे काम करने के लिए नगरों में जाते है और वहां अक्सर होटलो में काम करते है। सरकार को इस ओर कोई ध्यान देना होगा। एक रिर्पोट के अनुसार ऐसे बच्चों की संख्या लगभग 3.5 लाख है।

16.3.8 भौतिक पर्यावरण का मुद्दा

भौतिक पर्यावरण का सम्बन्ध वैसे तो पूरे देश से है लेकिन पहाडों से विशेष रूप से है। बाहरी लोग जो छोटे व्यापारियों या मज़दूरों के रूप में पहाडों में आते है, पर्यावरण के प्रति गम्भीर नही होते। तराई तथा भाबर के क्षेत्र जो जंगलो से भरे थे बाहरी लोगो के आने के बाद कृषि भूमि में बदल गये। इससे पर्यावरण को गहरा आघात लगा। पहाड़ के जंगलो में आग लगना एक गंभीर समस्या है। पहाड़ी क्षेत्रों में खनन ने भी पर्यावरण को चुनौती दी है। झरनें, तालाब और नदियां सूखने लगी है। बडे पैमाने पर भवन निमार्ण ने इस स्थिति को और गंभीर किया है। सरकार की इस दिशा में योजनांए है परन्तु वे प्रभावी नही है। जंगलों की रक्षा करना सरकार का कर्त्वय है। लोगो के आचरण को बदलना और पर्यावरण संरक्षण में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करना अनिवार्य है।

16.3.9 कानून और व्यवस्था

उत्तराखण्ड राज्य बनने के बाद अचानक राज्य में अपराधों में वृद्धि हुई है। उत्तर प्रदेश की सीमाओं से सटे नगरों में छोटे अपराधियों का इतिहास पहले से रहा है। नये विकास कार्यो ने भू, जंगल, बजरी, शराब माफिया की पकड को मजबूत किया है। वे प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार जमा कर राजनीति पर कब्जा करना चाहते है। यह

स्थिति भावी उत्तराखण्ड के लिये चुनौतियों से भरी है। इस स्थिति से निपटने के लिये एक प्रभावकारी राजनीति की आवश्यकता है।

16.3.10 बेरोजगारी और निर्धनता

उत्तराखण्ड राज्य सरकार के आंकडों के अनुसार 2002 तक 348675 युवा रोजगार दफतर में पंजीकृत थे इनमे से सरकार ने 194 लोगों को रोजगार दिया जबकि 2002 तक अन्य निजि निकायों के माध्यम से 2865 लोगो को रोजगार दिया गया। बेरोजगारी दर पूरे भारत में 2.2 से लेकर 7 प्रतिशत तक बढ रही है। उत्तराखण्ड में भी स्थिति लगभग यही है। सरकार की योजना मानव संसाधनों का विकास करके रोजगार के अवसर बढाना है। लोगो को प्राकृतिक संसाधनों से जोडकर जिनमें भूमि, खनिज पदार्थ और पानी भी सम्मिलित है, निर्धनता का समाधान ढूँढा जा सकता है। बेरोजगारों को प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में लगाकर समस्या का हल निकल सकता है।

16.4 उत्तराखण्ड की 2010-11 की वार्षिक योजना पर एक नज़र

उत्तराखण्ड को विशेष राज्य का दर्जा मिला हुआ है। इसलिये इसका अधिकार विकास केन्द्रीय अनुदान पर टिका हुआ है। वित्त आयोग तथा योजना आयोग मिलकर उत्तराखण्ड की योजनाओं को स्वीकृत करते है। उत्तराखण्ड की 2010-11 स्वीकृत वार्षिक योजना के अनुसार राज्य के अपने संसाधन 190.25 करोड़ है। जबकि राज्य सरकार द्वारा लिये यजाने वाले ऋण 1734 करोड होगें। इन ऋणों की अदायगी पर राज्य पर 407.53 करोड का बोझ पडेगा। राज्य को कुल केन्द्रीय सहायता 3388.30 करोड की मंजूर की है। कुल संसाधनों को मिलाकार 6800.0 की वार्षिक योजना को स्वीकृति मिली है।

यदि उत्तराखण्ड वार्षिक योजना 2010-11 पर प्रति खण्ड लागत (सेक्टर वाइज आउटले) पर नजर डाली जाये तो पता चलेगा कि कृषि और उससे सम्बन्धित अन्य गतिविधियों पर (गन्ना विकास, बागवानी) 17777.35 लाख की लागत आयेगी। भूमि संरक्षण जल संरक्षण तथा जलापूर्ति प्रबन्धन पर 12482.00 लाख की लागत आयेगी। कुल कृषि से सम्बन्धित सेवाओं (पशु पालन, दुग्ध विकास, मत्स्य, वन और वनजीव, कृषि अनुसंधान और शिक्षा, सहकारिता इत्यादि) पर 53291.00 लाख की लागत आयेगी।

ग्रामीण विकास और पंचायत मद पर कुल 47032.04 लाख की लागत आंकी गई है। जबकि सिचाई और बाढ नियंत्रण पर 61416.36 की लागत का अनुमान है। जहॉ तक ऊर्जा का सम्बन्ध है (जिसमें हाइड्रो पावर की पैदावार, विद्युत वितरण विद्युत सामान्य इत्यादि है) इस पर कुल लागत 42712.51 लाख आंकी गई है।

उद्योग धन्धों और खनिज पदार्थो पर 2461.54 लाख तथा यातायात पर (घरेलू उडान, सडके और पुल तथा अन्य) 79551.54 लाख खर्च होगे।

विज्ञान और तकनीकी ज्ञान पर (जिसमें सूचना प्रोद्योगिकी, उत्तराखण्ड स्पेस ऐपलीकेशन, विज्ञान शिक्षा-शोध, बायोटेक, उत्तराखण्ड कौंसिल आफ सांइस एण्ड टेक्नालिजी है) 2797.00 लाख की लागत का अनुमान है।

सामान्य आर्थिक सेवाओं पर अनुमानित लागत 298635.33 आंकी गई है। इनमे योजना आयोग की सेवाऐं, पर्यटन, जनगणना, सर्वेक्षण, सांख्यकी, खाद्य एंव आपूर्ती इत्यादि सम्मिलित है।

जहॉ सामाजिक सेवाओं का सम्बन्ध है इसमे सामान्य शिक्षा पर 40470.20 लाख की लागत दिखाई गयी है। उच्च शिक्षा पर जिसमे विश्वविधालयों और शासकीय कालिजो, सस्थानो आदि की शिक्षा सम्मिलित हैं, 9048.41 लाख खर्च होगा।

तकनीकी शिक्षा पर 5001.07 लाख व्यय किया जाऐगा जबकि खेलो, युवा कलयाण, कला और संस्कृति पर क्रमशः 1568.52,1493.26 तथा 1359.87 लाख की लागत आयेगी।

मेडीकल तथा जनस्वास्थ्य पर (एलोपेथी, मेडिकल शिक्षा, आर्युवेदिक, यूनानी तथा होम्योपेथी) 30310.13 लाख खर्च किया जाऐगा।

पेयजल आपूर्ति, सफाई, भवन निमार्ण, नगरीय विकास तथा सूचना एवं प्रसार पर क्रमशः 4276.04, 0.03, 45844.58 तथा 1052.06 की लागत आयेगी।

जहॉ तक सामाजिक सुरक्षा और समाज कल्याण का सम्बन्ध है इस पर 28353.7 लाख व्यय किया जाऐगा। सामाजिक सुरक्षा और समाज कल्याण मे अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यक विकलांग, महिला, सैनिक तथा बच्चों के कल्याण की योजनाऐ सम्मिलित हैं। आहार पोषण। महिला और बच्चों से सम्बधित विकास पर कुल 12844.78 लाख व्यय होगें।

योजना के अर्न्तगत श्रम, प्रशिक्षण तथा रोजगार पर लाख की लागत आयेगी।इस तरह पूरी सामाजिक सेवाओं पर 223405.35 लाख खर्च करने का अनुमान लगाया गया। जहॉ न्यायपालिका ,जायदाद विभाग, गृह विभाग,विधान सभा, वित्त आयोग,आपदा प्रबन्धन इत्यादि पर कुल 157959.32 लाख खर्च होगा ।

इस तरह सभी मदों 2010-11 की वार्षिक योजना पर 680000 लाख की स्वीकृति मिली। यह राशि पिछले वर्ष 2009-10 की तुलना में 1225.50 करोड अधिक है। इस परिव्यय का 33.18 प्रतिशत भाग समाज सेवाओं और समाज के लिये, 29.16 प्रतिशत भौतिक संरचना के लिये, 23.14 सामान्य सेवाओं , 7.5 कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों और 7.33 प्रतिशत ग्रामीण विकास के लिये रखा गया है।

इस से स्पष्ट होता है कि उत्तराखण्ड में सब से अधिक राशि समाज सेवाओं और कल्याण पर व्यय की जायेगी जबकि ग्रामीण विकास पर सबसे कम धन व्यय किया जायेगा।

16.5 योजना आयोग की उपलब्धियां और लक्ष्य

उत्तराखण्ड नये राज्यों में से एक है परन्तु दस वर्ष पुराना हो चुका है। दस वर्ष की उपलब्धियों को संक्षेप में बताया जा सकता हैः

वृहत स्तर पर (मेकरो लेवेल) विकास वृद्धि दो अंकों में हुई है जबकि लक्ष्य 6.8 प्रतिशत वृद्धि का था। आशा यह की जाती है कि 11वीं पंच वर्षीय योजना के दौरान यह वृद्धि 9.9 प्रतिशत होगी। जबकि राष्ट्रीय लक्ष्य 9 प्रतिशत है। इसका कारण है कि इसने तल से विकास कार्यक्रम आरंभ किया है।

भौगोलिक-भौतिक परिस्थितियों के कारण राज्य में विशेष रूप से कृषि, उद्योग तथा संरचना के संदर्भ में क्षेत्रीय असमानता को स्वीकार किया गया है। सरकार की ओर से असमानता और विभाजन को सब से बडी चुनौती माना गया है। यह असमानता न केवल क्षेत्रीय है, बल्कि जातीय, वर्गीय, सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक है। योजना आयोग ने योजनाऐं बनाते समय इस असमानता को ध्यान में रखा है।

पर्यावरण संरक्षण एक दूसरी चुनौती है। यहॉ योजना आयोग ने जन भागीदारी को सुनिश्चित किया है इसलिये सूचना के अधिकार अधिनिमय 2005 को राज्य में कठोरता से लागू किया गया है।

योजना आयोग ने उत्तराखण्ड में 2004-05 तक निर्धनता अनुपात 38.8 प्रतिशत आंका था और लक्ष्य यह था कि इस अनुपात को 2011-12 तक 23.6 तक लाया जाये।

आवश्यकता इस बात की है कि कृषि वृद्धि की दर को बढाया जाय। 2010 तक कृषि वृद्धि की दर 2.62 प्रतिशत आंकी गई। इसको 4 प्रतिशत तक लाने का लक्ष्य है। योजना आयोग ने उत्तराखण्ड में क्रान्तिकारी औद्योगिक कदम उठाये है। 2010 से 2013 तक लिये एक औद्योगिक प्रस्ताव (पैकेज) देने का वायदा किया जिसके तहत एक विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज) बनाने की बात कही गई है। औद्योगिक गति को तेज करने के लिये 11वीं योजना के

तहत रूडकी तक रेलवे लाइन बिछाने तथा देहली और देहरादून के बीच छः लेन सडक निर्माण की बात कही गई है। विकास के लिये एक मजबूत संरचना अनिवार्य है। यहॉ सब से बडी भूमिका विद्युत (पावर) की है। औद्योगीकरण की यह एक अनिवार्य शर्त है। इसके लिये सरकार ने 300 मी0 डा0 का ऋण ए0डी0बी0 से लेने की बात की है।

2002 में सिडकुल (उत्तराखण्ड सरकार उद्यम) की एक लिमिटेड कम्पनी के रूप में स्थापना की गई। इसमें सरकार ने 50 करोड का एक बार 20 करोड दूसरी बार पूँजी निवेश किया। उद्देश्य था राज्य में उद्योगो का विकास। परिणाम स्वरूप देहरादून से लेकर सितारगंज तक उद्योगो का एक सिलसिला स्थापित हो गया ।

अन्त में सरकार के प्रयासों से राज्य में साक्षरता दर 82 प्रतिशत हुई है। जंगलों का आकार 68 प्रतिशत से बढकर 70 प्रतिशत हुआ है। जी0डी0पी0 126593 मिलियन है। एन0डी0पी0 (आई0एन0आर0) 113420 मिलियन हुआ है।

16.6 योजना और आर्थिक विकास: सुझाव

मेजर डी0 एस0 बिष्ट द्वारा किये गये एक अध्ययन के अनुसार उत्तराखण्ड सरकार को नियोजन और विकास की ओर बडा सर्तक होकर आगे बढना होगा। उन्होने अपने अध्ययन पावरटी प्लानिंग एण्ड डेवलपमेन्ट में नियोजन से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिये है।

उत्तराखण्ड जैसे पहाड़ी राज्यों के लिये योजना आयोग द्वारा बनाये गये मापदण्ड़ पहाड़ के लोगों के लिये सामयिक नही हैं। वन और कृषि यहॉ के जीवन का अस्तित्व है। सदियों से यहॉ के निवासी वन और कृषि से जीवन यापन करते आये है। आधुनिकीकरण ने आत्म निर्भरता को चोट पहूँचायी है। राज्य योजना आयोग को यर्थात को ध्यान में रखकर पहाड के लिये योजनाऐं बनानी चाहिए।

राज्य के हितों को दृष्टि में रखकर यह स्वीकार करना होगा कि केन्द्र द्वारा बनाई गयी अनेक विकास योजनांए आवश्यक नही है उत्तराखण्ड के लिए लाभकारी हों। नतीजा यह होता कि जब सरकार उन योजनाओं के कार्यान्वयन में असफल होती है तो केन्द्रीय सहायता स्वतः समाप्त हो जाती है। अतः राज्य को केन्द्रीय योजनाओं को परिस्थितियों के अनुसार संशोधित करने का अधिकार होना चाहिए।

पंजाब और हरियाणा में प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई है। कारण है हरित क्रान्ति जो केन्द्र के उदार अनुदान से सम्भव हुई है। उत्तराखण्ड को भी ऐसी सहायता मिलनी चाहिए।

विद्युत और जल संसाधनों पर, जिनका बटवारा अन्य राज्यों को होता है, उत्त्राखण्ड को स्वतव-शुतक (रायलटी) मिलनी चाहिए।

उत्त्राखण्ड का 60 प्रतिशत भू-भाग जंगलो से ढका हुआ है। केन्द्र द्वारा इसके हरजाना दिया जान चाहिए। इसके अतिरिक्त राज्य के युवकों को कृर्षि और जंगलों से जोड़ने के लिए विशेष योजनांए होनी चाहिए।

उत्तराखण्ड तथा हिमाचल की परिस्थितियां लगभग एक जैसी हैं मात्र इसके की हिमाचल की ग्रामीण अर्थव्यवस्था उत्तराखण्ड से बेहतर है। उत्तराखण्ड में 1.50 लाख सरकारी कर्मचारी है। जबकि हिमाचल में यह संख्या 2.50 लाख है। हिमाचल ने 2002 से लेकर 2010 तक 12 लाख लोगों को रोज़गार देने का वायदा किया है। जबकि उत्तराखण्ड में 2 लाख लोगों को रोजगार देने की योजना है। यदि नियोजन सही हो तो अधिक लोगो को रोजगार मिल सकता है।

केन्द्र नियोजन का आधार बडा तार्किक है और समनवित होता है। ऐसा उत्तराखण्ड में नही है । राज्य योजना आयोग को चाहिए कि वो वरीयताओं को निश्चित करें जिसे तरह राज्य की वार्षिक और पंचवर्षीय योजनाएं योजना

आयोग द्वारा स्वीकृत होती है। उसी तरह जिला योजना को योजना आयोग की स्वीकृति मिलना चाहिए ऐसा इसलिए जरूरी है कि यहां जिलो में प्राकृतिक संसाधनों और मानव संसाधन की दृष्टि से गहरा अंतर है।

सारकार या गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा बनाई योजनाओं में जीव विवधता (बायो डायवस्ट्री) के सिद्धान्त की अनदेखी की गयी है। इसका नतीजा यह निकला है कि भूमि उत्पादिकता घटी, जल स्त्रोत सूख गये तथा वन सम्पदा का हास हुआ। पहाड़ का जीवन और संस्कृति जीव विवधता पर टिकी हुई है । योजनांए स्थानीय लोगो को प्राकृतिक संसाधनों से जोडने के लिए बननी चाहिए।

अध्ययन से यह भी पता चलता है कि शासन की ओर से विभिन्न अभिकारगों, विभागों तथा शोध संस्थाओं पहाड़ की योजनांए बनाने के लिए बिना योजना आयोग से तालमेल की पूर्ण स्वतंत्रता मिली हुई है। इन संस्थाओं को विभिन्न आंतरिक और बाहरी स्त्रोतो से भरपूर पैसा मिल रहा है। जो प्रबन्धकों की जेबों में अधिक और योजनाओं में कम लग रहा है। न तो इससे युवको को नौकरी मिलती है और न गरीबों की आय बढती है। सरकार को इन संस्थाओं की जवाबदेही सुनिश्चित करनी चाहिए।

उत्तराखण्ड में गैर सराकरी संगठनों (एन0जी0ओ0) की बाढ़ सी आयी हुई है। एक अनुमान के अनुसार ऐसे लगभग 450 संगठन यहां कार्यरत है। उनका दावा है कि उन्होनें कम पैसे में उत्तराखण्ड का बडा विकास किया है। ऐसे दावों सरकार को भ्रमांक करते है। अक्सर यह संगठन जाली और उनके दावे झूठे। सरकार को चाहिए कि या तो वे इनसे विकास कार्यो में सम्पर्क बनायें या इनकी गतिविधियों को सीमित रखे।

उत्तराखण्ड अथवा अन्य पहाड़ी राज्यों पर समाजशास्त्र के द्वारा किये जाने वाले शोधो का योजना आयोग को सदुपयोग करना चाहिए।

पहाड़ों में ईट, लोहा, बजरी के भवन नही बनाना चाहिए। आर0सी0सी0 के छतों के निर्माण को हतोतसाहित करना चाहिए। भवन भूकम्प निराधी होने चाहिए जिसके लिए स्थानीय परम्परागत तकनीकि का प्रयोग हो।

उत्तराखण्ड में 15793 गांव तथा 86 छोटे नगर है। प्रत्येक स्थान को पर्यटन स्थल में बदला जा सकता है। इन स्थलों में आधुनिक सुविधांए होनी चाहिए इससे देहरादून, हरिद्वारा, नैनीताल, उधमसिंह नगर, हल्द्वानी इत्यादि पर दबाव कम होगा। स्थानीय बाजारों का विकास किया ताकि यहां का माल पडोस ग्रामीण इलाकों के लोग खरीद सकें या अपने द्वारा उत्पादित माल का विक्रय कर सके।

पहाडों में आद्योगिक विकास योजना पूरी तरह असफल हुई है। अनेक उद्योग जैसे एच0एम0टी0, हल्द्वानी, यू0पी0 टैक्सटाइल मील, फलोमोर पालिस्टर लि0, काशीपुर बहुत पहले बीमार घोषित हो चुकी है । दूसरे उद्योग जैसे ए0आर0सी0 सीमेंट फैक्ट्री देहरादून, यू0पी0 गर्वमेंट कैलशियम, कार्बोहाइड्रेट फैक्ट्री बंद हो चुकी है। इससे एक नतीजा यह निकलता है कि पहाडो में आद्योगिक विकास कृषि आधारित होना चाहिए। या वन सम्पदा आधारित लघु उद्योग स्थापित होने चाहिए।

यहां यह याद रखना होगा कि बावजूद इन असफलताओं के पृथ्क राज्य बनने के बाद उत्तराखण्ड में नयी उद्योग नीति घोषित की गयी है। नई औद्योगिक नीति 2003 के अनुसार उत्तराखण्ड के औद्योगिकरण के लिए एक नियमित ढांचा तैयार किया गया है। इस नीति के तहत उत्तराखण्ड़ एकीकृत औद्योगिक जागीर की स्थापना निजी संसाधनों का दोहन करके की जायेगी। सरकार निजी भागीदारी को बढावा देने के लिए तमाम सुविधांए प्रदान करने को तैयार है। परिणाम स्वरूप, एच0एल0एल0 तथा डाबर जैसे बडे उद्यमियों ने राज्य में अपनी इकाइयां स्थापित की है। यहां सवाल यह पैदा होता है कि क्या यह इकाइयां सफल होंगी? या क्या इनसे स्थानीय लोगो को रोजगार मिलेगा? यह समय बतायेगा।

उत्तराखण्ड पारम्परिक तांबे के बर्तनों का लघु उद्योग बहुत पुराना है। सुनहरी का काम भी अच्छा होता है। गरम वस्त्रों के उद्योग के लिए भी अवसर है। योजना आयोग को इन धन्धों के प्रोत्साहन के लिए काम करना होगा
गरीबी दूर करने के लिए एक संयुक्त कार्यक्रम की आवश्यकता है। भूमि हीनों, विधवाओं, बूढों बीमारों तथा विकलांगो के लिए योजनांए बननी चाहिए चाहे उनका सम्बृन्ध किसी वर्ग से हो।
अन्त में अचलीय कार्यक्रम, जल प्रबंधन और विकास, वन पर्यावरण तथा वन जीवन, सिचांई तथा बाढ़ नियंत्रण इत्यादि पर भी ध्यान देना होगा।

अभ्यास प्रश्न
1.गैर सरकारी संगठनों का संक्षिप्त रूप एन.जी .ओ. है.सत्य /असत्य
2.उत्तराखंड को विशेष राज्य का दर्जा मिला हुआ है. सत्य /असत्य
3.भारत में नियोजित आर्थिक विकास १९५१ में प्रथम पंचवर्षीय योजना से आरम्भ होता है. सत्य /असत्य
4.नियोजित आर्थिक विकास का दृष्टिकोण एम.विश्वेसरैया ने अपनी पुस्तक प्लानेद इकॉनोमी फॉर इंडिया में १९३४ में रक्खा था . सत्य /असत्य
5.भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने १९३८ में नेशनल प्लानिंग कमेटी की स्थापना की. सत्य /असत्य
6.योजना आयोग की स्थापना १५ मार्च १९५० में की गयी थी. सत्य /असत्य
7.उत्तराखंड का ६०%भूभाग जंगलों से ढका है . सत्य /असत्य

.

16.7 सारांश

राज्य योजना आयोग एक परा-संवैधानिक संस्था है। यह एक सलाहकार संगठन है। इसकी संरचना राष्ट्रीय योजना आयोग पर आधारित है। इसके मौलिक कार्य राज्य के आर्थिक विकास से सम्बन्धित तार्किक परामर्श देना तथा आर्थिक तत्वों का निष्पक्ष विश्लेषण करना है। यह सब कुछ राज्य के अपने संसाधनों तथा केन्द्र से मिलने वाले अनुदानों या अन्य वाहय त्रणों इत्यादि को ध्यान में रखकर किया जाता है।

उत्तराखण्ड राज्य बनने के बाद यहां पर यहां भी योजना आयोग की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य राज्य के भौतिक, वित्तीय और मानवीय संसाधनों का आंकलन करके राज्य में योजनांए तैयार करना है। इसको यह भी देखना कि योजनांए ऐसी हो जो राष्ट्रीय वरीयताओं के अनुरूप हो। यह वार्षिक योजना और पंचवर्षीय योजनाओं को ध्यान में रखकर राज्य की योजनाओं को बनाता है।

उत्तराखण्ड को विशेष राज्य का दर्जा मिला हुआ है। राज्य योजना आयोग ने राज्य के विकास के लिए कुछ अच्छे काम किये है। विशेषरूप से राज्य में ओद्योगिक गतिविधियां तेज हुई है। सिडकुल कारपोरेशन ने बाहरी उद्यमियों की सहायता से देहरादून से लेकर सितारगंज तक उद्योगो का जाल बिछाया है। राज्य सरकार योजना आयोग की सहायता से राज्य में भौतिक संरचना तैयार करने में सफल हुई है। योजनाओं से सम्बन्धित विभिन्न अध्ययनों से पता चला है कि राज्य के सामने बहुमुखी विकास के अनेक चुनौतियां है जिनका सामना कुशल नेतृत्व तथा योग्य प्रबन्धन कर सकता है।

16.8 शब्दावली

पावरटी लाइन : वह रेखा जिसका आंकलन योजना आयोग समय-समय पर करता है तथा जिसके नीचे रहने वाले अति निर्धन लोग होते हैं।

स्पेशल एकोनामिक जोन : औद्योगिकरण के लिए बनाया गया एक विशेष आर्थिक क्षेत्र जैसे उत्तराखण्ड में सिडकुल

बायो डाइवर्सीटी : जीव विभिन्न जिसके अन्तर्गत पूरे जीवन का ताना बाना, संस्कृति परम्परांए इत्यादि आती है।

16.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2.सत्य 3.सत्य 4.सत्य 5. सत्य 6. सत्य 7. सत्य

16.10सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

संजय कुमार : उत्तर प्रदेश

नवीन चद्रढोडियाल : पृथ्क पर्वतीय राज्य

खड्ग सिंह वल्दिया : उत्तराखण्ड टूडे

16.11सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

एन0डी0 तिवारी: ऐडरेस आफ़ एन0डी0 तिवारी इन दि 52 मीटिंग आफ़ नैशनल डेवलपमेंट कौंसिल, 9 दिसम्बर, 2006

मेजर डी0एस0 बिष्ट : स्टडी रिर्पोट आन दि प्लानिंग आफ़ उत्तराखण (वेबसाइट)

16.12निबंधात्मक प्रश्न

1-राज्य योजना आयोग के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिए।

इकाई-17 राज्य में प्रशासनिक सुधार

इकाई की संरचना

17.0 प्रस्तावना
17.1 उद्देश्य
17.2 प्रशासनिक सुधार आयोग 1960
17.2.1 ऐ0आर0सी0 के उद्देश्य
17.2.2 ए0आर0सी0 की मुख्य सिफारिशें
17.3 आरगानाईज़ेशन एण्ड मेथड्स विभाग (ओ0 एण्ड एम0)
17.4 प्रशासकीय सुधारों का दर्शन
17.5 उत्तराखण्ड में प्रशासनिक सुधार
17.6 प्रशासनिक सुधार आयोग हेतु विचारार्थ विषय
8.7 सारांश
17.8 शब्दावली
17.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
17.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
17.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
17.12 निबंधात्मक प्रश्न

17.0 प्रस्तावना

प्रशासकीय सुधार आज लोक प्रशासन का एक चर्चित विषय है लेकिन यह भारत में बहुत देर से पहुंचा है। प्रशासन को गतिशीलता प्रदान करने का प्रयास, सामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, भारत में एक लम्बे समय से जारी है। अनेक ऐसी संस्थाएं अस्तित्व में आयी, जिन्होंने प्रशासकीय कार्यों की कार्य पद्धति और तरीकों या क्रमबद्धता, संगठनों, हस्तान्तरण, कर्मचारी जरूरतों, योजना क्रियान्वयन इत्यादि के बारे में गहन छान बीन की। ऐसा पचास की दशक में काफी कुछ किया गया। इसके पंचवर्षीय योजना अभिलेखों में समय-समय पर प्रशासनिक कमजोरियों और उनको दूर करने के उपायों की समीक्षा की गयी। क्योंकि योजनओं की असफलता का कारण प्रशासनिक अक्षमता और असफलता थी। इसका अर्थ है कि भारत में प्रशासनिक सुधारों की दिशा में काफी प्रयास किये गये।

लेकिन एक लम्बे समय तक प्रशासनिक सुधारों की दिशा में एक तार्किक, वैज्ञानिक और क्रमबद्ध प्रयास नहीं किया गया और जो कुछ किया गय वह एक आसम्बद्ध, बिखरा हुआ और अत्यधिक निराश परिवर्तनीय प्रयास था। नेता कभी कमियों की गहनता से न तो विश्लेषण किये और न ही उनके निदान का ऐसा प्रयास किया गया जिससे प्रशासन को अर्थपूर्ण गतिशीलता मिल सकती हो । कारण यह था कि स्वतंत्रता के बाद भारत ऐसी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक उलझनों में फँसा रहा कि उसने प्रशासनिक सुधारों की ओर अधिक ध्यान ही नहीं दिया।

किसी भी विकासशील देश में सरकार का ध्यान प्रशासनिक आधुनिकता की ओर कम और आर्थिक तथा सामाजिक सुधारों की ओर अधिक होता है। अधिक महत्वाकांक्षी होने के कारण वे राजनीतिक सुधारों की ओर भी अधिक ध्यान नहीं देते । होता यह है कि जब आर्थिक और सामाजिक ढांचा टूटने लगता है और संकट का समय आता है प्रशासनिक सुधारों की ओर ध्यान जाता है। उत्तराखण्ड एक नया विकासशील राज्य है। सन2000 में अस्तित्व में आया है। इसे बहुत कुछ उत्तर प्रदेश से विरासत में मिला। इसके सारे उच्च अधिकारी पूर्व में उत्तर प्रदेश में कार्यरत थे। सब अनुभवी है। भारत भी प्रशासनिक सुधार के अनेक चरणों से गुजरा। उसके अनुभव का लाभ भी उत्तराखण्ड को मिल सकता है। वैसे भी छोटे राज्य प्रशासन को अधिक गतिशीलता और सुगमता दी जा सकती है। पृथक उत्तराखण्ड राज्य की मांग का एक बडा कारण प्रशासनिक औचित्य ही था। उ0प्र0 एक बडा प्रदेश है। प्रशासनिक अक्षमता या विषमता क्षेत्रीय असंतुलन को बढावा देती है। अस्तित्व में आने के बाद राज्य में प्रशासनिक सुधार आयोग का गठन किया गया जिसने भारत के प्रशासनिक सुधार आयोग 1960 के आधार पर राज्य के लिए विस्तार से संस्तुतिया की है।

17.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप-

1. प्रशासनिक सुधारों का अर्थ और महत्व समझ पायेंगे।
2. प्रशासनिक सुधार आयोग की मुख्य सिफारिशों से परिचित होंगे (ए0आर0सी0)
3. प्रशासन के अंदर लाये जाने वाले सुधारों में संस्थाओं/खण्डों/विभागों की भूमिका को समझ पायेंगे।
4. उत्तराखण्ड में राज्य प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन तथा नीतिगत एवं सामान्य संस्तुतिओं से अवगत होंगे।

17.2 प्रशासनिक सुधार आयोग 1960

उत्तराखण्ड के सुधार आयोग की संस्तुतियों को जानने से पूर्व भारत के प्रशासनिक सुधार आयोग (ए0आर0सी0) को जानना जरूरी है। स्वतंत्रता की प्रथम दहाई में यह महसूस किया गया कि भारत को एक नई आर्थिक और सामाजिक दिशा देने के लिए अतीत की प्रशासनिक लीक से हटकर एक नई सोच के साथ और बढ़ना होगा तभी राजनीतिक विकास भी संभव था और एक कल्याणकारी राज्य का लक्ष्य पूरा हो सकता था। अतः प्रशासकीय संरचना और कार्यपद्धति से सम्बन्धित अनेक अध्ययन किये गये, लेकिन वे इतने विस्तृत और वैज्ञानिक नही थे जो प्रशासन में क्रमिक सुधारों को सुनिश्चित करते। प्रशासन एक लम्बे समय तक राष्ट्रीय दृष्टि और योजनाओं एवं कार्यक्रमों को साकार करने में अपर्याप्त रहा।

17.2.1 ऐ0आर0सी0 के उद्देश्य

इस तरह 5 जनवरी, 1966 को प्रशासकीय सुधार अस्तित्व में आया। आयोग का काम निम्न क्षेत्रों पर विचार करना था:-

1. भारत सरकार के कार्यतंत्र और उसकी कार्यपद्धति।
2. प्रत्येक स्तर पर नियोजन के कार्यतंत्र।
3. केन्द्र-राज्य सम्बन्ध।
4. वित्तीय प्रशासन
5. कर्मचारी प्रशासन
6. आर्थिक प्रशासन
7. राज्य स्तर पर प्रशासन
8. जिला प्रशासन
9. नागरिकों की शिकायतों के निवारण की समस्याऐं

17.2.2 ए0आर0सी0 की मुख्य सिफारिशें

यहां राष्ट्रीय प्रशासनिक सुधार आयोग (1966) का उल्लेख कर रहे हैं । यह एक अत्यधिक प्रतिष्ठित लोगों की टीम थी जिसमें जन प्रतिनिधि, संसद सदस्य, सेवी वर्ग के लोग तथा विशिष्ट क्षत्रों के लोग थे। इस आयोग का उद्देश्य लोक प्रशासन के क्षेत्र में एक संतुलित, यथार्थवादी और एकीकृत दृष्टिकोण अपना कर खोज करना या विस्तृत सिफारिशें करना था।

प्रशासकीय सुधार आयोग ने 20 प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जिनके आधार पर 1581 विस्तृत सिफारिशें की गयी। यह सिफारिशें कृषि को छोडकर अन्य सभी विषयों से सम्बन्धित थी। मुख्य सिफारिशें इस प्रकार थी -

1.प्रशासकीय सुधारों का एक विभाग बनाया जाये जो स्वयं सेवा को आधारभूत चरित्र के प्रशासकीय सुधारों के अध्ययन तक सीमित रखे।

2.ओ0एण्ड0एम0 (आर्गेनाईज़ेशन एण्ड मैथड्स) विभागों में खडा किया जाये तथा ओ0एण्ड0एम0 इकाइयों के कर्मचारियों को आधुनिक तकनीकों से सम्बन्धित प्रशिक्षण दिया जाये । इन ओ0एण्ड0एम0 की इकाइयों को प्रशासकीय सुधारों से सम्बन्धित परामर्श और निर्देश दिये जायें।

3.केन्द्रीय सुधार अभिकरण में एक विशिष्ट सेल (घटक) बनाया जाये ताकि वह भावी सुधारों के बारे में सोच सके।

4.कार्यपद्धति, भर्ती व्यवस्था तथा संगठनात्मक संरचना के सम्बन्ध में केन्द्रीय सुधार अभिकरण शोध परक होना चाहिए।

5.प्रशासकीय सुधारों का विभाग प्रत्यक्ष रूप से उपप्रधानमंत्री के अन्तर्गत रहना चाहिए।

6.शक्तिशाली, स्वायत्त और पेशेवर संस्थांए अनिवार्य है जो प्रशासकीय सुधारों और नवीनीकरण को मौलिक सोच दे सके।

7.किसी मंत्रालय में निति-निर्माण प्रक्रिया में दो से अधिक मंत्री नही लगने चाहिए।

8.केबिनेट सचिव की भूमिका एक समन्वयक तक सीमित नहीं रहनी चाहिए। प्रधानमन्त्री या राज्यों में मुख्य मन्त्री का मुख्य सेवी सलाहकार होना चाहिए। वह मन्त्रिमण्डल और समितियों को भी सलाह दे सकता है।

9.सभी मुख्य निर्णय लिखित में हो, विशेष रूप से जहां सरकार की नीति स्पष्ट न हो या जहां सचिव और मन्त्री किसी महत्वपूर्ण मामले पर एकमत न हों।

10.कर्मचारी वर्ग एक पृथक विभाग के अन्तर्गत रखा जाये जिसका एक पृथक सचिव हो जो कैबिनेट सचिव के निर्देशन में कार्य करें।

11.आई0ए0एस0 के लिए एक कार्यात्मक क्षेत्र बनाया जाये (अर्थात भूमि राजस्व प्रशासन, दण्डाधिकारिक (मेजिस्टेरियल) कार्य और राज्य में नियमतिक (रेग्यूलेटरी) कार्यो के लिए।

12.सरकार को एक स्पष्ट और दूरगामी राष्ट्रीय नीति का निर्माण सेवी वर्ग के प्रशिक्षण के लिए करना चाहिए।

13.मंत्रियों या शासन के सचिवों के विरूद्ध शिकायतों के निबटारे के लिए केन्द्र और राज्य स्तर पर एक सत्ता होनी चाहिए। इस सत्ता को ''लोक पाल'' कहा जाये। दूसरे अधिकारियों के विरूद्ध शिकायतें सुनने के लिए केन्द्र और राज्यों में ''लोक आयुक्त'' होने चाहिए। लोकपाल का पद भारत के मुख्य न्यायाधीश के स्तर का होगा और इसकी नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधान मंत्री की सलाह से पांच वर्ष के लिए करेगा।

14.राष्ट्रीय प्रशासनिक आयोग की सभी सिफारिशों के आधार पर राज्य प्रशासनिक आयोग परिस्थितियों के अनुसार राज्य प्रशासन के लिए सिफारिशे करेंगे।

17.3 आरगानाईज़ेशन एण्ड मेथड्स विभाग (ओ0 एण्ड एम0)

यहां हमें प्रशासकीय सुधारों के सम्बन्ध में ओ0एण्ड0एम0 पर भी प्रकाश डालना होगा।

स्वतंत्रता के बाद प्रशासनिक सुधारों से सम्बन्धित अनेक समितियां गठित की गयी। इनमें 1947 में ऐ0डी0 गोरवाला ने मेथड्स आर्गेनाइज़ेशन और ट्रेनिंग से सम्बन्धित निदेशालय की स्थापना का सुझाव के लिए, एक अभिकरण का काम कर सके। 1952 में प्रथम पंचवर्षीय योजना ने यह सिफारिश की ,कि केन्द्रीय सरकार का एक ओ0एण्ड0एम0 होना चाहिए। जो विभिन्न मंत्रालयों के कर्मचारी खण्डो के साथ पूर्ण सहयोग से काम करें।1953 में प्रसिद्ध लोक प्रशासक पाल0एच0 ऐपलबी ने भी अपनी प्रसिद्ध रिर्पोट ''सर्वे ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया'' में भी ऐसे ही एक संगठन की ओर इशारा किया जो प्रशासकीय संरचनाओं, प्रबन्धन और कार्य पद्धति को नई दिशा दे सके। परिणाम स्वरूप मार्च 1954 में ओ0एण्ड0एम0 डिवीज़न अस्तित्व में आ गया और कैबिनेट सचिवालय से सम्बद्ध कर दिया गया।

ओ0एण्ड0एम0 ने ऐसे अध्ययन कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक चलाया है जिसका उद्देश्य अभिलेखों के वैज्ञानिक प्रबन्धन के तौर तरीकों, विभागीय नियमों के सरलीकरण, प्रतिवेदनों, आधिकारिक विवरणों और तथ्य एवं समस्याओं के औपचारिक ब्योरों को शासकीय समस्याओं और संकटो के लिए अनिवार्य है।

ओ0एण्ड0एम0 डिवीजन सामन्य हित की समस्याओं का विशिष्ट अध्ययन करके विभिन्न विभागों को सलाह देता है। यह स्वीकार किया गया है कि प्रत्येक विभाग के भीतर अपना ओ0एण्ड0एम0 होना चाहिए और उसे प्रशासकीय समस्याओं के लिए पर्याप्त उत्तरदायित्व और अधिकार मिलने चाहिए। साथ में यह भी महसूस किया गया है कि यदि ओ0एण्ड0एम0 को प्रशासन के क्षेत्र में एक अहम भूमिका अदा करनी है, तो उसके कार्य को सरकारी कार्यपद्धति तक सीमित न रखा जाये। ओ0एण्ड0एम0 का कार्य वास्तव में विभागों और मंत्रालयों के संगठनों और संरचनाओं का विश्लेषण करना है और शासन को उसके सर्वोच्च स्तर तक परामर्श देना है।

17.3.1 ओ0 एण्ड एम0 का प्रशासकीय सुधार विभाग में विलय

सन1964 में गृह मंत्रालय के अन्तर्गत प्रशासकीय सुधार विभाग अस्तित्व में आया। इसका उद्देश्य भी प्रशासकीय व्यवस्थाओं और शासन तंत्र के तौर तरीकों और नीतियों का अध्ययन करना था। अतः इसे इसी वर्ष ओ0एण्ड0एम0 डिवीजन के साथ जोड़ दिया गया। इस तरह ओ0एण्ड0एम0 संरचनात्मक और संगठनात्मक अध्ययनों का केन्द्रीय भाग बन गया। बाद में ओ0एण्ड0एम0 ने अपना कार्य क्षेत्र बढा दिया। उसने कर्मचारी वर्ग (परसोनेल) विभाग से मिलकर कर्मचारी वर्ग पर अनेक अध्ययन किये।

अन्ततः प्रशासकीय सुधार विभाग तथा ओ0एण्ड0एम0 के सहयोग से प्रशासनिक सुधार आयोग (भारत) ने कर्मचारी वर्ग पर अनेक सिफारिशें प्रस्तुत की -

कर्मचारी वर्ग का एक पृथक विभाग बनाया जाये जो एक स्थायी सचिव के अधीन हो लेकिन जो कैबिनेट सचिव के निर्देशन में काम करें। इस विभाग के निम्न कार्य एवं उत्तरदायित्व होने चाहिए:-

1.केन्द्रीय और अखिल भारतीय सेवाओं से संबन्धित प्रत्येक मुद्दे पर कर्मचारी वर्ग के लिए नीतियों का निर्माण करना तथा इनके क्रियान्वयन का निरीक्षण एवं मूल्यांकन करना।

2.प्रतिभा की खोज करना, उच्चतर प्रबन्धन के लिए कर्मचारी वर्ग का विकास करना तथा उच्चतर पदों पर नियुक्तियों की समय-समय पर परीक्षा करना।

3.मानव शक्ति की योजना तैयार करना, प्रशिक्षण देना और पेशा सम्बन्धी विकास तथा कर्मचारी वर्ग के विकास के लिए विदेशी सहायता कार्यक्रम तैयार करना।

4.व्यक्तिक तौर पर कर्मचारी प्रशासन में शोध ।

5.कर्मचारी तंत्र की शिकायतों को दूर करने के लिए अनुशासन और कल्याणकारी काम करना।

17.4 प्रशासकीय सुधारों का दर्शन

प्रशासकीय सुधार एक प्रक्रिया है जिसे अनेक चरणों में विभाजित किया जा सकता है। समस्याओं के आंकलन से लेकर, नीतियों के क्रियान्वयन तक। उद्देश्य है सुधार। जेराल्ड ई0 कैडेन के अनुसार प्रशासनिक सुधारों में निम्न बातें सम्मिलित है:-

क- प्रशासकीय परिवर्तन की आवश्यकता के प्रति जागरूकता।

ख- लक्ष्य, रणनीति और कार्यविधि का निर्माण

ग- सुधारों का क्रियान्वयन

घ- सुधारों का मूल्यांकन वस्तुगत दृष्टि से।

उस समय प्रशासनिक सुधार अनिवार्य हो जाते है जब प्रशासन अपने कर्मचारी वर्ग को संतुष्ट नहीं कर सकता है, आश्वस्त नहीं हो पाता कि समस्याऐं क्या हैं और कहाँ है? नागरिकों की शिकायतें दूर नहीं कर सकता तथा संगठन में चलने वाली गतिविधियों के बारे में उचित ढंग से सोच नहीं पाता।

प्रभावकारी सुधार लाने के लिए अनिवार्य है कि उन पर नजर रखी जाये और उनका मूल्यांकन किया जाये।

17.5 उत्तराखण्ड में प्रशासनिक सुधार

उत्तराखण्ड एक नवोदित राज्य है जो उत्तर प्रदेश से पृथक होकर 2000 में अस्तित्व में आया है। जनगणना 2011 के अनुसार उत्तराखण्ड की कुल आबादी 1,01,16,752 है। 1815 से लेकर 1947 तक उत्तराखण्ड एक पृथक प्रशासनिक इकाई बना रहा। इस दौरान उत्तराखण्ड के शासक मूल रूप से प्रशासक थे अर्थात अंग्रेजी शासनकाल में उत्तराखण्ड को एक प्रशासनिक इकाई माना गया। अंग्रेजी प्रशासक बैटिन से लेकर रेम्ज़े तक उत्तराखण्ड से सम्बन्धित अनेक प्रशासनिक सुधार किये गये लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि जहां स्वतंत्रता से पूर्व अंग्रेज प्रशासक उत्तराखण्ड के विकास के प्रति जागरूक रहे। वहीं स्वतंत्रता के बाद भारतीय प्रशासकों (उ0प्र0) ने इस क्षेत्र को अनदेखा कर दिया। उनकी उदासीनता से उत्तराखण्ड पूरी तरह पिछड़ गया। प्रशासनिक अधिकारी यहां आने से घबराते थे और यहां स्थानान्तरित होकर आते तो तैनाती को सज़ा समझते थे। जहाँ एटकिन्सन जैसे

प्रशासक ने उत्तराखण्ड का चप्पा-चप्पा खंगालकर महान शोध ग्रन्थ लिखे, वहां हम भारतीय प्रशासकों को देखने के लिए तरसते थे।

इस मानसिकता की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्तराखण्ड में पृथक राज्य आंदोलन आरंभ हुआ। मांग की गयी कि उत्तर प्रदेश से अलग एक राज्य के रूप में या केन्द्र शासित स्वायत्त प्रदेश के रूप में विकास का प्रयोजन होने चाहिए।

विकास के आयोजन स्थानीय जनता के हित के लिए, अचल-विशेष के उद्धार-सुधार-उन्नयन के लिए हो।

योजनाओं का दायित्व पुराने अधिकारियों-कर्मचारियों की अदला बदली से बने प्रशासनिक तंत्र पर न होकर नये लोगों से नवगठित नये 'काडर' पर हो। परिणाम स्वरूप, उत्तराखण्ड के गठन के बाद एक नई परिकल्पना के साथ राज्य प्रशासनिक सुधार आयोग की स्थापना की गयी।

17.6 प्रशासनिक सुधार आयोग हेतु विचारार्थ विषय

उत्तराखण्ड शासन के संकल्प 223 दि0 - 10 मार्च, 2006 के अनुक्रम में प्रशासनिक सुधार आयोग हेतु निर्धारित विचारार्थ विषय के अन्तर्गत जिन विषयों एवं बिन्दुओं पर विचार किया जाना था, उनका विवरण निम्नवत् है

उत्तराखण्ड शासन का संगठनात्मक ढांचा -

1.राज्य स्तर से ग्राम स्तर तक विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों का दक्ष एवं संवेदनशील बनाना।
2.विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों का पुनर्गठन एवं सुदृढ़िकरण ताकि वे कार्यकुशल, मितव्ययी, संवेदनशील स्वस्थ, निष्पक्ष और सार्थक व्यवस्था दे सके।
3.मानव संसाधन का इस प्रकार से नियोजन कि कम से कम मानव संसाधन में अधिकतम एवं गुणवत्तापूर्ण कार्य किया जा सके।
4.ऐसे क्षेत्रों को चिन्हित किया जाना जिनमें शासकीय हस्तक्षेप को समाप्त किये जाने की आवश्यकता हो।
5.प्रत्येक प्रशासनिक इकाई को आधुनिक तकनीकि एवं सूचना प्रौद्योगिकी के परिप्रेक्ष्य में पुनर्गठित करना।
6.विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों में परस्पर समन्वय हेतु उपाय।
शासन/प्रशासन में नैतिकता -
1.शासकीय व्यवस्था में भ्रष्टाचार उन्मूलन एवं पारदर्शिता लाने हेतु उपाय।
2.मेहनतों एवं ईमानदार अधिकारी/कर्मचारियों के उत्पीड़न का समाप्त करना एवं जहां आवश्यक हो कार्यकारी विवेकाधिकार को सीमित करना।
3.शासकीय प्रक्रिया को सरलीकृत करते हुए अधिक जनप्रिय बनाना एवं मनमानी से निर्णय लेने पर प्रतिबंध की व्यवस्था।
4.राज नेताओं एंव अधिकारियों के बीच के सम्बन्धों में सद्भाव और परामर्श की प्रक्रिया में सरलता।
5.राज नेताओं एवं अधिकारियों के लिए आचरण संहिता।
कार्मिक प्रशासन को चुस्त दुरूस्त बनाया जाना -
1.भर्ती प्रशिक्षण एवं उपयुक्त स्थान पर उपयुक्त अधिकारियों, कर्मचारियों की तैनाती की व्यवस्था।
2.अधिकारियों/कर्मचारियों में कार्य उत्पादकता बढाए जाने एवं उनके मूल्यांकन की व्यवस्था।

3.अधिकारियों की क्षमता विकास हेतु प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था।

4अधिकारियों/कर्मचारियों के द्वारा किये गये कार्यो के वास्तविक मूल्यांकन को आर्थिक एवं सामाजिक लक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में देखना।

वित्तीय प्रबंधन व्यवस्था का सुद्धृढ़ीकरण -

1.परियोजनाओं और कार्यक्रमों के लिए समय से बजट अवमुक्त करने की प्रक्रिया का सरलीकरण।

2.राजकीय धन का समय से सदुपयोग किये जाने को सुनिश्चित करने के लिए व्यवस्था।

3.विभिन्न स्तरों पर होने वाले व्ययों का लेखा -जोखा रखने की व्यवस्था।

4.प्रमाणीकरण के लिए आन्तरिक आडिट की व्यवस्था, वाहन आडिट पद्धति का विकास जिससे कार्यक्रमों के प्रभाव का सही मूल्यांकन हो सके।

राज्य से ग्राम स्तर तक प्रभावी प्रशासन सुनिश्चित करने हेतु उपाय -

1.प्रत्येक स्तर पर वित्तीय एवं प्रशासनिक अधिकारों का आवश्यकतानुसार प्रतिनिधापन।

2.प्रशासनिक इकाइयों में समुचित सामन्जस्य एवं समन्वय स्थापित किये जाने के सम्बन्ध में उपाय एवं उनकी प्रभावकारिता के मूल्यांकन की व्यवस्था।

जिला प्रशासन को प्रभावी बनाये जाने हेतु उपाय -

1.जिला स्तर पर अधिकारियों की कार्य प्रणाली को अधिक उत्तरदायी एवं संवेदनशील बनाना एवं जनता की शिकायतों पर ध्यान देने के लिए उसे सक्षम बनाना।

2.जनसमस्याओं एवं उत्पीडन के मामलों के समाधान को सर्वोच्च प्राथमिकता देना।

3.जिला प्रशासन को वर्तमान परिवेश में आधुनिक एवं अधिक प्रभावी बनाये जाने और उसी क्षेत्र स्तर तक सर्वसाधारण को सुविधाएं मुहैय्या कराने की व्यवस्था बनाने के लिए सक्षम होना।

4.विकास कार्यों में जनसहभागिता को सम्भव बनाना।

स्थानीय निकाय/पंचायतीराज संस्थांए -

1.प्रत्येक स्थानीय निकाय एवं पंचायतीराज संस्था को सक्षम/उत्तरदायी बनाये जाने के सम्बन्ध में वर्तमान व्यवस्था में संशोधन करना।

2.जन सुविधाओं की व्यवस्था को सुदृढ़ करने में जनसहभागिता की व्यवस्था।

3.संविधान के 73वें एवं 74वें संशोधन के अनुरूप कार्यविधि अपनाये जाने के सम्बन्ध में कठिनाइयों का निवारण।

सामाजिक पूँजी न्यास एवं सहभागी लोक सेवा वितरण पद्धति -

1.अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन जाति एवं समाज के अन्य पिछड़े वर्गो तथा विषम भौगोलिक क्षेत्रों में निवास करने वाले लोगों के सामाजिक आर्थिक विकास की व्यवस्था की लिए रणनीति का निर्धारण।

2.जन सहभागिता के माध्यम से विभिन्न स्तरों पर राजकीय कार्यक्रमों की प्रभावकारिता बढाना।

3.विकास कार्यक्रमों के निर्धारण एवं क्रियान्वन में जन सहभागिता।

जन केन्द्रित प्रशासन -

1. व्यक्ति निरपेक्ष, जवाबदेह एवं पादरर्शी प्रशासन की व्यवस्था।
2. सरकारी कार्यो में विलम्ब को दूर करने हेतु उपाय तथा लोक सेवा वितरण पद्धति को चुस्त करना।
3. प्रशासन में जन सहयोग प्राप्त करने के सम्बन्ध में उपाय।
4. सिटिज़न चार्टर तैयार किये जाने हेतु विभागों का चिन्हीकरण।

5. समय-समय पर जनता के सुझाव प्राप्त किये जाने हेतु कार्य पद्धति।
6. सूचना का अधिकार सभी को सरलता से उपलब्ध कराना।

ई-गर्वनेन्स को प्रोत्साहन -

1.शासकीय कार्यालयों में विज्ञान एवं तकनीकि का अधिकतम उपयोग किये जाने की व्यवस्था।
2.शासन प्रशासन में गुणवत्ता सुधार किये जाने हेतु आधुनिक पद्धति से जवाबदेही की व्यवस्था।

आपदा प्रबन्धन -

1.भूकम्प के दृष्टिकोणों से उत्तराखण्ड अति संवेदनशील ज़ोन में अवस्थित होने के कारण भूकम्प के समय सुरक्षात्मक उपाय एवं बचाव के सम्बन्ध में विशेष योजनाएं बनाना।
2.उत्तराखण्ड के पर्वतीय अंचलों में अत्यधिक संख्या में होने वाली सड़क दुर्घटनाओं की संख्या को कम करने के सम्बन्ध में उपाय।

17.6.1प्रशासनिक सुधार आयोग: प्रतिवेदन

26 जनवरी, 2007 को प्रशासनिक सुधार आयोग, उत्तराखण्ड ने अपना प्रतिवेदन शासन के समक्ष रखा जिसमें नीतिगत एवं सामान्य संस्तुतियां की गयी थी। संक्षेप में मुख्य संस्तुतियाँ निम्नवत् है, जो उत्तराखण्ड शासन द्वारा जारी संकल्प के तहत विषयों और बिन्दुओं की रोशनी में है:

17.6.2 उत्तराखण्ड शासन का संगठनात्मक ढ़ांचा

1सामान्य प्रशासन विभाग के अधीन प्रशासनिक सुधार कार्यक्रमों को आगे बढाने के लिएप्रशासनिक सुधार अनुभाग का गठन होना चाहिए।
2.कार्मिकों की संख्यात्मक वृद्धि के स्थान पर नई तकनीकि गुणात्मक वृद्धि की जाये।
3.सूचना के अधिकार को प्रभावी बनाने हेतु विभागीय मैनुअल, हस्त प्रतिकाओं एवं मार्गनिर्देशिकाओं का अद्यावधिक एवं सरल रूप, सुदृढ़ अभिलेखागार प्रणाली, विभागीय मैनुअल वेबसाइट पर हो।
4.निर्माण कार्य/भण्डार क्रय के लिए ऑन लाइन डिजिटिलाइज़ेशन प्रक्रिया अपनाई जायें।
5.जनपद एवं विभागाध्यक्ष स्तरीय कार्य सचिवालय स्तर पर न हो व क्षेत्रीय अधिकारियों को पर्याप्त अधिकार दिये जायें।
6.राजस्व अधिकारियों को विकास योजनाओं के पर्यवेक्षण एवं समन्वय का दायित्व सौपा जाये।
7.योजना निर्माण के लिए ग्राम पंचायत से लेकर जिला नियोजन समिति तक बैठकों की समय सारिणी हो।
8.न्याय पंचायतों को विकास कार्यो से सम्बन्धित शिकायत सुनने तथा निराकरण कटने हेतु अधिकार दियें जायें।
9.नियोजन विभाग द्वारा विभागीय योजनाओं की मासिक समीक्षा हो।
10.सचिव/अपर सचिव केवल सचिवालय के कार्य देखे, विभागाध्यक्ष के नही।
11.एक ही प्रकार के कार्य तद्विषयक दक्षता वाले विभाग द्वारा ही किये जायें।
12.पटवारी तथा कानूनगो को एक सहायक उपलब्ध कराया जाये।
13.मुख्य विकास अधिकारी द्वारा समस्त विकास योजनाओं की मासिक समीक्षा की जाये।
14.मंत्रीगण तथा अधिकारियों के बीच अविलम्ब कार्य विभाजन किया जाये।
15.विभागीय कार्य वितरण में वकतव्यों का अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण हो।
16.विचलनों के माध्यम से दिये गये आदेशों की मुख्यमंत्री स्तर पर सामयिक समीक्षा हो।
17. विभागों के बीच समन्वय प्रक्रिया हो।

18. जिलाधिकारी संस्था का सुद्धढ़ीकरण हो।

17.6.3 शासन/प्रशासन में नैतिकता

1. लोकायुक्त के कार्य क्षेत्र व शक्तियों में वृद्धि हो।
2. भ्रष्टाचार प्रकरणों में दण्ड की त्वरित तथा प्रभावी व्यवस्था हो।
3. सेवा संघो में भ्रष्टाचार उन्मूलन व नैतिक आचार संहिता व्यवस्था हो।
4. योजनाओं में पारदर्शिता के लिए सार्वजनिक सूचना प्रारूप तैयार किया जाये।
5. कार्मिक उत्पीड़न निराकरण हेतु राज्य तथा मण्डल स्तर पर व्यवस्था हो।
6 नियमों और प्रक्रियाओं का सरलीकरण हो।
7. प्रभावपूर्ण पर्यवेक्षण प्रक्रिया हो।
8. राजनेताओं, राज्य कर्मचारियों तथा समस्त संस्थाओं हेतु नैतिक आचार संहितायें हो।

17.6.4 कार्मिक प्रशासन को चुस्त दुरूस्त बनाया जाना

1. मण्डल स्तर पर आयुक्त तथा शासन स्तर पर सचिव कार्मिक की अध्यक्षता में श्रेणी-3 तथा 4 की भर्ती पर निगरानी हेतु टास्क फोर्स की स्थापना की जाये।
2. भर्ती साक्षात्कार में मनोवैज्ञानिक जांच की व्यवस्था हो।
3. अनावश्यक पद समाप्त हो।
4 कार्मिक प्रशिक्षण नीति का प्रशासनिक अकादमी की सहायता से निर्धारण हो।
5. कार्मिकों के कार्य मूल्यांकन हेतु सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक बिन्दु निर्धारण हो।
6. प्रत्येक अधिकारी के लिए प्रशिक्षण-कलैण्डर की व्यवस्था हो।

17.6.5 आपदा प्रबंधन

1. तत्काल प्रतिक्रिया के साथ-साथ कुशल प्रबन्धन को प्राथमिकता देना।
2. नागरिक सुरक्षा संगठन का उपयोग बचाव एवं राहत कार्यो हेतु किया जाना।
3. भूकम्प अवरोधी निर्माण के प्रशिक्षण एवं कार्यन्वयन का दायित्व ग्रामीण क्षेत्र में ग्रामीण अभियंत्रण सेवा तथा नगरीय क्षेत्र में लो0नि0वि0 को देना। भवन निर्माण में भारतीय मानक ब्योरो का पालन करना।
4. प्रत्येक कार्यालय/संस्था स्तर पर भूकम्प बचाव योजना तैयार करना।
5. नियंत्रण कक्षो का आधुनिक संसाधन प्रदान करना।
6. अभियन्ताओं, ठेकेदारों तथा राज मिस्त्रियों को प्रशिक्षित करना।
7. पुराने भवनो का रेट्रोफिटिंग करना।
8. प्रशासन का सैनिक/अर्द्धसैनिक बलों से निरन्तर सम्पर्क बनाये रखना।

17.6.6 राज्य से ग्राम स्तर तक प्रभावी प्रशासन सुनिश्चित करना

1. वित्तीय एवं प्रशासनिक अधिकारों का प्रति निधायन।
2. लेखा परीक्षा का सुदृढ़ीकरण करना।
3. जिलाधिकारी, मुख्य विकास अधिकारी तथा खण्ड विकास अधिकारी के अधिकारों/दायित्वों में वृद्धि करना।
4. विकास कार्यो का परिषदों/अर्द्ध-सरकारी/गैर सरकारी संस्थाओं के माध्यम से अधिकाधिक कार्यान्वयन करना।

5. अर्न्तविभागीय समन्वय सुदृढ़ीकरण करना।

6. सूचना संसार प्रौद्योगिकी का अधिकाधिक उपयोग करना।

17.6.7 जिला प्रशासन को प्रभावी बनाये जाने हेतु उपाय

1.सचिवों के स्थान पर विभागाध्यक्षों तथा पर्यवेक्षणीय अधिकारियों के निरीक्षण दायित्व सौंपा जाये।

2.जन सेवा सम्बन्धित प्रार्थना पत्रों तथा पत्राचार पत्रों के लिए सरलतम आधार पत्र हो।

3.जिलाधिकारी एवं विभागाध्यक्षों के मध्य संवादशीलता में वृद्धि हो।

4.जिलाधिकारी द्वारा दूरस्थ केन्द्रो पर तथा मुख्य विकास अधिकारी द्वारा विकास खण्डों पर शिविरों का आयोजन करना।

5.विकास कार्यक्रमों में लाभार्थी समूहो की अधिकाधिक सहभागिता हो।

6.न्याय पंचायत तथा नगरीय वार्ड समितियों को स्थानीय समस्याओं के निदान उत्तरदायित्व सौंपा जाये।

7.कार्यालयों में प्राप्त शिकायतों के वर्गीकरण, अनुश्रवण व निस्तारण की व्यवस्था हो।

17.6.8 स्थानीय निकाय/पंचायती राज्य संस्थांए

1.ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत तथा जिला पंचायत के मध्य कार्यो एवं दायित्वों का विभाजन करना।

2.न्याय पंचायतों का पुनर्गठन करना। न्याय पंचायत केन्द्रों का न्याय पंचायत कार्यालय, किसान सेवा केन्द्र का, जन मिलन के रूप में विकास करना। न्याय पंचायतों को न्यायिक तथा विकास कार्यो सम्बन्धी शिकायतों/वादो के निस्तारण हेतु शुल्क प्राप्त करने का अधिकार हो।

3.नगरीय तथा ग्राम पंचायतों में वार्ड मेम्बर एवं वार्ड कमेटी बने।

4.प्रभावी नागरिक अधिकार पत्र व्यवस्था हो।

5.प्रत्येक स्तर पर विकास एवं नियामन सम्बन्धी कार्यो में अधिकाधिक जन सहभागिता हो।

17.6.9 जन केन्द्रित प्रशासन

1. व्यक्ति निरपेक्ष, पारदर्शी व जवाबदेह सेवांऐ हो।

2. स्वकार्यशीलता व सु-सेवा की अवधारणा का विकास हो।

3. पत्रावलियों में निर्णय के स्तर तीन एक सीमित हो। अर्पूण टिप्पणियों एवं आख्याओं की प्रवृत्ति कदाशयता की श्रेणी में हो।

17.6.10 ई-गर्वनेन्स को प्रोत्साहन

1. प्रदेश में सूचना संचार प्रौद्योगिकी का चरणबद्ध कर्यान्वयन हो। व्यापक योजना बने, छोटे-छोटे राज्यों को हाथ में लेकर तेज़ी से बढाया जाये।

2. सूचना संचार प्रौद्योगिकी को लागू करने के लिए मुख्य सचिव की अध्यक्षता में गठित समिति में सचिव, सामान्य प्रशासन व एन0आई0सी0 के प्रतिनिधि सम्मिलित हो। सचिव, सूचना प्रौद्योगिकी की अध्यक्षता में समन्वय समिति बने।

3. भारत सरकार एन0आई0सी0 की योजनाओं को प्राथमिकत दी जाये।

4. सभी विभागों तथा संस्थाओं द्वारा एक ही प्रकार के साफटवेयर का उपयोग हो। विभागों में पूर्ण सामान्जस्य हो।

5. जन-सामान्य के लिए सरल सूचना संचार प्रोद्योगिकी भाषा व शब्दावली का प्रयोग हो।

कुल मिलाकर राज्य प्रशासकीय सुधार आयोग ने लगभग 300 संस्तुतियां की है जो सिद्धान्त एक आदर्श प्रशासकीय व्यवस्था की ओर इशारा करती है। उत्तराखण्ड अभी एक विकासशील राज्य है जो अनुभव की प्रक्रिया से गुजर रहा है। इस प्रक्रिया में प्रशासकीय सुधार आयोग की अहम भूमिका हो सकती है।

अभ्यास प्रश्न

निम्न में से सत्य और असत्य का चयन कीजिये --

1.५ जनवरी १९६६ को प्रशासनिक सुधार आयो अस्तित्व में आया.

2.उत्तराखंड नए राज्य के रूप किस सन में अस्तित्व में आया .

3.प्रशासनिक सुधार आयोग ने २० प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जिनके आधार पर १५८१ विस्तृत सिफारिसे प्रस्तुत की गयी .

4.यह सिफारिसे कृषि को छोड़कर अन्य सभी विषयों से सम्बंधित थी .

5.सन १९६४ में गृह मंत्रालय के अंतर्गत प्रशासनिक सुधार विभाग अस्तित्व में आया .

6.राज्य प्रशासनिक सुधार आयोग ने लगभग ३०० संसुतिया की .

7.पाल एपलाबी की रिपोर्ट सर्वे ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया.

17.7 सारांश

विकासशील देश में सरकार का ध्यान प्रशासनिक सुधारों की ओर तभी जाता है जब आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था चरमराने लगती है । तब एहसास होता है कि प्रशासनिक आधुनिकीकरण कितना महत्वपूर्ण है।

छोटे या नये राज्य देश के अनुभव से सीखते हैं, उत्तराखण्ड ऐसा ही राज्य है। यह 2000 में गठित हुआ। इसके लगभग सभी उच्च अधिकारी अनुभवी है जो पहले उत्तर प्रदेश 'काडर'में कार्यरत थे।

प्रशासन को अत्याधिक आधुनिक बनाने का उत्तरदायित्व प्रशासनिक सुधार आयोग (भारत सरकार) पर है। उसने 1960 से लेकर अब तक अनेक प्रशासनिक सुधारों के लिए सुझाव दिये है। इन सुझावों में एक सुझाव ओ0एण्ड0एम0 का है जो विभागों, संगठनों के भीतर काम करता है। यह एक अध्ययन एवं शोध का काम करता है और अपने निष्कर्षों से विभागों और मंत्रालयों को लाभ पहुचाता है।

उत्तराखण्ड का अपना प्रशासनिक सुधार आयोग है। शासन ने इस आयोग हेतु निर्धारित अधिकारादेश/विचारार्थ विषय के अन्तर्गत अनेक बिन्दुओं पर विचार करने एवं संस्तुतियां प्रदान करने का आग्रह किया। आयोग ने 26 जनवरी, 2007 दो भागों में अपना प्रतिवेदन नीतिगत एवं सामान्य सुस्तुतियों के अन्तर्गत सरकार को प्रस्तुत किया।

17.8 शब्दावली

ओ0एण्ड0एम0 : आर्गेनाईजेशन एण्ड मैथड्स (डिवीजन) जिसका काम प्रशासकीय अध्ययन और खोज करके विभागों या मंत्रालयों को दिशा निर्देश देना है ।

ई-गर्वनेन्स :यह परिकल्पना कि शासन करना एक इंजीनियरिंग है । सूचना संचार प्रौद्योगिकी इसका आधार है।

मुख्य ग्रन्थ : ए0डी0 गोरवाला रिर्पोट ऑन पब्लिक

एडमिनिस्ट्रेशन (1951) पाल एपेलेबी रिर्पोट ऑन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया (1953) उत्तराखण्ड प्रशासनिक सुधार आयोग का प्रतिवेदन (2007)

17.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2.सत्य 3.सत्य 4.सत्य 5. सत्य 6. सत्य 7. सत्य

17.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

अवस्थी-अवस्थी -- भारतीय प्रशासन

ए.अवस्थी -केन्द्रीय प्रशासन

एस.आर. माहेश्वरी –स्टेट गवर्नमेंट इन इंडिया

17.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

सुभाष कश्यप -हमारा संविधान

डी.डी.बसु -भारत का संविधान

उत्तराखंड शासन की रिपोर्ट -संतुलित समयबद्ध विकास ,५ वीं वर्षगाँठ

17.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.प्रशासनिक सुधार आयोग के सुधारों की विवेचना कीजिये ?

2.उत्तराखंड में प्रशासनिक सुधार पर निबंध लिखिए ?

3.आपदा प्रबन्धन के बारे में मुख्य संस्तुतियां क्या है

इकाई-18 गृह विभाग, वित्त विभाग, आपदा विभाग

इकाई की संरचना

18.0 प्रस्तावना
18.1 उद्देश्य
18.2 विभाग
18.2.1 विभाग के विभिन्न प्रकार
18.2.2 विभागीय संगठन का आधार, क्षेत्र अथवा प्रदेश
18.2.3 विभागाध्यक्ष
18.2.4 विभागों की संरचना
18.2.5 राजनीतिक अध्यक्ष
18.2.6 विभाग के गठन का सिद्धान्त
18.3 गृह विभाग
18.3.1 पुलिस बल- पुनर्गठन व आधुनिकीकरण
18.4 वित्त विभाग
18.4.1 एकीकृत भुगतान व लेखा प्रणाली
18.4.2 वित्त निदेशालय के कार्य
18.5 आपदा विभाग
18.5.1 जी.आई.एस. डाटाबेस
18.6 सारांश
18.7 शब्दावली
18.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
18.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
18.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
18.11 निबंधात्मक प्रश्न

18.0 प्रस्तावना

उत्तराखण्ड में राज्य प्रशासन के खण्ड-3 इकाई-९ में हम शासन के महत्वपूर्ण विभागों का अध्ययन करने जा रहें हैं। इससे पूर्व अध्यायों व उनकी इकाईयों में हमने प्रशासन के सभी तत्वों का विस्तृत अध्ययन किया है। इस इकाई में शासन की कार्यप्रणाली को संचालित करने वाले विभागों के बारे में अध्ययन किया जायेगा।

विभाग शब्द का शाब्दिक अर्थ सम्पूर्ण वस्तु का एक हिस्सा या अंग होता है। प्रशासन में सरकार का सारा काम अलग-अलग हिस्सों में बटॉ होता है और प्रशासन की बड़ी-बड़ी इकाईयाँ इसे पूरा करने का काम करती हैं। इन इकाईयों को विभाग कहते हैं। सरकार का अधिकांश काम यही विभाग करते हैं। अतः हम कह सकतें हैं कि विभाग देश की प्रशासनिक व्यवस्था के सबसे महत्वपूर्ण व बुनियादी इकाई हैं।

दुनियाँ के सभी देशों में सरकार का मुख्य कामकाज विभागों के माध्यम से ही होता है। सरकार के काम काज चलाने का यह सबसे पुराना व अनूठा तरीका है। प्राचीन और मध्य काल में भी राजा अपना काम अलग-अलग विभागों में बॉट कर कराया करते थे। जिनके लिये उससे सम्बन्धित अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी और कार्य का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व इन्हीं अधिकारियों का होता था। आज भी यही प्रणाली चली आ रही है। विभागों के अलग-अलग होने का सबसे बड़ा फायदा है, प्रशासन के कार्यों का तीव्रता के साथ सम्पन्न होना।

किसी भी राज्य के शासन को सफल बनाने का महत्वपूर्ण उसके विभाग करते हैं। और हम ये भी जानते हैं कि विभाग शासन के आदेशों को क्रियान्वित कराने में अपना योगदान देते हैं। शासन की कार्य प्रणालियों को लागू कराने का काम विभाग करते हैं। हालांकि शासन को चलाने के लिये सभी विभाग महत्वपूर्ण होते हैं लेकिन कुछ विभाग अत्यधिक महत्वपूर्ण दर्जे में रखे जाते हैं जिनमें हम वित्त विभाग, गृह विभाग व उत्तराखण्ड जैसे पर्वतीय व भौगोलिक आधार पर संवेदनशील राज्य के लिये आपदा विभाग को इस दर्जे में रख सकते हैं। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि खण्ड तीन की इकाई हमें इन विभागों के बारे में विस्तृत जानकारी देगी। जो विभाग और उसकी कार्य प्रणाली को समझने से सहायक होगी।

18.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से हम समझेगें कि-

1. विभाग किसे कहते हैं।
2. विभाग की पहचान क्या है।
3. विभाग के प्रकार क्या है।
4. विभाग संगठन के रूप में कैसे कार्य करता है।
5. महत्वपूर्ण विभाग कौन-कौन से होते हैं।
6. गृह, वित्त, आपदा विभाग कैसे कार्य करते हैं।

18.2 विभाग

शाब्दिक अर्थ में विभाग का अर्थ किसी बड़े संगठन अथवा इकाई का अंग है। प्रशासन की तकनीकी शब्दावली में 'विभाग', शब्द का एक विशेष अर्थ होता है। प्रमुख कार्यकारी के अधीन रहने वाले समस्त कामकाज को अनेक खंडो में विभाजित कर लिया जाता है और इनमें प्रत्येक खण्ड को विभाग कहा जाता है। इस प्रकार विभाग प्रशासनिक पदसोपान में सबसे बड़ी तथा उच्चतम इकाई है। आधुनिक काल में विभाग के लिए 'प्रशासन', 'कार्यालय', 'अभिकरण', 'सत्ता', 'समिति', 'परिषद' आदि अनेक नाम से प्रचलित हुए हैं। विभाग की दो प्रमुख पहचानें हैः-

1.इकाई का नाम चाहे कुछ भी हो, यदि वह प्रशासनिक सोपान के शीर्ष के समीप हो तथा उसके एवं प्रमुख कार्यकारी के बीच कोई अन्य इकाई न हो तो उसे विभाग कहेंगे

2.यदि वह इकाई प्रमुख कार्यकारी के अधीन तथा पूर्णतया उसके प्रति उत्तरदायी हो तो उस इकाई को विभाग कहा जायेगा।

18.2.1 विभाग के विभिन्न प्रकार

अपने आकार,संरचना, कार्य की प्रकृति, आतंरिक संबंधों आदि के आधार पर विभागों में परस्पर भिन्नता होती है। आकार के आधार पर विभागों को छोटे-बड़े दो वर्गो में बाँटा जा सकता है। भारत सरकार के रेलवे, डाक और तार-विभाग तथा प्रतिरक्षा विभाग बड़े विभाग है। इनमें लाखों कर्मचारी कार्य करते है। इसके अतिरिक्त पंजीकरण, स्थानीय स्वशासन आदि अनेक छोटे विभाग है जो राज्य सरकारों में होते है। संरचना की दृष्टि से विभागों को एकात्मक एवं संघात्मक भी कहा जाता है।

(1) एकात्मक विभाग, वे विभाग है जो किसी निश्चित प्रयोजन की पूर्ति के लिए संगठित किये जाते है जैसे शिक्षा, पुलिस।

(2) संघात्मक विभागों को अनेक कार्य करने होते है। वे वास्तव में अनेक उपविभाग के संघ होते है और इनमें से प्रत्येक उपविभाग का अपना पृथक कार्य होता है। जैसे भारत में गृह विभाग में लोक सेवाओं की नियुक्ति, अनुशासन तथा निवृत्ति, शन्ति और व्यवस्था, आदि विषयों का प्रबन्ध आता है।

18.2.2 विभागीय संगठन का आधार, क्षेत्र अथवा प्रदेश

प्रत्येक देश में विभागीय संगठन का एक आधार प्रदेश अथवा भौगोलिक क्षेत्र होता है। कुछ विभाग ऐसे होते है जिनका संगठन इस आधार पर किया जाता है। प्रत्येक देश का विदेश संबंध विभाग भौगोलिक आधार पर संगठित किया जाता है ताकि उन देशों के साथ संबंध रख सके जो उसकी सीमाओं से बाहर हैं। इस विभाग के प्रादेशिक उप विभाग भी होते है। 1947 में पहले भारत कार्यालय भी इसी आधार पर बनाया गया था। भारत में विदेश मंत्रालय का संगठन भी इसी आधार पर किया गया है।

18.2.3 विभागाध्यक्ष

विभागीय संगठन में अध्यक्ष अथवा सर्वोच्च अधिकारी का स्थान बहुत महत्वपूर्ण होता है क्योंकि वही समूचे विभाग के निर्देशन और नियंत्रण के लिए उत्तरदायी होता है। अतः विभाग का अध्यक्ष पद एक महत्वपूर्ण संगठनात्मक समस्या उत्पन्न करता है। इस समस्या के दो अंग हैं -

1.अध्यक्ष एक अकेला व्यक्ति अर्थात् एकल होना चाहिये, अथवा बहुल निकाय, जैसे कि मंडल अथवा आयोग।

2.विभागाध्यक्ष में प्रशासनिक योग्यता कैसी होनी चाहिये जैसे प्रबन्ध, तकनीकी योग्यता, विभाग की क्रियाओं के विषय में तकनीकी ज्ञान।

भारत में आमतौर पर विभागाध्यक्ष एकल व्यक्ति होता है। विभाग का राजनीतिक अध्यक्ष एक मंत्री तथा प्रशासनिक अध्यक्ष एक सचिव होता है। हमारे यहॉ कुछ विभागों का अध्यक्ष मंडल अथवा आयोग के रुप में होता है जैसे आयात-निर्यात कर, आयकर, केन्द्रीय आबकारी आदि विभागों की अध्यक्षता तथा नियंत्रण बोर्ड आफ डायरैक्ट टैक्सिज करता है। राज्यों में भी राजस्व, शिक्षा बिजली आदि विभागों के लिए मंडल बनाये जाते है। इस संबंध में विभाग के भीतर कार्य करने वाले दो प्रकार के मंडल है-

1. प्रशासनिक मंडल।
2. परामर्शकारी मंडल।

18.2.4 विभागों की संरचना

एक ही देश के भीतर विभिन्न विभागों की संरचना अलग-अलग प्रकार की हो सकती है। परन्तु, यह भेद अथवा अन्तर या विविधता केवल बारीक बातों में ही होती है। मोटे तौर पर विभागीय संगठन का एक सामान्य ढाँचा होता है तथा सब जगह प्रायः उसी का अनुसरण किया जाता है। भारत में संघ तथा राज्य सरकारों का कार्य अनेक मंत्रालयों में विभाजित कर सकते है। भारत सरकार अथवा राज्य सरकारों में मंत्रिमंडलों की रचना आमतौर पर तिमंजले मकान की तरह होती है। जिसे हम निम्न प्रकार से देख सकते हैं-

1.विभाग का राजनीतिक अध्यक्ष अर्थात् मंत्री सबसे ऊपर होता है और उसके नीचे एक या अनेक राज्यमंत्री अथवा संसदीय सचिव होते है जो काम में उसकी सहायता करते है।

2.सचिवालय संगठन अथवा संबंधित कार्यालय होते है जिनका अध्यक्ष एक स्थायी प्रशासनिक अधिकारी होता है जिसे आमतौर पर सचिव कहा जाता है।

3.मंत्रालय के भीतर विभाग अथवा विभागों का कार्यकारी संगठन होता है। इस कार्यकारी संगठन का अध्यक्ष आमतौर पर निर्देशक, महानिदेशक आदि नामों से पुकारा जाता है।

18.2.5 राजनीतिक अध्यक्ष

मंत्री, उसके उपमंत्री तथा संसदीय सचिव ये सब राजनीतिक अधिकारी होते है, जो मंत्रिमंडल के साथ बदलते रहते हैं। ये पद अपने दल के भीतर अपनी शक्ति और स्थिति के कारण प्राप्त करते हैं, किसी विशेष योग्यता के आधार पर नहीं। विभागीय मंत्री तीन प्रकार के कार्य करता है-

1.उन व्यापक नीतियों का निमार्ण करता है जिसके अनुसार विभाग को कार्य करना होता है और विभाग के भीतर उठने वाले नीति संबंधी अधिक महत्वपूर्ण प्रश्नों के बारे में निर्णय करता है।

2.वह विभाग द्वारा नीतियों के क्रियान्वयन पर सामान्य अधीक्षण करता है।

3.वह अपने विभाग की नीति तथा उसके प्रशासन के बारे में संसद के सामने स्पष्टीकरण देता है और उत्तरदायी होता है। वह इस बारे में प्रश्नों के उत्तर देता है, आवश्यक विधेयक प्रस्तुत करता है तथा दूसरे विभागों के संदर्भ में एवं जनता के सामने अपने विभाग का प्रतिनिधित्व करता है। उसके उपमंत्री तथा संसदीय सचिव आदि उसके द्वारा सौंपे कार्य को पूरा करते है तथा जब वह संसद में स्वयं उपस्थित नहीं होता है तो वहाँ उसका प्रतिनिधित्व करते हैं। लोकतंत्र में प्रशासन का संचालन मूलतः राजनीतिक अध्यक्षों के द्वारा किया जाता है।

18.2.6 विभाग के गठन का सिद्धान्त

सुचारु रुप से प्रशासन चलाने के लिए सरकार के काम को बाँटना जरुरी है। यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने काम के बँटवारे के लिए दो आधार सुझाए थे। एक व्यक्तियों या वर्गो के अनुसार, दूसरा सेवाओं के अनुसार।

लूथर गुलिक के अनुसार आधुनिक युग में विभागों के गठन के लिए चार सिद्धान्तों के आधार अपनाए जाते है। ये आधार हैः उद्देश्य, प्रक्रिया, व्यक्ति और स्थान। लूथर गुलिक ने इसे 4-पी का फार्मूला कहा। इन प्रत्येक का विवरण निम्न है-

1.उद्देश्य-

अधिकांश देशों में सत्ता के किसी खास काम या उद्देश्य के लिए एक विभाग बनाया जाता है। उदाहरण के लिए- देश की रक्षा के लिए रक्षा विभाग बनाया गया, लोंगो की स्वास्थ्य की देखभाल के लिए स्वास्थ्य विभाग और उन्हें शिक्षित करने के लिए शिक्षा विभाग का गठन किया गया। ज्यादातर देशों में अधिकतर विभाग उद्देश्य पर ही आधारित होते हैं। विभागों के गठन का यह बहुत आसान, बहुत आम और बहुत कारगर सिद्धान्त है। इससे काम में दुहरापन नहीं आता और इसे समझना भी आसान है। यदि विभागों का गठन विशेष उद्देश्य या विशेष काम को पूरा करने के लिए किया जाए तो आम आदमी आसानी से बता सकता है कि कौन सा काम किस विभाग के जिम्मे है।

2.प्रक्रिया -

प्रक्रिया का अर्थ किसी तकनीक, किसी दक्षता या विशेष प्रकार के पेशे से है। उदाहरण के लिएः लेखांकन, टंकण, आशुलिपि, इंजीनियरी, और कानूनी सलाह आदि ऐसी प्रक्रियाएँ हैं जिनकी आमतौर पर सभी सरकारी संगठनों में जरुरत पड़ती है। सभी संगठनों को लेखांकन, टंकण, आशुलेखन, भवन, कानूनी सलाह, लेखांकन की आवश्यकता होती है। अतः कुछ देशों में अलग-अलग प्रक्रियाओं के आधार पर अलग-अलग विभाग बनाए जाते हैं। उदाहरण के लिए विधि विभाग, लोक निर्माण विभाग या लेखा विभाग बनाए जाते है। जो अन्य सभी विभागों की मदद करतें है और उनकी विशेष जरुरतों को पूरा करते हैं। लेकिन प्रक्रिया पर आधारित विभागों की संख्या गिनी-चुनी होती है। यदि विभागों का गठन प्रक्रिया के आधार पर किया जाए तो विशेषज्ञता और नवीनतम तकनीकी दक्षता सबको उपलब्ध करायी जा सकेगी। प्रशासन में अधिकतम किफ़ायत, बेहतर, तालमेल और एकरुपता आयेगी। इसके साथ ही साथ प्रक्रिया पर आधारित विभागों के कर्मचारियों में घमंड, संकीर्णता और श्रेष्ठता की भावना पैदा हो जायेगी। फिर भी सभी देशों में कुछ विभाग प्रक्रिया के आधार पर बनाए जाते है।

3.व्यक्ति-

प्रत्येक समाज में कुछ व्यक्ति या समूह होते हैं। जिनकी समस्याएँ, विशेष और सबसे अलग होते हैं और जिन्हें विशेष सेवाओं की जरुरत पड़ती है। उदाहरण के लिए शरणार्थी, आदिवासी, अनुसूचित जातियों और पिछड़े वर्गो के लोग, बिकलांग और पेंशनभोगी आदि। कुछ देशों में कुछ सरकारी विभाग विशेष तौर पर कुछ विशेष समूहों या व्यक्तियों की सभी समस्याओं से निपटने के लिए बनाए जाते हैं। पुर्नवास विभाग, आदिवासी कल्याण विभाग, पेंशनर विभाग, समाज कल्याण विभाग या श्रम विभाग आदि उन विभागों के उदाहरण है जिनका गठन व्यक्तियों के आधार पर किया जाता है। संबद्ध समूह या व्यक्ति इन विभागों से आसानी से संपर्क कर सकते हैं, और यह विभाग भी व्यवस्थित और समन्वित रुप से सभी प्रकार की सेवाएँ, उन्हें कारगर ढंग से उपलब्ध करा सकते हैं, लेकिन विशेष समूहों के लिए विशेष विभागों की स्थापना से उन विभागों में इन समूहों के निहित स्वार्थ विकसित हो जाते है और वे प्रशासन पर दबाव डालने की कोशिश करते हैं। फिर भी अनेक देशों में समूहों या व्यक्तियों के आधार पर कुछ विभागों का गठन किया ही जाता है।

4.स्थान -

प्रत्येक देश में कुछ इलाका, प्रदेश या क्षेत्र ऐसा होता है, जिसकी अपनी विशेष समस्याएँ होती है, जिनके कारण उसे विशेष ध्यान और विशेष सेवाओं की जरुरत होती है। अतः उस क्षेत्र विशेष के लिए अलग विभाग का गठन

किया जाता है। इस तरह के विभाग का सबसे बढ़िया उदाहरण आज़ादी से पहले अंग्रेज सरकार द्वारा भारतीय मामलों के विभाग का गठन था। आज भी ब्रिटेन में स्काटलैंड और आयरलैंड के मामलों के लिये अलग-अलग विभाग हैं। भारत सरकार का विदेश मंत्रालय भी ऐसे विभागों का एक उदहरण है। कई विभागों को अलग-अलग प्रभागों में बाँट दिया जाता है जो अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्रों की देखभाल करते हैं। उदाहरण के लिए रेल विभाग के कई क्षेत्रीय मंडल है, जैसे पश्चिम रेलवे, मध्य रेलवे, दक्षिण रेलवे या दक्षिण मध्य रेलवे इत्यादि। भारत में क्षेत्र या स्थान विशेष के लिए गठित विभागों की संख्या बहुत कम है। इस प्रकार हमने देखा कि विभागों के गठन के लिए चार मुख्य सिद्धान्त या आधार है - उद्देश्य, प्रक्रिया, व्यक्ति और स्थान। प्रत्येक सिद्धान्त के अपने-अपने फायदे और नुकसान है। ऐसे में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि विभागों के गठन के लिए कौन से सिद्धान्त या आधार को सर्वोत्तम माना जाये। यह प्रश्न जितना सहज है उसका उत्तर उतना ही कठिन है। वास्तव में विभागों का गठन किसी एक सिद्धान्त के आधार पर नहीं किया जाता। प्रशासनिक सुविधा तथा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार विभागों के गठन के लिए विभागीकरण के चारों सिद्धान्तों का उपयोग किया जाता है। कोई एक सिद्धान्त सर्वोत्तम नहीं है। चारों सिद्धान्त एक दूसरे के पूरक है और विभागों के गठन के लिए सभी देशों में इन सबका प्रयोग किया जाता है।

यह बात हम जान चुकें है कि किसी भी शासन व्यवस्था में विभाग कितने महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। शासन को चलाने के लिये सभी विभाग महत्वपूर्ण होते हैं लेकिन कुछ विभाग अति महत्वपूर्ण होते हैं जैसे- गृह, वित्त, कार्मिक व आपदा विभाग व अन्य। यहाँ हम गृह, वित्त व आपदा विभाग के बारे में उत्तराखण्ड के संदर्भ में चर्चा करेंगे।

18.3 गृह विभाग

कानून- व्यवस्था की स्थिति दीर्घकालीन समग्र विकास को प्रभावित करने वाला प्रमुख कारक है। उत्कृष्ट कानून व्यवस्था प्रगति तथा सुखमय जन जीवन की बुनियादी जरूरत है और यह उपलब्धि आज के संदर्भ में उत्तराखण्ड राज्य की प्रमुख विशेषता है। लेकिन बदलते परिवेश में कानून व्यवस्था की चुनौतियाँ सभी जगह विद्यमान हैं। राज्य गठन के बाद सरकार ने उत्तराखण्ड में अपराधों की रोकथाम तथा अमन चैन कायम रखने के लिये कारगर प्रयास कर परंपरागत छवि हटकर मित्र पुलिस बल की स्थापना पर जोर दिया। राज्य में पुलिस बल के आधुनिकीकरण के साथ महिला हैल्पलाईन की भी स्थापना राज्य में की गयी। कारागार विभाग, होमगार्ड्स के कल्याण हेतु नई नीतियों के साथ ही इनका समुचित प्रयोग किया गया।

हम जानते हैं कि गृह, कारागर प्रशासन एवं सुधार विभाग मुख्य रुप से कानून व्यवस्था को चुस्त एवं दुरुस्त बनाय रखने हेतु उत्तरदायी हैं। इन विभागों में नीति विषयक निर्णय कराने, बजट तैयार कर विधायिका से अनुमोदन के पश्चात धनराशि अवमुक्त करने, सी.आई.डी. को प्रकरण संदर्भित करने, दोषी व्यक्तियों के विरुद्ध अभियोजन का निर्णय लेने, शस्त्र लाईसेंसों की सीमा विस्तार, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग से प्राप्त मामलों का अनुश्रवण करने, राज्य मानवाधिकार आयोग से संबंधित कार्यो को संपादित करने, विधानसभा/विधान परिषद में प्रश्नों के उत्तर देने, भारत सरकार से पुलिस संबंधी मामलों में समन्वय तथा राज्य में कानून व्यवस्था से संबंधित कार्यो का निष्पादन करतें हैं।

विभाग द्वारा नागरिकों, अति विशिष्ट व्यक्तियों एवं महत्वपूर्ण अधिष्ठानों की सुरक्षा व्यवस्था सुनिश्चित की जाती है (महानुभावों, राज्य अतिथिगण)। पुलिस एवं कारागार प्रशासन विभाग में पुलिस आधुनिकीकरण योजना एवं कारागार आधुनिकीकरण योजना के अर्न्तगत नीतिनिर्धारण बजट व्यवस्था एवं व्यय का अनुश्रवण मुख्य कार्य है।

उपरोक्त कार्यो को सम्पादित करने हेतु प्रमुख सचिव के सहायतार्थ सचिव, विशेष सचिव, ओ.एस.डी. एवं उप/अनुसचिव कार्यरत है। विभागाध्यक्ष स्तर पर पुलिस महानिदेशक के अतिरिक्त, महानिदेशक (अभियोजन), महानिदेशक (सी.बी.सी.आई.डी.), महानिदेशक (अग्निशमन सेवाएं), महानिदेशक(तकनीकी सेवाएं), महानिदेशक(प्रशिक्षण सेवाएं), महानिदेशक(विशेष जॉच), एवं महानिदेशक(कारागार एवं सुधार विभाग) नियुक्त हैं। अपर पुलिस महानिदेशक स्तर के अधिकारी के अधीन भ्रष्टाचार निवारण संगठन कार्यरत हैं, जिन्हें इस कार्यालय में प्राप्त शिकायतें संदर्भित की जाती हैं।

18.3.1 पुलिस बल- पुनर्गठन व आधुनिकीकरण

उत्तराखण्ड राज्य गठन के बाद राज्य के पुलिस बल के ढाँचे में उत्तर-प्रदेश से हट कर नये तरीके से तैयार किया गया। राज्य की संवेदनशील सीमाओं पर पुलिस की विषेश टुकड़िया तैनात की गयी है। राज्य के गठन के बाद से 4000 आरक्षी, 253 पुलिस उप निरीक्षक, 450 भूतपूर्व सैनिक, एक इण्डिया रिजर्व बटालियन, दो कम्पनी महिला सशस्त्र बल व 334 महिला आरक्षी की भर्ती कर पुलिस बल का पुनर्गठन किया गया। यह विभाग का आरंभ था। देश की भौगोलिक स्थितियों को देखते हुए गृह विभाग पर सरकार का विशेष ध्यान रहा। राज्य की स्थापना के बाद 17 नये थाने तथा 17 नई चौकियां की स्थापना की गयी। साथ ही केन्द्र सरकार की पुलिस आधुनिकीकरण योजना के अधीन नई संचारण क्षमता उपलब्ध कराई गयी। आधुनिक अस्त्र-शस्त्र, उपकरणों ,अपराध विवेचना के नवीन संसाधनों, आधुनिक संचार साधनों से विभाग का व समस्त कर्मचारियों का सुदृढ़ीकरण किया गया है। इसके साथ ही प्रत्येक जिले में महिला हैल्प लाईन व प्रत्येक जिलें में महिला डैक्स की स्थापना की गयी है। जो महिलाओं से सम्बन्धित समस्याओं के त्वरित निवारण पर अपना सहयोग प्रदान करते हैं। विभाग को सूचना संचार के साधनों से आधुनिक बनाया गया है, जिसके लिये राज्य में उपलब्ध सभी संचार प्रणालियों को एकीकृत कर सहतरंग नामक एकल संचार योजना क्रियान्वित की गयी है। इस कार्य में केन्द्रीय सुरक्षा बलों व भारतीय संचार निगम लिमिटेड को भी शामिल किया गया है। भारत -नेपाल की सीमा, जो राज्य से मिलती है उसकी संवेदनशीलता को देखते हुए भारत सरकार द्वारा इस सीमा का प्राथमिक प्रबंधन सशस्त्र सीमा बल को सौंपा गया है। बल को इस कार्य में सहयोग की दृष्टि से सीमा से 15 किलोमीटर क्षेत्र में तलाशी एवं जब्ती के अधिकार भी दिये गये हैं।

18.4 वित्त विभाग

किसी भी राज्य का वित्त विभाग केन्द्र की भाँति उस राज्य के वित्त मंत्रालय के अधीन होता है। मंत्रालय का काम बजट बनाना और इसे लागू करवाना होता है। वित्त विभाग राज्य के सभी विभागों के लेखा-जोखा व आहरण - वितरण का संचालन करता है। विभिन्न विभागों के अधिकारी अपने विभागों के विभिन्न प्रस्तावों व योजनाओं के लिये अनुमानित धनराशि का ब्यौरा प्रस्तुत करते हैं। विभागों का यह लेखा या हिसाब किताब निश्चित अवधि में महालेखाकार के लेखों से मिलाया जाता है। यह काम विभिन्न राजकोषों से हर पखवाड़े मिले लेखों के आधार पर किया जाता है। इन सभी कार्यों को वित्त विभाग के सहयोग से ही पूरा किया जाता है। वित्त विभाग किसी भी राज्य का सबसे महत्वपूर्ण विभाग होता है।

उत्तराखण्ड राज्य गठन के साथ ही राज्य की वित्त व कोषागार सेवाओं को स्थापित किया गया। वित्त विभाग का नियंत्रक वरिष्ठतम् अधिकारी होता है, जो वित्त सेवा से चयनित होता है। राज्य के राजकीय आहरण वितरण का निरीक्षक व नियंत्रक राज्य का वित्त निदेशालय होगा। निदेशालय राज्य के सभी सरकारी विभागों के आहरण व वितरण की जिम्मेदारी कोषागार व उप कोषागारों को देता है। राज्य का वित्तीय निदेशालय देहरादून में है। उत्तराखण्ड राज्य कुशल वित्तीय प्रबन्ध के प्रयास में सफल हो रहा है। सरकार करों के बिना विकास योजनाओं के

लिये नये स्रोतों से संसाधन जुटाने का प्रयास किया है जिससे राज्य के आम जन पर अतिरिक्त भार नहीं पड़ा है। वित्त विभाग द्वारा प्रयास किये गये कि कार्मिकों व पेंशन भोगियों को नियत समय पर भुगतान किया जा सके। सरकार द्वारा शासकीय लेन देन की व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिये भारतीय रिजर्व बैंक से समझौता कर स्टेट बैंक को एजेंट के रूप नियुक्त किया गया और वित्तीय संस्थाओं को कम्प्यूटरीकृत कर दिया गया है। सरकार आम जन को सुविधा देने के लिये वित्त विभाग के कर्मचारियों को आधुनिक प्रशिक्षण समय-समय पर दे रही है। जिससे वित्त विभाग की दक्षता बढ़ी है। सरकार ने ऐसे प्रयास किये हैं कि राज्य के सभी कोषागार व उपकोषागार पूर्णतया कम्प्यूटरीकृत है और एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। वर्तमान में वित्त विभाग की संरचना को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है-

राज्य का डाटा केन्द्र (देहरादून में)
13 जिला कोषागार
14 उच्चीकृत कोषागार
02 आहरण और लेखा विभाग
60 उपकोषागार
02 नोडल केन्द्र नॉन पोस्टल स्टाम्प

18.4.1 एकीकृत भुगतान व लेखा प्रणाली

कोषागार व्यवस्था तथा केन्द्र सरकार की विभागीय वेतन एवं लेखा कार्यालय की व्यवस्था पर किये गये अध्ययनों से यह निष्कर्ष है कि राज्य सरकार ग्रामीण स्तर पर नियुक्त होने के कारण प्रत्येक विभाग के वेतन और लेखा कार्यालय का बड़ा नेटवर्क रहता है जिससे अनावश्यक व्यय होने के साथ-साथ भुगतान में भी विलम्ब होता है। इन कमियों को दूर करने के लिये सरकार ने राज्य में एकीकृत भुगतान एवं लेखा प्रणाली लागू की। जिससे सरकारी कार्यालयों के कर्मचारियों के लिये ई-पेरोल व्यवस्था शुरू की गयी। जिसका फायदा राज्य कर्मचारियों को मिल रहा है। इस व्यवस्था से निम्न लाभ प्राप्त हुए हैं -

1.उत्तराखण्ड ऐसा पहला राज्य है, जहाँ कम्प्यूटर पर आधारित एकीकृत भुगतान एवं लेखा प्रणाली लागू की गयी है।

2.बैंकों के नेटवर्किंग के फलस्वरूप उपलब्ध कोर बैंकिंग की सेवाओं का एकीकृत भुगतान व लेखा प्रणाली का उपयोग किया जा रहा है। जिससे दूर दराज के कर्मचारियों को लाभ प्राप्त हो रहा है और वो त्वरित भुगतान की सुविधा ले रहे हैं।

3.प्रत्येक कोषागार में सरकारी कार्यालयों के कर्मचारियों की सेवा तथा वेतन संबंधी विवरण का डाटा बेस बैंक निर्मित किया गया है । जिससे कर्मचारी अपनी वेतन सम्बन्धी मामलों को इन्टरनेट के माध्यम से देख व समझ सकता है।

4.भुगतान की समस्त सूचना इन्टरनेट में सरकारी साईट पर उपलब्ध है।

18.4.2 वित्त निदेशालय के कार्य

राज्य में वित्तीय कार्यों के लिये वित्त विभाग द्वारा एक निदेशालय का गठन किया गया है, जिसका कार्य राज्य में समस्त सरकारी विभागों का वित्त संबंधी लेखाओं का संचालन करना होता है। इसके कार्यों को हम निम्न रूप से देख सकते हैं-

1. निदेशालय के द्वारा राज्य सरकार के समस्त भुगतान आहरण- वितरण अधिकारी के माध्यम से किये जाते हैं।

2. राज्य सरकार की समस्त प्राप्तियां बैंको के माध्यम से निदेशालय के निर्देशन से की जाती हैं।
3. निदेशालय राज्य सरकार की तरफ से मूल्यवान वस्तुओं का रख-रखाव करता है।
4. इसके साथ ही निदेशालय राज्य में गैर पोस्टल स्टाम्प का भण्डारण व विक्रय का कार्य करता है।
5. निदेशालय समस्त श्रेणी के पेंशनरो के पेंशन वितरण का कार्य करता है।
6. एकीकृत लेखा एवं भुगतान कार्यालय के माध्यम से राज्य कर्मचारियों को वेतन एवं भत्तों का भुगतान करना।
7. सोसाइटी एक्ट 1860, साझेदारी अधिनियम 1932 में अन्तर्गत संस्थाओं का पंजीकरण एवं अन्य सम्बन्धित कार्य करना।
8. स्वायत्तशासी संस्थाओं/स्थानीय निकायों के वैयक्तिक लेखों का रख रखाव करना।
9. निर्माण विभागों की भुगतान धनराशि व डेविड-क्रेडिट सम्बन्धी लेखा का ब्यौरा रखना।
10. विभागों की प्राप्तियों की वापसी का विवरण रखना।
11. आहरण-वितरण अधिकारियों का बजट नियंत्रण ।
12. कर्मचारियों की सेवानिवृति पर सामूहिक बीमा निधि का भुगतान करना।
13. चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों की सामान्य भविष्य निधि के रख-रखाव का ब्यौरा रखना।

18.5 आपदा विभाग

क्षेत्र की भौगोलिक, भूगर्भाय एवं पारिस्थितिकीय संरचना उत्तराखण्ड राज्य को प्राकृतिक एवं मानवीय परिर्वतनों के प्रति अत्यन्त संवेदनशील बनाती है। यही इस क्षेत्र की आपदाओं का मुख्य कारण भी है। भूकंप की दृष्टि से राज्य के चार जिले अति संवेदनशील जोन-5 व पांच जिले संवेदनशील जोन-4 में आते हैं। इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए उत्तराखण्ड गठन के बाद सरकार द्वारा आपदा प्रबन्ध विभाग की स्थापना की गयी। आपदा विभाग द्वारा आपदा प्रबन्ध को व्यावहारिक बनाने के लिये प्रदेश के आपदा प्रबन्ध तंत्र को इस प्रकार विकसित किया गया है कि आपदा प्रबन्ध में राज्य एवं जनपद स्तरीय अधिकारियों/कर्मचारियों के अतिरिक्त स्वयंसेवी संस्थाओं, गैर सरकारी संगठनों, जनप्रतिनिधियों एवं जनसामान्य की स्पष्ट भागीदारी सुनिश्चित की जा सके।

राज्य स्तर पर देहरादून में विभाग ने आपदा न्यूनीकरण एवं प्रबन्ध केन्द्र की स्थापना सचिवालय परिसर में की गयी है। इस केन्द्र का ध्येय जागरूकता, सूचना, प्रशिक्षण, तकनीकी सहायता एवं क्षमता विकास के माध्यम से राज्य में आपदाओं के जीवन एवं पर्यावरण सुरक्षा हेतु एक ऐसे तंत्र की स्थापना करना जो कि राज्य की आपदाओं के प्रति संवेदनशीलता को ध्यान में रखते हुए आपदा से पूर्व, आपदा के समय एवं आपदा के पश्चात की गतिविधियों का संसाधनों के अधिकतम संभव उपयोग के साथ सुचारू व समयबद्ध तरीके से क्रियान्वयन सुनिश्चित कर सकें। आपदा न्यूनीकरण एवं प्रबन्ध केन्द्र विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन कर रहा है। केन्द्र नई तकनीकी के प्रयोग से आपदा सम्बन्धी जानकारी को पहले ही देने में सक्षम है। केन्द्र ऐसे लोगों के साथ सम्पर्क में रहता है जो आपदा प्रबन्धन के कार्यों में लगे रहते हैं तथा अनुभवी होते हैं। आपदा विभाग की संरचना को निम्न प्रकार से देख सकते हैं-

आपदा विभाग की संरचना

1. मुख्य सचिव (ई.सी) अध्यक्ष
2. प्रमुख सचिव, वित्त, उत्तराखण्ड सरकार सदस्य
3. प्रमुख सचिव, गृह, उत्तराखण्ड सरकार सदस्य
4. प्रमुख सचिव, राजस्व, उत्तराखण्ड सरकार सदस्य

5. प्रमुख सचिव, आपदा प्रबन्धन, उत्तराखण्ड सरकार सदस्य
6. प्रमुख सचिव, सिंचाई, उत्तराखण्ड सरकार सदस्य
7. निदेशक, उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी, नैनीताल सदस्य
8. आयुक्त रिलिफ, उत्तराखण्ड सरकार सदस्य
9. कार्यकारी निदेशक,आपदा न्यूनीकरण एवं प्रबन्ध केन्द्र सचिव/ सदस्य

कार्यकारी समिति के सदस्य

1. प्रमुख सचिव/सचिव आपदा प्रबन्धन, उत्तराखण्ड सरकार अध्यक्ष
2. निदेशक उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी, नैनीताल सदस्य
3. कार्यकारी निदेशक,आपदा न्यूनीकरण एवं प्रबन्ध केन्द्र सचिव/ सदस्य
4. अपर सचिव, वित्त, उत्तराखण्ड सरकार सदस्य

18.5.1 जी.आई.एस. डाटाबेस

विभिन्न प्रकार के आधारित संरचना के डाटाबेस एक महत्वपूर्ण साधन हैं जिसके द्वारा आपदा से बेहतर तरीके से निपटा जा सकता है। इसके लिये आपदा विभाग ने जी.आई.एस.(ज्योग्रैफिकल इन्फॉर्मेशन सिस्टम) के द्वारा सम्पूर्ण उत्तराखण्ड की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर ली है। आपदा न्यूनीकरण व प्रबन्ध केन्द्र द्वारा सेटेलाईट से प्राप्त डाटा(सूचनांए) का प्रयोग आपदा से निपटने में कर रहा है। आपदा न्यूनीकरण व प्रबन्ध केन्द्र के द्वारा निम्न विषयों पर आधारिक संरचना एकत्रित की जा चुकी है।

1. निकासी व्यवस्था(नालियों)
2. आवास
3. सड़कें
4. सिंचाई
5. स्वास्थ्य संगठन
6. पुलिस एवं राजस्व पुलिस संरचना
7. बेहतर संचार व्यवस्था
8. एफ.सी.आई. गोदाम

राज्य में आपदा न्यूनीकरण व प्रबन्ध केन्द्र की इकाईयां निम्न स्थानों पर हैं-

1.अल्मोड़ा, 2.बागेश्वर, 3.चमोली, 4.चम्पावत, 5.देहरादून, 6.हरिद्वार, 7.नैनीताल, 8.पौड़ी, 9.पिथौरागढ़ 10.रूद्रप्रयाग 11. टिहरी, 12. उत्तरकाशी, 13. उधम सिंह नगर

राज्य के सभी जिलों में आपदा विभाग द्वारा केन्द्र स्थापित किये हैं, जो आपदा के समय अपनी सेवा प्रदान करते हैं। ये केन्द्र जनपद में विभिन्न विभागों के प्रशिक्षित कार्मिकों का क्षेत्रवार विवरण तथा कार्य क्षेत्र निर्धारण खोज व बचाव दल जिन्हें आपदा प्रबन्ध द्वारा प्रशिक्षित किया गया है एवं चिन्हित किया गया है, उनकी सूची आपदा प्रबन्ध विभाग के पास उपलब्ध कराता है। साथ ही केन्द्र जिला इकाईयों के साथ मिल कर जागरूकता कार्यक्रम प्रशासन के निर्देशानुसार तैयार करता है तथा प्रशिक्षण की व्यवस्था भी करता है। आज हम देख रहें हैं कि निरन्तर पर्यावरण असंतुलित हो रहा है और जिस तरह पर्यावरण असंतुलित हो रहा है उसी तरह प्राकृतिक आपदाओं का स्वरूप भी बदल रहा है। ये सब ध्यान में रखते हुए आम लोगों को खतरों के प्रति जागरूक किया जा सकता है। जिसके लिये आपदा विभाग का गठन किया गया है। आपदा विभाग के गठन के बाद से राज्य आज आपदा से

बचाव के लिये तरह-तरह के कार्यक्रम चला रहा है। जिससे राज्य सरकारों को आपदा से निपटने के लिये सहायता मिल रही है।

अभ्यास प्रश्न

1. संरचना की दृष्टि से विभागों को दो भागों में बॉटा जाता है, उनके नाम बताएँ।
2. विभाग के भीतर कार्य करने वाले दो प्रकार के मंडलों के नाम बताएँ।
3. लूथर गूलिक ने विभागों के गठन के लिए कौन सा फार्मूला दिया?
4. उत्तराखण्ड राज्य का वित्तीय डाटा केन्द्र कहाँ है?
5. राज्य का आपदा न्यूनीकरण एवं प्रबन्ध केन्द्र कहाँ स्थित है?
6. जी.आई.एस. का पूरा नाम क्या है

18.6 सारांश

किसी भी शासन व्यवस्था का पहला गुण वहाँ की कार्यप्रणाली का आवंटन होता है। कार्य को क्रियान्वित करना विभागों के जिम्मे होता है। शासन के समस्त कार्यों को अलग-अलग विभागों द्वारा किया जाता है। इस इकाई में हमने शासन के सबसे महत्वपूर्ण विभागों गृह, वित्त व उत्तराखण्ड राज्य के लिये सबसे अधिक महत्व रखने वाला आपदा विभाग का अध्ययन किया। इस अध्याय में राज्य के गृह विभाग की विस्तृत चर्चा की गयी तथा राज्य के पुलिस व्यवस्था का अध्ययन किया गया। इसी के साथ राज्य के वित्त विभाग के प्रत्येक पहलू का अध्ययन किया गया। आपदा प्रबन्ध विभाग राज्य में कैसे काम कर रहा है इसकी भी चर्चा इस अध्याय में की गयी।

18.7 शब्दावली

जी.आई.एस. -- ज्योग्राफिकल इन्फोर्मेशन सिस्टम

४पी --१.उद्देश्य २.प्रक्रिया ३. व्यक्ति ४.स्थान

राजनीतिक अध्यक्ष—किसी विभाग का मंत्री उस विभाग का राजनीतिक अध्यक्षरा होता है

18.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. एकात्मक और संघात्मक 2. प्रशासनिक मंडल,परमर्शकारी मंडल 3. ४ पी 4. देहरादून 5. देहरादून 6. ज्योग्राफिकल इन्फोर्मेशन सिस्टम

18.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी व माहेश्वरी - लोक प्रशासन
2. वी.डी. बलूनी - उत्तराखण्ड एक सम्पूर्ण अध्ययन
3. उत्तराखण्ड शासन -वार्षिक रिपोर्ट, सन्तुलित, समयबद्ध व समग्र विकास
4. शेखर पाठक - संपादक पहाड़, नैनीताल

18.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सविता मोहन व हरीश यादव - उत्तरांचल समग्र अध्ययन

18.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. विभाग से आप क्या समझते है? विभागीय संगठन का आधार, क्षेत्र व गठन के सिद्धान्त को समझाए।
2. उत्तराखण्ड राज्य के गृह विभाग की विस्तृत रुप से व्याख्या कीजिए।
3. वित्त विभाग के क्या क्या कार्य है, विस्तार से बताएं।
4. उत्तराखण्ड राज्य के आपदा प्रबन्धन पर निबन्ध लिखिए।

इकाई 19 उत्तराखण्ड की जनजातियां एंव जनजाति विकास हेतु प्रशासनिक तंत्र

इकाई की संरचना

19.0 प्रस्तावना
19.1 उद्देश्य
19.2 उत्तराखण्ड की जनजातियां
19.3 जनजातीय विकास हेतु योजनाएं
19.3.1 जनजातीय विकास में पंचवर्षीय योजनायें
19.3.2 अनुसूचित जनजातियों के लिये चलाये जा रहे कल्याणकारी योजनाएं
10.3.3 उत्तराखण्ड में चल रही कल्याणकारी व विकासन्मुख योजनायें
19.4 जनजातीय विकास हेतु प्रशासनिक तंत्र
19.4.1 औपनिवेशिक काल में प्रशासनिक तंत्र
19.4.2 स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात का प्रशासनिक तंत्र
19.5 सारांश
19.6 पारिभाषिक शब्दावली
19.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
19..8 संदर्भ ग्रन्थ
19.9 सहायक पुस्तकें
19.10 निबन्धात्मक प्रश्न

19.0 प्रस्तावना

भारत वर्ष में फैले लगभग 450 जनजातीय समूहों को भारतीय संविधान के अनुच्छेद-342 के तहत अनुसूचित जनजाति घोषित किया गया है। वर्तमान में अनुसूचित जनजातियों की संख्या लगभग 6 करोड़ 70 लाख है, जो भारत की पूरी आबादी का 8.08% है। यानि प्रत्येक 100 भारतीय नागरिकों में से 08, जनजाति समूहों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अनुसूचित जनजातियॉ देश के विभिन्न भागों में वितरित हैं और इनकी प्रमुख विशेषता है इनकी विविधता। भौगोलिक वितरण के आधार पर सम्पूर्ण जनजाति समूहों को पॉच मुख्य क्षेत्रों में बॉटा जा सकता है- 1. उत्तर पूर्व भारत, 2. उप हिमालयी क्षेत्र, 3. मध्य एवं पूर्व भारत, 4. दक्षिण भारत, 5. पश्चिमी भारत।

इस विभाजन के अन्तर्गत उत्तराखण्ड क्षेत्र, उप हिमालयी क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। वर्ष 1967 से पूर्व संयुक्त उत्तर प्रदेश में किसी भी समूह को अनुसूचित जनजाति के रूप में मान्यता नहीं मिली थी। जून 1967 में भारत सरकार द्वारा थारू, बुक्सा, जौनसारी, भोटिया तथा राजि जनजातियों समूहों (वर्तमान में उत्तराखण्ड में निवास) को अनुसूचित जनजाति घोषित किया गया।

19.1 उद्देश्य

इस इकाई को पठने के उपरान्त आप-

1. जनजातीय समाज के विषय में जान पायेंगे।
2. उत्तराखण्ड की जनजातीयों के विषय में विस्तार से अध्ययन कर पायेंगे।
3. जनजातियों के विकास से संबंधित योजनाओं के बारे में जान पायेंगे।
4. जनजातियों के लिए गठित प्रशासनिक तंत्र के विषय में जान पायेंगे।

19.2 उत्तराखण्ड की जनजातियां

19.2.1 थारू

थारू जनजाति उधम सिंह नगर जिले के खटीमा व सितारगंज क्षेत्रों में निवास करती है। उनके 142 गांव हैं, किन्तु 88 ही गांव ऐसे हैं जहॉ जहॉ पूर्ण अबादी थारुओं की है या थारु बहुल हैं। थारू जनजाति की संख्या में उतार-चढ़ाव देखने की मिलता रहता है। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इनकी संख्या में वृद्धि तथा इनका क्षेत्र विकास भी हुआ थारू अपने आपको चित्तौड़ के महाराणा प्रताप के वंशज मानते हैं तथा ''राणा'' उपजाति का प्रयोग भी करते है। आज स्वयं थारू समाज के वृद्ध पुरूष और स्त्रियाँ इस कथन को स्वीकार करते है कि थारू स्त्रियाँ वास्तव में राजघराने से सम्बन्धि थीं। थारू जनजाति में अनेक उपजातियाँ पायी जाती है।

रिति-रिवाज

थारू जनजाति के रीति-रिवाज भी अपने आपमें अनूठे है। इनकी वेश-भूषा गहरे रंगों से बने कपड़ों की होती है। कुछ महिलायें कोटी भी पहनती है जिनका अग्र भाग सिक्कों से सजा रहता है। इनकी पोशाकों में कलात्मकता होती है। थारू पुरुष अपनी पारम्परिक धोती-कुर्ता, पैजामा व कमीज पहनते है। सिर पर सफेद टोपी भी ये लोग पहनते है। युवा थारू शहरी प्रभाव के कारण पैंट-सर्ट भी पहनने लगे हैं।

थारू अपने भोजन में मुख्यतः चावल, मक्का, गेहूँ, मसूर व अन्य स्थानीय खाद्य सामग्री का प्रयोग करते है। थारुओं को मांस का भी शौक है। भोज्य सामग्री के अलावा इनकी दिनचर्या कच्ची शराब पिये बगैर पूरी नहीं होती है।

धार्मिक भावना

थारू जनजाति के लोग भगवान पर विश्वास करते है तथा एक सर्वमान्य शक्ति को पूजते है। थारूओं के ग्रामों में देवता अलग-अलग भी होते हैं। देवताओं की पूजा अधिकतर पुरुष करते है। थारू जादू द्वारा आत्माओं को प्रसन्न करने पर भी विश्वास रखते है। ये एक-दूसरे के जादू को काटने का प्रयास करते या करवाते है। यह कार्य करने वाला भर्रा कहलाता है। पूरे ग्राम में एक ही ''भर्रा'' होता है जो देवी-देवताओं की पूजा में बलि भी चढ़ाता है। इनके यहाँ फसल, कृषि-यंत्रों एवं जानवरों की भी पूजा होती है।

थारूओं के प्रमुख पर्वों में ''चरई'' सबसे महत्वपूर्ण है जो वर्ष में दो बार चैत्र तथा वैशाख में मनाया जाता है, जिसमें ''भूईयाँ'' देवी की पूजा होती है। ये होली को अत्यन्त उत्वाहपूर्वक मानते है। इसके अलावा ये दीपावली, दशहरा तथा नागपंचमी भी हिन्दुओं की तरह मनाते है।

सामाजिक स्थिति

थारू जनजाति पितृ सत्तात्मक, पितृ वंशीय होते है। अधिकांश विस्तारित परिवार की प्रथा पायी जाती है। परिवार से बड़ा ''कुर्म'' होता है जो वहिर्विवाही होता है। इसमें बड़ा 'कुरि' या 'कूरा' होता है जो कई कुर्म से मिलकर बनता है। यह अन्तर्विवाही होता है। परिवार का मुखिया घर का वृद्ध पुरूष होता है।

थारू में स्त्रियों की स्थिति सर्वोच्च होती है इसलिये उनमें 'वधुमूल्य' का प्रचलन है। इनके यहाँ विवाह मध्यस्थ व्यक्ति जिसे मंझपतिया कहते है, तय करता है । इनमें विवाह मुख्य रूप से फागुन, वैशाख, माघ, पूस के महिनों में होता है। विवाह से 3-4 वर्ष पूर्व मंगनी हो जाती है परन्तु विवाह वयस्क होने पर ही होता है। थारू विवाह के सारे

संस्कार स्वयं ही पूरा करते है तथा थारू एक विवाही होते है। देवर-विवाह, साली-विवाह के साथ-साथ बहुपत्नी विवाह भी कहीं-कहीं देखने को मिलता है। वधूमूल्य के अभाव में अपहरण विवाह तथा पलायन विवाह से वधु प्राप्ति की जाती है।

थारू जनजाति में पति-पत्नी एक-दूसरे को तलाक दे सकते है। तलाक देने को ये लोग ''उरारी'' कहते है। स्त्रियों का पुरुषों की अपेक्षा उच्च स्थान होने के कारण अधिक आसानी से तलाक दे देती है, जबकि पुरुष को तलाक देने में हर्जाना पड़ता है। इसके अलावा थारूओं में नातेदारी व्यवस्था हिन्दुओं से प्रभावित

व्यवसाय व आर्थिक स्थिति

थारूओं का प्रमुख व्यवसाय व आय का श्रोत कृषि है। इसके अतिरिक्त मछली शिकार व अन्य कार्य है, जिसे व्यवसाय तो नहीं कहा जा सकता परन्तु पारिवारिक व्यय को कम करने में सहायक है। वन प्रदेश से लगे थारूओं में शिकार का शौक भी है। जितनी उर्वर भूमि इनके पास खेती के लिए है उतना उत्पादन नहीं हो पाता है। परिणामस्वरूप थारूओं की कृषि से प्राप्त आय उनको जीवित रखने भर के लिये प्राप्त है। मछली मारने का कार्य पारिवारिक कार्य व आवश्यकता के रूप में किया जाता है। ये लोग पशुपालन के रूप में मुख्यतः सुअर, मुर्गियाँ, गाय व बकरी आदि पालते है। ये लोग जाल, डलिया, पाश आदि भी बनाते है।

19.2.2 बुक्सा

बुक्सा जनजाति उत्तर भारत उप-हिमालय की तलहटी से लेकर हिमालय तराई तक पूरब से उत्तर-पश्चिम की तरफ एक पट्टी में बसे हुए है। पूरब में नैनीताल जनपद (वर्तमान में उधमसिंह नगर जनपद) के बाजपुर विकास खण्ड तथा देहरादून जिले के विकासपुर विकास खण्ड तक इनकी जनसंख्या बिखरी है। ''बुक्सा'' नाम की उत्पत्ति के विषय में अलग-अलग धारणायें है। कुछ बुक्सा लोग स्वयं को इस तथ्य से सम्बन्धित करते है कि उनके पूर्वज बकरे से समान दाढ़ी रखते थे जिसे स्थानीय भाषा में ''बोक'' या ''बोकी'' कहा जाता है, जिसे बाद में बुक्सा कह दिया गया।

रीति-रिवाज

बुक्सा लोग धोती, बंडी व हाफ कमीज तथा सिर पर पगड़ी धारण करते है। महिलाएँ परम्परागत वस्त्र लहंगा एवं चोली अधिक पसंद करती है। इसके अतिरिक्त नई पीढ़ी के लोग पैंट, शर्ट कोट व पायजामा आदि का प्रयोग करते है। विवाह जैसे अनुष्ठानों में दुल्हा व दुल्हन के परम्परागत वस्त्र होते हैं। आभूषण में महिलाएँ हंसली, हमेल कानों में फूल तथा चाँदी की चूड़ियाँ पहनती है। मुख्य रूप से इनके सार आभूषण चाँदी के होते है।

इनके गाँव व आवास व्यवस्था मूलतः मिलकर रहने के रूप में देखी जा सकती है। इनके अधिकांश गाँव नदी या जंगल के किनारे होते है। आरम्भिक काल में ये लोग झूम कृषि करते थे। साक्ष्य रूप में कुछ गाँवों में एक ही परिवार पाया जाता है। किसी गाँव में छोटे-छोटे पुरवे है जिन्हें ये लोग ''मझरा'' कहते है। प्रत्येक मझरा या गाँव का एक प्रमुख व्यक्ति होता है जिसे प्रधान कहा जाता है जो मझरे का सर्वेसर्वा होता है।

धार्मिक भावना

बुक्सा हिन्दू धर्म जैसे ही धर्म को मानने वाले लोग है जिनमें धार्मिक क्रियाओ को तो पहाड़ी ब्राह्मण सम्पन्न करते हैं, लेकिन जादुई क्रियाओं को भरार(एक तरह का तांत्रिक) अथवा सयाने सम्पन्न करते है। ये लोग जादू-टोने पर विश्वास करते है। भरार देवियों, प्रेतों, शैतानों एवं चुड़ैलों के अपने वश में करते है। भरार हित की तथा अहित की दोनों देवताओं को पहचानता है तथा इनका प्रयोग सामाजिक व व्यक्तिगत कल्याण के लिये करता है। इनमें पाँच प्रकार के देवता मिलते है। पहले प्रकार के पूर्वज जो प्रेत हो गये है, दूसरे ग्रामीण देवता, तीसरे पहाड़ी के देवता, चौथे जंगलों में रहने वाले देवता और पाँचवे ऐसे देवता जो मैदानी भागों में आये पड़ौसियों के है। इसके अतिरिक्त ये लोग अब हिन्दु देवी-देवताओं की भी पूजा करने लगे है तथा लगभग हिन्दू धार्मिकता अपना रहे है।

सामाजिक स्थिति

बुक्सा समुदाय की भी सबसे छोटी इकाई परिवार ही है, जिसका प्रमुख घर का बड़ा होता है। कई परिवार मिल कर एक गाँव या मंझरा बनाते है। ग्रामीण संगठन का केन्द्र बिन्दु प्रधान होता है वह किसी को भी गाँव से निकाल सकता है। वह धार्मिक दृष्टि से भी गाँव का नेता होता है। गाँव के आपसी झगड़ों का निपटारा वह स्वयं करता है। सामुहिक भोजों, पंचायतों का वह सम्पूर्ण गाँव का प्रतिनिधित्व करता है। समाज सुचारू रूप से चले, इसलिये सामाजिक कानून भी बनाये जाते है। इनके विरूद्ध आचरण करने वालों को दण्ड दिया जाता है। विधान के लिए परम्परागत न्यायलय क्रियान्वित किया जाता है जिसके समस्त सदस्य प्रधान की तरह जन्मजात व परम्परागत होते है।

बुक्सा परिवार पितृ सत्तात्मक होता है। इनमें एक विवाह व बहुविवाह दोनों ही प्रचलित है। कभी-कभी एक दूसरे प्रकार की भी व्यवस्था पायी जाती है, वह है- पितृवंशीय-मातृस्थानी परिवार। इसमें स्त्री पति के घर न जाकर पिता के घर में ही रहती है। वंश परम्परा इनमें पति के नाम से चलती है तथा सम्पत्ति हस्तान्तरण पत्नी के नाम से होता है। मरणोपरान्त सम्पत्ति का मालिक पुत्र न होकर पुत्री होती है।

व्यवसाय और आर्थिक स्थिति

कृषि बुक्साओं की आजीविका का प्रमुख साधन रहा है। लगभग 90 प्रतिशत बुक्सा खेती करते हैं। बुक्साओं को बढ़ईगिरी और लुहारगिरी की भी जानकारी है, किन्तु इसका उपयोग के रोजी-रोटी कमाने के लिए नहीं करते हैं। मछली पकड़ने का सामान थारुओं के घर-घर में पाया जाता है। वे अकेले ही नहीं सामुहिक तौर पर मछली पकड़ने का काम करते हैं।

बुक्सा महिलाएं अपने पुरुषों की सभी आर्थिक गतिविधियों में मदद करती हैं। विशेषतया खेती में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। खेती में हल पुरुष ही चलाते हैं, लेकिन बोआई और निराई महिलाओं द्वारा की जाती है। फसल की कटाई और मड़ाई लगभग महिलाओं का दायित्व है। थारु महिलाएं हस्तशिल्प में भी दक्ष होती है । वे हाथ के पंखे व टोकरियां बनाती हैं। वे जंगली घास की चटाइयां बनाती हैं और मिट्टी के बर्तन भी बनाती हैं।

10.2.3 जौनसारी

देहरादून जनपद के चकराता एवं कालसी विकासखण्डों के पर्वतीय भागों में रहने वाली जौनसारी जनजाति के लोग पांडवों को अपना पूर्वज मानते हैं। जौनसारी जनजाति स्तरीकृत है।

रीति-रिवाज

जौनसारी जनजाति अपने विवाह के प्रकार के कारण विशेष चर्चित रही है। जौनसारियों में भ्रात-बहुपति विवाह प्रचलित है। सामाजिक विधान के अनुसार 'किसी भी अनुज को अपने लिये पृथक या अतिरिक्त पत्नी से विवाह की आज्ञा नहीं हैं।' अतः केवल भाईयों में अग्रज ही विवाह करता है। उसकी पत्नी या समस्त पत्नियॉ अग्रज की, अनुज की वैधनिक पत्नियॉ होती हैं। यदि अग्रज के विवाह के समय सबसे छोटा अनुज बच्चा है या उसका जन्म अग्रज के विवाह के पश्चात हुआ है तो सबसे छोटे अनुज की युवावस्था आने पर अग्रज को, छोटे अनुज की हम उम्र की लड़की से विवाह करना होगा। यह लड़की अग्रज की पहली पत्नी की बहन भी हो सकती है, यद्यपि सबसे छोटा अनुज सबसे बड़े अग्रज की पत्नी का भी पति होगा। इस प्रकार के विवाह को प्रो0 डी0एन0 मजूमदार ने 'बहुपत्नी, बहुपति विवाह' कहा है।

बहुपत्नी विवाह और बहुपति विवाह के कारण परिवार का सन्तुलन स्थायी एवं दृढ़ रहता है। यहां की भौगोलिक स्थिति तथा कृषि योग्य भूमि की कमी, परिवार की सीमित आय, कठोर जीवन यापन में एकांकी परिवार का पालन पोषण कठिन हो जाता है। इस तरह बहुपत्नी विवाह के कारण सभी भाई मिलकर सुविधा पूर्वक निर्वाह करते हैं।

जौनसारी समाज में विवाह विच्छेद की स्थिति कम पायी जाती है। ये लोग तलाक को 'छूट' कहते हैं। तलाक निम्न कारणों से हो सकता है- ससुराल में पर-पुरूष से समागम करना, बांझपन होना एवं गृहस्थ व कृषि कार्य में परिश्रम न करना। ऐसी अवस्था में पुरूष अपनी स्त्री को मायके भेज देता है और वापस नहीं बुलाता है।

धार्मिक भावना

ये लोग स्वयं को हिन्दू व पाण्डव का वंशज मानते हैं। इस समुदाय के लोग पांडव तथा कुन्ती की पूजा-अर्चना करते हैं। धर्मिक कृत्यों में परिवार की स्त्रियाँ व पुरूष दोनों ही मिलकर भाग लेते हैं। मेले व उत्सव में साथ मिलकर नाचते गाते हैं परन्तु मन्दिर के अन्दर कोल्टा, दस्तकारों की स्त्रियाँ प्रवेश नहीं कर सकती हैं। जौनसारी 'महाषु' को अपना देवता मानते हैं व पाण्डवों में भीम की पूजा करते हैं। इसके अतिरिक्त बोध, चालदा, बीजर, आवासी, सिलगुरू, काली माँ, दुर्गा माँ की पूजा करते हैं। कोल्टा लोग नरसिंह भगवान के नाम बकरे की बलि चढ़ाते हैं। जादू टोना में विश्वास करते हैं। जादू टोना करने वाले को 'बाकी' कहते हैं। मुख्य पर्व 'बिस्सु' जो वैशाख माह में, जागरा-श्रावण माह में दीपावली मनाते हैं। ये लोग दीपावली सामान्य दीपावली से एक माह बाद मनाते हैं । इसे 'हलियत' कहा जाता है। इसमें 5-6 स्त्री-पुरूष साथ-साथ नृत्य करते हैं।

सामाजिक स्थिति

जौनसारी प्रमुख रूप से तीन सामाजिक स्तरों में विभक्त हैं जो जन्म पर आधरित होने के कारण स्थिर हैं। जैसे- उच्च स्तर, मध्य स्तर और निम्न स्तर।

उच्च स्तर- सर्वप्रथम ब्राह्मणों एवं राजपूतों का स्तर है जो कि परम्परागत भूमि का स्वामी के साथ-साथ कृषक भी है। सामाजिक स्तर में ब्राह्मणों एवं राजपूतों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। सवर्ण वर्ग के प्रतिनिधित्व के कारण ये लोग आपस में विवाह सम्बन्ध भी स्थापित करते हैं। इनकी जनसंख्या अन्य दो स्तरों की अपेक्षाकृत अधिक है।

मध्य स्तर- सामाजिक स्तर के मध्य में दस्तकारों का प्रतिनिधित्व है। इसमें सुनार ;स्वर्णकार, लोहार, काष्ठकार, नाथ एवं बाजगी का स्थान आता है। ये सभी आपस में ऊँच-नीच का भेदभाव रखते हैं। अधिकांशतया लोग भूमिहीन है। ये सवर्णों का दासत्व स्वीकार किये हुये हैं। चूंकि ये विवाह एवं उत्सव में बाजा बजाने का कार्य करते हैं। इस कारण इन्हें 'बाजगी' कहा गया है।

निम्न स्तर- सामाजिक स्तरीकरण में सबसे निम्न स्तर का प्रतिनिधित्व डोम, मोची या चमार करते हैं। इन्हें 'कोल्टा' कहा गया है। सबसे निम्न डोम हैं। कोल्टा अछूत, परम्परागत, भूमिहीन श्रमिक, सवर्ण वर्ग अर्थात् प्रथम सामाजिक श्रेणी की दासता स्वीकार वर्ग में आते हैं। कोल्टा जौनसारी के प्रत्येक ग्रामों में निवास करते हैं।

व्यवसाय एवमं आर्थिक स्थिति

जौनसारी अर्थव्यवस्था मूलतः कृषि पर आधरित है। स्त्री, पुरूष दोनों ही लोग कृषि कार्य में बराबर का श्रम करते हैं। इनकी कृषि पशु शक्ति पर आधरित होती है। कृषि फसल में गेहूँ , धन, मक्का, अदरक, चौलाई एवं हल्दी का उत्पादन करते है।

19.2.4 भोटिया

कुमाऊँ में अत्यधिक ऊँचाई में रहने वाले इस समुदाय के लोगों को भोटिया या शौका नाम से जाना जाता है। भोटिया जितने व्यवसाय कुशल रहे हैं, उतने ही परिश्रमी तथा स्वस्थ भी। कुमाऊँ का यह हिमालयी क्षेत्र भोटियों की भूमि है और इसी कारण इसे भोटांचल भी कहा जाता है। इस इलाके को ''भोटिया महाल'' भी कहा जाता है। राहुल सांकृत्यायन ने इस प्रदेश को भोटान्त प्रदेश तथा स्वामी प्रणवानन्द ने इसे ''भोटा-प्रान्त'' कहा है। कुमाऊँ के अलावा भोटिया लोग गढ़वाल तथा पश्चिमी नेपाल में भी बसते हैं। तिब्बत व नेपाल से लगे तीन हजार से बाहर हजार फीट की ऊँचाई पर भोटिया जनजाति निवास करती है। कुमाऊँ के जनपद पिथौरागढ़ की धारचूला तहसील के दारमा, व्यांस, चौदास घाटियों में ये लोग सदियों से निवास करते आ रहे है। चौदास तथा व्यांस काली नदी घाटी में अवस्थित अनेक भोटिया ग्रामों की पट्टियाँ हैं, जबकि धारचूला के उत्तर में धौली नदी घाटी को दारमा घाटी भी कहा जाता है। इस घाटी में निवास करने वाले भोटिया समूह को ''दारमी'' कहा जाता है। चौदास, व्यांस व दारमा घाटी के भोटिया लोग अपने आपको ''रड़'' बताते हैं। यूरोपीय लेखक क्रूक (1897), एटकिन्सन (1882) तथा वॉल्टन (1928) ने सर्वप्रथम ''शौका'' नाम के लिये ''भोटिया'' शब्द का प्रयोग किया।

रीति-रिवाज

भोटिया जनजाति अपने विशेष रीति-रिवाज के लिये विशेष रुप से जाने जाते हैं, लेकिन वर्तमान में तेजी से विकास गति के कारण इनमें भी परिवर्तन आया है। पुरुष व स्त्रियाँ अपने रंग-बिरंगे परिधानों को त्याग कर कमीज, पैंट और कोट पहनने लगे हैं। स्त्रियाँ साड़ी, ब्लाउज आदि पहनने लगी हैं। भोटियों के परम्परागत परिधान अत्यन्त गरम व ऊनी कपड़े होने के कारण नीचे आने वाले भोटिया समुदाय के लोग इन्हें त्याग रहे हैं।

भोटियों में हरण-विवाह की परम्परा भी अब कम देखने को मिलती है। भोटियों के केवल वे माता-पिता जो आर्थिक रूप से सम्पन्न नहीं है, अपनी पुत्रियों के होने वाले पति द्वारा अपहृत किये जाने के लिये अपनी सहमति दे देते हैं और खुद भी इस योजना में शामिल होते हैं। लेकिन इनके अब शहरों की ओर आ जाने तथा सरकारी पदों पर ऊँचे-ऊँचे अधिक होने, निरन्तर विकास की प्रक्रिया हर गाँव, हर क्षेत्र में होने के कारण ये अपनी पुरानी अनूठी

परम्पराओं को छोड़ते जा रहे हैं। अब इनमें विवाह माता-पिता के समझौते के आधार पर होते हैं। विवाह से पूर्व कन्याओं से भी उनकी इच्छायें जानी जाती हैं, परन्तु यह मात्र औपचारिक होता है। पहले वैदिक विधि से विवाह कराने के लिये ब्राह्मणों का योगदान लेते हैं।

मृत्यु के समय के कृत्यों में भी परिवर्तन आ चुका है और परम्परागत किया को आज भोटियों ने पूर्णतः त्याग दिया है। ''पुराने दौर में किसी भोटिया की घर से बाहर मृत्यु हो जाने पर उसके रिस्ते-नातेदार दिवंगत की आत्मा को उसके मृत्यु स्थान से लेकर घर तक ले जाने के लिये रास्ते भर ऊन का तागा गिराते थे। यह प्रथा अब खत्म हो गयी है। इसी प्रकार डूडिंग या गोऊन जो कि एक खर्चीली प्रथा थी अब व्यवहार में नहीं है। इस विकसित दौर मैं अब ये प्रथा लगभग-लगभग समाप्त हो चुकी है।

धार्मिक भावना -समय के साथ-साथ भोटिया समुदाय में भी परिवर्तन आया है। अब ये लोग हिन्दू देवी, देवताओं की पूजा करने लगे है। लेकिन आज भी उन्होंने अपने परम्परागत देवी-देवताओं गविया, नामजु, न्यूरांग, नरसिंह, सचिरी, कतिपय अन्य देवाताओं की पूजा पारम्परिक तौर से यथावत बनाये रखी है। हालांकि ये हिन्दू त्योहारों को भी मानते है। भोटिया समुदाय का एक वर्ग अपने आपको हिन्दू भोटिया कहता है। यह वर्ग हिन्दू आस्था को अपना रहा है तथा कुछ विद्वानों का मत है कि यह अपने परम्परागत धर्म को त्याग रहा है।

सामाजिक स्थिति

भोटिया समुदाय में समाज में सदस्यों के लिये कुछ निश्चित नियम होते है। न्याय, उन नियमों को तोड़ने वालों को दण्ड देता है, इस समुदाय में कानून मुख्यतः अधिकारों एवं कर्तव्यों का योग है। जो परस्पर आदान प्रदान के द्वारा प्रचार के आधार पर क्रियाशील है। ये आर्थिक तथा सामाजिक बातों पर एक-दूसरे पर निर्भर रहते है। समस्याओं समान होने के कारण जनमत के विभिन्न रूप विकसित नहीं हो पाये है। इस समाज में सम्पत्ति का हस्तान्तरण एवं पारिवारिक झगड़े का निपटारा करने के लिये ग्राम पंचायत होती है जिसका मुखिया ग्राम प्रधान होता है। जो छोटे झगड़े स्वयं ही निपटा देता है। अगर वह कोई मामला नहीं निपटा पाता तो पंचायत बुलायी जाताी है। कुछ लोग अपनी बात को लेकर न्याय के लिए अदालत में भी जाते है।

विकास के इस दौड़ में भोटिया महिलाओं में भी भारी परिवर्तन आया है, एक बड़े समूह में आज भोटिया कन्यायें व युवतियाँ शिक्षा ग्रहण कर रही है तथा राजकीय व राष्ट्रीय स्तर की सेवाओं में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर रही है, लेकिन आज भी भोटिया महिलाओं जो आर्थिक रूप से कमजोर है या ग्रामीण परिवेश से बाहर नहीं निकल पायी है शिक्षा से वंचित है, सामाजिक दृष्टिकोण से इसे परिवर्तन तो आया है परन्तु शैक्षिक स्तर पर जो क्रान्ति होनी चाहिए थी वह नहीं हो पायी है, भोटिया समुदाय के पुरुषों के शिक्षित होने के कारण कुछ भोटिया महिलायें अपने जीवन साथी को स्वयं चुनने की आजादी को भी खोते जा रही है।

व्यवसाय और आर्थिक स्थिति

तिब्बत तथा भारत पर चीनी आक्रमण, भोटियों में उनके आर्थिक विनाश के अतिरिक्त उनके सामाजिक, राजनैतिक व संस्कृतिक हलचल के लिये परोक्ष तथा अपरोक्ष रूप से उत्तरदायी है। तिब्बत से किसी प्रकार का व्यापार लेने-देने न रह जानेके कारण भोटिया समुदाय को अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिये नेय श्रोतों की खोज करन पड़ी। सीमान्त जिलों में सड़कों तथा अन्य संचार साधनों के विकास ने न केवल नीचे आकर बसने की

सुविधा दी बल्कि इनसे परम्परागत बाजारों में वृद्धि और विकास भी हुआ। साथ ही नये-नये प्रकार की हस्तकला के धन्धों की उपलब्धि हुयी तथा अधिकाधिक घनिष्ट सम्पर्क व मेल-जोल के अवसर भी प्राप्त हुए।

भोटिया जो अपने कठोर परिश्रम के लिये प्रसिद्ध है, अपने विचारों और तौर-तरीकों में गतिशील रहे है। वे आज भी आर्थिक स्थिति को बदलने और मजबूत करने के लिये नये व्यापार के श्रोत खोज रहे हैं।

भोटिया लोग अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अत्याधिक कठिन परिश्रम एंव संघर्षमय जीवन व्यतीत करते है। जब तिब्बत से व्यापार था तब ये भोजन व आवश्यक वस्तुएँ वही से प्राप्त कर लेते थे। भारत के तिब्बत से व्यापारिक संबंध समाप्त होने पर इन्होंने जंगलों को साफ कर खेती का कार्य किया तथा पशुपालन भी शुरू किया। खेती के अलावा घर व गाँव में हथ करघा, चर्खी, शॉल, पंखी, कालीन, कम्बल, कोट का कपड़ा, मफलर इत्यादि भी बनाते है और इनको मैदानी क्षेत्रों में बेचकर अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत करते है। ये लोग इन वस्तुओं को बनाने में भेड़-बकरी का ऊन लेकर दोनों ही मिल कर करते है। लेकिन आज इनकी स्थिति, सामाजिक व राजनैतिक स्थिति में बड़े पैमाने पर परिवर्तन आ चुका है

19.2.5 राजी (वनरावत)

उत्तराखण्ड के सीमान्त जनपद पिथौरागढ़ व चंम्पावत के उपहिमालय क्षेत्र की एक अल्पज्ञात ''बनरौत'' जिन्हें प्रायः ''राजी'' नाम से जाना है आज भी विकास की इस दौड़ में बहुत पीछे है।

इन अनुसूचित जनजातियों में भी नितान्त आदिम स्थिति में रहने वाली राजि जनजाति को 1975 में आदिम जनजाति घोषित किया गया। भारत में ऐसे आदिम समूहों की संख्या 74 है। 'राजि' का अर्थ जंगलों में रहने वालों के सन्दर्भ में किया जाता है। आज भी यह शुद्ध आखेटजीवी, कन्दमूल बटोरनी वाली अल्पसंख्यक आदिवासी जनजाति है, जो कि पूर्वी उत्तराखण्ड तथा पश्चिमी नेपाल में निवास करती है। विद्वानों ने इनको अनुवांशिकी की दृष्टि से मंगोलाइट मुख-मुद्रा और शारीरिक गठन के आधार पर तिब्बती-वर्मा परिवार की आदिम शाखा किरातों से जोड़ा है। अनुमान है कि यह जनजाति हजारों वर्ष पूर्व पूर्वोत्तर में स्थित वर्मा की पहाड़ियों से होकर आखेट की तलाश में भटकते हुए यहॉ पहॅंची। राजि मूलतः प्रकृति पूजक हैं। इनका निवास स्थान सदैव से प्रकृति निर्मित गुफायें (उड़यार) रहीं हैं, किन्तु आज सरकार द्वारा इनके भवन निर्माण एवं कृषि भूमि हेतु प्रयास किये जाने से ये निश्चित जगहों पर मकानों में रहने लगे हैं। वर्तमान में समस्त राजि ग्रामों की संख्या 10 है, जिनमें पिथौरागढ़ जनपद में 09 ग्राम एवं चम्पावत जनपद में 01 ग्राम है।

रीति-रिवाज--राजि जनजाति में विवाह तथा जीवन साथी चुनने के तरीके अपने आप में भिन्न हैं। वे सामुदायिक अन्तः विवाह, धड़ा व ग्राम बहिर्विवाह का नियम पालन कठोरता के साथ करते है। मुख्य रूप में यह पितृस्थानीय समुदाय है, लेकिन फिर भी लड़के को लड़की के घर में ही रहने का रिवाज भी इनमें है तथा लड़की का पति ही उसके पिता (लड़की के) की सम्पत्ति का मालिक बन जाता है। इनमें विवाह में कोई धार्मिक संस्कार नहीं होते है। यह दो परिवारों के बीच एक समझौता होता है। लेकिन अब राजि लोग भी पंडितों को बुलाकर विवाह को धार्मिक संस्कार के साथ करने लगे हैं। ये लोग जनेऊ संस्कार भी करते हैं।

राजि जनजाति में किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर पहले यह प्रथा थी कि मृत्यु के उपरान्त परिवार के सदस्य उस झोपड़ी या घर की छत को खोल कर वहां से चले जाते थे। वर्तमान में एसा नहीं है। वर्तमान में ''दाह संस्कार''

सम्पन्न किया जाता है। यदि मृतक अविवाहित हो तो उसे जमीन में गाड़ देते है। मृतक के श्राद्ध आदि कर्म करने की प्रथा इसमें नहीं है।

धार्मिक भावना

बनरौतों या राजियों में गोत्र या गोत्र चिन्ह जैसी अवधारण का अस्तित्व नहीं है। तथापि धार्मिक आधार पर वे हिन्दू तथा जाति में अपने आपको ''रजवार (चन्द्र)'' अर्थात् राजपूत मानते है। जब कोई व्यक्ति बीमार होता है तो देवता या जंगल के प्रेत आत्माओं व भूत आदि की पूजा करते है, लेकिन कभी भी उनके सम्मान में मन्दिर नहीं बनाते। इनके अपने विशिष्ट देवी-देवता होते है, लेकिन इसके साथ-साथ वे हिन्दुओं और कुमाऊँ वासियों तथा वास्तव में हिमालयी अंचल के निवासियों की भाँति स्थानीय देवी-देवताओं, प्रेतात्माओं तथा अदृश्य एवं प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करते है। राजियों में आज भी मलैनाथ, गणैनाथ, सैम(समजी), मलिकार्जुन(मलकाजन), हुरमल आदि देवताओं की पूजा होती है। इसके अतिरिक्त ये हिन्दू धर्म के देवी-देवताओं की पूजा करते हैं।

सामाजिक स्थिति

राजि समाज में पुरुष प्रधानता दिखती है। पारिवारिक निर्णयों व आर्थिक मामलों में पुरुषों और घर के प्रमुख के निर्णय ही स्वीकार्य होते हैं। ऐसा नहीं है कि पारिवारिक मामलों में महिलाओं की राय नहीं ली जाती है। समाज की मुख्य धारा से जुड़ने के कारण इस जनजाति की सामाजिक स्थिति में भी बदलाव आया है। महिलाओं की पारिवारिक मामलों में भागीदारी बढ़ी है। पारिवारिक निर्णयों के साथ-साथ अब महिलाएं घर के आर्थिक मामलों में भी अहम भूमिका निभा रही हैं। महिलाएं मुख्यतः मजदूरी करके ही घर के खर्चे को चलाती हैं, लेकिन राजि महिलाएं स्वयं सेवी संस्थाओं के साथ जुड़ कर स्वयं सहायता समुहों के माध्यम से बचत कर रही हैं और परिवार की आर्थिक गतिविधियों में अहम भूमिका निभा रही हैं। राजि पुरुषों द्वारा मदिरा का अधिक मात्रा में सेवन व गिरते स्वास्थ्य के कारण परिवार की आर्थिक जिम्मेदारी का बोझ महिलाओं पर आ गया है। ऐसा नहीं है कि महिलाएं रोगग्रस्त नहीं हैं, परन्तु वे कठिन शारीरिक श्रम करने के लिए मजबुर हैं। सांस्कृतिक व धार्मिक गतिविधियों में पुरुष व महिलाएं बराबर की भागीदारी करती हैं। प्राथमिक स्तर की शिक्षा लगभग सभी राजि ग्रहण कर रहे हैं। मुख्य धारा में जुड़ने के कारण इस जनजाति का बाहरी समाज के साथ एक संतुलित तालमेल बना है।

व्यवसाय व आर्थिक स्थिति

राजी आर्थिक रूप से आखेट एवं वन संग्राहक जनजाति है जो पहले ''अदृश्य व्यापार'' अर्थात् पारस्परिक विश्वास एवं भरोसे पर निकट के व्यापार करते थे। कृषि पर निर्भरता न होने के कारण ये पशु-पक्षी का शिकार करके भी भोजन समस्या का निराकरण करते थे। जलवायु सम्बन्धित दशाओं का नितान्त अभाव होने के कारण कृषि व्यवसाय का तरीका अब भी आदिम अवस्था के समरूप है। इसलिये भूमि होते हुये भी ये कृषि का कार्य सफलतम रूप में नहीं कर पाते और जमीन बंजर ही पड़ी रहती है। अब धीरे-धीरे ये लोग गाय, भैंस आदि जानवर भी पालने लगे है। ये गाय का पालन बैल (बडड़ा) प्राप्त करने के लिये अधिक करते हैं क्योकि ये बैलों से खेत जोतते है तथा आवश्यकता पड़ने पर उसे बचे कर अपनी आवश्यकता की पूर्ति भी करते है।

राजियों की अर्थव्यवस्था में प्रमुख दैनिक मजदुरी और लकड़ियों का कारोबार, जिसमें इमारती लकड़ी से लेकर दैनिक उपयोग में आने वाली लकड़ी है। कृषि कार्य के उपकरण भी ये लोग बड़ी कलात्मकता के साथ बनाते है।

अभ्यास प्रश्न-1

1. जनजातीय समूहों को भारतीय संविधान के अनुच्छेद.....के तहत् अनुसूचित जनजाति घोषित किया गया है।

2. जौनसारी जनजाति उधम सिंह नगर जिले के खटीमा व सितारगंज क्षेत्रों में निवास करती है। सही/गलत

3. कौन सी जनजाति अपने को पांडव का वंशज मानती है?

क. थारु ख. बुक्सा

ग. जौनसारी घ. भोटिया

4. किस नदी घाटी क्षेत्र को दारमा घाटी कहा जाता है?

5. उत्तराखण्ड की किस जनजाति के प्राकृतिक आवास गुफाएं(उडियार) हैं?

क. थारु ख. भोटिया

ग. राजि घ. जौनसारी

19.3 जनजातीय विकास हेतु योजनाएं

भारत एक ग्राम प्रधान देश है। इसकी समृद्धि ग्रामीण क्षेत्रों की समृद्धि पर निर्भर है। सम्भवतः ग्रामीण क्षेत्रों का विकास तभी हो सकता है जब राष्ट्रीय स्तर पर गाँवों में समाज सुधार तथा कल्याणकारी कार्यक्रमों को प्रोत्साहन दिया जाय।

जनजातीय क्षेत्रों में समाज सुधार तथा कल्याण के कार्यक्रमों की सफलता राजकीय सहायता और प्रशासनिक योजनाओं पर ही निर्भर नहीं करती बल्कि इन क्षेत्रों में ऐसे लोग कल्याणकारी कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए आम व्यक्ति को उस ओर प्रेरित करना जरूरी होता है, इसके लिए आवश्यक है कि उन्हें ऐसे कार्यक्रमों के लाभ ओर दूरगामी परिणामों से अवगत कराया जाय। लोक कल्याणकारी कार्यक्रमों के उचित क्रियान्वयन के लिए सरकारी मशीनरी पूरी तौर से सक्षम नहीं हो सकती। इसके लिए क्षेत्र के सक्षम व्यक्तियों में सेवाभावों को उत्पन्न कराना आवश्यक होता है। जनजाति समाज के लोक कल्याणकारी और समाज सुधार कार्यों की सफलता में अभिजन वर्ग की भूमिका निर्णायक होती है। जनजातीय क्षेत्र में चलाये जाने वाले समाज सुधार के कार्यक्रम, प्रायः वहाँ की परम्पराओं और रूढ़ियों के विपरीत होते है। अतः ऐसे किसी भी कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिए आवश्यक हो जाता है कि जनजातीय अभिजन वर्ग को विश्वास में लिया जाय।

19.3.1 जनजातीय विकास में पंचवर्षीय योजनायें

जनजातियों की स्थिति को उभारने के लिये सरकार का ध्यान स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही इनके विकास की ओर केन्द्रित हो गया था। देश की समस्त जनजातियों के राष्ट्र की मुख्यधारा से न जुड़ पाने के कारण पंचवर्षीय योजनाओं में इनके कल्याण हेतु कार्यक्रम बनाये गये। पहली पंचवर्षीय योजना में अनुसूचित जनजातियों एवं पिछड़े वर्गों की जरूरतों को पूरा करने के लिए पिछड़े वर्गों का एक क्षेत्र शामिल किया गया था, उस समय यह सोचा गया था कि सामान्य विकास कार्यक्रमों को इस प्रकार से बनाया जाय ताकि वे पिछड़े वर्गों की जरूरतों का ध्यान रख सकें और पिछड़े वर्गों के लिये विशेष प्रावधान संवर्धनकारी हो और इनका उपयोग जहाँ तक सम्भव हो, इन वर्गों के विकास की जरूरतों को पूरा करने के लिये किया जा सके। इस संदर्भ में अनुसूचित जातियों के लिये पांचवी

योजना के दौरान आदिवासी उपयोजना और छठी योजना में विशेष घटक योजना शुरू की गयी ताकि अनुसूचित जनजातियों के लाभ के लिये विकास कार्यक्रमों को सरल बनाया जा सके और उसकी निगरानी की जा सके।

19.3.2 अनुसूचित जनजातियों के लिये चलाये जा रहे कल्याणकारी योजनाएं

अनुसूचित जनजातियों के विकास के लिये जनजातियों के मेट्रिकोत्तर(हाई स्कूल से आगे) शिक्षा के मौजूदा कार्यक्रम को भी जारी रखा गया। आवासीय स्कूलों, जिनमें आश्रम पद्वति स्कूल भी शामिल हैं, का विस्तार किया गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत जनजातीय क्षेत्रों में प्राथमिक स्कूल खोलने को भी प्राथमिकता दी गयी। अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण को भी ध्यान में रखा गया और उसके अनुसार ही प्रारम्भिक अवस्था पाठ्यक्रमों का विकास किया गया तथा जनजातीय भाषाओं में प्रशिक्षण तैयार किया गया। प्राथमिकता के आधार पर जनजाति क्षेत्रों में आँगनवाड़ियों, औपचारिक तथा प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की गयी। इसके अतिरिक्त, शिक्षा के सभी चरणों पर पाठ्यक्रमों को इस तरह बनाया गया ताकि जनजाति लोगों की समृद्ध साँस्कृतिक पहचान और उनकी विशाल सृजनात्मक प्रतिभा के प्रति उनमें जागरूकता पैदा हो सके।

अनुसूचित जनजातियों के सम्बन्ध में लघु वन उत्पाद पर एक नई नीति बनायी गयी। इस उद्देश्य के लिये क्षेत्र में सहकारी ढ़ाँचे को उपयुक्त रूप से पुनः निर्मित तथा पुनः संचारित किया गया तथा जनजातियों हेतु विभिन्न व्यवसायिक समूहों के लिये सहकारी समितियाँ बनायी गई। उनमें प्रशिक्षण तथा उद्यमशीलता के विकास के माध्यम से अनिवार्य उत्पादक तथा प्रबंधकीय कौशल का विकास किया गया जिससे इनमें स्व-रोजगार की प्रवृत्ति बढ़ी है। उपभोग तथा उत्पादन के प्रयोजन हेतु ऋण प्राप्ति के लिये सीमित पहुँच का परिणाम यह हुआ कि जनजातियों को साहूकारों/व्यापारियों पर निर्भर रहना पड़ता है, जिसके फलस्वरूप साहुकारों तथा व्यापारियों के ऋणों को चुकाने के लिये विकास के लाभों का सीमित हो जाना व भूमि तथा अन्य सम्पत्तियों के रूप में संसाधन आधार का नुकसान होना है। आठवीं योजना में एक आवश्यक लक्ष्य यह रख गया था कि बैंकों तथा सहकारी संस्थानों द्वारा अधिक ऋण उपलब्ध कराने का मार्ग प्रशस्त करना। आदिम आदिवासी समूहों के लिये जहाँ सम्भव है, परिवार को एकक के रूप में लेते हुए उनके आर्थिक विकास के लिये विस्तृत योजनायें बनायी गयी। आन्तरिक संरचना तथा विकासीय आवश्यकताओं की विशेष रूप से पहचान की गयी तथा एकीकृत योजना का विकास किया गया। इसके अतिरिक्त वे वन-गाँव, जिनकी संख्या लगभग 5000 है और जिनमें 2 लाख से भी अधिक आदिवासी/जनजाति लोग रहते हैं, और बड़ी संख्या में सामान्य लाभ से वंचित रहते हैं, कृषि मंत्रालय ने मार्च, 1984 से भी अधिक वर्षों से है। दीर्घ अवधि, जैसे 15 से 20 वर्षों तक वंशागत किन्तु हस्तान्तरण योग्य अधिकार देने का सुझाव दिया था।

19.3.3 उत्तराखण्ड में चल रही कल्याणकारी व विकासोन्मुख योजनायें

केन्द्र तथा राज्य सरकार द्वारा जनजातीय विकास के लिये अनेकों योजनाएं चल रही है। सरकार द्वारा चलायी जा रही योजनाओं में जनजातियों के चहुमुखी विकास का लक्ष्य रखा गया है इनके आर्थिक विकास के लिये अनेकों ऐसी व्यवसायिक योजनायें चालायी गयी जिससे इनका आर्थिक उत्थान हो सके। आर्थिक उत्थान के दृष्टिकोण से सरकार ने इनके पारम्परिक व्यवसाय में ही आधुनिकीकरण करके इनको आर्थिक रूप से समृद्ध करने का प्रयास किया है। कुमाऊँ की भौगोलिक स्थिति के आधार पर यहाँ की जनजातियों को उनके अनुरूप ही योजना बना कर उनके विकास का लक्ष्य रखा। कुमाऊँ की प्राकृतिक संपदा से निर्मित वस्तुओं के उचित खरीद के लिये सरकार ने

बाजारों में जनजाति के द्वारा बनाये माल के लिए बाजार निर्मित किये गये हैं। इन बाजारों में इनके द्वारा निर्मित वस्तुओं को बेचा जाता है और उत्पन्न आय से पुनः इन जनजातियों हेतु कच्चा माल खरीदा जाता है। इस क्रम के चलते इनमें आर्थिक विकास तो निश्चित तौर पर होता ही है, साथ ही वर्तमान स्थितियों की समझ भी उत्पन्न होती है। कुमाऊँ के उत्तर में रह रही भोटिया जनजाति में इनके परम्परागत व्यवसाय को देखते हुए इनके लिये ऊन वृहत योजना, रामबाँस योजना, पश्मिना उत्पादन परियोजना, तिब्बतीयन ऊन वृहत उद्योग योजना का संचालन किया है, जिसके तहत इनको ऊन और अन्य कच्चा माल दिया जाता है तथा इस कच्चे माल से ये जनजाति अपने परम्परागत शैली में दक्ष बनाते हैं और फिर इन्हें बाजार में बेचने हेतु लाया जाता है।

कुमाऊँ के तराई में रह रही थारू तथा बोक्सा जनजाति के लिये उनके भिन्न भौगालिक परिवेश को देखते हुए सरकार द्वारा योजनायें बनायी गयी हैं, जैसे -डवाकरा, डनलप कार्ड, लघु उद्योग हेतु ऋण, डेरी खोलना एवं क्षेत्रीय स्तर पर प्राप्त कच्चे माल से वस्तुऐं निर्मित करना इत्यादि। कई जनजाति परिवार इन सरकारी योजनाओं से लाभान्वित भी हुए हैं। कुमाऊँ की सर्वाधिक पिछड़ी जनजाति राजी आज भी विकास की धारा से बिल्कुल परे है तथा इन्हें योजनाओं की अधिक जानकारी भी नहीं है।

19.4 जनजातीय विकास हेतु प्रशासनिक तंत्र

19.4.1 औपनिवेशिक काल में प्रशासनिक तंत्र

अंग्रेज शासकों ने अपने हितों की पूर्ति के लिए जनजातियों को लेकर काल्पनिक बातों और अंधविश्वासों को फैलाना प्रारम्भ किया। अंग्रेजों ने पूर्ण प्रयास किया कि आदिवासी समुदाय शेष भारतीय जनसमूह के सम्पर्क में न रहे, इसका कारण जनजातियों की शक्ति व क्षमता थी, जो कि किसी भी राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हो सकती थी। इस कारण प्रारम्भ में ब्रिटिश प्रशासक और ईसाई मिशनरियां ही जनजातीय क्षेत्रों का भ्रमण कर सकते थे।

भारत में साम्राज्य के सुदृढीकरण के अपने प्रयासों में अंग्रेजों का मुकाबला राजमहल की पहाड़ियों (बंगाल) में रहने वाले ''पहाड़िया'' जनजाति से भी हुआ। यह जनजाति आक्रामक प्रवृत्ति की थी और हिन्दू जमींदारों के विरूद्ध आक्रामक नीति का अनुसरण किया, किन्तु शीघ्र ही आक्रमक नीति का परित्याग करके कूटनीति का सहारा लिया गया जिसमें जनजाति के मुखियाओं को सभी प्रकार के उपद्रवों की सूचना देने का उत्तरदायित्व दिया गया।

शोषण की शिकार कुछ जनजातियों ने भी ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ विद्रोह किए, इनमें 1931 में सिंहभूमि का ''हो'' विद्रोह, तथा 1855 का प्रसिद्ध ''संथाल विद्रोह'' प्रमुख हैं। जनजातियों के इन विद्रोहों के पिछे कारण था उनका आर्थिक एंव सामाजिक शोषण। ऐसी स्थितियों में ब्रिटिश सरकार ने अलग-थलग पड़े जनजातीय क्षेत्रों के लिए विशेष व्यवस्था का प्रावधान किया। अन्ततः अंग्रेजी सरकार ने जनजातियों के जीवन तथा रूचियों को सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से इन्हें विशेष क्षेत्रों में विभाजित करने की नीति निर्धारित की। इस उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए सन 1874 में एक अधिनियम पारित किया गया जिसके द्वारा जनजातीय क्षेत्रों को अनुसूचित जिलों के रूप में विभाजित किया गया। भारत सरकार के अधिनियम 1919 की धारा 52 ए के अन्तर्गत यह क्षेत्र पुनः संघटित किए गए। इस अधिनियम के अन्तर्गत ऐसे अधिकारियों की नियुक्ति का प्रावधान किया गया जो दीवानी, फौजदारी मामलों में न्याय, सार्वजनिक राजस्व वसूली, कर निर्धारण तथा किराये से सम्बन्धित सभी विषयों की देख-रेख करें तथा अनुसूचित जिले का प्रशासन भी संभाले। इसके अतिरिक्त इस अधिनियम में उचित प्रतिबन्धों तथा परिवर्तनों

के साथ अधिकारियों के कार्य-क्षेत्र में वृद्धि करने का भी प्रावधान था। इस प्रकार सरल आदेशों द्वारा अधिशासियों को बड़े तथा विस्तृत अधिकार दिए गए। स्वतंत्रता आन्दोलन की गति के साथ-साथ अंग्रेज शासकों की चिन्ताएं भी बढ़ने लगी। वे जनजातियों को राष्ट्र की मुख्यधारा से पृथक रखना चाहते थे। भारतीय वैधानिक कमीशन (साइमन कमीशन) ने सलाह दी थी कि वित्तीय तथा संवैधानिक आधारों पर जनजातीय क्षेत्रों का उत्तरदायित्व केन्द्र पर होना चाहिए। सन 1935 में जनजातियों पर विशेष ध्यान देने के उद्देश्य से बनाए गए प्रावधान के अन्तर्गत जनजातीय क्षेत्रों को पूर्ण व आंशिक रूप से अलग क्षेत्रों में परिवर्तित किया गया।

उत्तराखण्ड के तराई-भाबर क्षेत्रों में वनों के भीतर रहने वाली थारू और बुक्सा जनजाति स्वभाव से ही सीधी-सादी और सरल स्वभाव की थी। उनमें न तो अन्य जनजातियों के समान आक्रामकता थी न ही वे अपने क्षेत्र में बाहरी हस्तक्षेप व शोषण के विरूद्ध संगठित होकर खड़े हुए। फलस्वरूप अंग्रेज प्रशासकों द्वारा उनकी घोर उपेक्षा प्रारम्भ हो गई। तराई-भाबर में उनकी भूमि पर बाहरी लोगों को बसाया गया और उनके द्वारा बड़े पैमाने पर यहां पर कृषि कार्य किया जाने लगा, जिस कारण जनजातियों की दशा दिन-प्रतिदिन खराब होती गई तथा उनकी आर्थिक स्थिति बहुत कमजोर हो गई। अपनी आजीविका के लिए जनजातियों को बाहरी लोगों के यहां मजदूर के रूप में कार्य करने के लिए बाध्य होना पड़ा। एक समय जिस घर में उनकी भूमिका स्वामी की थी वहीं पर वे सेवक की भूमिका निभाने के लिए बाध्य कर दिए गए थे। तराई-भाबर की इन जनजातियों को यदि अपने मिटने का अहसास होता तो सम्भव है तराई-भाबर का इतिहास जिस रूप में आज हमारे सम्मुख है वह इस रूप में नहीं होता।

19.4.2 स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात का प्रशासनिक तंत्र

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जनकल्याण की भावना ने पूरे देश में व्यापक रूप से स्थान बनाया और 26 जनवरी 1950 की संविधान सभा में पारित विभिन्न प्रावधानों द्वारा इसकी पुष्टि हुई। इन प्रावधानों से भारतीय जनजातीय जनसंख्या को राष्ट्र की मुख्य धारा में मिलाने के कार्यो को बल मिला। जनजातियों को शेष जनसंख्या के स्तर तक लाने के उद्देश्य से संविधान में इन जनजातियों को 10 वर्षो तक के लिए विशेष सुविधाएं तथा सुरक्षा प्रदान की गई। इस अवधि में समय-समय पर अब तक वृद्धि की जाती रही है। जनजातियों की सुरक्षा तथा विकास के उद्देश्य से सन 1951 में, जनजातीय कल्याण विभाग की स्थापना की गई। अनुच्छेद 244 के अन्तर्गत आसाम के अतिरिक्त जनजातीय क्षेत्रों का प्रशासन पांचवी अनुसूची तथा आसाम के जनजातीय क्षेत्रों का प्रशासन संविधान की छठी अनुसूची के अनुसार किया जाना सुनिश्चित किया गया।

राज्यों में जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के लिए राज्यपाल को अधिकार दिया गया कि-

अ-जनजातियों पर लागू होने वाले केन्द्र तथा राज्य के नियमों की विधि में परिवर्तन कर सके।

ब-उनकी शान्ति तथा अच्छे प्रशासन के लिए नियम बनाना, इनके अधिकारों की रक्षा करना, बेकार भूमि के आवंटन में सहायता करना तथा साहूकारों से बचने में उनकी सहायता करना।

इसके अतिरिक्त संविधान में जनजातियों के अधिकारों की सुरक्षा, उनकी सामाजिक व सांस्कृतिक धरोहरों को सुरक्षित बनाए रखने के उद्देश्य से भी पर्याप्त प्रावधान किए गए हैं।

अनुसूचित क्षेत्रों की रचना दो स्पष्ट उद्देश्यों के आधार पर की गई थी पहला जनजातियों को उनके अधिकारों के प्रयोग में सहायता करना तथा दूसरा उद्देश्य अनुसूचित क्षेत्रों के विकास व अनुसूचित जनजातियों की आर्थिक, शैक्षिक तथा सामाजिक प्रगति में सुधार लाना था।

जनजातीय क्षेत्रों के लिए अनुपयुक्त विधानों की जांच उनकी शान्ति तथा अच्छे प्रशासन के लिए विनियमों की संरचना का कार्य दिया गया। राज्य की सीमाओं में रहने वाली सभी अनुसूचित जनजातियों के कल्याण तथा विकास के लिए विशेष योजनाओं को लागू करने का उत्तरदायित्व भी राज्य सरकार का है और राज्य सरकारों के लिए अतिरिक्त धनराशि प्रदान करने का उत्तरादायित्व केन्द्र सरकार का है। किसी भी योजना को लागू करने के सम्बन्ध में राज्य सरकार को निर्देश देने तथा जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन से सम्बद्ध प्राथमिकताओं की सूची बनाने में राज्य सरकार का मार्गदर्शन करने का अधिकार केन्द्र सरकार को प्राप्त है।

अभ्यास प्रश्न-2

1. उत्तराखण्ड की सबसे पिछड़ी जनजाति.....जनजाति है।
2. ब्रिटिश शासन के विरुद्ध 1855 का प्रसिद्ध जनजाति विद्रोह कौन सा है?
3. जनजातीय कल्याण विभाग की स्थापना की गयी?

क. सन1951 ख. सन1955

ग. सन1960 घ. सन1965

19.5 सारांश

जनजातीय समाज अपनी अनुठी परम्परा और अपने प्राकृतिक आवासों अपनी अमुल्य संस्कृति, अपनी भाषा के लिए जानी जाती हैं। जनजातीय समाज की अपनी एक अलग पहचान है। किन्तु सभ्य समाज और विकास की धारा से जुड़ने के कारण आज जनजातियां आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्रों में अपनी पहचान बनाने के लिए प्रयासरत हैं। उत्तराखण्ड राज्य में पॉच प्रकार की जनजातियॉ हैं। इनमें से राजि(वनरावत) और बुक्सा जनजातियों की गिनती पिछड़ी जनजातियों के रुप में की जाती है। आर्थिक, सामाजिक व शैक्षणिक रुप से पिछड़ी ये जनजातियॉ आज विकास की मुख्य धारा में शामिल नहीं है। संविधान के अन्तर्गत किये गये प्रावधानों, विभिन्न सरकारी विकास योजनाओं, जनकल्याणकारी योजनाओं के चलने के उपरान्त भी ये जनजातियॉ कठिन भौगोलिक क्षेत्रों में निवास के कारण विकास की दौड़ में पिछे हैं। उत्तराखण्ड की अन्य जनजातियॉ जौनसारी, भोटिया और थारु समाज की मुख्य धारा से कुछ हद तक जुड़ पाये हैं।

19.6 शब्दावली

सर्वमान्य शक्ति- जो शक्ति सबको मान्य हो

झुम कृषि- इस प्रकार की कृषि में एक स्थान पर कृषि करने के उपरान्त उस स्थान पर आग लगाकर उसे छोड़ दिया जाता है और अन्य स्थान पर जाकर कृषि की जाती है।

पित्र सत्तात्मक- पुरुष प्रधान व्यवस्था

हस्तांतरण- सौंपना

अग्रज- बड़ा

बाजगी- बाजा बजाने वाला

संवर्धनकारी- बढावा देना

सृजनात्मक- रचनात्मक

सामाजिक विधान- सामाजिक नियम-कानून

पुनः निर्मित तथा पुनः संचारित- दुबारा निर्माण तथा दुबारा शुरु करना

वन गांव- वनों के नजदीक व वनों से घिरे गांव

वहिर्विवाही- बाहरी समाज के साथ होने वाले विवाह संबंध

अन्तर्विवाही- अपने ही लोगों के बीच में होने वाले विवाह संबंध

अदृष्य व्यापार- यह व्यापार उत्तराखण्ड की आदिम जनजाति राजि(वनरावत) और समीप अन्य जाति के गांव के लोगों के बीच एक एसा व्यापार था जो विश्वास और भरोसे पर टिका हुआ था। जिसमें राजि जनजाति अपने द्वारा बनाये गये समान को समीप अन्य जाति के घरों के आगे रख देते थे और उसके बदले में खाने-पीने के अन्य सामान को ले जाते थे। यह व्यापार रात को अंधेरे में ही होता था।

19.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1

1. अनुच्छेद 342 2. गलत 3. ग. जौनसारी 4. धौला नदी घाटी क्षेत्र 5. ग. राजि

अभ्यास प्रश्न-2

1. राजि जनजाति 2. संथाल विद्रोह 3. सन1951

19.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. तराई के वन और वनवासी, डॉ अजय एस रावत
2. हिमालय में उपनिवेशवाद और पर्यावरण, सुरेन्द्र सिंह बिष्ट
3. प्रोजेक्ट कार्य- उत्तराखण्ड का संकटग्रस्त आदिम समाज वनराजि, डॉ पुष्पेश पाण्डे
4. जनजातीय विकास-मिथक एवं यथार्थ, नरेश वैद्यय
5. शोध कार्य- अनुसूचित जनजातियों की राजनीतिक सहभागिता (कुमाऊँ की जनजातियों के विशेष संदर्भ में), डॉ भुवन तिवारी
6. शोध पत्र- ए ट्राईब ऑफ उत्तराखण्ड एप्रोच टू ट्राईबल वैलफेयर, डॉ पुष्पेश पाण्डे

19.9 सहायक / उपयोगी पुस्तकें

1.भारतीय आदिवासी- उनकी संस्कृति और सामाजिक पृष्ठ भूमि एल.पी. विद्यार्थी

2.नैनीताल की बुक्सा जनजाति बालादत्त दानी

3.जनजातीय समाज हरीश चन्द्र उप्रेती

4.ट्राईब्स ऑफ उत्तरांचल डॉ0 बी0 एस0 बिष्ट

5.मध्य हिमालयी जौनसार भाभर ऑंचल (कल और आज) 'जौनसारी जनजाति का समग्र अध्ययन प्रो0 गिरधर सिंह नेगी एवं डॉ मुजुल जोशी।

19.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. जनजातीय समाज क्या है? उत्तराखण्ड की प्रमुख जनजातियों के विषय में विस्तार से चर्चा कीजिए।
2. जनजातीय विकास के लिए क्या-क्या योजनाएं है?
3. जनजातीय विकास हेतु प्रशासनिक तंत्र की विस्तार से चर्चा कीजिए।

इकाई- 20आपदा प्रबन्धन

इकाई की संरचना

20.0 प्रस्तावना
20.1 उद्देश्य
20.2 आपदाओं के प्रकार
20.2.1 प्राकृतिक आपदाओं के प्रकार
20.2.2मानवजनित आपदाओं के प्रकार
20.3 आपदा प्रबन्धन
20.3.1 आपदा आने से पूर्व का प्रबन्धन
20.3.2आपदा आने के बाद का प्रबन्धन
20.4 आपदा प्रबन्धन से सम्बन्धित कार्यकलाप
20.5 विश्व स्तर पर आपदा प्रबन्धन के कार्यक्रम
20.6 भारत के सम्बन्ध में आपदा प्रबन्धन
20.7 सारांश
20.8 शब्दावली
20.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
20.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
20.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
20.12 निबंधात्मक प्रश्न

20.0 प्रस्तावना

सामान्य भाषा में आपदा (Disaster) का अर्थ है मुसीबत या संकट। पर्यावरण में हुए अचानक, अकल्पनीय बदलावों को जिससे अपार जन-धन की क्षति होती है को पर्यावरणीय प्रकोप कहा जाता है। यद्यपि इन चरम घटनाओं को व्यक्त करने के लिए तीन वैकल्पिक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जैसे- पर्यावरण प्रकोप (Envirnoment Harzard), पर्यावरण आघात (Environmental Stresses) तथा पर्यावरण विनाश/आपदा (Environmental Disaters) परन्तु वर्तमान में पर्यावरणीय विनाश/आपदा को ही सामान्य बोलचाल की भाषा में प्रयोग किया जाता है।

पर्यावरण प्रकोपों की तीव्रता का आकलन उनके द्वारा की गयी जन-धन की क्षति की मात्रा के आधार पर किया जाता है। अतः सभी चरम घटनाएँ सदैव प्रकोप नहीं होती हैं। यह उसी समय प्रकोप या आपदा होती है जबकि इनके द्वारा मानव समाज को क्षति पहुँचायी जाती है। इस प्रकार प्राकृतिक या मानव जनित चरम घटनाओं को जिनके द्वारा प्रलय एवं विनाश की स्थिति हो जाती है तथा जन-धन की क्षति होती है, को पर्यावरणीय प्रकोप या विनाश कहते हैं।

न्छक्त्व् (United Nations Disaster Relief Coredinator) की एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व में घटने वाले समस्त प्राकृतिक आपदाओं का 90 प्रतिशत विकासशील देशों या तीसरी दुनियाँ के देशों में घटित होता है, क्योंकि अधिकांश विकासशील देश उष्ण एवं उपोष्ण प्रदेशों में स्थित हैं जहाँ वायुमण्डलीय प्रक्रमों द्वारा आये दिन कई प्रकार की प्राकृतिक आपदाएँ उत्पन्न होती रहती हैं, जैसे- बाढ़, सूखा, वनाग्नि आदि। यद्यपि यह रिपोर्ट पूर्ण रूपेण सत्य नहीं है क्योंकि आपदाओं को किसी भी राजनैतिक या आर्थिक सीमा के अन्तर्गत नहीं बाँधा जा सकता है।

M. Hashizume (1989) के अनुसार विकासशील देश प्रकोपों से प्रायः पीड़ित रहते हैं। वास्तव में वे प्रकोपों के साथ रहते हैं। क्योंकि विकासशील देश आर्थिक विकास की गति को तीव्रता से पाने की होड़ में प्राकृतिक/पर्यावरणीय शक्तियों का आकलन किये बिना ही परियोजनाओं का विस्तार करते जाते हैं।

यद्यपि इन प्राकृतिक व मानवजनित चरम विनाशकारी घटनाओं को पूर्णतया नहीं रोका जा सकता है परन्तु मजबूत सूचना तंत्रों, वैज्ञानिक उपकरणों तथा सुनियोजित योजनाओं के द्वारा इन आपदाओं से होने वाली क्षति को न्यूनतम करने के प्रयास को ही आपदा प्रबन्धन कहा जाता है।

किसी भी प्रबन्धन जिसके लिए प्रबन्धन किया जाता है की विषय वस्तु से अवगत होना आवश्यक होता है। इसी प्रकार आपदा प्रबन्धन हेतु आपदा के स्वरूपों, आपदा के कारणों को जानना तथा उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है ताकि उनका उचित प्रबन्धन किया जा सके।

TORIORDAN (1971) के अनुसार ''प्रबंधन का तात्पर्य होता है विभिन्न वैकल्पिक प्रस्ताव में से उपयुक्त प्रस्तावों का विवेकपूर्ण चयन करना ताकि वह निर्धारित एवं इच्छित उद्देश्यों की पूर्ति कर सके, जहां तक सम्भव होता है प्रबंधन के अन्तर्गत अल्पकालिक (Shortterm) उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एक या कई रणनीतियां अपनायी जाती है किन्तु दीर्घकालीक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी भरपूर व्यवस्था रहती है।''

20.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

1. आपदा किसे कहते हैं तथा आपदा प्रबन्धन के बारे में समझ सकेंगे।
2. आपदा के स्वरूपों के बारे में, उनसे घटित होने वाली धन-जन की हानि के बारे में समझ सकेंगे।
3. प्राकृतिक व मानवीय आपदाओं के अन्तर को स्पष्ट कर पायेंगे।
4. अन्त में आप आपदा-प्रबन्धन के सम्बन्ध में सुस्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेंगे

20.2 आपदाओं के प्रकार

उत्पत्ति के कारकों के आधार पर आपदा को दो वर्गों में बाँटा जाता है।

1.प्राकृतिक आपदा।

2.मानव जनित आपदा।

20.2.1 प्राकृतिक आपदाओं के प्रकार

निम्न चार्ट द्वारा आपदा के कारकों को ज्यादा अच्छी तरह समझा जा सकता है-

1.ग्रहीय प्राकृतिक प्रकोप/आपदाएँ

2.पृथ्व्येत्तर प्राकृतिक प्रकोप।

1.ग्रहीय प्राकृतिक आपदाएँ ग्रहीय प्राकृतिक आपदाएँ वे आपदाएँ हैं जो पृथ्वी के अन्तरतम् से तापीय दशाओं के कारण उत्पन्न होती हैं। मुख्यतः ज्वालामुखी, भूकम्प, बड़े पैमाने पर होने वाले भूस्खलन , हिमस्खलन आदि को सम्मिलित किया जाता है।

2.पृथ्व्येत्तर प्राकृतिक प्रकोप/आपदाएँ : वायुमण्डलीय दशाओं द्वारा जन्म लेती हैं।

पार्थिक प्राकृतिक प्रकोप

अधिकांशतः प्राकृतिक आपदाओं की उत्पत्ति महाद्वीपीय एवं महासागरीय प्लेटों के संचलन से होती है और इन प्लेटों का संचलन पृथ्वी के आन्तरिक भाग में तापीय दशाओं के कारण उत्पन्न संवहनीय तरंगों के कारण होता है। इन आपदाओं में भूकम्प तथा ज्वालामुखी सर्वाधिक विनाशकारी होते हैं। अतः इन आपदाओं के बारे में विस्तृत रूप से जानना भी आवश्यक है।

भूकम्प

भूकम्प का आगमन पृथ्वी के आन्तरिक भाग में तापीय दशाओं में परिवर्तन एवं विवर्तनिक घटनाओं के कारण होता है। भूकम्प की तीव्रता तथा परिणाम का मापन रिक्टर मापक के आधार पर किया जाता है। भूकम्प की उत्पत्ति केन्द्र की भूकम्प मूल कहते हैं। भूकम्प मूल इस तरह सदा धरातलीय सतह के नीचे रहता है। धरातलीय सतह के जिस भाग पर सर्वप्रथम भूकम्पी तरंगों को अंकित किया जाता है, अधिकेन्द्र कहा जाता है।

भूकम्पों की तीव्रता तथा उसके आपदापन्न प्रभावों का निर्धारण भूकम्पनीय तीव्रता के आधार पर नहीं किया जाता है बल्कि किसी क्षेत्र विशेष में धन-जन की क्षति की मात्रा के आधार पर किया जाता है। कोई भूकम्पनीय आपदा उस समय अधिक होती है जब किसी घने आबादी क्षेत्र में भूकम्प आता है।

कभी-कभी साधारण भूकम्प भी आपदापन्न प्रकोप बन जाता है। जब उसके प्रभाव द्वारा भूस्खलन, बाढ़, आग, सुनामी तरंगों की उत्पत्ति होती है तो ये घटनाएं अपार हानि का कारण बन जाती हैं।

ज्वालामुखी

ज्वालामुखी भी प्राकृतिक आपदाओं में महत्वपूर्ण है परन्तु ज्वालामुखी भूकम्प प्रकोप के विपरीत आपदा भी होता है और मानव समाज के वरदान भी क्योंकि एक तरफ तो ज्वालामुखी के अचानक प्रचण्ड उद्गार तथा उससे निकलने वाला तृप्त लावा मानव बस्तियों, कृषि क्षेत्र, मानव सम्पत्ति आदि नष्ट हो जाती हैं तो दूसरी ओर ज्वालामुखी लावा के कारण उर्वरक मिट्टियों का निर्माण होता है। प्लेट विर्वतनिक सिद्धान्त के आधार पर ज्वालामुखी क्रिया एवं ज्वालामुखी उद्गार को स्पष्ट समझा जा सकता है।

ज्वालामुखी उद्गार प्लेटों के किनारों से पूर्णतया सम्बन्धित है। प्लेटों की सीमाओं, किनारों के प्रकार ज्वालामुखी-उद्गार की प्रकृति तथा तीव्रता को प्रभावित करते हैं।

ज्वालामुखी उद्भेदन से मानव समाज की भारी धन-जन की हानि होती है। विस्फोटक उद्गार, तप्त लावा के प्रवाह, विखंडित पदार्थों के नीचे गिरने, अग्निकाण्ड, विषाक्त गैसों की उत्पत्ति द्वारा मानवकृत संरचनाओं जैसे मकानों, कारखानों, रेलों, सड़कों, हवाई अड्डों, बाँधों, जलाशयों, वनों, मानव सम्पत्ति जन्तुओं तथा मानव जीवन की अपार क्षति होती है।

ज्वालामुखी के समय निकलने वाला तप्त एवं तरल लावे की अपार राशि तीव्र गति से धरातलीय सतह पर प्रवाहित होने से मानवकृत रचनाएँ लावा के नीचे दबकर नष्ट हो जाती हैं।

कभी-कभी ज्वालामुखियों का उद्गार इतना अचानक एवं प्रचण्ड होता है कि लोगों को अन्यत्र सुरक्षित स्थान पर जाने का समय ही नहीं मिल पाता। ज्वालामुखी के उद्भार के पहले तथा बाद में उत्पन्न भूकम्पों द्वारा जनित सुनामि के कारण तटवर्ती भागों में जान-माल की अपार क्षति होती है।

ज्वालामुखी उद्गार का पर्यावरणीय प्रभाव

ज्वालामुखी उद्गार तथा उससे सम्बन्धित क्रियाओं के कुछ ऐसे परिणाम होते हैं जिनसे कई प्रकार की पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

1.जोकुलहलुपस का निर्माण ज्वालामुखी क्रिया के दौरान तापमान में वृद्धि के कारण हिम चोटीयों के नीचे हिम के पिघलने के कारण विशाल जलराशि की स्थिति को श्रवानससीसंनचले कहते हैं। कभी-कभी हिम सतह के नीचे हिम द्रवित जल के आयतन में इतनी वृद्धि हो जाती है तथा उसका दबाव इतना अधिक हो जाता है कि ऊपर स्थित हिम की चादर टूटती है और तेजी से ऊपर उछलता हुआ बाहर निकलता है जिसकी गति 4.00,000 घन मी. प्रति सेकिण्ड होती है, जिससे अचानक पर्यावरणीय संकट पैदा हो जाता है।

2.ज्वालामुखी धूल तथा जलवायु परिवर्तनः ज्वालामुखी उद्गार के समय निकलने वाली धूल तथा राख की विशाल मात्रा के वायुमण्डल में पहुँचने पर मौसम तथा जलवायु में प्रादेशिक तथा विश्वस्तर पर परिवर्तन की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। सन1950 के बाद से उत्तरी गोलार्द्ध में घटित ज्वालामुखी-क्रिया में वृद्धि के कारण हुआ।

3.ज्वालामुखी उद्गार तथा पारिस्थितिकीय परिवर्तनः वैज्ञानिकों का मानना है कि ज्वालामुखी उद्गार से निकलने वाले धूल एवं राख के धरातल पर पुनः वापस आने से कुछ जातियाँ का सामूहिक विलोप हो जाता है। इस परिकल्पना के आधार पर कई वैज्ञानिकों का मत है कि आज से 60 मिलियन वर्ष पूर्व डायनासोर का सामूहिक विलय उस समय हुई अत्यधिक ज्वालामुखी क्रिया के कारण हुआ था। इसके अतिरिक्त विशाल लावा- राशि के

धरातलीय सतह पर फैलने के कारण वनस्पतियाँ तथा जीव-जन्तु नष्ट हो जाते हैं। जिस कारण पारिस्थितिकीय असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है।

2. वायुमण्डलीय या बहिजति प्राकृतिक आपदा -वायुमण्डलीय आपदाएँ तथा जलवायु की चरम घटनाओं से सम्बन्धित होती है। इन पर्यावरणीय प्राकृतिक प्रकोपों की उत्पत्ति वायुमण्डलीय प्रक्रमों द्वारा होती है। इन प्रक्रमों को दो भागों में बाँटा जा सकता है।

1.असामान्य तथा आकस्मिक (घटनाएँ) आपदाएँ इसके अन्तर्गत उष्ण कटिबन्धीय तूफान एवं चक्रवात (टाइफून, हरिफेन, टारनेड...) एवं प्रचण्ड वायुमण्डलीय बिजली व अग्निकाण्ड शामिल हैं ।

1. उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात: उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात सर्वाधिक शक्तिशाली विध्वंशक तथा प्राणघातक वायुमण्डलीय चक्रवात होते हैं। इनका औसत व्यास 650 किमी. तक होता है। उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात अपने उच्च वायु वेग 180 से 400 किमी. प्रति घंटा, उच्च ज्वारीय तरंग, उच्च जल वर्षा की तीव्रता 2000 मिलीमीटर प्रकृति की अत्यधिक न्यून वायु दाब तथा कई दिन तक स्थायी रहने के कारण प्रचण्ड आपदापन्न प्राकृतिक प्रकोप बन जाते हैं। उष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों की तूफानी जाति वाली हवाओं, मूसलाधार वर्षा तथा सागरीय जल के तटीय स्थलीय भाग पर अतिक्रमण आदि का सफल संचयी प्रभाव इतना अधिक हो जाता है किये चक्रवात प्रभावित क्षेत्रों में महाप्रलय उपस्थित कर देते हैं।

चक्रवातीय प्रकोप से भारत के पूर्वी तथा बांग्लादेश के दक्षिण तटीय भाग अक्सर प्रभावित होते हैं। बंगाल की खाड़ी में उत्पन्न होने वाले चक्रवात भारत के पूर्वी तटीय भागों को प्रायः दुष्प्रभावित करते हैं। इस भाग में प्रायः 12 से 13 महाविनाशकारी चक्रवात प्रतिवर्ष आते रहते हैं। 1970 से अब तक लाखों लोगों की मृत्यु हो गई है, मकान नष्ट हो गये तथा हजारों हेक्टेयर भूमि बर्बाद हो गयी। मिट्टी के ऊपर नमक की मोटी परत के जमाव के कारण अधिकांश तटीय भाग बंजर हो गया।

2.हरिकेन: हरिकेन प्रायः संयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिण तथा दक्षिण पूर्वी तटवर्ती भागों को प्रभावित करते हैं। हरिकेन से सबसे पीड़ित क्षेत्र लूसियाना, टैक्सास, अलबामा तथा फ्लोरिडा आदि हैं। उष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों की आवृत्ति के दृष्टिकोण से संयुक्त राज्य अमेरिका के लूसियाना प्रान्त में स्थित मिसीसिपी डेल्टा भारत एवं बांग्लादेश के गंगा डेल्टा के समान ही है परन्तु हरिकेन से होने वाली अपार जन-धन की हानि कम होती है क्योंकि विकसित देश होने के कारण तकनीकी में भी उन्नत है और चक्रवातों के आगमन की अग्रिम सूचना समय पर दे दी जाती है और लोग भारी आपदा सामना करने के लिए सावधान हो जाते हैं।

3.ट्रेसी चक्रवात: ट्रेसी चक्रवात।

4.टारनैडो: मुख्य रूप से दक्षिणी एवं पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका को प्रभावित करते हैं। स्थानीय प्रचण्ड तथा विनाशकारी तूफ़ानों में टारनैडो सबसे छोटे होते हैं। परन्तु मानव जीवन एवं सम्पत्ति की दृष्टि से सर्वाधिक घातक तथा खतरनाक होते हैं।

सामान्य रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका में टरनेंडो द्वारा प्रतिवर्ष 100 मिलियन डालर मूल्य की सम्पत्ति तथा 450 व्यक्तियों की मृत्यु होती है। टारनैडो का सर्वाधिक घातक भाग उसके साथ चलने वाले टारनैडो प्रक्षेपास्त्र ,टारनैडो की गति के कारण पेड़ उखड़ जाते हैं तथा भवनों की लोहे तथा चादरों की बनी छतें उखड़ जाती हैं। ये वस्तुएँ टारनैडो के साथ उसकी प्रचण्ड गति के कारण हवा के साथ तीव्र गति से उड़ती हुई चलती है (इन्हें टारनैडो मिसाइल कहते हैं।) और मानव जीवन को अपार क्षति पहुँचाती है।

स्थानीय प्रचण्ड विनाशकारी तूफानों में तडितझंझा को भी सम्मिलित किया जाता है।

संचयी वायुमण्डलीय प्रकोप

लम्बे समय तक बनी रहने वाली मौसम की घटनाओं के प्रभावों के संचयन के कारण उत्पन्न होने वाले प्रकोपों को संचयी वायुमण्डली प्रकोप कहते हैं। जब अति गर्म एवं अति शुष्क दशाएँ लगातार कई सप्ताह तक कायम रहती हैं तो ताप लहर के रूप में पर्यावरणीय प्रकोप उत्पन्न हो जाता है जिसका मनुष्यों, वनस्पतियों तथा जन्तुओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उत्तरी भारत के मैदानी भागों में मई तथा जून के महीनों में लू (स्ववव) इसका प्रमुख उदाहरण है।

इसी प्रकार कई सप्ताह तक अति शीत दशा के कारण प्रचण्ड हिमपात होने लगता है तथा शीत लहर के रूप में आपदापन्न/संकटापन्न स्थिति उत्पन्न हो जाती है। संचयी वायुमण्डलीय प्रकोपों में बाढ़ तथा सूखा, तापलहर तथा हिमपात एवं शीत लहर को सम्मिलित किया जाता है।

1. बाढ़ प्रकोपः बाढ़ का सामान्य अर्थ होता है विस्तृत स्थलीय भाग का लगातार कई दिनों तक जलमग्न रहना। वास्तव में बाढ़ प्राकृतिक पर्यावरण का एक गुण है तथा अपवाह बेसिन के जलीय चक्र का एक संघटक है।

बाढ़ एक प्राकृतिक घटना व अति जल वर्षा का परिणाम है। यह मात्र उस समय आपदा बन जाती है जब इसके द्वारा अपार धन-जन की हानि होती है। मानवीय क्रियाकलापों द्वारा बाढ़ के परिणाम आवृत्ति तथा विस्तार में वृद्धि हो जाती है। अतः बाढ़ प्रकोप प्राकृतिक एवं मानव जनित दोनों हैं।

अधिकतर बाढ़ का सम्बन्ध विस्तृत जलोद मैदानों में प्रवाहित होने वाली जलोद नदियों से होता है। विश्व के समस्त भौगोलिक क्षेत्रफल के लगभग 35 प्रतिशत क्षेत्र पर बाढ़ मैदान (थ्सववक च्संपदे) का विस्तार है जिसमें विश्व की लगभग 16.5 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है।

भारत में विध्वंशक बाढ़ एवं उनसे उत्पन्न प्राकृतिक पर्यावरण को क्षति तथा धन-जन की हानि पहुँचाने वाली प्रमुख नदियाँ गंगा, तथा उसकी सहायक यमुना, रामगगां, घाघरा, गोमती, गंडक, कोसी, दामोदर आदि उत्तर भारत में हैं। उत्तर पूर्वी भारत में ब्रह्मपुत्र तथा दक्षिण भारत में कृष्णा, गोदावरी, महानदी, नर्मदा, तापी आदि नदियों के डेल्टाई भाग हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका में मिसीसिपी, मिसौरी चीन में यांगसिटी तथा यलो नदी, बर्मा में इरावदी, पाकिस्तान में सिंध, नाइजीरिया में नाइजर, इटली में पो, ईराक में दजला, फरात आदि नदियां अपने अपवाह बेसिन में विध्वंशक बाढ़ का कारण बन जाती हैं।

बाढ़ के कारणः

यद्यपि नदियों की बाढ़ प्राकृतिक एवं मानव जनित दोनों कारकों का प्रतिफल है अतः जलोढ़ नदियों की बाढ़ों के वास्तविक कारण अत्यन्त जटिल हो जाते हैं। इन कारणों में प्राकृतिक एवं मानवजनित के सापेक्षिक महत्व में स्थानीय विभिन्नताएँ पायी जाती हैं।

नदियों में प्राकृतिक बाढ़ के कारण प्रमुख कारण-

1. लम्बी अवधि तक उच्च तीव्रता वाली जल वर्षा। घनघोर वर्षा।
2. नदियों के विसर्पित (घुमावदार) मार्ग।
3. विस्तृत बाढ़-मैदान।
4. नदियों की जलधारा की प्रवणता में अचानक परिवर्तन।

5. भूस्खलन तथा ज्वालामुखी-उद्गार नदियों के स्वाभाविक प्रवाह में अवरोध।
6. नदियों की घाटियों तथा जलधाराओं की विशेषताएँ।
1. निर्माण कार्य, नगरीकरण।
2. नदियों के जलमार्ग में परिवर्तन।
3. नदियों पर बाँधों, पुलों एवं भण्डारों का निर्माण।
4. कृषि कार्य, वन विनाश, भूमि उपयोग में परिवर्तन आदि प्रमुख कारण हैं।

उपरोक्त सभी कारणों का नदियों की बाढ़ की स्थिति उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

सूखा प्रकोप

सूखे का अविभार्व जल के अभाव में संचयी प्रभावों से होता है। सूखा अत्यधिक घातक प्राकृतिक प्रकोप है। सूखे के कारण कृषि तथा प्राकृतिक वनस्पति की भारी मात्रा में क्षति होती है तथा अकाल की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। भारतीय मौसम विभाग के अनुसार उस दशा को सूखा कहते हैं जबकि किसी भी क्षेत्र में सामान्य वर्षा से वास्तविक वर्षा 75 प्रतिशत से कम होती है।

सूखे को दो वर्गों में विभक्त किया गया है-

1.प्रचण्ड सूखा :जबकि वर्षा का अभाव सामान्य वर्षा के 50 प्रतिशत से अधिक होता है।

2.सामान्य सूखाः जबकि वर्षा का अभाव सामान्य वर्षा से 50 से 25 प्रतिशत के बीच रहता है।

सूखे का प्रभाव

सूखे का जीवमण्डल पारिस्थितिक तंत्र के सभी जीवन रूपों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। क्योंकि जीव जन्तु तथा पौधे सभी प्रत्यक्ष रूप से जल पर निर्भर करते हैं।

वास्तव में दीर्घकालिक सूखे का पारिस्थितिकीरण आर्थिक जनांकीय तथा राजनैतिक पक्षों पर प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त पौधों तथा जन्तुओं की महत्वपूर्ण जातियाँ समाप्त हो जाती हैं क्योंकि वे कठोर सूखे को बर्दास्त नहीं कर पाती हैं। कुछ जन्तु अन्य स्थानों को प्रवजन कर लेते हैं। जिससे उनके स्थान विशेष में कमी हो जाती है। सूखे के कारण आहार की कमी हो जाने के कारण जानवर भुखमरी के कारण मर जाते हैं।

सूखा ग्रसित मुख्य क्षेत्रः

1.राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र एवं आन्ध्र प्रदेश आदि हैं। प्रचण्ड सूखे के कारण काफी संख्या में लोग अपने पशुओं के साथ पलायन कर जाते हैं।

2.उत्तर अफ्रीका में उत्तर में सहारा के गर्म एवं शुष्क रोगिस्तानी भाग एवं दक्षिण में सवाना प्रदेश के बीच पश्चिम से पूर्ण फैले विस्तृत क्षेत्र को सहेल प्रदेश कहते हैं। यह प्रदेश प्रायः सूखे की चपेट में आता रहता है। जिस कारण वनस्पतियों, जन्तुओं एवं मानव समुदाय की अपार क्षति उठानी पड़ती है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत मरिटेनियर, सेनेगल, माली, अपर वोल्टा, नाइजर, नाइजीरिया, चाड़, यूगाण्डा तथा इथिओपियर देशों के भागों को सम्मिलित किया जाता है। इथोपियों में सूखे के कारण आज तक लाखों लोग कुपोषण तथा रोगों से मृत्यु की भेंट चढ़ गए हैं।

3.आस्ट्रेलिया में सूखा आम घटना है। सूखे की घटना बार-बार घटती है। उसका प्रभाव विस्तृत क्षेत्रों पर पड़ता है। 1895 से 1902 तक आस्ट्रेलिया के प्रचण्ड सूखे की स्थिति का आविर्भाव हुआ है। जिसमें 106 मिलियन मवेशी खत्म हो गए। सूखे के कारण कृषि के क्षेत्र में भारी कमी हो गयी है।

4.ग्रेट ब्रिटेन में सूखे के कारण 1975 से 1976 तक घरेलू एवं औद्योगिक उपयोग के लिए आवश्यक जल की आपूर्ति के लिए घोर संकट उत्पन्न हो गया। घर-कृषि उत्पादन में काफी कमी हो गयी।

भारत के कृषि मंत्रालय ने जलवर्षा के वितरण, सूखे की घटना की आवृत्ति तथा सिंचाई के प्रतिशत के आधार पर तथा सिंचाई आयोग ने सिंचाई तथा जलवर्षा के आधार पर देश में सूखा प्रभावित क्षेत्रों का निर्धारण किया है।
सिंचाई आयोग के अनुसार वे क्षेत्र सूखाग्रस्त क्षेत्र होते हैं जहां पर औसत वार्षिक वर्षा 1000 मिलीमीटर से कम होती है। देश के 20 प्रतिशत तथा उससे अधिक भाग में औसत वार्षिक जल वर्षा का 75 प्रतिशत से कम जल वर्षा प्राप्त होती है तथा कृषिगत क्षेत्र के 20 प्रतिशत से कम भाग पर सिंचाई होती है।
उपरोक्त भौतिक कारणों जिनके द्वारा धरातल पर प्रायः आपदाएं उत्पन्न होती हैं इनके साथ ही वैज्ञानिकों की अवधारणा है कि पृथ्वी के विगत इतिहास में पृथ्वी तथा बाहरी वस्तुओं जैसे- एस्टेरायड, मेट्रोइट्स तथा कामेट से टक्कर के कारण उत्पन्न प्रलयकारी घटना को ग्रहेतर या पृथ्व्येतर प्रकोप या विनाश कहते हैं।
इन टकरावों से अपार धूल-राशि का उद्गार, महासागरों में ज्वारीय तरंगों का जनन, हरिकेन की उत्पत्ति, भूतल पर गर्तों एवं क्रैटर का निर्माण, सागर तल में ज्वालामुखी क्रिया तथा स्थालाकृतियों में परिवर्तन हो जाता है।

20.2.2मानवजनित आपदाओं के प्रकार

मानवजनित आपदा पर्यावरणीय प्रकोप को तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जाता है-
1.मानव जनित भौतिक प्रकोप यथा भूकम्प, भूस्खलन, तीव्र मृदा अपरदन।
2.मानव जनित रासायनिक प्रकोप। जैसे- जहरीले रसायनों का विमोचन तथा जमाव नाभिकीय विस्फोट, तेल वाहक लवणों से खनिज तेल का सांगवीय जल में रिसाव आदि।
3.मानव जनित जीवीय प्रकोप। जैसे- मानव जनसंख्या विस्फोट जलीय भागों में पोषक तत्वों की अत्यधिक वृद्धि होने से कुछ पौधों में अपार वृद्धि आदि।
वास्तव में भूकम्प प्राकृतिक घटना है तथा इसकी उत्पत्ति अन्तरतम में उत्पन्न अन्तजति बलों के कारण होती है। किन्तु मानव द्वारा भूमिगत जल, खनिज तेल व अत्यधिक गहराई तक खनिजों के खनन, निर्माण कार्यों जैसे- सड़क, बाँध, जलभण्डार आदि के निर्माण के लिये डायनामाइट द्वारा चट्टानों का उड़ाया जाना नाभीकीय परीक्षण तथा विस्फोट, बड़े-बड़े जल भण्डारों में अपार जलराशि (डैम) के संग्रह आदि के द्वारा भी बड़े परिणाम वाले खतरनाक भूकम्पों की उत्पत्ति होती है।
ग्रीस में मरेथान बाँध के कारण 1929 का भूकम्प, संयुक्त राज्य अमेरिका में हूबर बाँध तथा भारत में महाराष्ट्र प्रान्त के सतारा जिले, जिसमें कोयना बाँध के कारण 1967 का भूकम्प इसके प्रमुख उदाहरण हैं।
इसके अतिरिक्त किसी भी क्षेत्र में जमीन के नीचे जहरीले रसायनिक तत्वों का जमाव उस क्षेत्र के बाद होने वाले मानव अधिकारों के लिए घातक आपदा के रूप में परिलक्षित होता है।
नियाग्राफाल्स नगर के पास लोव नहर के लिए 1892 में खोदी गई खाई के बाद में छोड़ दिया गया। बाद में इस खाई का प्रयोग कारखानों से निकले अपशिष्ट पदार्थों खासकर जहरीले रासायनिक तत्वों के जमाव के लिए किया जाने लगा। 80 से अधिक जहरीले रासायनिकों का जमाव इस खाई में 1953 तक होता रहा। कुछ समय बाद इस स्थान पर नियाग्रफाल्स नगर के उपनगर का विकास किया गया किन्तु 1977 में अत्यधिक जलवृष्टि के कारण इस मानवजनित रासायनिक समय बम में अचानक विस्फोट हो गया जिससे लोगों के स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ा जैसे- महिलाओं में गर्भापात की दर में अचानक वृद्धि हो गयी, रक्त एवं जिगरकी विसंगतियाँ , जन्म विकृति आदि कई प्रकार की शारीरिक विकृति उत्पन्न हो गयी।मनुष्य की असावधानी के कारण तेल वाहक जहाजों से खनिज तेल के अधिक मात्रा में रिसाव के कारण सागरीय जल की सतह पर तेल की पतली परतें बन जाती हैं जो जल की सतह पर तेली से फैलती हैं। इसके कारण प्रभावित सागरीय क्षेत्रों में सागरीय जीव मर जाते हैं।

नाभिकीय संस्थानों में अचानक गड़बड़ी हो जाने से प्राणघातक आपदायें उत्पन्न हो जाती हैं। इस तरहकी दुर्घटनाओं का प्रभावित क्षेत्रों के पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं, मनष्यों न केवल तात्कालिक दुष्प्रभाव होते हैं बल्कि इनका दुष्परिणाम वर्षों तक बना रहता है। मानव की भावी पीढ़ियाँ रेडियोएक्टिव तत्वों से दुष्प्रभावित होती रहती है।

सोवित रूस में चरनोबिल में स्थित नाभिकीय संयंत्र की 1989 की दुर्घटना तथा त्रासदी मानव जनित भीषण प्रकोप तथा विनाश का उदाहरण है।

भारत में 1984 में भोपाल गैस त्रासदी मनुष्य की लापरवाही के कारण उत्पन्न होने वाले भयंकर प्राणघातक प्रकोप का उदाहरण है।

कभी-कभी लोलुपतावश भी मनुष्य जानबूझकर घातक प्रकोप तथा आपदाएँ उत्पन्न करता है। प्रायः युद्ध के समय ऐसा होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा द्वितीय विश्वयुद्ध के समय (1945) में जापान के दो नगरों, नागासाकी तथा हिरोशिमा पर ऐटम बम गिराया गया। इन आणविक बमों के विस्फोट द्वारा उत्पन्न घातक संक्रमण के कारण लाखों लोगों की मृत्यु हो गयी और आज भी वहाँ के लोग बर्बरता का खामियाजा, अपंगता या शारीरिक विकृतियों के रूप में भुगत रहे हैं।

इसके अलावा युद्ध के समय जहरीली गैंसों तथा संक्रामक रोग फैलाने वाले कीटाणुओं का प्रयोग करता है तथा निर्माण कार्यों तथा भूमि उपयोग में परिवर्तनों द्वारा प्राकृतिक प्रकोपों की गति तेज कर देता है। फलस्वरूप भूस्खलन द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में वन-विनाश, भवनों तथा सड़कों के कारण भूस्खलन की आवृति तथा परिणाम में वृद्धि हो जाती है।

20.3 आपदा प्रबन्धन

अभी तक हमने जाना कि वास्तव में आपदाएँ क्या होती हैं तथा उनसे मानव जीवन किस तरह प्रभावित होता है। किन्तु अब प्रश्न उठता है कि आपदाएँ को जान लेना या उनका ज्ञान प्राप्त कर लेने मात्र से ही आपदाओं का सामना नहीं किया जा सकता, इसलिए आपदा प्रबन्धन एक मुख्य विषय के रूप में उभरकर सामने आता है।

प्राकृतिक आपदाओं के न्यूनीकरण तथा प्रबन्धन के अन्तर्गत तीन मुख्य पक्षों को सम्मिलित किया जाता है।

1. प्रकोपों के सम्भावित आगमन की भविष्यवाणी करना।
2. प्रकोप से प्रभावित क्षेत्र के लोगों के लिए राहत सामग्री को तुरन्त पहुँचाना।
3. प्राकृतिक प्रकोपों तथा आपदाओं के साथ समायोजन के उपाय करना।

आपदा प्रबन्धन की तैयारी के मुख्य उद्देश्य हैं- आपदा प्रभावित क्षेत्रों में कम से कम समय में प्रभावी तरीके से सहायता पहुंचाना तथा समयबद्व सुनियोजित तरीकों से त्वरित सक्षम संगठनों के द्वारा आपातकालीन परिस्थितियों में धन-जन की हानि को कम करना होना चाहिए। यद्यपि आपदा प्रबन्धन में दीर्घकालिक व अल्पकालिक प्रयासों को सम्मिलित किया जाना चाहिए। परन्तु इस दीर्घकालिक व अल्पकालिक प्रयासों को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं।

1. आपदा आने से पूर्व का प्रबन्धन।
2. आपदा आने के बाद का प्रबन्धन।

20.3.1 आपदा आने से पूर्व का प्रबन्धन

आपदा आने से पूर्व के प्रबन्धन में, विभिन्न वैज्ञानिक तकनीकि सहयोग से भविष्यवाणी या चेतावनी का प्रयोग किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत रिमोट सैंसिंग जी.आई.एस. तथा वायु आकाश सर्वेक्षणों के द्वारा चक्रवात,

बाढ़, सुनामी आदि जैसे प्राकृतिक आपदाओं की सूचना पूर्व में जारी की जा सकती है। जिससे आपदा आने के पूर्व ही लोगों को सुरक्षित स्थानों में भेजा जा सकता है, जिससे कि जन-धन की हानि को न्यूनतम किया जा सकता है। उक्त तकनीकी आधारों पर आपदा प्रभावित क्षेत्रों का पूर्व में मूल्यांकन करते हुए समस्याग्रस्त क्षेत्रों का मानचित्र तैयार किया जा सकता है। जिससे कि आपदा ग्रस्त क्षेत्रों में आम जनता को प्रकोपों के प्रति जागरूक करते हुए समय पर सूचना प्रदान की जा सकती है। इसके अतिरिक्त आपदा आने के पूर्व के सम्भावित खतरों से बचने के लिए संरचनात्मक एवं निर्माण कार्य किया जा सकता है।

यथा बाढ़ सम्भावित क्षेत्रों का आकलन करते हुए पूर्व में ही सुरक्षात्मक दिवालों का निर्माण करना, नदी के जलागम क्षेत्रों में वृहद वृक्षारोपण करना, बाढ़ के समय अपनाये जाने वाले सुरक्षा उपकरण आदि के बारे में लोगों को प्रेरित करना। इसी प्रकार सुनामी, चक्रवातों के प्रभावित क्षेत्रों के मानचित्र तैयार किये जा सकते हैं। 1. साथ ही साथ रिमोट सैंसिंग तथा जी.आई.एस. तकनीकी द्वारा प्राप्त सूचनाओं को चेतावनी प्रणाली के रूप में विकसित किया जाना। तकनीकी प्रणालियों की सहायता से अमेरिका जैसे विकसित देशों में चक्रवातों की उत्पत्ति तथा उनके गमन पथ की लगातार सूचना के आधार पर अग्रिम चेतावनी दी जाती है। जिससे समय रहते लोगों को सुरक्षित स्थानों में भेजा जाता है। जिसके द्वारा जनहानि को न्यूनतम स्तर पर लाया जा सकता है। इस प्रकार का उदाहरण जापान जैसे भूकम्प प्रभावी देश में किया जाता है। जहां भूकम्परोधी भवनों का निर्माण तथा लोगों को जागरूक करके जन-धन की हानि कम की गई है।

आपदा न्यूनीकरण के विभिन्न कार्यक्रमों को दीर्घकालीन स्तरों पर तैयार किया जा सकता है, जिसमें प्रकोपों से सम्बन्धित शिक्षा का प्रचार-प्रसार किया जा सकता है। इन कार्यक्रमों में वैज्ञानिकों, अभियन्ताओं, नीतिनिर्धारकों, प्रशासकों तथा आम जनता को सम्मिलित करते हुए एक ठोस आपदा प्रबन्धन की नीति तैयार की जा सकती है। 1ण् मजबूत सूचना तंत्र का विकास। 2. वैज्ञानिक उपकरणों का आधिकारिक प्रयोग। 3. आपदाग्रस्त क्षेत्रों को वैज्ञानिक आधार पर चिन्हित करना। 4. उसी के अनुरूप वैज्ञानिक तकनीकी के इस्तेमाल हेतु प्रेरित करना। 5. लोगों को आपदा के समय अपनाये जाने वाले सुरक्षा उपकरणों से शिक्षित करना। 6. ऐसे संगठनों को तैयार करना जो कि स्थानीय, सांस्कृतिक, भौगोलिक परिस्थितियों से अवगत हों। 7. राहत सामग्रियों यथा भोजन, टैंट, चिकित्सा, वैज्ञानिक उपकरणों का यथोचित स्थान पर भंडारण। 8. वैकल्पिक यातायात व सूचना तंत्र की स्थापना करना। 9. वैज्ञानिक अध्ययनों, शोध के पश्चात विकास परियोजनाओं को लागू करना। 10. सशक्त नीतियां बनाना तथा उनका क्रियान्वयन दृढ़ता से लागू करना। 11. स्थानीय लोगों को जागरूक करना तथा उनसे सहयोग प्राप्त करके आपदा प्रबंधन की योजनाओं में उनकी अधिकाधि सहभागिता करना।

20.3.2आपदा आने के बाद का प्रबन्धन

यद्यपि वर्तमान समय में तकनीकि सहायता के द्वारा कई प्रकार की प्राकृतिक घटनाओं का पूर्वानुमान व मूल्यांकन किया जाता है। परन्तु कुछ प्राकृतिक घटनाएँ बिना किसी चेतावनी के एकाएक घटित हो जाती हैं, जिनके लिए हमें आपदा प्रबन्धन की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए हमें ऐसी कार्ययोजना तथा संगठन की आवश्यकता होती है, जो कि समस्त विभागों के बीच आपसी तालमेल व समन्वय के साथ आपदाग्रस्त क्षेत्रों में त्वरित सहायता पहुँचाने का कार्य सुचारु रूप से कर सके। इस संगठनों के पास उस क्षेत्र की समस्त भौगोलिक जानकारियाँ उपलब्ध होनी चाहिए ताकि आपदा के समय उस क्षेत्र पर तत्काल पहुँचा जा सके एवं लोगों को समय पर राहत सामग्री उपलब्ध करवायी जा सके। 1. आपदा आने के बाद के प्रबंधन में तत्काल आपदाग्रस्त क्षेत्रों में पहुंचना। 2.

राहतकर्मियों के पास आपदा के निबटारे हेतु आवश्यक उपकराणों का होना। 3. राहत सामग्रियों की उचित वितरण की व्यवस्था। 4. चिकित्सा तथा निवास की उचित व्यवस्था। 5. स्थानीय लोगों से सहायता प्राप्त करना। 6. समस्त सरकारी व गैर सरकारी संगठनों के बीच उचित समन्वय व सहयोग होना। 7. मरे हुए जानवरों व शवों का निष्पादन ताकि कोई महामारी-रोग न फैलने पाए। 8. यातायात व सूचना तंत्र को पुनर्बहाल करना। 9. आपदाग्रस्त क्षेत्र के पुनर्वास व पुनर्निमाण की योजना बनाना।

20.4 आपदा प्रबन्धन से सम्बन्धित कार्यकलाप

1.विभिन्न इंजीनियरिंग, इलैक्ट्रानिक उपकरणों एवं तकनीकी के आधार पर प्रभावित क्षेत्रों का पूर्व मूल्यांकन एवं वृहद मानचित्रों का तैयार किया जाना।

2.उक्त क्षेत्रों में निवास करने वाले लोगों को सम्बन्धित आपदाओं के सम्बन्ध में सूचना के विभिन्न माध्यमों के द्वारा लोगों को सम्बन्धित खतरों से बचने के लिए शिक्षित करना।

3.विभिन्न संचार माध्यमों व वैज्ञानिक उपकरणों के द्वारा पूर्व चेतावनी प्रणाली की स्थापना करना।

4.प्रभावित क्षेत्रों का आकलन करते हुए पूर्व में सुरक्षात्मक एवं संरचनात्मक निर्माण कार्यों का किया जाना।

5.स्थानीय रूप से उपलब्ध संसाधनो का उपयोग करना। दक्ष व कुशल राहतकर्मियों के दल का गठन जिनको कि इस प्राकृतिक व मानवजनित आपदा के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी हो तथा उस क्षेत्र की भौगोलिक व सांस्कृतिक जानकारियां का गठन किया जाना चाहिए।

6.आपदाग्रस्त क्षेत्रों में आपतकालीन राहत सामग्री को पहुँचाना।

7.विभिन्न सरकारी व अर्धसरकारी विभागों के बीच समन्वय के साथ काम करना।

8.केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा स्पष्ट नीतियों का निर्धारण करना।

9.विभिन्न प्रकार की आपदाओं हेतु उसी के अनुरूप संगठनों का निर्माण किया जाना। जैसे कि प्राकृतिक आपदा एवं मानवजनित आपदाओं के प्रबन्धन हेतु अलग-अलग संगठनों को पूर्व में तैयार करना।

10.राष्ट्रीय, राज्य स्तरीय एवं स्थानीय स्तर पर आपदा प्रबन्धन पर चर्चा करना, लोगों को शिक्षित करना, जिसके लिए सरकारी व गैर सरकारी व वैज्ञानिक संगठनों द्वारा एकत्रित सूचनाओं के अनुरूप एक नीति तैयार करना।

20.5 विश्व स्तर पर आपदा प्रबन्धन के कार्यक्रम

प्रकोपों तथा आपदाओं के शोध से सम्बन्धित तथा प्रकोपों से उत्पन्न प्रभावों को कम करने के लिए चलाये जाने वाले कार्यक्रम उल्लेखनीय हैं।

SCOPE (Scientific Communicate on Problem of Environment) नामक समिति का गठन 1969 में ICSU (Inter National Councial of Scientific Union) द्वारा पर्यावरण पर मनुष्य के तथा मनुष्य पर

पर्यावरण के प्रभावों से सम्बन्धित जानकारी में वृद्धि करना तथा सरकारी व गैर सरकारी संगठनों को पर्यावरणीय समस्याओं से सम्बन्धित वैज्ञानिक सूचनाएँ व सुझाव देने हेतु स्थापना की गई।

इसी प्रकार IGBP (Inter National Geospher Biorphere Programme ICSU) द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर भौतिक पर्यावरण के स्थल मण्डलीय, स्थानीय एवं वायुमण्डलीय संघटकों के अध्ययन हेतु 1988 में एक अन्तर्राष्ट्रीय शोध कार्यक्रम का अभियान शुरू किया गया।

यूनाइटेड नेशन डिजासटर रिलिफ ऑफिस को सन1971 में आपदा के समय तुरन्त सहायता पहुँचाने के लिए स्थापित किया गया था। खासकर अन्तर्राष्ट्रीय रैडक्रास और रैड क्रिसैन्ट आन्दोलनों के द्वारा तुरन्त आपदा ग्रस्त क्षेत्र में गैर सरकारी व सरकारी रूप से सहायता पहुँचाने के लिए स्थापित किया गया। इसके द्वारा आपदा सम्भावित क्षेत्र के लिए पहले से प्लान या योजना बना ली जाती है। मुख्यतः विकसित देशों के लिए जहाँ पर आधुनिक तकनीकी का विकास हुआ हो।

यूनाइटेड नेशन डिजास्टर रिलिफ और्गनाइजेशन का मुख्य उद्देश्य पूरे विश्व में कम से कम खर्च में आपदा से बचाने में अपना पूर्ण सहयोग व सहायता देना है। यद्यपि विश्वस्तर पर प्राकृतिक व मानवीय आपदाओं के प्रबन्धन हेतु विभिन्न कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं परन्तु इस प्रकार के कार्यक्रमों के साथ ही स्थानीय रूप से भौगोलिक आधारों पर कार्यक्रमों/योजनाओं का निर्माण किया जाना चाहिए वर्ना स्थानीय आधारों पर प्राकृतिक आपदाओं के समय पर कई प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिससे तात्कालिक सहायता के स्थान पर प्राप्त राहत सामग्रियों के रख-रखाव की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिसका स्पष्ट उदाहरण 1985 के मैक्सिको शहर के विध्वंशकारी भूकम्प के समय राहत कार्यो में समस्या उत्पन्न हो गयी थी। क्योंकि विभिन्न देशों से मैक्सिको शहर के लिए भेजी गयी राहत सामग्रियों व राहत कार्य करने वाली संस्थाएँ तथा देशों के पूर्वानुमान पर आधारित थे न कि मैक्सिको शहर की वास्तविक माँगों के आधार पर। जिससे की कुछ ही दिनों में इतनी अधिक राहत सामग्री (खाद्य, टैन्ट, दवाएँ आदि) पहुँच गये कि उनके रखरखाव व वितरण की समस्या उत्पन्न हो गयी। इसी प्रकार विभिन्न देशों से गये राहतकर्मियों जिनमें डाक्टर, नर्सें तथा बचावकर्मी आदि को स्थानीय भाषा व भौगोलिक क्षेत्र का ज्ञान न होने के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचने व स्थानीय लोगों की भाषा से अनभिज्ञ होने के कारण भाषा की समस्याएँ उत्पन्न हो गयी। जिसके कारण स्थानीय अधिकारियों को एक ओर राहत सामग्री के रखरखाव व दूसरी ओर भाषा की समस्याओं का सामना करना पड़ा।

अतः इस प्रकार की समस्याओं के निदान के लिए एक सुनिश्चित राहत कार्य की आवश्यकता होती है ताकि उपलब्ध राहत सामग्रियों का अधिकाधिक उपयोग किया जा सके।

प्राकृतिक व मानवजनित आपदाओं के लिए जहाँ एक ओर कई प्रकार की राहत सामग्रियों की आवश्यकता होती है वहीं दूसरी ओर कई प्रकार की राहत सामग्रियों के भण्डारण व उचित वितरण की व्यवस्था की जानी आवश्यक है। इसलिए अत्यन्त आवश्यक है कि स्थानीय आधारों पर राहतकर्मियों को तैयार किया जाय जो कि उस क्षेत्र की भौगोलिक व सांस्कृतिक जानकारियाँ रखते हों तथा स्थानीय आपदाग्रस्त लोगों को अधिकाधिक सहायता कम से कम समय पर पहुँचा सकें। इस प्रकार राहतकर्मियों के संगठनों में स्थानीय स्तर पर उस क्षेत्र के निवासी उस क्षेत्र में कार्यरत ग्राम पंचायतें, ग्रामों में उपलब्ध डाक्टर, शिक्षक, इंजीनियरों, रिटायर्ड सैनिक व पुलिस कर्मियों को

सम्मिलित किया जाना आवश्यक है। वहीं राज्य व राष्ट्री स्तर पर विभिन्न सरकारी-गैर सरकारी संगठनों से आपसी तालमेल व समन्वय का होना आवश्यक है जो कि विभिन्न वैज्ञानिक सूचनाओं, राहत उपकरणों, संचार उपकरणों से भलीभाँति परिचित हो।

भारत जैसे विकासशील देश में आने वाली प्राकृतिक आपदाओं (भूस्खलन, बाढ़, तूफान, सूखा) तथा मानवजनित आपदाओं (सड़क, रेल, वायु दुर्घटनाओं, रासायनिक गैसों के रिसाव से उत्पन्न आपदाएँ आदि) से उत्पन्न समस्याओं के प्रबन्धन विकसित देशों की तुलना में भिन्न हैं क्योंकि भारत की भौगोलिक व सांस्कृतिक परिस्थितियाँ भिन्न हैं। क्योंकि देश विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं के अन्तर्गत आता है।

एक अनुमान के अनुसार आज भी भारत में 57 प्रतिशत भूमि भूकम्प जनित आपदाओं, 68 प्रतिशत भूमि सूखा जनित आपदाओं, 12 प्रतिशत भूमि बाढ़ ग्रस्त आपदाओं, 8 प्रतिशत क्षेत्र चक्रवाती तूफानों से ग्रसित क्षेत्रों में आता है। साथ ही भारत के कई शहर या क्षेत्र औद्योगिकरण के कारण रासायनिक व औद्योगिक आपदाओं तथा मानव जनित आपदाओं में सम्मिलित हैं।

यद्यपि भारत में विभिन्न प्राकृतिक व मानव जनित आपदाओं के प्रबन्धन में कई महत्वपूर्ण कदम उठाये गये हैं जिसका उत्तम उदाहरण कृषि क्षेत्र में परिलक्षित होता है। जहाँ आजादी से पूर्व भारत में सूखा पड़ना एक विकराल प्राकृतिक आपदा के रूप में जानी जाती थी। 1769-1770 के बीच बंगाल में सूखे के समय अत्यधिक जनसंख्या सूखे के कारण मर गयी थी। इसी प्रकार आजादी के बाद भी सूखा कृषि क्षेत्र की एक गम्भीर समस्या थी जिसमें हजारों लोग भूख के कारण काल के ग्रास बन जाते थे। (क्तवनहीज च्तवदम ।तमं च्तवहतंउउम) सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम के द्वारा सूखाग्रस्त क्षेत्रों का न्यूनीकरण किया गया। साथ ही 1960 के दशक में कृषि क्षेत्र में स्वगमित विकास हेतु चलायी गयी योजनाओं में हरित क्रान्ति प्रमुख थी। जिससे न केवल कृषि के लिए संरचनात्मक विधाओं का विकास किया गया वहीं दूसरी ओर खाद्य सामग्री के भण्डारण का वितरण की उचित व्यवस्था के कारण सूखे जैसी प्राकृतिक आपदाओं में कमी के साथ भुखमरी से होने वाली जन हानि को न्यूनतम किया जा सका।

इसी प्रकार तटीय चक्रवातों के समय मानवजनित उपग्रहों के माध्यम से पूर्व चेतावनी का दिया जाना सम्मिलित है। भारत में एक ओर आपदाओं के प्रबन्धन में वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता ली जाती है परन्तु स्थानीय स्तर पर आज भी प्रबन्धन में अनेक समस्याएँ हैं जैसे कि लोगों को इन आपदाओं के प्रति जागरूक करना, जापान जैसे भूकम्प प्रभावित क्षेत्र में लोगों की सहायता से इससे होने वाले नुकसान को न्यूनतम किया जा जाता है। वहाँ घरों को भूकम्परोधी बनाना, भूकम्प के समय लोगों द्वारा अपनाये जाने वाले तरीकों से धन-जन की हानि को कम किया जा सकता है परन्तु भारत में आज भी भूकम्प प्रभावित क्षेत्रों से इन बातों की अवहेलना की जाती है। जिसके परिणामस्वरूप भूकम्प के समय मकानों के गिरने से अत्यधिक धन-जन की हानि होती है। इसी प्रकार का उदाहरण हाल में देश के पूर्वीतटीय भागों में आई सुनामी के कहर से स्पष्ट है। वहाँ कोई पूर्व चेतावनी प्रणाली न होने तथा लोगों को सुनामी के बारे में जानकारी न होने के कारण अपार धन-जन की हानि हो गयी। इसी प्रकार का उदाहरण भोपाल गैस त्रासदी भी है।

भारत में प्राकृतिक आपदाओं के द्वारा प्रतिवर्ष हजारों लोगों की मृत्यु हो जाती है (लगभग 3600 लोग), करोड़ों हैक्टेयर कृषि भूमि (1.42 मिलियन हैक्टेयर) लगभग 2-26 मिलियन घर व सामान समाप्त हो जाता है।

ए. पटवर्धन के द्वारा भारत में आपदा प्रबन्धन के संदर्भ में किये गये अध्ययन के आधार पर सबसे अधिक हानि तूफानों, बाढ़, भूकम्प व अत्यधिक तापमान द्वार होती है।

आपदा प्रबन्धन के लिए भारत सरकार के महत्वपूर्ण केन्द्रीय मंत्रालय व विभाग इस प्रकार हैं।

आपदाएँ	केन्द्रीय मंत्रालय
1. प्राकृतिक आपदाएँ	1. कृषि
2. हवाई आपदाएँ	2.Civil Aviation
3. रेलवे दुर्घटनाएँ	3. रेलवे मंत्रालय
4. रासायनिक दुर्घटनाएँ	4. पर्यावरण मंत्रालय
5. शारीरिक आपदाएँ	5. स्वास्थ्य एवं पर्यावरण मंत्रालय
6. नागरिक दुर्घटनाएँ (युद्ध, महामारी, नैक्सलाइट हमले, आतंकवादी दुर्घटनाएँ)	6. गृह मंत्रालय
7. नाभिकीय दुर्घटनाएँ	7. परमाणु ऊर्जा मंत्रालय)

आदि समस्त संस्थान भारत में निरन्तर आपदाओं के न्यूनीकरण व प्रबन्धन के लिए कार्यरत हैं।

अभ्यास प्रश्न

A.निम्न प्रश्नों के उत्तर उनके संभावित विकल्पों से दीजिये।

1. प्राकृतिक जनित आपदा है-

क. भूस्खलन ख. बम विस्फोट ग. रासायनिक गैसों का उत्सर्जन घ. उपरोक्त सभी

2. भूकम्प से क्षति-

क. प्राकृतिक आपदा ख. मानव जनित आपदा ग. दोनों नहीं घ. कोई नहीं

3. चैरनेबल परमाणु रिएक्टर दुर्घटना

क. वायुमण्डलीय आपदा ख. जैविक आपदा ग. नाभिकीय आपदा घ. कोई नहीं

4. मानव जनित आपदा

क. भूकम्प ख. ज्वालामुखी ग. सुनामी घ. रेल दुर्घटना

B.निम्न प्रश्नों के आगे सत्य/असत्य लिखिये।

1. टैरनेडो अधिकांशतः यूरोप के मध्य भाग में आते हैं। सत्य/असत्य

2. सुनामी समुद्र में भूकम्प के फलस्वरूप उठी विध्वंशक तरंगों को हते हैं। सत्य/असत्य

3. ऊष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों का असर भारत, बांग्लादेश आदि देशों में सर्वाधिक धन-जन की हानि करता है। सत्य/असत्य

4. ज्वालामुखी उद्भेधन से निकलने वाली राश से भी अपार धन-जन की हानि होती है।
सत्य/असत्य

20.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपको यह स्पष्ट हो गया है कि प्राकृतिक व मानवजनित आकस्मिक व विध्वंशकारी घटनाएँ जिनके द्वारा अपार धन-जन की हानि होती है, को आपदा कहते हैं। आपदाओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. प्राकृतिक आपदाएँ- जिसमें (भूकम्प, ज्वालामुखी, भूस्खलन, बाढ़, सूखा, चक्रवात) आदि सम्मिलित हैं, प्राकृतिक शक्तियों का हाथ होता है, जिसके बारे में वैज्ञानिक रूप से आज भी हमारे पास पूर्वानुमान के बहुत कम साधन हैं। यह कब? कहाँ ? कैसे? आएगा, इसका पूर्वानुमान लगाना अभी भी अपनी प्राथमिक अवस्था में है। यद्यपि विकसित देशों में वैज्ञानिक उपकरणों व तकनीकी के सहारे इन आपदाओं से होने वाले धन-जन की क्षति को कम किया जा सकता है किन्तु विकासशील या अल्पविकसित देशों में वैज्ञानिक संसाधनों का अभाव होने के कारण ये प्राकृतिक आपदाएँ अपार धन-जन की हानि पहुँचाती हैं। इनके अतिरिक्त मानव जनित आपदाएँ हैं जिनमें रासायनिक, जैविक, नाभीकीय, युद्व, आतंकी घटनाओं आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

मानव जनित आपदाओं के प्रबन्धन में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक पहुओं का भौगोलिक परिस्थितियों से उचित सामंजस्य बनाकर इन आपदाओं से होने वाले दुष्परिणामों को कम किया जा सकता है तथा उचित प्रबन्धन के लिए आपदाग्रस्त क्षेत्रों का वैज्ञानिक शोध के द्वारा विस्तृत अध्ययन, वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग पूर्व चेतावनी प्रणाली का विकास व कुशल व शिक्षित राहत कर्मियों के संगठनों को तैयार करना, तुरन्त राहत व चिकित्सा सामग्रियों को पहुँचाना स्थानीय लोगों को उपरोक्त प्रकार प्राकृतिक व मानवजनित आपदाओं के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी देना, सुरक्षा सम्बन्धी उपयों की जानकारी देना, विभिन्न प्रकार की आपदाओं के लिए राष्ट्रीय स्तर पर ठोस कार्य योजना बनाना तथा उनको दृढ़ता से लागू करना तथा स्थानीय, राज्य स्तर, राष्ट्रीय स्तर पर आपदा से पूर्व व बाद के प्रबन्धन के लिए दीर्घकालिक व अल्पकालिक नीतियाँ बनाना आदि आपदा प्रबन्ध के मुख्य कार्य हैं।

20.8 शब्दावली

आपदा : प्राकृतिक व मानव जनित घटनाओं से होने वाली धन-जन की हानि।

प्रबन्धन : किसी भी समस्या से निजात पाने के लिये कई सम्भावित विकल्पों से एक विकल्प चुनना।

पार्थिव : पृथ्वी से ऊपर।

प्लेट विर्वतनिक : ऐसा सिद्धान्त जो पृथ्वी के बाहरी भाग को विभिन्न प्लेटों में बाँटने में उसके द्वारा महाद्वीप के निर्माण, ज्वालामुखी व भूकम्प आदि की व्याख्या करताहै।

टैरनेडो : कम दाब वाले क्षेत्रों में हवाओं या गोलाकार घूमते हुए उत्पन्न हिंसक तूफानों को टैरनेडो कहते हैं।

एस्टोराइड : मंगल व बृहस्पति ग्रहों के बीच घूमते हुए उल्का पिण्ड।

मैट्रोइट्स : जब ब्रह्माण्ड में घूमते उल्का पिण्ड पृथ्वी के वातावरण में भी नष्ट नहीं होते बल्कि पृथ्वी से टकराते हैं।

भूस्खलन : चट्टानों का पानी आदि के कारण तेजी से नीचे गिरना, जो कि वर्षाकाल में घटित होता है।

हिमस्खलन : पर्वतीय क्षेत्रों के बड़े हिम या बर्फ के क्षेत्र में अपने ढाल पर गिरना। जिसके कारण अपार धन-जन की हानि होती है।

रिचर्टर स्केल : भू-वैज्ञानिक चार्ल्स एफ. रिचर्टर द्वारा 1935 में भूकम्प से निकली ऊर्जा के मापन की इकाई।

20.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

A. (1) क (2) क (3) ग (4) घ

B. (1) असत्य (2) सत्य (3) सत्य (4) सत्य

20.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Patwardhan A., 2007: Disaster management in India paper IIT Bombay, pp. 1-15

2.सिंह सविन्द्र, 1991: पर्यावरण भूगोल 'प्रयाग पुस्तक भवन', इलाहाबाद, पेज 1-516

20.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. in Aerospace surncy and natural disaster pvdnctin, ITC journal, 1989.

2. O. Riordan T, 1971: Perspectives on Resource Management, Pion Londa.

3.Hashizume. M, 1989 : The present state of Natural hazard identification sna international cooperation

20.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. आपदा प्रबन्धन किसे कहते हैं? इसकी विस्तृत व्याख्या कीजिये।

2. प्राकृतिक आपदाएँ किसे कहते हैं, उनसे होने वाले प्रतिकूल प्रभावों का वर्णन कीजिये।

3.मानव जनित आपदा का क्या तात्पर्य है। किन-किन कारणों से होती है तथा इसके रोकथाम के उपायों की चर्चा कीजिये।

4. आपदा प्रबन्धन में समाहित घटकों का विस्तृत वर्णन कीजिये।

इकाई-21 राज्य लोक सेवा आयोग

इकाई की संरचना

21.0 प्रस्तावना
21.1 उद्देश्य
21.2 सिविल सेवा का अर्थ
21.3 लोक सेवा आयोग का महत्व
21.4 राज्य स्तर पर सिविल सेवा के कारक
    21.4.1 अखिल भारतीय सेवाएं
    21.4.2 राज्य सेवाएं
21.5 राज्य सिविल सेवाओं का वर्गीकरण
    21.5.1 राजपत्रित एवं अराजपत्रित वर्गीकरण
21.6 राज्य सिविल सेवाओं की भर्ती
21.7 आयोग के सम्बन्ध में संविधानिक प्रावधान
21.8 उतराखण्ड लोक सेवा आयोग
21.9 आयोग के कार्य
21.10 आयोग की स्वतंत्रता
21.11 सारांश
21.12 शब्दावली
21.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
21.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची
21.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
21.16 निबंधात्मक प्रश्न

21.0 प्रस्तावना

राज्य लोक सेवा का अभिप्राय उन सेवाओं या पदों से है जिनकी भर्ती व सेवा की शर्तें राज्य विधान सभा के अधिनियम के द्वारा या जब तक ऐसी विधि पारित न हो , राज्यपाल द्वारा निर्मित नियमों के अनुसार नियमित की जाती है (अनुच्छेद-309)।

राज्य सरकारें अपने-अपने राज्यों में लोक सेवकों की भर्ती लोक सेवा आयोग द्वारा करती है। संविधान के अनुच्छेद 315 के अन्तर्गत राज्य में लोक सेवा आयोग की स्थापना करने की व्यवस्था है।

इस इकाई में सिविल सेवाओं की प्रकृति का वर्णन किया गया है। सेवाओं का वर्गीकरण और भर्ती के अनेक पहलुओं की विवेचना की गयी है।

21.1 उद्देश्य

इस इकाई में हम लोक सेवा आयोग के बारे में अध्ययन करेंगे और इससे आप जान पायेंगे कि-

1. राज्य स्तर पर सिविल सेवकों के कारकों तथा राज्य सेवाओं के मानदंड तथा वर्गीकरण को समझेंगे।

2. उत्तराखण्ड के लोक सेवा आयोग के गठन के बारे में जान पायेंगे।

3. राज्य सेवाओं की भर्ती प्रणाली को समझेंगे।

4. आयोग की भूमिका तथा इसके महत्व को समझ पायेंगे।

21.2 सिविल सेवा का अर्थ

राज्य सेवाओं का अर्थ राज्य स्तर की सिविल सेवाओं से है। सिविल सेवा सरकार द्वारा सेवा में नियुक्त असैनिक कर्मचारियों को कहते हैं। सिविल सेवा एक कैरियर सेवा है। अर्ध सरकारी निकायों के कर्मचारी तथा अधिकारी सिविल सेवा का अंग नहीं होते। सिविल सेवा का एक आवश्यक अंग या उपादान योग्यता प्रणाली की अवधारणा है। योग्यता प्रणाली का अर्थ है सिविल सेवा के पदों के लिये खुली प्रतियोगिता परीक्षा के द्वारा जाँची गयी योग्यता के आधार पर चयन। राज्य लोक सेवा में सत्ता -ग्रामीण व नगरीय सेवाएं सम्मिलित नहीं है। राज्य शासन इस प्रकार राज्य तथा अधीनस्थ सेवाओं के प्रथम नियुक्ति, नियुक्ति प्रणाली, संख्या और पदस्वरूप तथा सेवा शर्तों के सम्बन्ध में नियम निर्माण की शक्ति का उपयोग करते हैं। इन सेवाओं से सम्बन्धित मामलों में यह अंतिम सत्ता है, राज्य के बाहर किसी भी अन्य सत्ता के समक्ष कोई अपील या प्रतिनिधित्व नहीं किया जा सकता है। संक्षेप में राज्य सेवाएं उन सेवाओं को मिला कर बनती हैं, जिन्हें राज्य शासन समय-समय पर अधिकृत गजट में अधिसूचित करता है। एक स्वतंत्र एजेंसी द्वारा योग्यता के प्रमाणित प्रतियोगिता के आधार पर लोक सेवकों का चयन किया जाता है। राज्य स्तर पर भर्ती करने वाली एजेंसी को राज्य लोक सेवा आयोग कहते हैं।

21.3 लोक सेवा आयोग का महत्व

यह सबसे महत्वपूर्ण बात है कि सिविल सेवा के लिये भर्ती किसी भी पक्षपात के बिना हो। इसी से योग्यता प्रणाली में विश्वास उत्पन्न हो सकता है। भर्ती मे निष्ठा तथा निष्पक्षता सुनिश्चित करने के लिये बहुत से उपाय योग्यता प्रणाली के प्रादुर्भाव के बाद विकसित किये गये हैं। कार्यपालक शाखा को सिविल सेवा के लिये भर्ती करने की शक्ति से वंचित रखा गया है और इस उद्देश्य के लिये एक अलग एजेंसी की स्थापना की गयी है। यह विभाग से अलग संस्था है अर्थात एक आयोग है। जो सरकार की आम मशीनरी से बाहर रह कर कार्य करती है। इस संस्था को संवैधानिक हैसियत प्रदान की गयी है। ये ध्यान देने की बात है कि आयोग केवल भर्ती करने वाली एजेंसी हैं यह नियुक्ति करने की एजेंसी नहीं है। नियुक्ति करने का अधिकार सरकार का है। आयोग एक सलाहकारी संस्था है। इसके निर्णय मानने के लिये सरकार बाध्य नहीं है।

संवैधानिक स्तर पर भी आयोग को महत्व दिया गया है। इसका लक्ष्य यह सुनिश्चित करना है कि आयोग बिना भय या पक्षपात के कार्य करें। यह तब सम्भव होगा जबकि इसका गठन, भूमिका तथा प्रत्यायोजन इसके सदस्यों के विशेषाधिकार, सदस्यों की नियुक्ति तथा पद से हटाने का तरीका आदि का वर्णन संविधान में दिया जाये। क्योंकि ऐसा करने से सरकार की कार्यपालक शाखा को इन मामलों में स्वविवेक व स्वेच्छा का प्रयोग करने का कोई अधिकार नहीं होगा तथा आयोग इससे प्रभावित हुए बिना कार्य कर सकता है। इस प्रकार संविधानिक स्तर प्रदान करने का अर्थ इसकी सत्ता तथा स्वतंत्रता पर किसी संभावित अतिक्रमण के विरूद्ध सुरक्षा प्रदान करना है।

21.4 राज्य स्तर पर सिविल सेवा के कारक

यहाँ यह जानना अति आवश्यक है कि राज्य स्तर पर एक के स्थान पर दो भिन्न-भिन्न सेवाएं काम करती हैं। इनमें से एक राज्य स्तर पर विविध क्षेत्रों की गतिविधियों को चलाने के लिये, सिविल सेवा के सम्बद्ध राज्य सरकार द्वारा भर्ती की गयी सेवाएं हैं। इन्हें राज्य सिविल सेवाएं या केवल राज्य सेवाएं कहा जाता है। राज्य में कार्यरत दूसरी सिविल सेवाएं हैं- अखिल भारतीय सेवाएं।

21.4.1 अखिल भारतीय सेवाएं

अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों की भर्ती केन्द्र सरकार द्वारा संघ लोक सेवा आयोग के माध्यम से की जाती है। भर्ती के पश्चात प्रत्येक अधिकारी को एक निश्चित राज्य वर्ग(काडर) दिया जाता है। उस प्रदत्त राज्य से ही वह सम्बद्ध अधिकारी केन्द्र सरकार में आता है। जिस व्यवस्था के तहत यह स्थान परिवर्तित होता है। उसे सावधिक प्रणाली कहते हैं। अधिकारी का राज्य तथा केन्द्र के बीच तबादला उसकी सेवा के पहले बीस वर्षों के दौरान होता है। अखिल भारतीय सेवाओं पर केन्द्र तथा सम्बद्ध राज्य का संयुक्त नियंत्रण होता है। अखिल भारतीय सेवाएं जिला, राज्य तथा उसके उपर उच्च पदों के लिये कार्मिक प्रदान करती है। इस प्रकार ज़िलाधिकारी, क्षेत्रीय आयुक्त, राजस्व बोर्ड के सदस्य, सरकार के सचिव, मुख्य सचिव व पुलिस विभाग के पुलिस अधीक्षक और उसके उपर के सभी पद अखिल भारतीय सेवाओं से भरे जाते हैं।

21.4.2 राज्य सेवाएं

राज्य में लोक सेवकों की भर्ती राज्य सरकार द्वारा अपने लोक सेवा आयोग या अन्य एजेंसी के माध्यम से की जाती है। इन सेवाओं के सदस्य मुख्यतः राज्यों में सेवा के लिये होते हैं। केवल कुछ अवसरों पर ही कुछ राज्य सेवाओं के कुछ सदस्य केन्द्र या किसी संस्था के द्वारा बुलाये जाते हैं। तकनीकी तथा गैर-तकनीकी विभिन्न क्षेत्रों में सरकारी कार्य की आवश्यकताओं के अनुरूप गठित सेवाएं राज्यों के पास हैं। राज्य की निम्नलिखित सेवाएं हो सकती है-

प्रशासनिक सेवा, पुलिस सेवा, न्यायिक सेवा, वन सेवा, कृषि सेवा, शिक्षा सेवा, स्वास्थ्य सेवा, मत्स्य सेवा, इंजिनियरिंग सेवा, लेखा सेवा, बिक्री कर सेवा, मद्य निषेध एवं उत्पाद सेवा, सहकारी सेवा।

21.5 राज्य सिविल सेवाओं का वर्गीकरण

राज्य सेवाओं के वर्गीकरण के लिये दोहरी प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। प्रथम प्रणाली में सेवाएं, प्रथम, द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ श्रेणी में वर्गीकृत की जाती हैं। इस वर्गीकरण का आधार है- स्वीकार्य वेतनमान, निष्पादित कार्य के दायित्व की मात्रा व अपेक्षित तदनुरूपी योग्यताएं। सभी राज्य सेवाओं का गठन विभागवार किया जाता है। दूसरी प्रणाली के अन्तर्गत सेवाओं तथा पदों का वर्गीकरण राजपत्रित व अराजपत्रित के बीच किया जाता है।

प्रथम प्रणाली के आधार पर वर्गीकरण- प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी की सेवाओं में राज्य सेवाओं का अधिकारी वर्ग आता है। जबकि तृतीय व चतुर्थ श्रेणी में क्रमशः लिपिक तथा शारीरिक कार्य करने वाले कर्मचारी शामिल हैं। प्रथम श्रेणी की सेवाओं में सामान्यतः समयबद्ध वेतनमान वाले पद तथा सामान्य समयबद्ध वेतनमान से अधिक वेतन वाले कुछ पद शामिल होते हैं। साधारणतया प्रत्येक विभागीय सेवा में प्रथम श्रेणी संवर्ग होता है। द्वितीय श्रेणी सेवाओं से पदोन्नति द्वारा तथा राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा सीधे भर्ती द्वारा होती है। सामान्यतः यह लिखित तथा व्यक्तित्व परीक्षण द्वारा होती है।

द्वितीय श्रेणी की सेवाएं- द्वितीय श्रेणी की सेवाएं अधीनस्थ सिविल सेवाएं होती हैं। जैसे - अधीनस्थ पुलिस सेवा आदि। द्वितीय श्रेणी की सेवाएं प्रथम श्रेणी की सेवाओं की तुलना में स्तर तथा उत्तरदायित्व की दृष्टि से नीचे होती हैं। फिर भी ये इतनी महत्वपूर्ण हैं कि इनकी नियुक्ति का अधिकार राज्य सरकार के हाथों में होना आवश्यक है। द्वितीय श्रेणी सेवाओं में सबसे महत्वपूर्ण अधीनस्थ सिविल सेवा है। यहॉ तक कि कुछ राज्यों में इस सेवा के लिये अन्य द्वितीय श्रेणी की सेवाओं की अपेक्षा उॅंचे वेतनमान निर्धारित किये गये हैं।

तृतीय श्रेणी की सेवाएं-तृतीय श्रेणी की सेवाओं को दो भागों में बॉंटा गया है-

अ- अधीनस्थ कार्यपालक, उदाहरण के लिये-नायब तहसीलदार, पुलिस सब इंस्पैक्टर, उप शिक्षा निरीक्षक आदि।

ब- लिपिकीय सेवाएं। इन पदों के लिये भर्ती आंशिक रूप से लोक सेवा आयोग द्वारा तथा आंशिक रूप से विभागीय या जिला अध्यक्षों के स्तर पर की जाती है।

21.5.1 राजपत्रित एवं अराजपत्रित वर्गीकरण

राज्य सेवाओं के वर्गीकरण की दूसरी प्रणाली उन्हें राजपत्रित तथा अराजपत्रित श्रेणी में रखती है। एक राजपत्रित सरकारी कर्मचारी वो होता है जिसकी नियुक्ति, तबादला, पदोन्नति, सेवा निवृति आदि की घोषणा राज्यपाल के आदेश द्वारा जारी की गयी अधिसूचना के रूप में सरकारी राजपत्र में की जाती है। राजपत्रित अधिकारी एक कार्यालय का प्रभारी होता है। राजपत्रित पदों में अखिल भारतीय सेवाएं तथा प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी की राज्य सेवाएं शामिल होती हैं। अराजपत्रित पदों में तृतीय व चतुर्थ श्रेणी की सेवाएं होती हैं।

21.6 राज्य सिविल सेवाओं की भर्ती

भर्ती की तीन प्रथक किन्तु अंतःसंबद्ध प्रक्रियाएं शामिल हैं-

1.पदों के लिये आवेदन करने वाले योग्य उम्मीदवारों को आकर्षित करना।

2.खुली प्रतियोगिता परीक्षा के आधार पर, कार्य के लिये उम्मीदवारों का चयन।

3.चयन किये गये उम्मीदवारों को उचित स्थान पर नियुक्त करना, जिसमें सम्बद्ध लोगों को अधिकृत अधिकारी द्वारा नियुक्ति पत्र जारी करना।

पहली दो प्रक्रियांए एक स्वतंत्र भर्ती करने वाली एजेंसी द्वारा की जाती है। राज्यों में यह कार्य सिविल सेवा आयोग द्वारा किये जाते हैं। तीसरी प्रक्रिया राज्य सरकार का दायित्व है। इसलिये यह याद रखना अति आवश्यक है कि लोक सेवा आयोग केवल भर्ती करने वाली सलाहकारी एजेंसी है, नियुक्त करने का अधिकार सरकार के पास है।

भर्ती की विशेषताएं- राज्य सिविल सेवा के लिये भर्ती की आयु न्यूनतम 21 वर्ष से अधिकतम 35 वर्ष निर्धारित की गयी है। अनुसूचित जाति , जनजाति व पिछड़ी जाति को संवैधानिक आधार पर आयुसीमा में छूट दी जाती है। भर्ती लोक सेवा आयोग की खुली प्रतियोगिता परीक्षा के आधार पर की जाती है। इससे उच्च पदों पर राज्य सेवकों की भर्ती पदोन्नति द्वारा की जाती है। भरे जाने वाले रिक्त पदों को हर वर्ष विज्ञापित किया जाता है तथा सारे देश से उम्मीदवारों से आवेदन पत्र आमंत्रित किये जाते हैं। न्यूनतम योग्यता किसी विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधी है। चयन के लिये प्रतियोगिता परीक्षा के तीन चरण है। प्रारंभिक परीक्षा, मुख्य परीक्षा व साक्षात्कार। लिखित परीक्षा के कुछ निश्चित अंक प्राप्त करने वाले उम्मीदवार को व्यक्तित्व परीक्षण के लिये बुलाया जाता है। जो लगभग आधे घन्टे की अवधि वाला साक्षात्कार होता है। सफल उम्मीदवार की सूची योग्यतानुसार तैयार कर सरकार के पास आवश्यक कार्यवाही अर्थात नियुक्ति पत्र जारी करने के लिये भेज दी जाती है। नियुक्त करने का अधिकार केवल सरकार को होता है।

21.7 आयोग के सम्बन्ध में संविधानिक प्रावधान

राज्य लोक सेवा से सम्बन्धित संविधान में निम्न प्रावधानों दिये गये हैं-

1.संविधान के अनुच्छेद 315 में लोक सेवा आयोग की स्थापना का प्रावधान है। इसके अनुसार संघ तथा प्रत्येक राज्य के लिये एक लोक सेवा आयोग होगा।

2.अनुच्छेद 316 ऐसे आयोगों के गठन का निर्धारण करता है। यह अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति के तरीके तथा उनके पद की शर्तों का भी वर्णन करता है। इसके अन्तर्गत अध्यक्ष व सदस्यों के कार्यकाल का वर्णन भी किया गया है। अनुच्छेद 317 उन कारणों व प्रक्रियाओं का उल्लेख करता है जिसके द्वारा इस कार्यकाल से पहले सेवाएं समाप्त की जा सकती हैं।

3.आयोग की स्वतंत्रता को देखते हुए अनुच्छेद 318, 319 तथा 322 में ऐसे उपायों का उल्लेख है जिनसे आयोग की सुरक्षा तथा मजबूती हो सके।

4.आयोग के कार्यो एवं दायित्वों के क्षेत्र तथा भर्ती करने वाली एजेंसी में उनकी भूमिका का दायरा क्या हो इन प्रश्नों का उत्तर अनुच्छेद 320, 321 व 323 में दिया गया है।

5.अनुच्छेद 323 में यह व्यवस्था है कि आयोग अपनी वार्षिक रिपोर्ट पेश करेगा, जिनमें अन्य बातों के साथ सरकार द्वारा सलाह को स्वीकृति दिये जाने वाले मामलों का उल्लेख किया जायेगा तथा सलाह न मानने के कारण का भी उल्लेख किया जायेगा। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि इन रिपोर्टों को उपयुक्त विधान मंडलों के समक्ष पेश किया जायेगा।

आयोग का गठन- राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं है। संविधान में कहा गया है कि इसका निर्णय राज्यपाल द्वारा किया जायेगा। आयोग के कम से कम आधे सदस्य वे होंगे जिन्हें केन्द्र या राज्य सरकार के अधीन कार्य करने का कम से कम 10 वर्ष का अनुभव हो। सदस्यों का कार्यकाल 06 वर्ष या 60 वर्ष तक की आयु तक होता है। नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है। परन्तु यह बात ध्यान में रखें की है कि सदस्यों को केवल राष्ट्रपति द्वारा ही पद से हटाया जा सकता है न कि राज्यपाल द्वारा। सदस्यों की सेवा शर्तें राज्यपाल द्वारा निर्धारित होती हैं परन्तु महत्वपूर्ण बात ये है कि संविधान में यह व्यवस्था है कि ये उनके अहित में नहीं बदली जा सकती। इन सब में वह सुरक्षा निहित है जिनसे आयोग की स्वतंत्रता सुनिश्चित होती है।

21.8 उतराखण्ड लोक सेवा आयोग

उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम 2000 के द्वारा उत्तराखण्ड राज्य दिनांक 9 नवम्बर 2000 को भारतीय गणतंत्र का 27वाँ राज्य बना। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 315 के अन्तर्गत उत्तराखण्ड राज्य के गठन के साथ ही उत्तराखण्ड शासन के शासनादेश संख्या 247/एक-कार्मिक-2001 दिनांक 14मार्च 2001 द्वारा जनपद हरिद्वार में उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग की स्थापना हुई। आयोग के प्रथम अध्यक्ष श्री एन.पी.नवानी, सेवानिवृत आई.ए.एस की नियुक्ति के साथ ही आयोग 15 मई 2001 को अस्तित्व में आया। शासनादेश संख्या 1455/कार्मिक-2/2001 दिनांक 29 अगस्त 2001द्वारा आयोग के संरचनात्मक ढॉचे का गठन हुआ। आयोग के मा. अध्यक्ष व मा. सदस्यों के पदों सहित अधिकारियों एवं कर्मचारियों के 73 पदों की स्वीकृति शासन द्वारा प्रदान की गयी। वर्तमान में मा.

अध्यक्ष, मा. सदस्य (04 पद) परीक्षा नियंत्रक, संयुक्त सचिव(विधि)-01पद, संयुक्त सचिव प्रशासन एक पद सहित अधिकारियों/ कर्मचारियों तथा चतुर्थ श्रेणी के कुल 143 पद स्वीकृत हैं। उत्तराखण्ड में लोक सेवा आयोग के गठन के बाद से आज तक के आयोग के अध्यक्षों, सदस्यों, सचिवों, परीक्षा नियंत्रकों व उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग के अनुभागों तथा अनुभाग के कार्यों को हम निम्न सारणी में देख सकते हैं-

उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग के विभिन्न अनुभाग

क्रम. सं.	विभिन्न अनुभाग का नाम	अनुभाग के कार्य
1.	सेवा विभाग-1	अभ्यर्थियों का चयन केवल साक्षात्कार के आधार पर करना(सीधी भर्ती)
2.	सेवा विभाग-2	अभ्यर्थियों का चयन केवल साक्षात्कार के आधार पर करना(सीधी भर्ती)
3.	परीक्षा विभाग-1	प्रारंभिक परीक्षा, मुख्य परीक्षा व साक्षात्कार को आयोजित करवाना(पी.सी.एस.)
4.	परीक्षा विभाग-2	अभ्यर्थियों का चयन केवल साक्षात्कार के आधार पर करना(सीधी भर्ती)(पी.सी.एस.जे.)
5.	गोपनीय विभाग	अंतिम परीक्षा का परीक्षाफल तैयार करना
6.	अतिगोपनीय विभाग-1	परीक्षा के लिए पाठ्यक्रम व प्रश्न पत्र तैयार करना
7.	अतिगोपनीय विभाग-2	स्क्रीनिंग परीक्षा का परीक्षाफल तैयार करना
8.	स्थापना(एसटैब्लिसमैंट) विभाग	विभाग को स्थापित करने संबंधी कार्य करना
9.	लेखा विभाग	आयोग से संबंधित बजट व लेखा-जोखा बनाना
10.	डाक और डिस्पैच विभाग	विभाग से संबंधित डाकों को प्राप्त करना व प्रेषण करना
11.	वैधता प्रकोष्ट	माननीय हाईकोर्ट व सुप्रीमकोर्ट के केसों पर कार्य
12.	स्टेशनरी और रिकार्ड विभाग	लोक सेवा आयोग की स्टेशनरी और रिकार्ड का ब्यौरा रखना
13.	कम्प्यूटर/आई.टी. विभाग	स्क्रीनिंग परीक्षा व प्रारंभिक परीक्षा के काम करना
14.	व्यवस्था विभाग	आयोग परिसर व भागीरथ परिसर का निरीक्षण व व्यवस्थित रखना
15.	पुस्तकालय	किताबों, मैग्ज़ीन का संकलन करना व व्यवस्थित रखना

21.9 आयोग के कार्य

भर्ती करने वाली एजेंसी के रूप में राज्य लोक सेवा आयोग का मुख्य कार्य सिविल सेवाओं की नियुक्ति के लिये परीक्षाओं का आयोजन करना। परन्तु इसके अलावा कुछ और कर्तव्य होते हैं जिन्हें लोक सेवा आयोग द्वारा पूरा किया जाना होता है। जैसे-

1.राज्य सरकार को ऐसे विषय में सलाह देना जो राज्यपाल द्वारा इसके पास भेजा गया हो।

2. ऐसे अतिरिक्त कार्य सम्पन्न कराना जो विधान मण्डल के एक्ट द्वारा प्रदान किये गये हों। इसका संबंध राज्य सिविल सेवा या स्थानीय प्राधिकरण की सेवाओं या अन्य निगमित सेवाओं से हो सकता है।

3.कार्य की वार्षिक रिपोर्ट राज्यपाल को पेश करना।

इसके अलावा संविधान में यह भी व्यवस्था है कि निम्न मामलों में आयोग से विचार-विमर्श लिया जायेगा।

अ- सिविल सेवाओं व सार्वजनिक या सिविल पदों की भर्ती के तरीकों से सम्बन्धित सभी मामलें।

ब- सिविल सेवाओं तथा पदों की नियुक्ति के लिये एक सेवा से दूसरी सेवा में तबादला तथा पदोन्नति करने के लिये तथा ऐसी नियुक्तियां/पदोन्नतियों तथा तबादलों के लिये उम्मीदवारों की उपयुक्तता के संदर्भ में अपनाये जाने वाले सिद्धान्त।

स- राज्य सिविल सेवा में कार्यरत किसी व्यक्ति को प्रभावित करने वाली अनुशासनात्मक कार्यवाही।

द- राज्य सिविल सेवा में कार्यरत या सेवानिवृत व्यक्ति या उसकी ओर से कोई व्यक्ति यदि यह मॉग या दावा करे कि उसे उस व्यय की पूरी राशि का भुगतान राज्य की संचित निधि से किया जाये जो उसने अपने विरूद्ध दायर मुकदमें में कानूनी कार्यवाही करने में खर्च की क्योंकि वह मुकदमा उसके द्वारा सम्पादित कार्यों के विरूद्ध किया गया था तो इस पर भी लोक सेवा आयोग की सलाह की जायेगी।

य- राज्य सरकार के अधीन सेवा के दौरान लगी क्षति के संवर्धन में पेंशन दिये जाने के दावे।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि यद्यपि लोक सेवा आयोग एक भर्ती एजेंसी के रूप में कार्य करता है। परन्तु यह कुछ अर्ध विधायी तथा अर्ध न्यायिक कार्य भी सम्पन्न करता है।

21.10 आयोग की स्वतंत्रता

एक महत्वपूर्ण बिन्दु यह भी है कि आयोग को स्वतंत्र रूप से कार्य करने का प्रावधान संविधान में दिया गया है। संविधानिक प्रावधानों के अनुसार-

1. सत्ता के सम्भावित दुरूपयोग को रोकने के लिये भर्ती तथा पद से हटाने की शक्ति दो अलग-अलग अधिकारियों को सौंपी गयी है। अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल करता है परन्तु उसे पद से हटाने का अधिकार राष्ट्रपति के पास है।
2. संविधान में उल्लिखित कारणों तथा प्रक्रिया द्वारा ही पद से हटाया जा सकता है।
3. सदस्य का वेतन तथा उसकी सेवा शर्तें उसकी नियुक्ति के पश्चात उसके अहित में नहीं बदली जा सकती।
4. आयोग के सभी खर्च राज्य की संचित निधि से होते हैं।
5. आयोग के सदस्य तथा अध्यक्षों के ऊपर सरकार के अधीन भविष्य में पद ग्रहण करने के संबंध के कुछ प्रतिबंध लगाये गये हैं। सेवा निवृति के पश्चात वे केन्द्र या राज्य आयोग से बाहर सरकारी पद ग्रहण नहीं कर सकते।

अभ्यास प्रश्न

1. राज्य में लोक सेवा आयोग की स्थापना करने की व्यवस्था भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद में वर्णित है?
2. राज्य स्तर पर भर्ती करने वाली सबसे बड़ी एजेंसी को क्या कहते हैं?
3. आयोग के सदस्यों का कार्यकाल कितने वर्ष होता है?
4. उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग का गठन कब किया गया?
5. उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग के प्रथम अध्यक्ष कौन हैं?

21.11 सारांश

राज्य स्तर पर अनेक प्रकार के नियमितता तथा विकास संबंधी कार्यों के संपादन ने यह आवश्यक बना दिया है कि एक बड़ी तथा सुगठित सिविल सेवा उनके द्वारा बनायी जाये। जो योग्यता प्रणाली पर आधारित हों। सरकार की ये सेवाएं कैरियर सेवाएं हैं जिनकी भर्ती एक खुली प्रतियोगिता परीक्षा द्वारा की जाती है। खुली प्रतियोगिता परीक्षओं की अवधारणा का जन्म उन्नीसवीं सदी के दौरान हुआ। इन सेवाओं को बनाते समय इस बात पर विचार किया गया कि सिविल सेवाओं की भर्ती, वेतन, पदोन्नति तथा स्थानान्तरण तकनीकी एवं व्यवसायिक कारणों पर आधारित हो न कि राजनीतिक विचारों पर। राज्य लोक सेवा आयोग को राजनीतिक हस्तक्षेप से दूर रखा गया। आयोग सरकारी व्यवस्था को निरंतरता प्रदान करते हैं। यही कारण है कि आयोग निष्पक्ष हो कर सिविल सेवकों

को चुनता है और सरकार को नियुक्ति हेतु भेज देता है। लोक सेवा आयोग किसी भी राज्य के लिये नियुक्ति की सबसे महत्वपूर्ण एजेंसी है।

21.12 शब्दावली

प्रत्यायोजन - कार्यो और शक्तियों को अधीनस्थ को अपनी सुविधा के अनुसार सौपना

अतिक्रमण - नियम या कानून का उल्लंघन

नियन्त्रक - शासकीय अधिकारी

21.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.अनुच्छेद 315, 2. लोक सेवा आयोग 3. 06, 4. 14 मार्च 2001, 5. श्री एन.पी.नवानी

21.14 संदर्भ ग्रन्थ

डी.डी. बसु - भारत का संविधान

सुभाष कश्यप - हमारी संसद

सुभाष कश्यप - हमारा संविधान

21.15सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

अवस्थी व अवस्थी - भारतीय प्रशासन

शर्मा एवं सडाना -लोक प्रशासन सिद्धान्त व व्यवहार

डॉ सविता मोहन व हरीश यादव -उत्तरांचल समग्र अध्ययन

21.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग की विस्तृत जानकारी दें?
2. राज्य स्तर की सेवाओं के वर्गीकरण का आधार क्या है?
3. आयोग का गठन कैसे होता है तथा वह कार्य कैसे करता है?
4. आयोग के संबंध में संविधानिक प्रावधानों पर एक संक्षिप्त लेख लिखिये?

इकाई-22 भर्ती, प्रशिक्षण(ए.टी.आई. के संदर्भ में), पदोन्नति

इकाई की रूपरेखा

22.0 प्रस्तावना
22.1 उद्देश्य
22.2 भर्ती
- 22.2.1 भर्ती के अनिवार्य तत्व
- 22.2.2 भर्ती की रीतियॉं
- 22.2.3 प्रत्यक्ष भर्ती बनाम पदोन्नति द्वारा भर्ती
- 22.2.4 चयन तथा प्रमाणीकरण
- 22.2.5 भारत की लोक सेवाओं में भर्ती

22.3 प्रशिक्षण
- 22.3.1 प्रशिक्षण के उद्देश्य

22.4 उत्तराखण्ड का प्रशिक्षण संस्थान- उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी का इतिहास
- 22.4.1 उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी द्वारा आयोजित प्रशिक्षण की रूपरेखा
- 22.4.2 अकादमी के प्रमुख प्रशिक्षण कार्यक्रम

22.5 पदोन्नति
- 22.5.1 भारतीय लोक सेवा में पदोन्नति की नीतियों का इतिहास
- 22.5.2 पदोन्नति के सिद्धान्त

22.6 सारांश
22.7 शब्दावली
22.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
22.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
22.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
22.11 निबंधात्मक प्रश्न

22.0 प्रस्तावना

भर्ती, प्रशिक्षण व पदोन्नति कार्मिक प्रशासन के महत्वपूर्ण तत्वों में एक हैं। कार्मिक प्रबन्ध या कार्मिक प्रशासन या मानवीय संसाधन प्रबन्ध किसी भी संगठन के कार्यकर्ताओं के प्रबन्ध को कहते हैं। कार्मिक प्रबन्ध की परिभाषा करते हुए एम.जे. जूशियन ने कहा कि- यह प्रबन्ध का वह क्षेत्र है जो कर्मचारियों की भर्ती, विकास तथा उपयोग करने के कार्यों के नियोजन, संगठन, निर्देशन तथा नियंत्रण से सम्बन्धित है।

कार्मिक प्रबन्ध को सुचारू रूप से संचालित करने के लिये योग्य कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। योग्य कर्मचारी किसी भी संगठन की रीढ़ होते हैं।

पदोन्नति का अर्थ पद और स्तर में वृद्धि से है। पद और स्तर में वृद्धि के साथ पारिश्रमिक में भी वृद्धि होती है। इन सभी विषयों पर हम इस इकाई में अध्ययन करेंगे।

22.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से हम जानेंगे कि-

1. कार्मिक प्रशासन किसे कहते हैं।

2. भर्ती क्या है तथा भर्ती की रीतियॉ क्या हैं।

3. भर्ती के गुण क्या हैं।

4. प्रशिक्षण किसे कहते हैं।

5. उत्तराखण्ड के प्रशिक्षण केन्द्र ए.टी.आई. व उसकी प्रशिक्षण की प्रणाली

6. पदोन्नति किसे कहते हैं। पदोन्नति के सिद्धान्त क्या हैं।

22.2 भर्ती

सामान्य अर्थो में भर्ती शब्द को नियुक्ति का समानार्थक माना जाता हैं परन्तु यह सही नहीं हैं। प्रशासन की तकनीकी शब्दावली में भर्ती का अर्थ किसी पद के लिये समुचित तथा उपयुक्त प्रकार के उम्मीदवारों को आकर्षित करना है। भर्ती और चयन की प्रक्रिया ही शक्तिशाली लोक सेवा की कुंजी है। जैसा कि स्टाल का कथन है कि- यह सम्पूर्ण लोक कर्मचारियों के ढाँचे की आधारशिला है।

22.2.1 भर्ती के अनिवार्य तत्व

1.भर्ती प्रक्रिया मानव शक्ति योजना के साथ जुड़ी हुई और समन्वित होनी चाहिये।

2.भर्ती प्रक्रिया को समूचे कार्मिक कार्यो का अभिन्न अंग समझा जाना चाहिये।

3.भर्ती प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिये जो भर्ती योजनाओं को बनाते और लागू करते समय कार्मिक भागीदारी को प्रोत्साहन दे।

4.भर्ती प्रक्रिया ध्यानपूर्वक नियोजित, संगठित, निर्देशित और नियंत्रित होनी चाहिये।

5.लोगों के विश्वास को बनाने के लिए भर्ती प्रक्रिया में उचित और निष्पक्ष मापदण्ड होना चाहिये।

6.भर्ती प्रक्रिया में ऐसी कार्यविधियों और तरीकों का प्रयोग होना चाहिये जिससे आवेदन पत्रों को शीघ्रता से निपटाया जा सके।

7.भर्ती करने वाली एजेन्सी को समूची प्रकिया में सकारात्मक रुचि लेनी चाहिये।

22.2.2 भर्ती की रीतियाँ

भर्ती की सबसे अधिक प्रचलित रीति यह है कि समाचार-पत्रों में रिक्त स्थान शीर्षक से विज्ञापन अथवा राजपत्रों में विज्ञप्तियॉ प्रकाशित कराई जाये। इस पद्धति के विषय में प्रायः यह कहा जाता है कि भले ही यह पद्धति अधिक संख्या में आवेदन-पत्रों को आकर्षित करने में सफल हो जाये, तथापि यह आवश्यक नहीं है कि इस पद्धति के द्वारा उपयुक्त प्रकार के उम्मीदवार आकर्षित हो सकेंगे। उसके लिये यह आवश्यक है कि भर्ती करने वाले अधिकारी अधिक सक्रियतापूर्वक कार्य करें। सही प्रकार के उम्मीदवारों को आकर्षित करने की चेष्टा को सचेष्ट भर्ती कहते है तथा बिना प्रयास के की जाने वाली भर्ती को सामान्य भर्ती अथवा निष्क्रिय भर्ती कहलाती है। सचेष्ट भर्ती के विविध साधन है जैसे पोस्टर, परिचय-पत्र, समाचार-पत्र अथवा पत्र-पत्रिकाओं में सचित्र विज्ञापन एवं सिनेमा द्वारा विज्ञापन। ये पद्धतियाँ तब प्रयोग में लायी जाती है जब बड़े पैमाने पर भर्ती करनी हो , जैसे युद्धकाल में प्रतिरक्षा-सेनाओं के लिए । भर्ती की दूसरी पद्वति यह है कि सीधे उन्हीं स्रोतों को खटखटाया जाये जहाँ से उम्मीदवार उपलब्ध हो सके। उच्च पदों की भर्ती के लिये प्रायः विशेष योग्यता अथवा अनुभव की आवश्यकता होती है। अतः उनके मामले में भर्ती करने वाले अधिकारी सम्बन्धित क्षेत्र में ऐसे लोगों के साथ सीधा सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं जो अपनी कुशलता के लिये प्रसिद्ध हो तथा उनके साथ शर्तो के बारे में चर्चा कर सकते हैं। शर्तें तय हो जाने के बाद उनसे औपचारिक रुप में आवेदन-पत्र माँगे जा सकते हैं।

22.2.3 प्रत्यक्ष भर्ती बनाम पदोन्नति द्वारा भर्ती

उच्चतर पदों की भर्ती करने के लिए यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वे पद उन समस्त उम्मीदवारों के लिये खुले रखे जाये जो उनके लिये आवेदन करना चाहते हैं अथवा उन व्यक्तियों तक ही सीमित रखें जाये जो पहले से ही सेवा कर रहें है। यदि पहला मार्ग अपनाया जाता है तो उसे प्रत्यक्ष भर्ती की रीति कहा जायेगा और दूसरे मार्ग को पदोन्नति द्वारा भर्ती की रीति। यह स्पष्ट है कि निम्नतम पदों पर भर्ती प्रत्यक्ष रीति से ही किया जाना चाहिये क्योंकि उसके नीचे कोई ऐसा कार्मिक स्तर नहीं होता जिससे पदोन्नति करके भर्ती की जा सकें। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि सचिवों एवं विभागाध्यक्षों जैसे उच्चतम पदों अथवा जिलाधीश जैसे महत्वपूर्ण पदों के लिये बाहर से नये और अनुभवहीन व्यक्तियों का भर्ती किया जाना ठीक नहीं होगा, भले ही वे कितने भी योग्य क्यों न हो।

अ-प्रत्यक्ष भर्ती के गुण

प्रत्यक्ष भर्ती का पहला गुण यह है कि यह लोकतंत्र के इस सिद्धान्त के अनुरुप है कि समस्त योग्य व्यक्तियों का सेवापद प्राप्त करने का समान अवसर होना चाहिये। दूसरा प्रत्यक्ष भर्ती के द्वारा अधिक विस्तृत स्रोतों तक पहुँचा जा सकता है जिसके परिणामस्वरुप अधिक योग्य और प्रतिभाशाली लोगों तक पहुँचा जा सकता है। तीसरा प्रत्यक्ष भर्ती के परिणामस्वरुप सेवाओं में नया रक्त निरन्तर प्रवेश कर सकता है तथा सेवाओं पर पुराने एवं रुढ़िवादी लोगों को आधिपत्य जमाने से रोकती है। साथ ही निम्नतर पदों का अनुभव उच्चतर पदों के लिये लाभदायक होने की अपेक्षा हाँनिकारक अधिक सिद्ध होता है। प्रत्यक्ष भर्ती के अभाव में पदोन्नति के द्वारा उच्चतर पद जीवन में बहुत देर से प्राप्त होता है। पाँचवा प्रत्यक्ष भर्ती के अभाव में वे युवा व्यक्ति जो विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर आते है, शासकीय सेवाओं के प्रति तनिक भी आकर्षित नहीं होते है। परिणामस्वरुप शासकीय सेवाओं को हीन व्यक्तिओं से ही संतोष करना पड़ेगा।

ब-प्रत्यक्ष भर्ती के दोष

प्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली का पहला दोष यह है कि इसके द्वारा सेवाओं में ऐसे लोग प्रवेश पा जाते है जिन्हें पिछला कोई शासकीय अनुभव नहीं होता, जिसके परिणामस्वरुप उन्हें किसी भी महत्वपूर्ण पद के दायित्व सौंपने से पहले दीर्घकाल तक प्रशिक्षण देना पड़ता है। दूसरे प्रत्यक्ष भर्ती के कारण निम्नतर श्रेणियों में अच्छा काम करने का उत्साह कम हो जाता है क्योंकि उस श्रेणी के कर्मचारी यह सोचने लगते है कि चाहे उनका काम कितना भी अच्छा क्यों न हो, उन्हें उच्चतर पद प्राप्त करने का अवसर नहीं मिलेगा। तीसरे, प्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली में एक दोष यह भी है कम आयु के लोग अधिक आयु और अधिक अनुभव के लोगों के ऊपर नियुक्त कर दिये जाते हैं जिससे उनके भीतर असंतोष उत्पन्न होता है और उनकी कार्य क्षमता घट जाती है।

22.2.4 चयन तथा प्रमाणीकरण

उम्मीदवारों के चयन के लिये किये जाने वाले परीक्षण दो प्रकार के होते है- प्रतियोगिता परीक्षण और प्रतियोगितारहित परीक्षण । प्रतियोगिता परीक्षण का आयोजन दोहरा होता है पहला तो यह पता लगाना कि कौन उम्मीदवार ऐसे हैं जिनमें न्यूनतम निर्धारित योग्यता है, दूसरा यह पता लगाना कि योग्यता की दृष्टि से उनकी तुलनात्मक स्थिति क्या है। योग्यता परीक्षण के लिए यह आवश्यक है कि प्रतियोगिता परीक्षणों का दोहरा मानदण्ड अपनाया जाये। लोकसेवाओं के लिये केवल उन लोगों का चयन नहीं किया जाना चाहिये जो न्यूनतम योग्यता की शर्तो को पूरा करते है वरन् उनमें श्रेष्ठतम का चयन होना चाहिये। उम्मीदवारों की तुलनात्मक योग्यता और उपयुक्तता की जॉच करने के लिये चार प्रकार के परीक्षण प्रचलित है- लिखित परीक्षा, मौखिक परीक्षा

(साक्षात्कार), कार्यकुशलता का प्रत्यक्ष प्रदर्शन तथा शिक्षा एवं अनुभव के मूल्यांकन द्वारा तुलनात्मक चयन। इनके अतिरिक्त अनेक प्रकार के बौद्धिक तथा मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी होते हैं।

22.2.5 भारत की लोक सेवाओं में भर्ती

भारत में वरिष्ठ लोक सेवाओं के शाही आयोग ने जिसे ''ली आयोग'' भी कहते हैं, 1924 में यह मत व्यक्त किया था कि '' जो कुछ प्रजातांत्रिक संस्थाएं विद्यमान हैं उनके अनुभव से यह सिद्ध हुआ है कि यदि दक्ष लोक सेवा की व्यवस्था की जाती है तो यह आवश्यक है कि जहाँ तक सम्भव हो राजनीतिक तथा व्यक्तिगत प्रभावों से उसकी रक्षा हो और उसे स्थायित्व तथा सुरक्षा प्रदान की जाये। जो निष्पक्ष तथा कुशल साधनों से उसके सफलतापूर्वक कार्य करने के लिये आवश्यक होते हैं तथा जिन साधनों द्वारा सरकारें चाहे वो किसी भी प्रकार की हों, अपनी नीतियों को लागू कर सकें। '' आज प्रत्येक प्रजातांत्रिक देश ने लूट-प्रणाली से बचने के लिये लोक सेवाओं की भर्ती का कार्य एक स्वतंत्र निकाय बना कर लोक सेवा आयोग को सौंपा है। भारत में 1919 के भारत शासन अधिनियम द्वारा सर्वप्रथम एक लोक सेवा आयोग की स्थापना की गयी थी यद्यपि यह आयोग 1926 में स्थापित किया गया। 1935 के भारत शासन अधिनियम ने केवल संघ लोकसेवा आयोग की ही व्यवस्था नहीं की बल्कि प्रांतों के लिये लोक सेवा आयोग की भी व्यवस्था की। स्वतंत्र भारत के संविधान के अनुच्छेद 115 में यह व्यवस्था ज्यों की त्यों बनी हुई है।

भारत की लोक सेवाओं का वर्गीकरण ग्रुप ए, ग्रुप बी, ग्रुप सी में किया गया है। ग्रुप ए में कई एक संगठित सेवायें सम्मिलित की गयी है जैसे भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, भारतीय लेखा परीक्षण, तथा लेखाकरण सेवा आदि। अखिल भारतीय सेवाओं तथा ग्रुप ए व ग्रुप बी की कुछ सेवाओं में भर्ती सिविल सर्विसेज़ परीक्षा द्वारा की जाती है। कुछ केन्द्रीय सेवाओं जैसे भारतीय आर्थिक या सांख्यिक सेवा, कनिष्ठ वेतनक्रमों के अतिरिक्त विशिष्ट उच्चतर वेतनक्रमों में पार्श्व भर्ती की भी व्यवस्था है। केन्द्रीय सेवाओं के आधीन ग्रुप सी सेवाओं और पदों जैसे क्लर्क, स्टैनोग्राफर, एकाउंटेन्ट आदि की भर्ती के लिये स्टाफ चयन आयोग (एस.एस.सी.) की स्थापना की गयी है जो इस उद्देश्य से परीक्षाओं का प्रबन्ध करता है।

22.3 प्रशिक्षण

लोक सेवकों का शिक्षण तथा प्रशिक्षण लोक सेवा की कुशलता के लिये नितान्त आवश्यक है। भर्ती की नीति के कारण भी प्रशिक्षण का महत्व बढ़ता जा रहा है। भर्ती की नीति में सामान्य योग्यताओं को प्राथमिकता दी जाती है और शासन के प्रसार के साथ ही इसके कार्य अत्यन्त प्राविधिक, विशिष्ट तथा जटिल होते जा रहे हैं। प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य यह है कि सरकारी कृत्यों के लिये लोक कर्मचारी को भली प्रकार से तैयार किया जाये।

लोक प्रशासन के क्षेत्र में प्रशिक्षण का अर्थ वह प्रत्यक्ष प्रयत्न है जिसके द्वारा कर्मचारी अपने कौशल, अपनी क्षमता एवं अपनी प्रतिभा को बढ़ाता है। व्यापक अर्थ में प्रशिक्षण का तात्पर्य एक विशेष ऐसा शिक्षण समझा जाता है जिसके द्वारा इष्ट कौशल की लगातार वृद्धि होती रहती है । प्रशिक्षण शिक्षा से भिन्न होता है, प्रशिक्षण का क्षेत्र और उद्देश्य संकुचित होते है। प्रशिक्षण में व्यक्ति की प्रवृति एवं उच्च विचार को विशेष मोड़ दिया जाता है। लोक प्रशासन के प्रसंग में प्रशिक्षण और शिक्षा के बीच जो व्यवहारिक भेद किया जाता है वह यह है कि प्रशिक्षण किसी विशेष व्यवसाय के क्षेत्र में विशेष कौशल बढ़ाता है, परन्तु शिक्षा बुद्धि और मन का विस्तार करती है। शिक्षा सर्वतोन्मुखी और सैद्धान्तिक होती है तो प्रशिक्षण अपेक्षाकृत व्यवहारिक और विशेष-धन्धी।

22.3.1 प्रशिक्षण के उद्देश्य

किसी भी संगठन की सफलता का प्रमुख कारण है- सौंपे गये विशेष कार्य को पूरा करने में व्यक्ति की प्रावधिक कुशलता तथा किसी निकाय के सदस्यों के सामूहिक उत्साह एवं दृष्टिकोण से प्राप्त कुछ अस्पष्ट सी कुशलता। प्रशिक्षण इन दोनों तत्वों को ध्यान में रख कर दिया जाता है। प्रशिक्षण के प्रमुख उद्देश्यों को हम निम्न रूप से देख सकते हैं-

एक- प्रशिक्षण का प्रयत्न ऐसे लोक सेवकों का निर्माण करना होना चाहिए जो कार्य में निश्चित ही सुस्पष्टता ला सकें।

दो- लोक सेवकों को उन कार्यों के अनुकूल बनाना जिनके पालन का दायित्व उनको सौंपा गया है। लोक सेवा के लिये यह आवश्यक है कि वह नवीन आवश्यकताओं के अनुसार अपने दृष्टिकोण व तरीके में परिर्वतन लायें।

तीन- आवश्यकता इस बात की भी है कि नौकरशाही की मशीन के चक्कर में पड़कर लोक सेवकों का कहीं यंत्रीकरण न हो जाये।

चार- जहाँ तक व्यावसायिक प्रशिक्षण का सम्बन्ध है, केवल उसी कृत्य का प्रशिक्षण देना पर्याप्त नहीं है, जो उसके समक्ष हैं एवं उसे तत्काल करने हैं। प्रशिक्षण केवल इसलिये नहीं होना चाहिए कि कोई व्यक्ति अपने विद्यमान कार्य को अधिक कुशलता के साथ कर सके, बल्कि उसका उद्देश्य उसे उन दायित्वों के योग्य बनाना होना चाहिए और उसकी उच्च कार्यक्षमता का विकास किया जाना चाहिए।

पाँच- मानव समस्या को ध्यान में रखते हुए तथा प्रशिक्षण योजनाओं को सफल बनाने के उद्देश्य से कर्मचारी वर्ग के मनोबल पर समुचित ध्यान देना चाहिए।

22.4 उत्तराखण्ड का प्रशिक्षण संस्थान- उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी का इतिहास

उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी परिसर का बहुत रोचक एवं गौरवपूर्ण इतिहास है, सन1951 में ''अधिकारी प्रशिक्षण स्कूल'' के नाम से इलाहाबाद में स्थापित इस संस्थान को जब सन1971 में नैनीताल के शान्त एवं सुरम्य वातावरण में लाने का निर्णय लिया गया तब आर्डवैल (उच्चरथ नगर-भ्पही ज्वूद) कैम्प परिसर को इस संस्थान की स्थापना के लिए चुना गया आर्डवैल कैम्प में निर्मित बैरेक्स द्वितीय विश्वयुद्व के समय रॉयल एयरफोर्स के अधिकारियों के अस्थायी आवास के लिए आर्डवैल बैरेक्स में अमेरिकन अधिकारी भी रहते थे । आर्डवैल कोठी जो कि आज निदेशक आवास है, स्वतंत्रता से पूर्व कुमाऊँ कमिश्नर का आवास हुआ करती थी। एवर्सल हाउस जजों का अतिथि गृह एवं मुख्य सचिव आवास है, जो पण्डित गोविन्द बल्लभ पन्त द्वारा 1957 में ले लिया गया था, तब उसमें श्री हाफिज मोहम्मद इब्राहिम वित्त मंत्री, संयुक्त प्रान्त रहते थे बाद में इसे शासकीय कार्यो के लिए ले लिया गया आर्डवैल प्रांगण में बैरेक्स और क्वार्टरों के साथ एक हॉल का निर्माण किया गया था जो अंग्रेज फौजियों को अंग्रेजी चलचित्र दिखाने के लिये काम में आता था, साथ ही आवश्यकता पडने पर डोरमेटरी के रूप में भी इसका प्रयोग होता था। दिनांक 15 मई 1947 से दिनांक 6 जून, 1947 तक संयुक्त प्रान्त लेजिस्लेटिव असेम्बली की 16 बैठकें आर्डवैल हॉल में आयोजित हुई थी। उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी परिसर में स्थित आर्डवैल हॉल स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व आयोजित संयुक्त प्रान्त लेजिस्लेटिव असेम्बली बैठकों के पदाधिकारी के रूप में अध्यक्ष

माननीय पुरूषोत्तम दास टण्डन, उपाध्यक्ष श्री नफीसुल हसन, सचिव श्री कैलाश चन्द्र भटनागर इत्यादि कई अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यक्तियों द्वारा भाग लिया गया था।

विगत कुछ दशकों में किये गये नीतिगत परिवर्तनों, विशेषकर अर्थव्यवस्था के उदारीकरण, लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण, संचार साधनों व सूचना तकनीकि क्षेत्र में हुई क्रान्ति इत्यादि ने शासन एवं इसके विभिन्न अभिकरणों की भूमिका केा व्यापक रूप में प्रभावित किया है। निःसन्देह अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर घटित घटनाओं का भी राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक हितों तथा नीतियों पर दूरगामी प्रभाव पड़ा है। इन परिवर्तनों एवं प्रभावों के परिणामस्वरूप शासन तंत्र से जनअपेक्षाओं में वृद्वि हुई है, शासन तंत्र से इन बदलती हुई परिस्थितियों, विशेषकर बढ़ती हुई जन अपेक्षाओं के सम्बन्ध में अधिक संवेदनशील एवं उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार करने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है अतः यह आवश्यक हो जाता है कि शासन तंत्र अर्थात् विभिन्न विभागों और इनमें सेवारत कार्मिकों को विभिन्न परिवर्तनों से उत्पन्न होने वाली चुनौतियों एवं समस्याओं के समाधान करने एवं नये लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सक्षम बनाने हेतु, उनके ज्ञान व कौशल में निरन्तर अभिवृद्वि हेतु प्रयास किये जाय। यह एक अविवादास्पद तथ्य है कि प्रशिक्षण सेवारत कार्मिकों को कार्य निष्पादन हेतु कुशल, प्रभावी एवं समक्ष बनाने का एक महत्वपूर्ण साधन है।यह भी दृष्टिगोचर हुआ कि प्रभावी रूप से संचरित एवं संचालित प्रशिक्षण कार्यक्रमों द्वारा संगठन एवं सेवारत कार्मिकों के मनोबल को ऊँचा उठाने एवं उनके दृष्टिकोण में अपेक्षित परिवर्तन में सहायक होता है, अतः जन-सामान्य की अपेक्षाओं की पूर्ति हेतु शासन के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में प्रशिक्षण एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है क्योंकि प्रदेश का समग्र विकास सेवारत कार्मिकों की कार्य कुशलता, कार्यदक्षता व योग्यता एवं शासन की प्राथमिकताओं के अनुरूप विकास एवं कल्याण कार्यक्रमों का क्रियान्वयन कर जन अपेक्षाओं के अनुरूप उनके कार्य व्यवहार पर प्रायः निर्भर करता है।

प्रदेश शासन को मानव संसाधन विकास व प्रशिक्षण सम्बन्धी विषय पर नीतिगत परामर्श देने, राष्ट्रीय व राज्य स्तर पर प्रशिक्षण सम्बन्धी प्रयासों को सुदृढ करने एवं राज्य के अधिकारियों के लिए विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों को आयोजित करने के उद्देश्य के साथ उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी, नैनीताल को स्थापित व विकसित किया गया। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि विगत वर्षो की उपलब्धियों के परिणमस्वरूप इस अकादमी ने प्रदेश व सम्पूर्ण देश में क्षमता विकास के एक अग्रणी संस्था के रूप में प्रतिष्ठा अर्जित की है । उत्तराखण्ड में, उत्तराखण्ड प्रशासनिक अकादमी, नैनीताल को एक शीर्ष प्रशिक्षण संस्थान के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है। तद्नुसार अकादमी, शासन तंत्र एवं अकादमी के उद्देश्यों के अनुरूप विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों एवं सम्बन्धित गतिविधियों का आयोजन प्रतिवर्ष सफलतापूर्वक करती आ रही है।

अकादमी की स्थापना वर्ष 1951 में भारतीय प्रशासनिक सेवा (उत्तर-प्रदेश संवर्ग) तथा राज्य सिविल सेवा (कार्यकारी शाखा) के अधिकारियों को प्रशिक्षण देने के लिये इलाहाबाद में '' अधिकारी प्रशिक्षण स्कूल (ओ.टी.एस.) के रूप में की गयी। वर्ष 1958 में इस स्कूल के प्रादेशिक न्यायिक सेवा के अधिकारियों के लिये भी व्यावसायिक प्रशिक्षण आरंभ किया गया। वर्ष 1961 तक स्कूल में प्रान्तीय सिविल सेवा अधिकारियों के लिये नियमित रूप से प्रशिक्षणों का आयोजन किया गया। परन्तु वित्तीय कठिनाइयों के कारण वर्ष 1961 में स्कूल की गतिविधियाँ तात्कालिक रूप से स्थगित कर दी गयी।

वर्ष 1971 में पुनः अधिकारी प्रशिक्षण स्कूल को नैनीताल के वर्तमान परिसर में स्थापित कर दिया गया। नैनीताल में आयुक्त स्तर के अधिकारी को इस स्कूल का पूर्णकालिक प्रधानाचार्य नियुक्त किया गया। वर्ष 1974 में स्कूल के नाम को परिवर्तित कर 'प्रशासकीय प्रशिक्षण संस्थान' कर दिया गया। वर्ष 1976 से संस्थान के विभिन्न पदों के पदनाम भी बदल दिये गये। संस्थान में अब निदेशक, संयुक्त निदेशक, उप-निदेशक तथा सहायक निदेशक नियुक्त किये गये। प्रशिक्षण के बदलते स्वरूप एवं संस्थान की बढ़ती हुई गतिविधियों को देखते हुए, वर्ष 1988 में इसे प्रदेश का शीर्षस्थ प्रशिक्षण संस्थान घोषित किया गया तथा संस्थान की बढ़ती गतिविधियों एवं बदलते लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए इसका नाम परिवर्तित करते हुए इसे उत्तर प्रदेश प्रशासन अकादमी कर दिया गया।

22.4.1 उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी द्वारा आयोजित प्रशिक्षण की रूपरेखा

9 नवम्बर 2000 को उत्तराखण्ड के रूप में नये राज्य का गठन हुआ। राज्य गठन के पश्चात यह उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी के रूप में स्थापित हो गया। अब यह उत्तराखण्ड राज्य की शीर्षस्थ प्रशिक्षण संस्था के रूप में अपने दायित्वों को पूर्ण कर रही है। वर्तमान में अकादमी द्वारा उत्तराखण्ड राज्य के अधिकारियों हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है। अकादमी वर्तमान में सम्मिलित राज्य सेवा के अधिकारियों हेतु आधारभूत/सेवा प्रवेश प्रशिक्षण कोर्सों के अतिरिक्त प्रादेशिक सिविल सेवा (कार्यकारी शाखा), भारतीय प्रशासनिक सेवा (उत्तराखण्ड संवर्ग), भारतीय वन सेवा (उत्तराखण्ड संवर्ग) के अधिकारियों के लिये व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम का भी आयोजन कर रही है। इसके अतिरिक्त भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, तथा भारत सरकार व प्रदेश शासन के विभिन्न विभागों के अधिकारियों के लिये सेवाकालीन तथा विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं।

उत्तराखण्ड राज्य द्वारा उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग के माध्यम से चयनित सभी अधिकारियों के लिये तीन सप्ताह का सेवा प्रवेश प्रशिक्षण अनिवार्य कर दिया गया है। सेवा प्रवेश प्रशिक्षण का उद्देश्य नवसृजित उत्तराखण्ड राज्य की चुनौतियों तथा अवसरों के बारे में नव-नियुक्त अधिकारियों को अद्यतन सूचना से अवगत कराना तथा उनमें प्रबन्धकीय कौशल का विकास करना है। जिससे वे अपने-अपने क्षेत्रों में गुणात्मक सेवाएँ प्रदान कर सकें, तथा उनमें उत्तराखण्ड राज्य की सामाजिक-आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक व्यवस्थाओं के संदर्भ में उचित समझ विकसित हो सके। अकादमी द्वारा राज्य के अधिकारियों के क्षमता विकास हेतु अनेकों प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है जिससे वह सुयोग्य, व्यावसायिक एवं प्रतिबद्वतापूर्ण लोक सेवक के रूप में राज्य के विकास में सहयोग दे सकें। अकादमी द्वारा कई ऐसे विभागों के लिए भी क्षमता विकास प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं, जिनके पास संस्थागत प्रशिक्षण आयोजित करने की सुविधाएँ नहीं है या प्रशिक्षण नहीं है या प्रशिक्षकों की संख्या बहुत अधिक होने के कारण सीमित संसाधनों से प्रशिक्षण की व्यवस्था नहीं कर पा रहे है।

अकादमी द्वारा प्रशिक्षण प्रभाग, कार्मिक एवं प्रशिक्षण कौशल विकसित करने में सहायक कार्यक्रम जैसे डायरेक्ट ट्रेनिंग (डीओटी), इवैल्यूएशन ऑफ टेªनिंग (ईओटी) एवं ट्रेनिंग टैक्नीक्स इत्यादि कार्यक्रमों का आयोजन प्राथमिकता के आधार पर किया जाता है। अकादमी को ओवरसीज डेवलपमेन्ट एडमिनिस्टेªशन, ब्रिटिश सरकार तथा प्रशिक्षण प्रभाग, कार्मिक व प्रशिक्षण विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली के सौजन्य से भारत में चलाई जा रही 'प्रशिक्षक विकास योजना के अन्तर्गत देश के पॉच प्रमुख क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्रों में से एक प्रमुख केन्द्र के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है । इसके अन्तर्गत अकादमी देश व प्रदेश के विभिन्न प्रशिक्षण संस्थानों में कार्यरत

प्रशिक्षण संकाय को प्रत्यक्ष प्रशिक्षण की कला, प्रशिक्षण डिजाइन, प्रशिक्षण आवश्यकता विश्लेषण, प्रशिक्षण प्रबन्धन जैसे क्षेत्रों में प्रशिक्षण प्रदान करती है।

उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी, नैनीताल में सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 के क्रियान्वयन की दशा में महत्वपूर्ण प्रयास किए जा रहे है । आन्तरिक स्तर पर विभागीय मैनुअल, कर्मचारियों के दायित्व का विवरण विस्तृत रूप से प्रकाशित किया जाता है, साथ ही अपर निदेशक को लोक सूचना अधिकारी तथा निदेशक को अपीलीय अधिकारी के रूप में अधिसूचित किया गया है। अकादमी में सूचना का अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत प्रशिक्षण कार्यक्रमों के आयोजन हेतु एक - एक अलग प्रकोष्ठ उप निदेशक के अधीन गठित किया गया है। प्रशासन में सुधार हेतु सूचना तक पहुँच को एक मुख्य क्षेत्र के रूप में चिन्हित किया गया है। सूचना तक पहुँच को एक मुख्य विकासात्मक मुद्दे के रूप में मान्यता दी गयी है क्योंकि कि यह प्रशासन को अधिक उत्तरदायी तथा सहभागी बनाने के साथ शक्ति के निरंकुश प्रयोग पर रोक लगाकर अधिक पारदर्शिता को सुनिश्चित करता है। सूचना का अधिकार जनता को उनके अधिकारों की अनुभूति कराता है। अकादमी में प्रशिक्षण कार्यक्रमों के आलावा यू0एन0डी0पी0 के सहयोग से सूचना के अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत विस्तृत कार्ययोजना तैयार की गई है।

आपदा प्रबन्ध प्रकोष्ठ का गठन कृषि मंत्रालय भारत सरकार द्वारा उत्तर प्रदेश प्रशासन अकादमी, नैनीताल में राज्य स्तर की इकाई के रूप में वर्ष 1995 में किया गया था, 9 नवम्बर, 2000 को उत्तराखण्ड के रूप में नए राज्य का गठन हुआ। राज्य के अधिकतर क्षेत्र भूकम्पीय जोन में होने के कारण से शासन स्तर से आपदा प्रबन्ध एवं न्यूनीकरण केन्द्र की स्थापना की गई थी। इसलिए यह केन्द्र भी देहरादून में आपदा प्रबन्ध एवं न्यूनीकरण केन्द्र में ही सम्मिलित कर लिया गया था, परन्तु उद्देश्यों में अन्तर होने की वजह से जुलाई 2006 में आपदा प्रबन्ध प्रकोष्ठ पुनः उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी, नैनीताल में स्थापित किया गया। आपदा प्रबन्ध प्रकोष्ठ का कार्य मुख्यतः दैवी आपदाओं के सम्बन्ध में सूचनाओं का संकलन, डॉक्युमेन्टेशन, आपदा प्रबन्ध के सम्बन्ध में एक्शन प्लान का निर्धारण, पूर्व तैयारी, जागरूकता तथा प्रशिक्षण, कन्सलटेन्सी, शोध तथा क्षमता विकास इत्यादि के कार्य संचालित होते हैं।

22.4.2 अकादमी के प्रमुख प्रशिक्षण कार्यक्रम

अकादमी के अन्तर्गत संचालित किये जाने वाले कार्यक्रमों में सम्मिलित राज्य सेवा के अधिकारियों के आधारभूत, राज्य संवर्ग के आई.ए.एस., आई.एफ.एस. और पी.सी.एस. अधिकारियों के व्यवसायिक तथा पदोन्नत उप-जिलाधिकारियों के कार्यकारी विकास तथा राज्य सिविल सेवा के अधिकारियों के सेवा कालीन प्रशिक्षण सम्मिलित हैं। साथ ही प्रदेश के विभिन्न विभागों में कार्यरत अधिकारियों के ज्ञान व क्षमता के विकास हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम भी समय-समय पर आयोजित किये जाते हैं। अकादमी द्वारा आयोजित किये जाने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रमों को निम्न रूप से देखा जा सकता है।

1. व्यवसायिक प्रशिक्षण कोर्स:

अखिल भारतीय सेवा के प्रशिक्षार्थी हेतु आयोजित किये जाने वाले व्यवसायिक प्रशिक्षण कोर्स का मुख्य लक्ष्य प्रशिक्षार्थी अधिकारियों को संबंधित कार्यक्षेत्रों की समस्याओं के समाधान के लिए उनकी क्षमता एवं आत्मविश्वास में वृद्धि करना है। प्रादेशिक सिविल सेवा (कार्यकारी शाखा) एवं प्रादेशिक वित्त सेवा के अधिकारियों हेतु निम्नांकित व्यवसायिक प्रशिक्षण कोर्सो का आयोजन किया गया।

छठवॉ आई.ए.एस. व्यवसायिक कोर्स की अवधि 5 सप्ताह की रही जिसमें दो आई.ए.एस. अधिकारियों ने प्रतिभाग किया। दूसरा व्यवसायिक कोर्स प्रादेशिक वित्त सेवा के अधिकारियों का हुआ, जो कि 12सप्ताह चला जिसमें 9 अधिकारियों ने भाग लिया। तीसरा व्यवसायिक कोर्स प्रादेशिक सिविल सेवा कार्यकारी सेवा के अधिकारियों का हुआ, जो कि 12 सप्ताह चला, जिसमें 13 अधिकारियों ने प्रतिभाग किया।

2. आधारभूत प्रशिक्षण कोर्सः

आधारभूत प्रशिक्षण कार्यक्रम का मुख्य लक्ष्य प्रशिक्षार्थी अधिकारियों को प्रदेश तथा संबंधित कार्यक्षेत्रों की समस्याओं के लिए उनके आत्मविश्वास में वृद्धि करना होता है। प्रादेशिक सिविल सेवा 2004 बैच के अधिकारियों हेतु छठवॉ आधारभूत कार्यक्रम बारह सप्ताह चला और इसमें 39 प्रतिभागियों ने भाग लिया।

3. सेवा प्रवेश प्रशिक्षण कोर्सः

उत्तराखण्ड शासन द्वारा दिनॉक 17 जनवरी, 2003 को प्रेषित पत्र (संख्याः1833 एक-1-2003) द्वारा राज्य के समस्त विभागों एवं अकादमी, नैनीताल को यह सूचित किया गया था कि उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग से चयनित समस्त अभ्यर्थियों को (राज्य स्तरीय सेवा से भिन्न) कार्यभार ग्रहण कराने से पूर्व अनिवार्य रुप से आधारभूत/सेवा प्रवेश प्रशिक्षण कोर्स अकादमी नैनीताल में प्राप्त करना होगा, जिससे कि नवचयनित अधिकारियों को उनकी सेवाओं से संबंधित कर्त्तव्यों एवं दायित्वों से परिचित कराया जा सकें।

उत्तराखण्ड शासन द्वारा नवचयनित अधिकारियों को प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से दिया गया उपरोक्त आदेश/पहल इसलिए भी महत्तवपूर्ण है कि नये राज्य उत्तराखण्ड के नवम्बर, 2000 में सृजित होने के पश्चात इस नवसृजित राज्य में नियुक्त लोक सेवकों से जन अपेक्षाओं के संदर्भ में अधिक संवेदनशील एवं उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार की अपेक्षा की जा रही है।

उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी, नैनीताल द्वारा 2009-2010 में उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग द्वारा चयनित अधिकारियों हेतु, संदर्भित वर्ष में निम्नलिखित सेवा प्रवेश प्रशिक्षण कोर्स को आयोजित किया गयाः

व्यापार कर अधिकारी श्रेणी-2 के अधिकारियों हेतु बीसवाँ सेवा प्रवेश प्रशिक्षण तीन सप्ताह चला, जिसमें 51 प्रतिभागियों ने भाग लिया।

4. राष्ट्रीय बैनर डिवीजन

राष्ट्रीय बैनर डिवीजन के अन्तर्गत अकादमी द्वारा विभिन्न अखिल भारतीय सेवा के अधिकारियों हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन भारत सरकार के सहयोग से किया जाता है। राष्ट्रीय बैनर डिवीजन के अन्तर्गत अकादमी द्वारा विभिन्न अखिल भारतीय सेवा के अधिकारियों के लिए निम्नलिखित प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये गएः-

1. कम्युनिटी पार्टीसिपेशन एण्ड मोबिलाइज़ेशन, आई.ए.एस. अधिकारियों का प्रशिक्षण एक सप्ताह चला जिसमें 17 प्रतिभागियों ने भाग लिया।

2. ग्यारहवॉ आई.पी.एस.-वर्टीकल इन्टरैक्शन कोर्स छः दिन चला जिसमें 23 प्रतिभगियों ने भाग लिया।

कुल प्रतिभागियों की संख्या का योग	40
कार्यक्रमों की कुल संख्या का योग	02

5. प्रादेशिक बैनर डिवीजन

भारत सरकार के कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग के प्रशिक्षण प्रभाग की सहायता से राज्य सरकार के विभिन्न विभागों में कार्यरत अधिकारियों एवं कर्मचारियों के लिए चिन्हित आवश्यकता आधारित विभिन्न विषयों पर आयोजित किए जाने वाले एक सप्ताह एवं तीन दिवसीय कार्यक्रम के आयोजन का दायित्व इस डिवीजन को सौंपा गया है। राज्य के अधिकारियों के लिए निम्नलिखित प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए गए जिसमें:-

प्रतिभागियों की संख्या का योग	769
कार्यक्रमों की कुल संख्या का योग	41
अतिरिक्त कार्यक्रमः-	
प्रतिभागियों की संख्या का योग	97
कार्यक्रमों की कुल संख्या का योग	5

6. सूचना का अधिकार अधिनियमः-

उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी, नैनीताल में, सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 के क्रियान्वयन की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किये जा रहे है। आन्तिरिक स्तर पर विभागीय मैनुअल, कर्मचारियों के दायित्व का विवरण विस्तृत रुप से प्रकाशित किया गया है।

प्रशिक्षण कार्यक्रम:

सूचना का अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन के संदर्भ में उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी, नैनीताल द्वारा वर्ष 2009-10 में कार्यक्रम आयोजित किये गये जिसमें

प्रतिभागियों की संख्या का योग	412
कार्यक्रमों की कुल संख्या का योग	08

7. आपदा प्रबन्ध प्रकोष्ठ -

9 नवम्बर,2000 को उत्तराखण्ड के रुप में नये राज्य का गठन हुआ। राज्य के अधिकतर क्षेत्र भूकम्पीय जोन होने की वजह से शासन स्तर से आपदा प्रबन्ध एवं न्यूनीकरण केन्द्र की स्थापना की गयी थी इसलिए यह केन्द्र भी देहरादून में आपदा प्रबन्ध एवं न्यूनीकरण केन्द्र में ही सम्मिलित कर लिया गया।उद्देश्यों में अन्तर होने की वजह से अप्रैल, 2006 में अकादमी की बोर्ड ऑफ गवर्नर्स की मीटिंग में निर्णय लिया गया कि इसे पुनः अकादमी में स्थापित किया जाये।

प्रतिभागियों की संख्या का योग	194
कार्यक्रमों की कुल संख्या का योग	09

22.5 पदोन्नति

पदोन्नति का शब्दकोष में अर्थ है -पद, स्तर, सम्मान में वृद्धि करना; आगे बढ़ाना। वस्तुतः पदोन्नति से अर्थ पद और स्तर में वृद्धि से है। लोक सेवा व्यावसायिक सेवा है। इसका अर्थ है कि जो व्यक्ति सरकारी नौकरी करता है वह जीविकोपार्जन के रुप में स्वीकार करता है और सम्पूर्ण जीवन उसमें व्यतीत करता है। अर्थात समय के साथ-साथ संगठन और वरिष्ठता क्रम में सार्वजनिक कर्मचारी अपने कार्य के आधार पर आगे बढ़ता रहता है। अतः पदोन्नति लोक सेवा का एक अभिन्न अंग है।

22.5.1 भारतीय लोक सेवा में पदोन्नति की नीतियों का इतिहास

1669 में ईष्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा अपने कर्मचारियों के संबंध में वरिष्ठता का नियम लागू किया गया था, और इसी के साथ भारत में लोक सेवाओं का सूत्रपात हुआ। 1771 में कम्पनी ने व्यापारिक दायित्व के साथ-साथ प्रशासकीय दायित्व भी वहन किया और वरिष्ठता के सिद्धान्त का संशोधन करते हुए योग्यता को मान्यता दी। इस संबंध में निदेशक मण्डल ने आदेश दिया कि 'हमारी यह इच्छा है कि हमारे कर्मचारी उच्च पदों पर सेवा में प्राथमिकता क्रम अर्थात् वरिष्ठता के आधार पदोन्नत किये जाये लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि केवल वरिष्ठता के आधार पर ही ऐसे पद पाने के अधिकारी हो अपितु उन्हें निभ्रान्त रुप से सच्चरित्र और पर्याप्त योग्यता -सम्पन्न होना चाहिये'। 1947 में भारत के स्वतंत्र होने पर पदोन्नति की समस्या पर विशेष ध्यान दिया गया। प्रथम लोक सभा की अनुमान समिति ने प्रशासकीय, वित्तीय और अन्य सुधारों की जॉच के दौरान पदोन्नति की रीतियों का विरोध करते हुए निम्नलिखित रीति का सुझाव दिया था, जो सभी आधुनिक देशों और व्यापारिक प्रतिष्ठानों में मान्य है -

1.पदोन्नति का आधार योग्यता होना चाहिये, न कि सेवारत व्यक्तियों की वरीयता।

2.कर्मचारियों की पदोन्नति के संबंध में केवल उन्हीं व्यक्तियों को अधिकार देना चाहिये, जिन्होंने कुछ समय तक उनके कार्य और आचरण की जाँच की हो।

3.कम से कम एक त्रिस्तरीय कमेटी की सिफारिश के आधार पर ही, जिसका एक सदस्य उस व्यक्ति के कार्य से सुपरिचित हो, पदोन्नति की जानी चाहिये और ऐसे मामले में, जहाँ किसी वरिष्ठ अधिकारी के हित की उपेक्षा की गयी हो, समिति को लिखित रुप में वरिष्ठता की उपेक्षा करने के कारणों पर प्रकाश डालना चाहिये।

4.किसी कर्मचारी को पदोन्नत किये जाने के अवसर पर उसके गोपनीय प्रतिवेदन की जाँच की जानी चाहिये और यह देखा जाना चाहिये कि उसे गलतियों के संबंध में कितनी बार चेतावनी दी गयी, और इन चेतावनियों के बावजूद यदि उसके आचरण में कोई सुधार नहीं हुआ तो क्या उसे पुनः चेतावनी दी गयी?

5.यदि किसी व्यक्ति या कर्मचारी को यह चेतावनी नहीं दी गयी है तो इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिये कि उसके संबंध में दिये गये प्रतिवेदन इतने अच्छे है कि उसे पदोन्नत कर देना चाहिये।

22.5.2 पदोन्नति के सिद्धान्त

पदोन्नति निम्नलिखित किसी एक सिद्धान्त पर आधारित होता है -

1. वरिष्ठता

2. योग्यता

3. वरिष्ठता तथा उपयुक्तता (या उपयुक्तता के अधीन वरिष्ठता)

लोक सेवा में पदोन्नति वरिष्ठता और/या योग्यता पर आधारित होती है। ऐसे पदों पर जिनके संबंध में चयन नहीं किया जाता तथा तृतीय श्रेणी के पदों पर उपयुक्त होने पर वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति की व्यवस्था है। जिन पदों के लिए प्रत्याशियों का चुनाव किया जाता है, विशेषकर प्रथम और द्वितीय श्रेणी में पदोन्नति योग्यता के आधार की जाती है। जिन पदाधिकारियों की पदोन्नति पर विचार किया जाना है उनकी संख्या सीमित होती है, और पदोन्नत किये जाने वाले पदों की संख्या के तीन गुने से पॉच गुने तक के अधिकारियों के कामों को वरिष्ठता क्रम में व्यवस्थित किया जाता है। परम्परा के अनुसार पदोन्नति निम्न स्तर के पदों पर वरिष्ठता के आधार पर, मध्य स्तर के पदों पर वरिष्ठता सहित योग्यता के आधार पर, और उच्चस्तरीय पदों पर योग्यता के आधार पर की जाती है।

अभ्यास प्रश्न -

1. भारत शासन अधिनियम द्वारा सर्वप्रथम लोक सेवा आयोग की स्थापना कब की गयी?
2. लोक सेवाओं का वर्गीकरण कितने ग्रुपों में किया गया है?
3. उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी की स्थापना किस वर्ष हुयी?
4. सर्वप्रथम उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी का क्या नाम था?
5. प्रादेशिक न्यायिक सेवा के अधिकारियों के लिए व्यवसायिक प्रशिक्षण अकादमी ने किस वर्ष शुरु किया?
6. सूचना का अधिकार अधिनियम का क्रियान्वयन कब हुआ?
7. आपदा प्रबन्ध प्रकोष्ठ का गठन अकादमी में कब किया गया?
8. पदोन्नति के तीन सिद्धान्त कौन कौन से है?

22.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के अध्ययन से हमें यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि प्रशासकीय संरचना में भर्ती और चयन, प्रशिक्षण व पदोन्नति की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण का महत्वपूर्ण स्थान होता है। जहाँ भर्ती व चयन द्वारा लोक सेवाओं का स्तर व योग्यता निश्चित होती है वहीं प्रशिक्षण लोक सेवकों को उनके कार्यों के लिये दक्ष व व्यावहारिक बनाने में सहायक होता है। लोक सेवकों और कर्मचारियों की सेवा को देखते हुए उनकी कार्य प्रणाली व दक्षता के आधार पर उन्हें पदोन्नत किया जाता है जिससे उनके मनोबल में वृद्धि होती है और उनकी कार्यप्रणाली में तीव्रता आती है। भर्ती, प्रशिक्षण व पदोन्नति कर्मचारियों के केवल दक्षता व मनोबल ही नहीं बढ़ाते वरन उन्हें व्यवहार कुशल,

मृदुभाषी व सहयोगी बनाते हैं। सांराशतः कहा जा सकता है कि भर्ती, प्रशिक्षण व पदोन्नति सम्पूर्ण लोक कर्मचारियों के ढाँचें की आधारशिला है।

22.7 शब्दावली

समानार्थक - समान अर्थ वाले

सचेष्ट - ऊर्जावान

विज्ञप्ति - प्रेस नोट

पारदर्शिता - स्पष्ट

प्रतिबद्ध – सम्बद्ध

22.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 1919, 2. 3, 3. 1951, 4. अधिकारी प्रशिक्षण स्कूल, 5. 1958, 6. 2005, 7. 1995, 8. वरिष्ठता, योग्यता, वरिष्ठता तथा उपयुक्तता।

22.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. डी.डी.बसु - भारत का संविधान
2. टी.सी.भट्ट - उत्तराखण्ड, राज्य आन्दोलन का नवीन इतिहास
3. वार्षिक प्रतिवेदन - उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी,नैनीताल (2008-09, 2009-10)
4. प्रशिक्षण नीति - उत्तर प्रदेश राज्य प्रशिक्षण नीति 1999, कार्मिक विभाग, लखनऊ

22.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अवस्थी व माहेश्वरी - लोक प्रशासन

2. शर्मा व सडाना - लोक प्रशासन: सिद्धान्त व व्यवहार

3. डॉ. एस.सी.सिंघल - समकालीन राजनीतिक मुद्दे

22.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भर्ती की परिभाषा देते हुए उसके अनिवार्य तत्वों को बताइये?
2. प्रत्यक्ष भर्ती बनाम पदोन्नति द्वारा भर्ती के गुण दोष लिखिये?
3. प्रशिक्षण किसे कहते हैं तथा प्रशिक्षण के उद्देश्यों पर प्रकाश डालिये?
4. उत्तराखण्ड प्रशासनिक अकादमी के इतिहास पर एक लेख लिखिये?
5. उत्तराखण्ड प्रशासन अकादमी के द्वारा आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रमों की रूपरेखा पर निबन्ध लिखिये?

इकाई-23 सांस्कृतिक एवं भाषा विकास

इकाई की संरचना

23.0 प्रस्तावना
23.1 उद्देश्य
23.2 उत्तराखण्ड की भाषा और साहित्य
23.2.1 पहाड़ी हिन्दी
23.2.2 कुमाऊँनी भाषा का विकास
23.3 लोक साहित्य
123.4 उत्तराखण्ड राज्य की सांस्कृतिक गतिविधियॉ
23.4.1 राज्य साहित्य एवं कला परिषद
23.5 क्षेत्रीय पुरातत्व इकाई
23.6 राज्य अभिलेखागार
123.6.1 राज्य अभिलेखागार के मुख्य कार्य
23.6.2 संरक्षित अभिलेख
23.7 संस्कृति भवन व संस्कृति संरक्षण का विभागीय प्रयास
23.8 सारांश
23.9 शब्दावली
23.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
23.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
23.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
23.13 निबंधात्मक प्रश्न

23.0 प्रस्तावना

अब हम इकाई-२३ में राज्य की भाषा व संस्कृति के विकास पर चर्चा करेंगे। किसी भी राज्य की पहचान वहॉ की भाषा व संस्कृति से लगायी जा सकती है। उदाहरण के लिये हम पंजाब राज्य को लें तो वहॉ की संस्कृति व भाषा हमें वहॉ की सांस्कृतिक विरासत का परिचय स्वतः दे देती है। ऐसे ही समस्त राज्यों की भाषा व संस्कृति वहां की कार्यशैली को बताती हैं। ठीक इसी तर्ज पर उत्तराखण्ड की संस्कृति भी राज्य की अपनी अनूठी संस्कृति का परिचय देती है। राज्य की भाषा व संस्कृति को लेकर उत्तराखण्ड राज्य सरकार द्वारा भी अनेकों प्रयास किये जा रहें हैं।

राज्य की समृद्ध सांस्कृतिक, ऐतिहासिक विरासत का संरक्षण, संवर्द्धन एवं विकास तथा उनको प्रोत्साहित करने के लिये राज्य सरकार द्वारा उत्तराखण्ड संस्कृति, साहित्य एवं कला परिषद बनायी गयी है। इस परिषद के माध्यम से संस्कृति के सभी पहलुओं के विकास के लिये इस क्षेत्र के अनुभवी विशेषज्ञों के सहयोग से कार्य किया जा रहा है। राज्य की सभी सरकारें इस प्रयास में रहीं हैं कि अनादिकाल से विख्यात इस क्षेत्र की संस्कृति, कला एवं साहित्य को संजोकर रखा जाये। साथ ही आने वाली पीढ़ियों के लिये इसका समुचित अभिलेखीकरण भी किया जाये।

23.1 उद्देश्य

इस इकाई में हम राज्य की भाषा व संस्कृति की विस्तृत जानकारी का अध्ययन करेंगे। इस इकाई से हम जान पायेंगे कि-

१ उत्तराखण्ड में भाषा का क्या इतिहास रहा है।

२ उत्तराखण्ड का लोक साहित्य व उसके महत्व के बारे में।

३ संस्कृति विभाग व उसकी समितियां।

४ कला परिषदें, अभिलेखागार व संग्राहलयों के बारे में।

23.2 उत्तराखण्ड की भाषा और साहित्य

उत्तराखण्ड की भाषा हिन्दी, संस्कृत, पालि-अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी है। समय-समय पर विविध सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक, राजनीतिक परिस्थितियों ने हिन्दी को एक विशाल भू-प्रदेश में फैलने का अवसर प्रदान किया। डॉ. ग्रियसन के अनुसार, ' हिन्दी भाषा का क्षेत्र पश्चिम में अम्बाला (पंजाब) से लेकर, पूर्व में बनारस, उत्तर में नैनीताल की तलहटी से लेकर दक्षिण में कालाघाट तक विस्तृत है।

23.2.1 पहाड़ी हिन्दी

हिन्दी में प्रायः किसी देश विशेष, स्थान विशेष अथवा प्रान्त विशेष के निवासियों के लिए तथा भाषा या बोली के साथ उसका संबंध सूचित करने के लिए संबंधित देश अथवा प्रान्त अथवा बोली के साथ 'ई' प्रत्यय जोड़ देने की परम्परा चली आ रही है, जैसे कश्मीरी, पंजाबी, बंगाली। पहाड़ शब्द पर 'ई' प्रत्यय जोड़कर पहाड़ी शब्द बना है जो निवासी व भाषा अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। कश्मीर की दक्षिण-पूर्व, सीमा पर भद्रवाह से नेपाल के पूर्वी भाग तक बोली जाने वाली भारतीय आर्य भाषा परिवार से संबंधित प्रायः सभी बोलियॉ पहाड़ी उपभाषा के अन्तर्गत आ जाती है।

पहाड़ी हिन्दी में तीन बोलियों को सम्मिलित किया गया है-

1. पूर्वी पहाड़ी

2. मध्य पहाड़ी

3. पश्चिमी पहाड़ी

पूर्वी पहाड़ी की मुख्य भाषा नेपाली है। इसे गोरखाली नाम से भी जाना जाता है। यह नेपाल की राजभाषा है। इसकी लिपि देवनागरी है।

मध्य पहाड़ी हिन्दी की दो प्रमुख बोलियॉ हैं- कुमाऊँनी और गढ़वाली। सामान्यतः पहाड़ी हिन्दी से अभिप्रायः उस उपवर्ग से लिया जाता है जिसे डॉ. ग्रियसन ने मध्य पहाड़ी नाम दिया है। मध्य पहाड़ी की बोलियॉ कुमाऊँनी और गढ़वाली क्रमशः कुमाऊँनी और गढ़वाली में बोली जाती है। यह भी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है।

23.2.2 कुमाऊँनी भाषा का विकास

कुमाऊँ की बोली ' कुमाऊँनी' नाम से जानी जाती है। कुमाऊ शब्द का संबंध कूमांचल या कूर्मांचल से है। कुमाऊँनी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। कुमाऊँनी के प्राचीनम नमूने शक सम्वत् 1266 अर्थात् चौदहवीं शती के पूर्वार्द्ध से मिलते है, शिलालेखों और ताम्रपत्रों में उपलब्ध प्राचीन कुमाऊँनी के नमूनों मे संस्कृत शब्दों के प्रयोग की प्रवृति लक्षित होती है। कुमाऊँनी भाषा की विकास यात्रा को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. आदिकाल (14वीं सदी से 1800 ई.)

2. मध्यकाल (1800वीं सदी से 1900 ई.)

3. आधुनिक काल (1900वीं सदी से वर्तमान तक)

आदिकाल- आदिकाल की कुमाऊँनी बोली में संस्कृत शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग होता था। परन्तु 18वीं सदी तक आते आते संस्कृत निष्ठा के स्थान पर तद्भव शब्दों की ओर झुकाव बढ़ा और कहीं कहीं अरबी फारसी के शब्द भी प्रयुक्त होने लगे।

मध्यकाल- इस काल में गुमानी पन्त जैसे प्रतिष्ठित कवि कुमाऊँनी में काव्य की रचना करने लगे थे। सन1815 में कुमाऊँ को अंग्रेजों ने अपने अधीन कर लिया और इसी बोली को पत्राचार की हेतु अपनाया।

आधुनिक काल- बीसवीं सदी की कुमाऊँनी पहले की कुमाऊँनी से एकदम अलग हो गई। 'अल्मोड़ा अखबार' अंचल आदि समाचार पत्रों के प्रकाशन में इसके विकास में महत्वपूर्ण सहयोग दिया। हिन्दी की एक उपबोली होने के कारण इसके लिखित स्वरुप एवं बोलचाल में हिन्दी का बहुत प्रभाव पड़ा है। अब तो यह सरल से सरलतम हो गयी है।

गढ़वाली- ग्रियसन ने भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण करते हुए पहाड़ी समुदाय में केन्द्रीय उपभाषा के अन्तर्गत कुमाऊँनी के साथ गढ़वाली बोली को भी लिया है। गढ़वाली बोली की उत्पत्ति के विषय में भाषा शास्त्रियों के विचारों में मतभेद है। डा. भोलाशंकर व्यास, डा. धीरेन्द्र वर्मा गढ़वाली की मूल उत्पत्ति शुद्ध शैरसेनी से मानते है, परन्तु डा. सुनीति कुमार चटर्जी का मत पहाड़ी भाषाओं के संबंध में एकदम भिन्न है। वे इनकी उत्पत्ति 'दश' या 'खश' से मानते है। वास्तव में उनकी इस स्थापना का आधार मात्र यहीं है कि खश भी गढ़वाल के निवासी थे। और 'खश' दरद वंशीय माने गये है। किन्तु यदि गढ़वाली भाषा और दरद भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो दोनो में काफी अन्तर मिलेगा। मैक्समूलर ने अपनी पुस्तक 'साइन्स ऑफ लैंग्वेज' में गढ़वाली को

प्राकृतिक भाषा का एक रुप माना है। बालकृष्ण शास्त्री ने अपनी 'बनक वंश' पुस्तक में यह उल्लेख किया है कि गढ़वाल में संस्कृत बहुत दिनों तक रही। हरिराम धस्माना ने यह उल्लेख किया कि आर्य गढ़वाल और वैदिक संस्कृत के शब्दों की सूची दी है जिसमें दिखाया गया है कि गढ़वाली में कई शब्दों का प्रयोग वैदिक रुप में ही होता है।

23.3 लोक साहित्य

कुमाऊँनी

राज्य के उत्तर-पश्चिमी तथा दक्षिणी भागों को छोड़कर सम्पूर्ण क्षेत्र में कुमाऊँनी भाषा बोली जाती हैं। विभिन्न क्षेत्रों में इसकी उपबोलियॉ अभिव्यक्ति का माध्यम है, जिसमें शौका, थारु, राजी तथा बोक्साड़ी प्रमुख है। कुमाऊँनी भाषा का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। डा. ग्रियसन ने कुमाऊँनी भाषा की प्रकृति का अध्ययन कर इसकी विशेषताओं का उल्लेख किया है। भाषाविदों ने दरद-पहाड़ी को कुमाऊँनी भाषा का मूल श्रोत माना है। ध्वनि, रुप-रचना तथा वाक्य विन्यास की दृष्टि से कुमाऊँनी शौरसेनी अपभ्रंश के निकट है। इस कारण इसका संबंध संस्कृत से निर्धारित होता है। कुमाऊँनी भाषा क्षेत्रीय आधार पर खड़ी बोली हिन्दी से अत्याधिक प्रभावित हैं। श्री देव सिंह पोखरिया तथा मथुरा दत्त मठपाल ने कुमाऊँनी भाषा के विकास में महत्तवपूर्ण भूमिका निभायी है। मथुरा दत्त मठपाल ने कुमाऊँनी भाषा में 'दुदबोली' नामक पत्रिका का सम्पादन कर इसके विकास में अपना योगदान दिया। कुमाऊँनी बोली को ध्वनि तथा उच्चारण के आधार पर चार भागों में विभाजित किया जाता हैं। ये है- कुमय्यां, सौयोली, सीराली तथा असकोटी।

गढ़वाली :

मानव और साहित्य दोनों का प्राचीनकाल से अटूट संबंध रहा है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। गढ़वाल का लोक साहित्य अपनी गौरवमयी परम्पराओं को अक्षुण्ण रखते हुए जीवन्त है। काव्य के विविध अंगों, रस, छनद, अलंकार, भाव माधुर्य आदि से गढ़वाली लोक साहित्य पूर्ण है। यह लोक जीवन के विविध रुपों को दर्शाता है। गढ़वाल के वैभवशाली अतीत की परछाइयॉ हमें लोक साहित्य में देखने को मिलती है।

वर्तमान में लिखित साहित्य को ही साहित्य मानने की परम्परा है, किन्तु लोक साहित्य को भी साहित्य की श्रेणी में लेना चाहिये क्योंकि यह जनसामान्य से जुड़ा है और साहित्य के वास्तविक उद्देश्य का दायित्व निर्वाह करता हैं। वास्तव में लोक साहित्य जितना जन मानस को प्रभावित करता हैं उतना लिखित साहित्य नहीं। गढ़वाली भाषा में लिखित साहित्य का आरम्भ सन1750 के लगभग माना जाता है। गढ़वाली के आरंभिक कवियों में हरिकृष्ण दोर्गादत्ति, रुड़ौला, हर्षपुरी और लीलानन्द कोटनाला के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। सन1905 में 'गढ़वाली' पत्र के प्रकाशन से लोगों का ध्यान गढ़वाली भाषा की ओर विशेष रुप से आकर्षित हुआ।

23.4 उत्तराखण्ड राज्य की सांस्कृतिक गतिविधियॉ

राज्य की सांस्कृतिक विरासत तथा परम्पराओं को विकसित करने के लिए सरकार सतत् प्रयासरत है। उत्तराखण्ड भारतीय संस्कृति का प्रतीक केन्द्र हैं। यहॉ की समृद्ध परम्परा देश को ही नहीं बल्कि विदेशों में बसे भारतीयों को भी गौरवान्वित करती है। संस्कृति विभाग का उद्देश्य राज्य की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का रखरखाव व सवर्द्धन है। संस्कृति विभाग द्वारा कला एवं सस्कृति को मनोरंजन की चितपरिचित सीमाओं से उपर ले जा कर सुविचारित कल्पनाओं के आधार पर सकारात्मक दिशा के लिये प्रयास किये जाते हैं। उत्तराखण्ड सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण, संवर्द्धन एवं विकास इस दृष्टि से और भी महत्वपूर्ण है कि प्रदेश की अपनी इन्ही विरासतों से राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अलग पहचान बना सके। राज्य में साहित्य, संस्कृति व भाषा, संगीत, लोकगीतों के संरक्षण के लिये कई समितियों का गठन किया गया है।

1. राज्य साहित्य एवं कला परिषद

2. साहित्य, संस्कृति एवं कला समितियां

23.4.1 राज्य साहित्य एवं कला परिषद

राज्य में साहित्य, कला व सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण एवं सुनियोजित विकास की दृष्टि से मार्ग निर्देश गठित किये जाने के उद्देश्य से राज्य साहित्य व कला परिषद का गठन किया गया है। इसका कार्यालय देहरादून में है।

इस परिषद के उद्देश्य निम्न हैं -

1.राज्य में साहित्य एवं कला विशेष रूप से प्रदेश की सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण, संवर्द्धन तथा सुनियोजित विकास हेतु राज्य सरकार को परामर्श देना।

2.राज्य क्षेत्र के अन्तर्गत सांस्कृतिक व साहित्यिक गतिविधियों को प्रोत्साहित करना ।

3.राज्य में साहित्य, कला व भाषा के विकास हेतु राज्य व राज्य के बाहर इन क्षेत्रों से जुड़े विद्वानों से प्रभावी समन्वय तथा सहयोग प्राप्त करना।

4.हिन्दी व स्थानीय भाषा व बोलियों का विकास करना।

5.संगीत, नृत्य, नाटक, ललित कला, सृजनात्मक साहित्य (स्थानीय भाषाओं/बोलियों के साहित्य) का प्रकाशन करना व इसे जनसुलभ बनाने हेतु प्रयास करना।

6.राज्य में साहित्य व सांस्कृतिक गतिविधियों से जुड़ी पात्र स्वायत्तशासी संस्थाओं को वित्तीय सहायता प्रदान करना।

7.सांस्कृतिक गतिविधियों एवं राज्य की सांस्कृतिक विरासत के सुनियोजित विकास तथा संरक्षण के उद्देश्य से राज्य सरकार, केन्द्र सरकार तथा अन्य सभी से वित्त निवेश प्राप्त करना। इस हेतु यथा आवश्यकता परिषद द्वारा राज्य सरकार को प्रस्ताव प्रस्तुत करना।

8.साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं कला से सम्बन्धित बैठकों, प्रदर्शनियों तथा कार्यशालाओं का आयोजन करना।

9.लोक कला, भाषा विकास, कला को अन्य व्यावसायिक गतिविधियों से उत्तराखण्ड के स्थानीय कलाकारों व रचनाकारों को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने हेतु प्रयास करना।

23.4.2 साहित्य, संस्कृति व कला समितियां-संस्कृति, साहित्य एवं कला से सम्बन्धित विभिन्न विधाओं के लिये महत्तवपूर्ण सुझाव देने के लिये उत्तराखण्ड साहित्य एवं कला परिषद की तीन समितियों का गठन किया गया है। इन समितियों के कार्य निम्न हैं -

1.इन समितियों द्वारा अपने क्षेत्र की विभिन्न विधाओं के सुनिश्चित एवं समग्र विकास के लिए तात्कालिक एवं दूरगामी रणनीति तैयार की जाती है।

2.इन समितियों द्वारा अपने अपने क्षेत्रों में क्रियान्वित कराये जाने वाली योजनाओं के प्रस्ताव भी तैयार किए जाते है। साथ ही यह भी मार्गदर्शन दिया जाता है कि संबंधित योजना पर कितना व्यय भार आएगा व किस प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है।

3.इसके अतिरिक्त संस्कृति विभाग के सामान्य कार्य-कलापों एवं अवस्थापना सुविधाओं को और अधिक उपयोगी बनाये जाने हेतु इन समितियों द्वारा सुझाव दिए जाते है।

4.विभिन्न योजनाओं में शासन से प्राप्त होने वाले धन के अतिरिक्त धनराशि के अन्य सम्भावित क्षेत्रों के संबंध में भी इन समितियों द्वारा मार्गदर्शन किया जाता है।

1.अभिलेख परामर्शदात्री समिति-

प्राचीन ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक दस्तावेजों एवं पाण्डुलिपियों को संरक्षित रखने तथा उसके अनुसंधान को दिशा देने के उद्देश्य से अभिलेख परामर्शदात्री समिति का गठन किया गया है।

कार्य:

1.उत्तराखण्ड राजकीय अभिलेखागार के सुधार रुप में संचालन हेतु राज्य सरकार को समय-समय पर परामर्श देना।

2.प्राचीन हस्तलिखित ऐतिहासिक ग्रंथों एवं अभिलेखों की उत्तराखण्ड राज्य में खोज व अनुसंधान करना।

3.ऐसे महत्वपूर्ण ग्रंथों एवं अभिलेखों की प्रति प्राप्त करना जिन्हें लोग राजकीय अभिलेखागार को नहीं देना चाहते।

4.प्राप्त हस्तलिखित ग्रन्थों एवं अभिलेखों व वैज्ञानिक संरक्षण एवं इनको शोध कार्य हेतु उपलब्ध कराना तथा उसकी प्राप्ति सूची, कैलेण्डर, कैटलॉग, आदि प्रकाशित करना।

5.राज्य की जनता को अभिलेखों के महत्व के प्रति जागरुक दायित्व बोध कराने का प्रयास करना।

6.व्यक्तिगत अधिकार में रखे अभिलेखों एवं गन्थों के वैज्ञानिक विधि से संरक्षण के लिए परामर्श देना।

उक्त परामर्शदात्री समिति ऐसे सदस्यों को भी समय-समय पर मनोनीत कर सकती है, जिनकी सलाह की उन्हें आवश्यकता हो।

2.क्षेत्रीय अभिलेख सर्वेक्षण समिति-

इस समिति का कर्तव्य है कि हस्तलिखित ग्रन्थों विशेषकर ऐतिहासिक एवं अभिलिखित तथा किसी महान व्यक्ति द्वारा लिखित ग्रन्थ या पत्र का सर्वेक्षण एवं उन्हें प्राप्त करने का प्रयास करना।

3. क्रय समिति-

विभिन्न प्रकार के हस्तलिखित ग्रन्थ, अभिलेख, माइक्रोफिल्म की प्रति या नोट आदि जो समिति को दान स्वरुप या क्रय के रुप में प्राप्त होने पर, वह सरकार की सम्पत्ति होती है और राज्य अभिलेखागार में संरक्षित होती है। उत्तराखण्ड राज्य अभिलेखागार द्वारा प्रदेश में अभिलेखों एवं हस्तलिखित ग्रन्थों का सर्वेक्षण किया जाता है। क्रय समिति इन हस्तलिपियों तथा दस्तावेजों के क्रय की निगरानी करती है।

गोविन्द बल्लभ पंत राजकीय संग्रहालय-

अल्मोड़ा स्थित इस संग्राहलय का प्रमुख उद्देश्य प्राचीन धरोहरों को सुरक्षित व संरक्षित रखना तथा इसका प्रदर्शन करना है। राजवंशों व शासकों के ऐतिहासिक पुरावशेष इस क्षेत्र में यहॉ वहॉ विखरे पड़े हैं। इस क्षेत्र में विखरी अपार सांस्कृतिक संपदा के संग्रह अनुरक्षण, अभिलेखीकरण, प्रदर्शन एवं उन पर शोध करने के उद्देश्य से 1979 में उत्तराखण्ड की प्रसिद्ध ऐतिहासिक व सांस्कृतिक नगरी अल्मोड़ा में संग्रहालय की स्थापना की गयी थी। इस संग्राहलय में उत्तराखण्ड तथा उससे जुड़े विभिन्न क्षेत्रों की लगभग 3000 से अधिक महत्वपूर्ण कलाकृतियों का संग्रह है। आरक्षित संग्रह के अतिरिक्त संग्राहलय की पाँच वीथिकाओं को सुरूचिपूर्ण एवं वैज्ञानिक तरीके से प्रदर्शित किया गया है।

23.5 क्षेत्रीय पुरातत्व इकाई

राज्य में मानव सम्यता का विकास पाषाण काल से ही पल्लवित हुआ है। इससे सम्बन्धित राज्य के पर्वतीय दुर्गम अंचल में यहॉ की प्राचीन संस्कृति के रूप में चित्रित शैलाश्रय, ताम्रमानवाकृतियां, प्राचीन मंदिर, मस्जिद, चर्च, बावड़ी जल धारा, कोट, किले, धर्मशालाएं, शुद्ध एवं मिश्रित धातुओं के बने सिक्के आदि बहुलता से यत्र तत्र मिलते हैं। क्षेत्रीय पुरातत्व इकाई द्वारा पुरा सम्पदाओं का सर्वेक्षण तथा अनुसंधान निरंतर किया जाता है। गढ़वाल मण्डल के अर्न्तगत अवस्थित पुरातात्विक स्मारकों की बहुलता को देखते हुए वर्ष 1984 में तत्काली शासन द्वारा गढ़वाल मण्डल के लिये एक प्रथक पुरातत्व इकाई की स्थापना की गयी।

कुमाऊँ में पुरातत्व इकाई अल्मोड़ा कार्यालय में 1976 से है।

क्षेत्रीय पुरातत्व इकाई के निम्न उद्देश्य हैं।

1. पुरा सम्पदा का सर्वेक्षण
2. पुरा स्थलों का उत्खनन
3. पुरासम्पदा का संरक्षण तथा अनुरक्षण
4. पुरातत्व एवं पुरास्थलों के प्रति लोकरूचि जगाने हेतु जागरूकता अभियान चलाना।
5. पुरातत्व विषयक प्रकाशन एवं वार्षिक समीक्षात्मक रिपोर्ट का प्रकाशन करना।

23.6 राज्य अभिलेखागार

वर्ष 1958 तक अभिलेखागार, शिक्षा विभाग उत्तर-प्रदेश के अधीन रहा। तदोपरान्त प्रदेश सरकार द्वारा वर्ष 1975 में इसे इण्डोलॉजी और संस्कृति विभाग के अधीन स्थापित कर दिया गया। वर्ष 1973 में लखनऊ के आधुनिक अभिलेखागार में स्थानान्तरित कर दिया गया। अभिलेखागार के वृहद कार्यक्षेत्र को देखते हुए इसकी इकाईयां इलाहाबाद, वाराणसी, देहरादून तथा नैनीताल में स्थापित कर दी गयी। क्षेत्रीय अभिलेखागार, देहरादून की सन1980 में स्थापना, राज्य की पर्वतीय विकास योजना के अन्तर्गत की गयी।

23.6.1 राज्य अभिलेखागार के मुख्य कार्य

राज्य अभिलेखागार के प्रमुख कार्य निम्न हैं -

1.उत्तराखण्ड के सभी सरकारी कार्यालयों तथा विभागों के अभिलेखों का निरीक्षण, सूचीकरण एवं अभिलेखों का अभिलेखागार में स्थानान्तरण करना।

2.सभी कार्यालयों तथा विभागों, स्वायत्तशासी संस्थाओं एवं व्यक्तिगत अधिकार में रखे गये अभिलेखों को वैज्ञानिक संरक्षण करने एवं सुव्यवस्थित रखने सम्बन्धित परामर्श देना।

3.शोध छात्रों एवं जनसामान्य के उपयोग के लिये अभिलेखागार में उपलब्ध ऐतिहासिक अभिलेखों का चयन कर उनकी सूची बनाकर प्रकाशित करना।

4.अभिलेखों को जिला, विभाग एवं क्षेत्र के अनुसार सुव्यवस्थित ढंग से रखते हुए अभिलेखागार में संरक्षित करना।

5.शोध छात्र व जनसामान्य को शोध अभिलेख तथा पत्रिकाएं उपलब्ध कराना । शोध छात्रों को आवश्यकता अनुसार अभिलेखों की छायाप्रति उपलब्ध कराना।

6.जनसामान्य को अभिलेखों के महत्व के प्रति जागरूक करने हेतु समय-समय पर अभिलेख प्रदर्शनियों का आयोजन कराना है। साथ ही उत्तराखण्ड के विद्यार्थियों मे स्थानीय सामाजिक, आर्थिक व सामयिक विषयों के प्रति रूचि बढ़ाने के उद्देश्य से सामान्य ज्ञान प्रतियोगिताओं का भी आयोजन करना।

7.विभिन्न स्रोतों से प्राप्त अभिलेखों की वैज्ञानिक विधियों द्वारा मरम्मत करके इन्हें स्थाई रूप में संरक्षित करना।

8.राज्यकर्मियों को अभिलेखीय संरक्षण सम्बन्धी प्रशिक्षण प्रदान करना। मौखिक अभिलेखों का संरक्षण करना।

9.स्थानान्तरित अभिलेखों का संरक्षण।

10.व्यक्तिगत अभिलेखों को दान स्वरूप प्राप्त करना।

23.6.2 संरक्षित अभिलेख

राज्य अभिलेखागार उत्तराखण्ड में वर्ष 1816 से वर्ष 1957 तक के देहरादून के प्री-म्यूटिनी, पोस्ट-म्यूटिनी, स्वतंत्रता संग्राम से सम्बन्धित अभिलेख कलेक्ट्रेट टिहरी गढ़वाल के वर्ष 1939-49 तक के अभिलेख संरक्षित किये गये हैं। क्षेत्रीय अभिलेखागार कार्यालय में संरक्षित अभिलेख आयुक्त कुमाऊँ मण्डल नैनीताल से स्थानान्तरित वर्ष 1880-1921 तक के पोस्ट-म्यूटिनी रिकार्ड, वर्ष 1805-1944 तक राजस्व नक्शे एवं जिलाधिकारी कार्यालय, नैनीताल से स्थानान्तरित वर्ष 1928-1941 तक की फाइलें व 1880 से 1948 तक के पोस्ट म्यूटिनी अभिलेख संरक्षित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत रूप से दान स्वरूप प्राप्त अभिलेखों में प्राचीन डायरियां, पत्र, साहित्यिक लेख जो वर्ष 1896 से 1980 तक के हैं। साथ ही राष्ट्रपिता माहात्मा गॉधी, पं. गोविन्द बल्लभ पंत, सरलाबेन, श्री बनारसी दास चतुर्वेदी, श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्री रवीन्द्र नाथ टैगोर आदि महत्वपूर्ण व्यक्तियों के हस्तलिखित विभिन्न अभिलेख भी यहाँ संरक्षित हैं।

23.7 संस्कृति भवन व संस्कृति संरक्षण का विभागीय प्रयास

संस्कृति विभाग, उत्तराखण्ड का एक मात्र प्रेक्षागृह मण्डल मुख्यालय, पौड़ी में स्थित है। यह एक बहुउद्देश्यीय प्रेक्षागृह है। जिसमें 44 सीटों की आधुनिकतम कार्यशाला है। इसका उपयोग वर्तमान समय में क्षेत्रीय पुरातत्व इकाई, गढ़वाल मण्डल, पौड़ी द्वारा भातखण्डे हिन्दुस्तानी संगीत महाविद्यालय की कक्षाओं के संचालन हेतु किया जा रहा है। इस प्रेक्षागृह का उपयोग हर सरकारी व गैर सरकारी बैठकों के लिये किया जाता है। संस्कृति विभाग उत्तराखण्ड, हर वर्ष बद्री-केदार उत्सव का आयोजन करता है। इस बद्री केदार उत्सव जहॉ एक ओर राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के कलाकारों द्वारा प्रतिभाग किया जाता है, वहीं दूसरी ओर उत्तराखण्ड की परम्परागत समृद्ध संस्कृति पर आधारित कार्यक्रमों का भी प्रदेश के उत्कृष्ट कलाकारों द्वारा प्रदर्शन किया जाता है।

संस्कृति विभाग, उत्तराखण्ड भारतीय संस्कृति के विविध आयामों के संरक्षण व संवर्द्धन में संलग्न है। क्योंकि हमारी वर्तमान पीढ़ी आधुनिकता के आकाश को छूते हुए भी अपनी परम्पराओं की भूमि को न छोड़ें, इसके लिये आवश्यक है कि संस्कृति का समय-समय पर सिंचन हों। इसी का प्रयास बद्री-केदार महोत्सव के द्वारा किया जा रहा है।

अभ्यास प्रश्न-

1. पहाड़ी हिन्दी में कितनी बोलियाँ सम्मिलित हैं?
2. मध्य पहाड़ी हिन्दी की प्रमुख बोलियाँ कौन-कौन सी हैं ?
3. मैक्समूलर की प्रसिद्ध पुस्तक का नाम क्या है ?
4. गढ़वाली भाषा साहित्य का आरंभ कब से माना जाता है?
5. राज्य में साहित्य, संस्कृति, भाषा, संगीत व लोकगीतों के संरक्षण के लिये कितनी समितियों का गठन किया गया है?
6. गोविन्द बल्लभ पंत राजकीय संग्रहालय कहाँ स्थित है ?

23.8 सारांश

भाषा किसी भी समाज की पहचान होती है। भाषा का वृहद रूप वहॉ की भाषायी संस्कृति को जन्म देती है। एक ही क्षेत्र में कई तरह से भाषा को बोला जाता है। भाषा की क्षेत्रीय पहचान बोलियों के रूप मे हमारे सामने आती हैं। किसी भी समाज में बोली जाने वाली बोली उस समाज की संस्कृति से परिचय कराती हैं। उत्तराखण्ड राज्य में हिन्दी के साथ-साथ कई अन्य भाषायें व बोलियॉ प्रचलित हैं,जो हमारी सामाजिक व सांस्कृतिक धरोहर हैं। जिस तरह राज्य में भौगोलिक विभिन्नताएं हैं, ठीक उसी तरह भाषा और बोलियों को लेकर भी अनेकों विभिन्नताएं हैं। राज्य के दोनों छोरों पर अपनी सुन्दर व अनूठी बोली की पहचॉन लिये जनजातियां हैं, तो दूसरी तरफ मध्य में कुमाऊॅनी, गढ़वाली, पंजाबी, पूर्वी व अन्य बोलियों के साथ कई जातियॉ इस अनूठी सांस्कृतिक धरा पर अपने रंग बिखेरती है। वहीं विभिन्न प्रकार की सांस्कृतिक धरोहरें राज्य को पर्यटकों के लिये और आकषर्ण पैदा करती हैं। देश के विभिन्न प्रान्तों में आयोजित होने वाले उत्सवों एवं मेलों के माध्यम से भी प्रदेश की समृद्ध संस्कृति को प्रचारित करने का कार्य सरकारों द्वारा किया जाता रहा है। जिससे उत्तराखण्ड की संस्कृति की पहचान राष्ट्रीय स्तर पर राज्य बनने के बाद नये रूप् में उभरी है।

23.9 शब्दावली

संरक्षण- रक्षा, बचाव, निगरानी

प्रेक्षागृह- ऐसा स्थान जहॉ कलाकार अपनी कला का प्रदर्शन करता है। ये स्थान बैठकों व अन्य कार्यों में भी काम आता हैं।

स्वायत्तशासी- अपने अधिकार में रहने वाला शासन। जिस पर सरकार या किसी वाह्य शक्ति का कोई अधिकार नहीं होता।

संवर्द्धन- किसी वस्तु, सामग्री को सुरक्षित रखना। बढ़ाना या पालना ।

म्यूटिनी- विद्रोह, क्रान्ति या गदर।

23.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.तीन 2.कुमाऊॅनी और गढ़वाली' 3.साइन्स ऑफ लैंग्वेज

4.1750 के लगभग 5.तीन 6.अल्मोड़ा

23.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भवानी दत्त उप्रेती - कुमाऊॅनी भाषा का अध्ययन

2. चन्द्र सिंह चौहान तथा भट्ट - मल्ल तथा मध्यकालीन उत्तराखण्ड

3. बद्री दत्त पाण्डे - कुमाऊॅ का इतिहास

4. सुन्दर लाल बहुगुणा - उत्तराखण्ड में एक सौ बीस दिन

23.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सविता मोहन व हरीश यादव - उत्तरांचल समग्र अध्ययन

2. विद्या दत्त बलूनी - उत्तराखण्ड एक सम्पूर्ण अध्ययन

3. उत्तराखण्ड शासन - संतुलित समयबद्ध समग्र विकास, पॉचवीं वर्षगॉठ

4. पहाड़ - संपादक, शेखर पाठक

23.13 निबंधात्मक प्रश्न

1 -राज्य अभिलेखागार के प्रमुख कार्यों को समझातें हुए संरक्षित अभिलेख के बारे में जानकारी दीजिए?

2-साहित्य, संस्कृति व कला समितियां क्या हैं? इनके प्रमुख कार्य कौन-कौन से हैं?

3-राज्य साहित्य व कला परिषद के प्रमुख कार्यों को बताईये?

4-उत्तराखण्ड के लोक साहित्य पर एक निबन्ध लिखिये?

5-उत्तराखण्ड की भाषा व साहित्य पर प्रकाश डालिये?

इकाई- 24 पंचायतीराज, तिहत्तरवां(73वां) संविधान संशोधन अधिनियम

इकाई की रुपरेखा

24.1 प्रस्तावना
24.2 उद्देश्य
24.3 स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में पंचायती राज
24.3.1पंचायतों के विकास के लिए गठित समितियां
24.3.2 बलवंत राय मेहता समिति
24.3.3 अशोक मेहता समिति
24.3.4 जी.वी.के. समिति
24.3.5 डा. एल. एम. सिंघवी समिति
24.3.6 सरकारिया आयोग और पी0 के0 थुंगर समिति
24.4 73वें संविधान संशोधन की सोच
24.4.1 73वां संविधान अधिनियम
24.4.2 73वें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताएं
24.5 स्थानीय स्वशासन व पंचायतें
24.6 सांराश
24.7 शब्दावली
24.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
24.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
24.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
24.11 निबन्धात्मक प्रश्न

24.1 प्रस्तावना

स्वतन्त्रता पूर्व पंचायतों की मजबूती व सुदृढ़िकरण हेतु विशेष प्रयास नहीं हुए इसके विपरीत पंचायती राज व्यवस्था लड़खड़ाती रही। मध्य काल में मुस्लिम राजाओं का शासन भारत के विभिन्न हिस्सों में फैल गया। यद्यपि स्थानीय शासन की संस्थाओं की मजबूती के लिए विशेष प्रयास नहीं किये गये परन्तु मुस्लिम शासन ने अपने हितों में पंचायतों का काफी उपयोग किया। जिसके फलस्वरूप पंचायतों के मूल स्वरूप को धक्का लगा और वे केन्द्र के हाथों की कठपुतली बन गई। सम्राट अकबर के समय स्थानीय स्वशासन को पुनः मान्यता मिली। उस काल में स्थानीय स्वशासन की इकाइयां कार्यशील बनी। स्थानीय स्तर पर शासन के सारे कार्य पंचायतें ही करती थीं और शासन उनके महत्व को पूर्णतः स्वीकार करता था। लेकिन मुस्लिम काल के इतिहास को अगर समग्र रूप में देखा जाए तो इस काल में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को मजबूती नहीं मिल सकी।

ब्रिटिश काल के दौरान भी प्राचीन पंचायत व्यवस्था लड़खड़ाती रही। अंग्रजों शासन काल मे सत्ता का केन्द्रीकरण हो गया और दिल्ली सरकार पूरे भारत पर शासन करने लगी। केन्द्रीकरण की नीति के तहत अंग्रेज तो पूरी सत्ता अपने कब्जे में करके एक-क्षत्र राज चाहते थे। भारत की विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था उन्हें अपने मनसूबों को पूरा करने में एक रुकावट लगी। इसलिये अंग्रेजों ने हमारी सदियों से चली आ रही स्थानीय स्वशासन की परम्परा व स्थानीय समुदाय की ताकत का तहस-नहस कर शासन की अपनी व्यवस्था लागू की। जिसमें छोट-छोटे सूबे तथा स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं कमजोर बना दी गई या पूरी तरह समाप्त कर दी गई। धीरे धीरे सब कुछ अंग्रेजी सरकार के अधीन होता गया। सरकार की व्यवस्था मजबूत होती गई और समाज कमजोर होता गया। परिणाम यह हुआ कि यहां प्रशासन का परम्परागत रूप करीब-करीब समाप्त प्राय हो गया और पंचायतों का महत्व काफी घट गया। अंग्रेजी राज की बढ़ती ताकत व प्रभाव से आम आदमी दबाव में था। समाज में असंतोष बढ़ने लगा, जिसके कारण 1909 में ब्रिटिश सरकार द्वारा एक विकेन्द्रीकरण कमीशन की नियुक्ति की गई। 1919 में ''मांटेस्क्यू चेम्सफोर्स सुधार'' के तहत एक अधिनियम पारित करके पंचायतो को फिर से स्थापित करने का काम प्रांतीय शासन पर छोड दिया। अंग्रेजों की नियत तब उजागर हुई जब एक तरफ पंचायतों को फिर से स्थापित करने की बात कही और दूसरी तरफ गाँव वालों से नमक तक बनाने का अधिकार छुड़ा लिया। इसी क्रम में 1935 में लार्ड वैलिंग्टन के समय भी पंचायतों के विकास की ओर थोड़ा बहुत ध्यान दिया गया लेकिन कुल मिलाकर ब्रिटिशकाल में पंचायतों को फलने-फूलने के अवसर कम ही मिले।

हम नब्बे के दशक में भारत सरकार द्वारा पंचायतों को नया स्वरूप देने के उद्देश्य से भारतीय संविधान में किये गये 73वें संशोधन अधिनियम के बारे में पढ़ेंगे। प्राचीन समय में भी देश के गांवों का पूरा कामकाज पंचायतें ही चलाती थी। लोग इस संस्था को गहरी आस्था व सम्मान की की दृष्टि से देखते थे, इसलिये इसका निर्णय भी सब को मान्य होता था। इसी धारणा को ध्यान में रख कर व सामान्य व्यक्ति की शासन में भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए पंचायतों को संवैधानिक स्थान देने की आवश्यकता हुई। जिसके लिए संविधान का 73वॉ संविधान संशोधन किया गया। जिसका विस्तृत अध्ययन आप इस अध्याय में करेंगे।

24.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के उपरान्त आप-

1.स्थानीय स्वशासन के बारे में जान पायेंगे।

2.स्थानीय स्वशासन को वैधानिक रुप देने के लिए संविधान में 73वां संविधान संशोधन के विषय में जान पायेंगे।

3.73वें संविधान संशोधन के पिछे सोच के कारणों ज्ञान होगा।

4.संविधान में मौजुद मुख्य बिन्दुओं की जानकारी मिलेगी ।

24.3 स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में पंचायती राज

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात पंचायतों के पूर्ण विकास के लिये प्रयत्न शुरू हुए। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी स्वराज और स्वावलम्बन के लिये पंचायती राज के प्रबलतम समर्थक थे। गांधी जी ने कहा था- ''सच्चा स्वराज सिर्फ चंद लोगों के हाथ में सत्ता आ जाने से नहीं बल्कि इसके लिये सभी हाथों में क्षमता आने से आयेगा। केन्द्र में बैठे बीस व्यक्ति सच्चे लोकतन्त्र को नहीं चला सकते। इसको चलाने के लिये निचले स्तर पर प्रत्येक गांव के लोगों को शामिल करना पड़ेगा।'' गांधी जी की ही पहल पर संविधान में अनुच्छेद-40 शामिल किया गया। जिसमें यह कहा गया कि राज्य ग्राम पंचायतों को सुदृढ़ करने हेतु कदम उठायेगा तथा पंचायतों को प्रशासन की इकाई के रूप में कार्य करने के लिये आवश्यक अधिकार प्रदान करेगा। यह अनुच्छेद राज्य का नीति निर्देशक सिद्धान्त बना दिया गया। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्र के विकास के लिये विभिन्न कमीशन नियुक्त किये गये, जिन्होंने पंचायती राज व्यवस्था को पुर्नजीवित करने में महत्वपूर्ण कार्य किया।

भारत में सन1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम स्थापित किये गये। किन्तु प्रारम्भ में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को कोई महत्वपूर्ण सफलता नहीं मिल सकी, इसका मुख्य कारण जनता का इसमें कोई सहयोग व रुचि नहीं थी। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को सरकारी कामों के रुप में देख गया और गॉववासी अपने उत्थान के लिए स्वयं प्रयत्न करने के स्थान पर सरकार पर निर्भर रहने लगी। इस कार्यक्रम के सूत्रधार यह आशा करते थे कि जनता इसमें आगे आये और दूसरी ओर उनका विश्वास था कि सरकारी कार्यवाही से ही यह कार्यक्रम सफल हो सकता है। कार्यक्रम जनता ने चलाना था, लेकिन वे बनाये उपर से जाते थे। जिस कारण इन कार्यक्रमों में लोक कल्याण के कार्य तो हुए लेकिन लोगों की भागीदारी इनमें नगण्य थी। ये कार्यक्रम लोगों के कार्यक्रम होने के बजाय सरकार के कार्यक्रम बनकर रह गये। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के असफल हाने के कारणों का अध्ययन करने के लिए एक कमेटी गठित की गयी, जिसका नाम बलवन्त राय मेहता समिति था।

अभ्यास प्रश्न-1

1. 1919 के किस सुधार के तहत एक अधिनियम पारित करके पंचायतो को फिर से स्थापित करने का काम प्रांतीय शासन पर छोड दिया।

2. पंचायतों को संवैधानिक दर्जा देने के लिए संविधान में.....संविधान संशोधन किया गया।

3. भारत में किस सनमें सामुदायिक विकास कार्यक्रम स्थापित किये गये।

क. 1950 ख. 1952 ग. 1954 घ. 1956

20.3.1पंचायतों के विकास के लिए गठित समितियां

पंचायती राज के विकास के लिए समय-समय पर अनेक समितियां गठित की गयी।

20.3.2 बलवंत राय मेहता समिति

1957 में सरकार ने पंचायतों के विकास पर सुझाव देने के लिए श्री बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की इस रिपोर्ट में यह सिफारिश की गयी कि सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए पंचायती राज संस्थाओं की तुरन्त स्थानपा की जानी चाहिए। इसे लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का नाम दिया गया। मेहता कमेटी के अपनी निम्नलिखित शिफारिशें रखी।

1. ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खण्ड(ब्लाक) स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद। अर्थात् पंचायतों की त्रिस्तरीय संरचना बनायी जाये।

2. पंचायती राज में लोगों को सत्ता का हस्तान्तरण किया जाना चाहिए।

3. पंचायती राज संस्थाएं जनता के द्वारा निर्वाचित होनी चाहिए और सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अधिकारी उनके अधीन होने चाहिए।

4. साधन जुटाने व जन सहयोग के लिए इन संस्थाओं को पर्याप्त अधिकार दिये जाने चाहिए।
5. सभी विकास संबंधी कार्यक्रम व योजनाएं इन संगठनों के द्वारा लागू किये जाने चाहिए।
6. इन संगठनों को उचित वित्तीय साधन सुलभ करवाये जाने चाहिए।

राजस्थान वह पहला राज्य है जहां पंचायती राज की स्थापना की गयी। 1958 में सर्वप्रथम पंडित जवाहर लाल नेहरू ने 2 अक्टूबर को राजस्थान के नागौर जिले में पंचायती राज का दीपक प्रज्जवलित किया और धीरे धीरे गांवों में पंचायती राज का विकास शुरू हुआ। सत्ता के विकेन्द्रीकरण की दिशा में यह पहला कदम था। 1959 में आन्ध्र प्रदेश में भी पंचायती राज लागू किया गया। 1959 से 1964 तक के समय में विभिन्न राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं को लागू किया गया और इन संस्थाओं ने कार्य प्रारम्भ किया। लेकिन इस राज से ग्रामीण तबके के लोगों का नेतृत्व उभरने लगा जो कुछ स्वार्थी लोगों की आँखों में खटकने लगा, क्योंकि वे शक्ति व अधिकारों को अपने तक ही सीमित रखना चाहते थे। फलस्वरूप पंचायती राज को तोड़ने की कोशिशें भी शुरू हो गयीं। कई राज्यों में वर्षों तक पंचायतों में चुनाव ही नहीं कराये गये। 1969 से 1983 तक का समय पंचायती राज व्यवस्था के ह्रास का समय था। लम्बे समय तक पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव नहीं करवाये गये और ये संस्थाएं निष्क्रीय हो गयी।

20.3.3 अशोक मेहता समिति

जनता पार्टी के सत्ता में आने के बाद पंचायतों को मजबूत करने के उद्देश्य से 12 दिसम्बर 1977 को पंचायती राज संस्थाओं में आवश्यक परिवर्तन सुझाने के लिए में श्री "अशोक मेहता" की अध्यक्षा में 13 सदस्यों की कमेटी गठित की गई। समिति ने पंचायती राज संस्थाओं मे आई गिरावट के लिए कई कारणों को जिम्मेदार बताया। इसमें प्रमुख था कि पंचायती राज संस्थाओं को ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों से बिल्कुल अलग रखा गया है। अशोक मेहता समिति ने महसूस किया कि पंचायती राज संस्थाओं की अपनी कमियां स्थानीय स्वशासन को मजबूती नहीं प्रदान कर पा रही हैं। इस समिति द्वारा पंचायतों को सुदृढ़ बनाने के लिए निम्न सुझाव दिये गये-

1.समिति ने दो स्तरों वाले ढाँचे- जिला परिषद को मजबूत बनाने और ग्राम पंचायत की जगह मण्डल पंचायत की सिफारिश की। अर्थात पंचायती राज संस्थाओं के दो स्तर हों, जिला परिषद व मंडल परिषद।

2.जिले को तथा जिला परिषद को समस्त विकास कार्यों का केन्द्र बनाया जाए। जिला परिषद ही आर्थिक नियोजन करें और जिले में विकास कार्यों में सामन्जस्य स्थापित करें और मंडल पंचायतों को निर्देशन दें।

3.पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचन में जिला परिषद को मुख्य स्तर बनाने और राजनैतिक दलों की सक्रिय भागीदारी पर बल दिया।

4.पंचायतों के सदस्यों के नियमित चुनाव की सिफारिश की। राज्य सरकारों को पंचायती चुनाव स्थगित न करने व चुनावों का संचालन मुख्य चुनाव आयुक्त के द्वारा किये जाने का सुझाव दिया।

5.कमेटी ने यह सुझाव भी दिया कि पंचायती राज संस्थाओं को मजबूती प्रदान करने के लिये संवैधानिक प्रावधान बहुत ही आवश्यक है।

6.पंचायती राज संस्थाएं समिति प्रणाली के आधार पर अपने कार्यों का सम्पादन करें।

7.राज्य सरकारों को पंचायती राज संस्थाओं के अधिकारों का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।

8.देश के कई राज्यों ने इन सिफारिशों को नहीं माना, अतः तीन स्तरों वाले ढाँचे को ही लागू रखा गया।

इस प्रकार अशोक मेहता समिति ने पंचायती राज व्यवस्था में सुधार लाने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण शिफारिशें की, किन्तु ग्राम पंचायतों को समाप्त करने की उनकी शिफारिश पर विवाद पैदा हो गया। ग्राम पंचायतों की समाप्ति का मतलब था, ग्राम विकास की मूल भावना को ही समाप्त कर देना। समिति के सदस्य सिद्धराज ढ़ड्डा ने इस विषय पर लिखा कि ''मुझे जिला परिषदों और मंडल पंचायतों से कोई आपत्ति नहीं है किन्तु समिति ने ग्राम सभा

की कोई चर्चा नहीं की, जबकि पंचायती राज संस्थाओं की आधारभूत इकाई तो ग्राम सभा को ही बनाया जा सकता था।'

24.3.4 जी.वी.के. समिति

पंचायतों के सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया में सन1985 में जी.वी.के. राव समिति गठित की गई। समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को अधिक अधिकार देकर उन्हें सक्रिय बनाने पर बल दिया। साथ ही यह सुझाव भी दिया कि योजना निर्माण व संचालित करने के लिये जिला मुख्य इकाई होना चाहिये। समिति ने पंचायतों के नियमित चुनाव की भी सिफारिश की।

24.3.5 डा. एल. एम. सिंघवी समिति

1986 में डा. एल.एम. सिंघवी समिति का गठन किया गया। सिंघवी सामिति ने 'गांव पंचायत'(ग्राम-सभा) की सिफारिश करते हुये संविधान में ही नया अध्याय जोड़ने की बात कही जिससे पंचायतों की अवहेलना ना हो सके। इन्होंने ने गांव के समूह बना कर न्याय पंचायतों के गठन की भी सिफारिश की।

24.3.6 सरकारिया आयोग और पी0 के0 थुंगर समिति

1988 में सरकारिया आयोग बैठाया गया जो मुख्य रुप से केन्द्र व राज्यों के संबंधों से जुड़ा था। इस आयोग ने भी नियमित चुनावों और ग्राम पंचायतों को वित्तीय व प्रशासनिक शक्तियां देने की सिफारिश की। 1988 के अंत में ही पी0 के0 थुंगर की अध्यक्षता में संसदीय परामर्श समिति की उपसमिति गठित की गयी। इस समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा देने की शिफारिश की।

भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्व. राजीव गांधी की सरकार ने गांवों में पंचायतों के विकास की ओर अत्यधिक प्रयास करने शुरू किये। श्री राजीव गांधीं का विचार था कि जब तक गांव के लोगों को विकास प्रक्रिया में भागीदार नहीं बनाया जाता, तब तक ग्रामीण विकास का लाभ ग्रामीण जनता को नहीं मिल सकता। पंचायती राज के द्वारा वे गांव वालों के, खासकर अनुसूचित जाति, जनजाति तथा महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में बदलाव लाना चाहते थे। उन्होंने इस दिशा में कारगर कदम उठाते हुये 64वां संविधान विधेयक ससंद में प्रस्तुत किया। लोकसभा ने 10 अगस्त 1988 को इस विधेयक को अपनी मंजूरी दे दी। मगर राज्य सभा में सिर्फ पांच मतों की कमी रह जाने से यह पारित न हो सका। फिर 1991 में तत्कालीन सरकार ने 73वां संविधान संशोधन विधेयक को संसद में पेश किया। लोक सभा ने 2 दिसम्बर 1992 को इसे सर्व सम्मति से पारित कर दिया। राज्य सभा ने अगले ही दिन इसे अपनी मंजूरी दे दी। उस समय 20 राज्यों की विधान सभाएं कार्यरत थीं। 20 राज्यों की विधान सभाओं में से 17 राज्यों की विधान सभाओं ने संविधान संशोधन विधेयक को पारित कर दिया। 20 अप्रैल 1993 को राष्ट्रपति ने भी इस विधेयक को मंजूरी दे दी। तत्पश्चात 73वां संविधान संशोधन अधिनियम 24 अप्रैल से लागू हो गया।

20.4 73वें संविधान संशोधन की सोच

पंचायतों को मजबूत, अधिकार सम्पन्न व स्थानीय स्वशासन की इकाई के रूप में स्थापित करने हेतु संविधान में 73वां संशोधन अधिनियम एक क्रान्तिकारी कदम है। 73वें संविधान संशोधन के पीछे निम्न सोच है-

1.निर्णय को विकेन्द्रीकृत करना तथा स्थानीय स्तर पर संवैधानिक एवं लोकतांत्रिक प्रकिया शुरू करना।

2.स्थानीय स्तर पर पंचायत के माध्यम से निर्णय प्रक्रिया, विकास कार्यों व शासन में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करना।

3.ग्राम विकास प्रक्रिया के नियोजन, क्रियान्वयन तथा निगरानी में गांव के लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करना व उन्हें अपनी जिम्मेदारी का अहसास कराना।

4.लम्बे समय से हासिये पर रहने वाले तबकों जैसे महिला, दलित एवं पिछड़ों को ग्राम विकास व निर्णय प्रक्रिया में शामिल करके उन्हें विकास की मुख्य धारा से जोड़ना।

5.स्थानीय स्तर पर लोगों की सहभागिता बढ़ाना व लोगों को अधिकार देना।

24.4.1 73वां संविधान अधिनियम

स्वतन्त्रता पश्चात देश को सुचारू रूप से चलाने के लिये हमारे नीति निर्माताओं द्वारा भारतीय संविधान का निर्माण किया गया। इस संविधान में नियमों के अनुरूप व एक नियत प्रक्रिया के अधीन जब भी कुछ परिवर्तन किया जाता है या उसमें कुछ नया जोड़ा जाता है अथवा हटाया जाता है तो यह संविधान संशोधन अधिनियम कहलाता है। भारत में सदियों से चली आ रही पंचायत व्यवस्था जो कई कारणों से काफी समय से मृतप्रायः हो रही थी, को पुर्नजीवित करने के लिये संविधान में संशोधन किये गये। ये संशोधन तिहत्तरवां व चौहत्तरवां संशोधन अधिनियम कहलाये। तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना की गई। इसी प्रकार चौहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारत के नगरीय क्षेत्रों में नगरीय स्वशासन की स्थापना की गई। इन अधिनियमों के अनुसार भारत के प्रत्येक राज्य में नयी पंचायती राज व्यवस्था को आवश्यक रूप से लागू करने के नियम बनाये गये। इस नये पंचायत राज अधिनियम से त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने व स्थानीय स्तर पर उसे मजबूत बनाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। इस अधिनियम में जहां स्थानीय स्वशासन को प्रमुखता दी गई है व सक्रिय किये जाने के निर्देश हैं, वहीं दूसरी ओर सरकारों को विकेन्द्रीकरण हेतु बाध्य करने के साथ-साथ वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिये वित्त आयोग का भी प्रावधान किया गया है।

73वां संविधान संशोधन अधिनियम अर्थात "नया पंचायती राज अधिनियम" प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र को जनता तक पहुँचाने का एक उपकरण है। गांधी जी के स्वराज के स्वप्न को साकार करने की पहल है। पंचायती राज स्थानीय जनता का, जनता के लिये, जनता के द्वारा शासन है।

73वें संविधान संशोधन अधिनियम की मुख्य बातें

लोकतंत्र को मजबूत करने के लिये नई पंचायत राज व्यवस्था एक प्रशंसनीय पहल है। गांधी जी का कहना था कि "देश में सच्चा लोकतंत्र तभी स्थापित होगा जब भारत के लाखों गांवों को अपनी व्यवस्था स्वयं चलाने का अधिकार प्राप्त होगा। गांव के लिये नियोजन, प्राथमिकता चयन लोग स्वयं करेंगे। ग्रामीण अपने गांव विकास सम्बन्धी सभी निर्णय स्वयं लेंगे। ग्रामविकास कार्यक्रम पूर्णतया लोगों के होंगे और सरकार उनमें अपनी भागीदारी देगी"। गांधी जी के इस कथन को महत्व देते हुये तथा उनके ग्राम-स्वराज के स्वप्न को साकार करने के लिये भारतीय सरकार ने पंचायतों को बहुत से अधिकार दिये हैं। तिहत्तरवें संविधान अधिनियम में निम्न बातों को शामिल किया गया है -

1.73वें संविधान संशोधन के अर्न्तगत पंचायतों को पहली बार संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। अर्थात पंचायती राज संस्थाएं अब संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थाएं हैं।

2.नये पंचायती राज अधिनियम के अनुसार ग्राम सभा को संवैधानिक स्तर पर मान्यता मिली है। साथ ही इसे पंचायत व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बना दिया गया है।

3.यह तीन स्तरों - ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत पर चलने वाली व्यवस्था है।

4.एक से ज्यादा गांवों के समूहों से बनी ग्राम पंचायत का नाम सबसे अधिक आबादी वाले गांव के नाम पर होगा।

5.इस अधिनियम के अनुसार महिलाओं के लिये त्रिस्तरीय पंचायतों में एक तिहाई सीटों पर आरक्षण दिया गया है।

6.अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लिये भी जनसंख्या के आधार पर आरक्षण दिया गया है। आरक्षित वर्ग के अलावा सामान्य सीट से भी ये लोग चुनाव लड़ सकते हैं।

7.पंचायतों का कार्यकाल पांच वर्ष तय किया गया है तथा कार्यकाल पूरा होने से पहले चुनाव कराया जाना अनिवार्य किया गया है।

8.पंचायत 6 माह से अधिक समय के लिये भंग नहीं रहेगी तथा कोई भी पद 6 माह से अधिक खाली नहीं रहेगा।
9.इस संशोधन के अर्न्तगत पंचायतें अपने क्षेत्र के अर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण की योजनायें स्वयं बनायेंगी और उन्हें लागू करेंगी। सरकारी कार्यो की निगरानी अथवा सत्यापन करने का भी अधिकार उन्हें दिया गया है।
10.73वें संशोधन के अर्न्तगत पंचायतों को ग्राम सभा के सहयोग से विभिन्न जनकल्याणकारी योजनाओं के अर्न्तगत लाभार्थी के चयन का भी अधिकार दिया गया है।
11.हर राज्य में वित्त आयोग का गठन होता है। यह आयोग हर पांच साल बाद पंचायतों के लिये सुनिश्चित आर्थिक सिद्धान्तों के आधार पर वित्त का निर्धारण करेगा।
12.उक्त संशोधन के अर्न्तगत ग्राम प्रधानों का चयन प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा तथा क्षेत्र पंचायत प्रमुख व जिला पंचायत अध्यक्षों का चयन निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुना जाना तय है।
13.पंचायत में जबाबदेही सुनिश्चित करने के लिये छः समितियों (नियोजन एवं विकास समिति, शिक्षा समिति तथा निर्माण कार्य समिति, स्वास्थ्य एवं कल्याण समिति, प्रशासनिक समिति, जल प्रबन्धन समिति) की स्थापना की गयी है। इन्हीं समितियों के माध्यम से कार्यक्रम नियोजन एवं क्रियान्वयन किया जायेगा।
14.हर राज्य में एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की स्थापना की गई है। यह आयोग निर्वाचन प्रक्रिया, निर्वाचन कार्य, उसका निरीक्षण तथा उस पर नियन्त्रण भी रखेगा।
अतः संविधान के 73वें संशोधन ने नयी पंचायत व्यवस्था के अर्न्तगत न केवल पंचायतों को केन्द्र एवं राज्य सरकार के समान एक संवैधानिक दर्जा दिया है अपितु समाज के कमजोर व शोषित वर्ग को विकास की मुख्य धारा से जुड़ने का भी अवसर दिया है।

20.4.2 73वें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताएं

73वां संविधान संशोधन पंचायती राज से संबंधित है, जिसमें पंचायतों से संबंधित व्यवस्था का पूर्ण विधान किया गया है। इसकी निम्न लिखित विशेषताएं हैं---
1- संविधान में ''ग्राम सभा'' को पंचायतीराज की आधारभूत इकाई के रुप में स्थान मिला है।
2- पंचायतों की त्रीस्तरीय व्यवस्था की गयी है। ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, क्षेत्र स्तर पर (ब्लाक स्तर) क्षेत्र पंचायत व जिला स्तर पर जिला पंचायत की व्यवस्था की गयी है।
3- प्रत्येक स्तर पर पंचायत के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष मतदान के द्वारा की जाने की व्यवस्था है। लेकिन क्षेत्र व जिला स्तर पर अध्यक्षों के चुनाव चुने हुए सदस्यों में से, सदस्यों द्वारा किये जाने की वयवस्था है।
4- 73वें संविधान संशोधन में अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लिए उस क्षेत्र की कुल जनसंख्या में उसके प्रतिशत के अनुपात से सीटों के आरक्षण की व्यवस्था है। महिलाओं के लिए कुल सीटों का एक तिहाई भाग प्रत्येक स्तर पर आरक्षित किया गया है। अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में ही आरक्षण की व्यवस्था है। प्रत्येक स्तर पर अध्यक्षों के कुल पदों का एक-तिहाई भाग महिलाओं के लिए आरक्षित किया गया है।
5- अधिनियम में पंचायतों का कार्यकाल(पॉच वर्ष) निश्चित किया गया है। यदि कार्यकाल से पहले ही पंचायत भंग हो जाय तो 6 माह के भीतर चुनाव कराने की व्यवस्था है।
6- अधिनियम के द्वारा पंचायतों से संबंधित सभी चुनावों के संचालन के लिए राज्य चुनाव आयोग को उत्तरदायी बनाया गया है।
7- अधिनियम के द्वारा प्रत्येक राज्य में राज्य वित्त आयोग का गठन किया गया है, ताकि पंचायतो के पास पर्याप्त साधन उपलब्ध हो। जिससे विभिन्न विकास कार्य किये जा सके।

24.5 स्थानीय स्वशासन व पंचायतें

स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने में पंचायतों की अहम भूमिका है। पंचायतें हमारी संवैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त संस्थायें हैं और प्रशासन से भी उनका सीधा जुड़ाव है। भारत में प्राचीन काल से ही स्थानीय स्तर पर शासन का संचालन पंचायत ही करती आयी हैं। स्थानीय स्तर पर स्वशासन के स्वप्न को साकार करने का माध्यम पंचायतें ही हैं। चूंकि पंचायतें स्थानीय लोगों के द्वारा गठित होती हैं, और इन्हें संवैधानिक मान्यता भी प्राप्त है, अतः पंचायतें स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने का एक अचूक तरीका है। ये संवैधानिक संस्थाएं ही आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजनाएं ग्रामसभा के साथ मिलकर बनायेंगी व उसे लागू करेंगी। गांव के लिये कौन सी योजना बननी है, कैसे क्रियान्वित करनी है, क्रियान्वयन के दौरान कौन निगरानी करेगा, ये सभी कार्य पंचायतें गांव के लोगों (ग्रामसभा सदस्यों) की सक्रिय भागीदारी से करेंगी। इससे निर्णय स्तर पर आम जनसमुदाय की भागीदारी सुनिश्चित होगी।

स्थानीय स्वशासन तभी मजबूत हो सकता है जब पंचायतें मजबूत होंगी और पंचायतें तभी मजबूत होंगी जब लोग मिलजुलकर इसके कार्यों में अपनी भागीदारी देंगे और अपनी जिम्मेदारी को समझेंगे। लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करने के लिये पंचायतों के कार्यों में पारदर्शिता होना जरूरी है। पहले भी लोग स्वयं अपने संसाधनों का, अपने ग्राम विकास का प्रबन्धन करते थे। इसमें कोई शक नहीं कि वह प्रबन्धन आज से कहीं बेहतर भी होता था। हमारी परम्परागत रूप से चली आ रही स्थानीय स्वशासन की सोच बीते समय के साथ कमजोर हुई है। नई पंचायत व्यवस्था के माध्यम से इस परम्परा को पुनः जीवित होने का मौका मिला है। अतः ग्रामीणों को चाहिये कि पंचायत और स्थानीय स्वशासन की मूल अवधारणा को समझने की चेष्टा करें ताकि ये दोनों ही एक दूसरे के पूरक बन सकें। गांवों का विकास तभी सम्भव है जब सम्पूर्ण ग्रामवासियों को विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जायेगा। जब तक गांव के सामाजिक तथा आर्थिक विकास के निर्णयों में गांव के पहले तथा अन्तिम व्यक्ति की बराबर की भागीदारी नहीं होगी तब तक हम ग्राम स्वराज की कल्पना नहीं कर सकते हैं। जनसामान्य की अपनी सरकार तभी मजबूत बनेगी जब लोग ग्रामसभा और ग्रामपंचायत में अपनी भागीदारी के महत्व को समझेंगे।

अभ्यास प्रश्न-2

1. बलवंत राय समिति का गठन किया गया।
   क .1952 ख .1955 ग .1957 घ .1960
2. पंचायतों के विकास के लिए गठित किस समिति ने त्रीस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था की बात कही।-
3. राजस्थान वह पहला राज्य है जहां पंचायती राज की स्थापना की गयी। सत्यअसत्य/
4. .....ने 2 अक्टूबर को राजस्थान के जिले में पंचायती राज का ..... किया। शुभारम्भ
5. किस समिति ने पंचायतों की दो स्तरीय व्यवस्था की सिफारिश की थी?
6. जी राव समिति कब गठित .के.वी.की गई?
   क .1985 ख .1988 ग .1990 घइनमें से कोई नहीं .
7. किस समिति ने गांव के समूह बना कर न्याय पंचायतों के गठन की सिफारिश की थी?
   कपी .राव समिति ग .के.वी.जी .बलवंत राय समिति ख .0 के0 थुंगर घसिंघवी समिति .एम .एल .डा .

24.6 सारांश

वैदिक काल से चली आ रही पंचायत व्यवस्था देश में लगभग मृतप्राय हो चुकी थी, जिसे गांधी जी, बलवन्त राय मेहता समिति, अशोक मेहता रिपोर्ट, जी. के. राव. समिति, एल.एम.सिंघवी रिपोर्ट के प्रयासों ने नवजीवन दिया। जिसके फलस्वरूप 73वां संविधान संशोधन विधेयक संयुक्त संसदीय समिति की जांच के बाद पारित हुआ। 73वें

संविधान संशोधन से गांधी जी के ग्राम स्वराज के स्वप्न को एक नई दिशा मिली है। गांधी जी हमेशा से गांव की आत्मनिर्भता पर जोर देते रहे। गांव के लोग अपने संसाधनों पर निर्भर रह कर स्वयं अपना विकास करें, यही ग्राम स्वराज की सोच थी। 73वें सविधान संशोधन के पीछे मूलधारणा भी यही थी कि स्थानीय स्तर पर विकास की प्रक्रिया में जनसमुदाय की निर्णय स्तर पर भागीदारी हो। 73वां संविधान संशोधन अधिनियम वास्तव में एक मील का पत्थर है जिसके द्वारा आम जन को सुशासन में भागीदारी करने का सुनहरा मौका प्राप्त हुआ है।

24.7 शब्दावली

सुदृढ़िकरण- सुधार और मजबूत करने की प्रक्रिया

प्रबलतम- मजबूत

स्वावलम्बन- आत्मनिर्भरता

नगण्य- नहीं के बराबर (अनुपस्थित)

हस्तांतरण- एक स्थान से दुसरे स्थान

त्रीस्तरीय - तीन स्तर पर (गाम पंचायत, क्षेत्र पंचायत व जिला पंचायत)

24.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1

1. मांटेस्क्यू चेम्सफोर्स सुधार 2. 73वां संविधान संशोधन 3. ख

अभ्यास प्रश्न-2

1. ग 2. बलवंत राय मेहता समिति 3. सत्य 4. पंडित जवाहर लाल नेहरू, नागौर जिला

5. अशोक मेहता समिति 6. क 7. घ

24.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. 73वां संविधान संशोधन अधिनियम

2. पंचायत सन्दर्भ सामाग्री, हिमालयन एक्शन रिसर्च सेन्टर

24.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारत में पंचायती राज- के. के. शर्मा

2. रोल ऑफ पंचायत इन वैलफेयर स्टेट- अब्राहम मैथ्यू

3. भारत में स्थानीय शासन- एस0 आर0 माहेश्वरी

4. पंचायती राज में प्रमाण पत्र- डॉ0 घनश्याम जोशी एवं डॉ0 छाया कुंवर(उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल)

5. भारतीय प्रशासन- अवस्थी एवं अवस्थी

24.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. 73वां संविधान संशोधन अधिनियम किससे संबंधित है, इस अधिनियम में मौजुद मुख्य बातों को स्पष्ट करें?
2. 73वें संविधान संशोधन की मुख्य बातों की विस्तार से चर्चा कीजिए

इकाई 25 नगरीय स्थानीय सरकार चौहतरवा (74वॉ) संवैधानिक संशोधन

इकाई की रुपरेखा

25.1 प्रस्तावना
25.2 उद्देश्य
25.3 चौहतरवें (74वें) संविधान संशोधन का उद्देश्य
25.3.1 संविधान संशोधन की आवश्यकता
25.3.2 चौहतरवें (74वें) संविधान संशोधन के पीछे सोच
25.3.3 नगर निकायों का गठन एवं संरचना
25.3.4 नगर निकायों का कार्यकाल
25.3.5 नगर पालिका की बैठकें व उनकी कार्यवाहियाँ
25.3.6 नगरीय निकायों में वित्तीय प्रबंधन
25.3.7 नगर निकायों में बजट की आवश्यकता व महत्ता
25.3.8 नगरीय निकायों में लगाये जाने वाले कर
25.3.9 मूल्यांकन, छूट एवं वसूली
25.3.10 नगर-निकायों में वार्ड कमेटियाँ
25.3.11 नगर-निकायों से संबंधित विषय
25.3.12 नगर-निकायों के कार्य एवं शक्तियॉ
25.4 सांराश
25.5 शब्दावली
25.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
25.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
25.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
25.9 निबन्धात्मक प्रश्न

25.1 प्रस्तावना

सत्ता विकेन्द्रीकरण की दिशा में संविधान का 73वां और 74वां संविधान संशोधन एक महत्वपूर्ण और निर्णायक कदम हैं । 74वां संविधान संशोधन नगर निकायों में सत्ता विकेन्द्रीकरण का एक मजबूत आधार है। अतः इस अध्याय का उद्देश्य 74वें संविधान संशोधन की आवश्यकता और 74वें संविधान संशोधन में मौजूद उपबंधों और नियमों को स्पष्ट करना है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र के रूप में जाना जाता है। इस लोक तंत्र का सबसे रोचक महत्वपूर्ण पक्ष है सत्ता व शक्तियों का विकेन्द्रीकरण। अर्थात केन्द्र स्तर से लेकर स्थानीय स्तर पर गांव इकाई तक सत्ता व शक्ति का बंटवारा ही विकेन्द्रीकरण कहलाता है। विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था किसी न किसी रूप में प्राचीन काल से ही भारत में विद्यमान थी। राजा/महाराजाओं के समय भी सभा, परिषद, समितियां सूबे आदि के माध्यम से शासन चलाया जाता था। लोगों को उनकी जरुरतें पूरी करने के लिए निर्णयों में हमेशा महत्वपूर्ण सहभागी माना जाता था। लेकिन जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया, लोगों को शासन व लोक विकास में भागीदारी से अलग कर दिया गया तथा उनके अपने हित व विकास के लिए बनाई जाने वाले कार्यक्रम व नीतियों पर केन्द्र सरकार या राज्य सरकार का नियंत्रण होता गया।

परन्तु यह प्रक्रिया जनता की जरूरतों को पूरी नहीं कर पाती थी, विकास गतिविधियों को चलाने में लोगों की सहभागिता को प्रोत्साहित नहीं करती थी एवं लोगों को भी यह नहीं लगता था कि लागू की जा रही योजना अथवा कार्यक्रम उनका अपना है। इसलिए यह महसूस किया गया कि लोगों को कार्य योजनायें स्वयं बनानी चाहिए, क्योंकि उन्हें अपनी आवश्यकताओं का पता होता है कि किस प्रकार वे अपने जीवन स्तर में सुधार ला सकते हैं एवं वे अपने विकास में सहभागी बन सकते हैं। अतः यह महसूस किया गया कि लोगों के लिए योजना बनाने की प्रक्रिया अनिवार्य रूप से नीचे से उपर की ओर होनी चाहिये क्योंकि लोगों को अपनी ज़रूरतों की पहचान होती है जिससे वे योजनाओं के वरीयता क्रमों को निर्धारित करते हुए योजना बना सकते हैं। कार्यक्रम क्रियान्वित करने वाले कार्मिक जनता/समुदाय की योजनाओं को समेकित कर सकते हैं। शासन के सबसे छोटे स्तर से लोगों की सहभागिता व शासन में सीधी भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए संविधान का 73वां व 74वां संविधान संशोधन एक प्रमुख कदम है।

25.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के उपरान्त आप-

1.चौहत्तरवें संविधान संशोधन के अर्न्तगत नगर निकायों के विषय में दी गयी धाराओं के विषय में जान पायेंगे।

2.नगर निकायों के वित्तीय प्रबन्ध, गठन, कार्यकाल, उसकी बैठक और कार्यवाहियों को स्पष्ट करना।

3.नगर निकायों से संबंधित विषय, उनके कार्य एवं शक्तियां के विषय में जान पायेंगे।

25.3 चौहतरवें (74वें) संविधान संशोधन का उद्देश्य

1.देश में नगर संस्थाओं जैसे नगर निगम, नगर पालिका, नगर परिषद तथा नगर पंचायतों के अधिकारों में एकरूपता रहे।

2.नागरिक कार्यकलापों में जन प्रतिनिधियों का पूर्ण योगदान तथा राजनैतिक प्रक्रिया में निर्णय लेने का अधिकार रहे।

3.नियमित समयान्तराल में प्रादेशिक निर्वाचन आयोग के अधीन चुनाव हो सके व कोई भी निर्वाचित नगर प्रशासन छः माह से अधिक समयावधि तक भंग न रहे, जिससे कि विकास में जन प्रतिनिधियों का नीति निर्माण, नियोजन तथा क्रियान्वयन में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो सके।

4.समाज की कमजोर वर्गों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिये (संविधान संशोधन अधिनियम में प्राविधानित/निर्दिष्ट) प्रतिशतता के आधार पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन-जाति व महिलाओं को तथा राज्य (प्रादेशिक) विधान मण्डल के प्राविधानों के अन्तर्गत पिछड़े वर्गों को नगर प्रशासन में आरक्षण मिलें।

5.प्रत्येक प्रदेश में स्थानीय नगर निकायों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये एक राज्य (प्रादेशिक) वित्त आयोग का गठन हो जो राज्य सरकार व स्थानीय नगर निकायों के बीच वित्त हस्तान्तरण के सिद्वान्तों को परिभाषित करें। जिससे कि स्थानीय निकायों का वित्तीय आधार मजबूत बने।

6.सभी स्तरों पर पूर्ण पारदर्शिता रहे।

25.3.1 संविधान संशोधन की आवश्यकता

पूर्व की नगरीय स्थानीय स्वशासन व्यवस्था लोकतन्त्र की मंशा के अनुरूप नहीं थी। सबसे पहली कमी इसमें यह थी कि इसका वित्तीय आधार कमजोर था। वित्तीय संसाधनों की कमी होने के कारण नगर निकायों के कार्य संचालन पर राज्य सरकार का ज्यादा से ज्यादा नियंत्रण था। जिसके कारण धीरे-धीरे नगर निकायों के द्वारा किये जाने वाले अपेक्षित कार्यों/या उन्हें सौंपे गये कार्यों में कमी होनी लगी। नगर निकायों के प्रतिनिधियों की बरखास्ती या नगर निकायों का कार्यकाल समाप्त होने पर भी समय पर चुनाव नहीं हो रहे थे। इन निकायों में कमजोर व उपेक्षित वर्गों (महिला, अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति)का प्रतिनिधित्व न के बराबर था। अतः इन कमियों को देखते हुए संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम में स्थानीय नगर निकायों की संरचना, गठन, शक्तियों, और कार्यों में अनेक परिवर्तन का प्राविधान किया गया।

25.3.2 चौहतरवें (74वें) संविधान संशोधन के पीछे सोच

1.संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम द्वारा नगर-प्रशासन को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है।

2.इस संशोधन के अन्तर्गत नगर निगम, नगर पालिका, नगर परिषद एवं नगर पंचायतों के अधिकारों में एक रूपता प्रदान की गई है

3.नगर विकास व नागरिक कार्यकलापों में आम जनता की भागीदारी सुनिश्चित की गई है। तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया तक नगर व शहरों में रहने वाली आम जनता की पहुंच बढ़ाई गई है।

4.समाज कमजोर वर्गों जैसे महिलाओं अनुसूचित जाति, जनजाति व पिछड़े वर्गों का प्रतिशतता के आधार पर प्रतिनिधित्व सुनिश्चित कर उन्हें भी विकास की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया गया है।

5.74वें संशोधन के माध्यम से नगरों व कस्बों में स्थानीय स्वशासन को मजबूत बनाने के प्रयास किये गये हैं।

6.इस संविधान की मुख्य भावना लोकतांत्रिक प्रक्रिया की सुरक्षा, निर्णय में अधिक पारदर्शिता व लोगों की आवाज पहुंचाना सुनिश्चित करना है।

25.3.3 नगर निकायों का गठन एवं संरचना

1.अधिक आबादी वाले/महानगरीय क्षेत्रों में - नगर निगम का गठन होगा (एक लाख से ज्यादा जनसंख्या वाले नगर)

2.छोटे नगरीय क्षेत्रों में- नगरपालिका परिषद का गठन होगा (50 हजार से एक लाख तक जनसंख्या वाले नगर)

3.संक्रमणशील क्षेत्रों में, नगर पंचायत का गठन होगा। (50 हजार तक जनसंख्या वाले नगर)

नगर निगम, नगर पालिका परिषद व नगर पंचायत स्तर पर जनता द्वारा एक अध्यक्ष निर्वाचित किया जायेगा

नगरीय क्षेत्र के प्रत्येक वार्ड से प्रत्यक्ष रूप से सदस्य निर्वाचित किये जायेंगे जिनकी संख्या वार्डों की संख्या के आधार पर राज्य सरकार द्वारा जारी विज्ञप्ति के अनुसार होगी।

पदेन सदस्य के रूप में नगर निकायों में लोकसभा एवं राज्य विधान सभा के ऐसे सदस्य शामिल किये जायेंगे, जो नगरीय निकाय क्षेत्र (पूर्णतः या भागतः) के निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

पदेन सदस्य के रूप में राज्य सभा व राज्य विधान परिषद के ऐसे सदस्य जो नगरीय निकाय क्षेत्र के अन्दर निर्वाचकों के रूप में पंजीकृत हैं।

नगरपालिका प्रशासन में विशेष ज्ञान या अनुभव रखने वाले निर्दिष्ट/नामित सदस्य स्थानीय निकायों में शामिल किये जायेंगे।

संविधान के अनुच्छेद 243-एस. के प्रस्तर (5) के अधीन स्थापित समितियों के अध्यक्ष यदि कोई हो।

25.3.4 नगर निकायों का कार्यकाल

नगर निगम, नगर पालिका, एवं नगर पंचायतों का कार्यकाल पहली बैठक के दिन से पांच वर्ष तक रहेगा। अगर किसी कारणवश 74वें संविधान संशोधन के नियमों के अनुरूप नगर निकाय अपनी जिम्मेदारियों व उत्तरदायित्वों को पूरा नहीं करते या उनमें अनियमतता पायी जाती है तो पांच वर्ष पूर्व भी राज्य सरकार इन्हें भंग या बर्खास्त कर सकती है। बर्खास्त/भंग करने के 6 माह के अन्दर अनिवार्य रूप से चुनाव करवाकर नया बोर्ड गठित किया जाना आवश्यक है। नगर निकायों को भंग करने से पूर्व सुनवाई का एक न्यायोचित अवसर दिया जायेगा।

25.3.5 नगर पालिका की बैठकें व उनकी कार्यवाहियाँ

कार्यपालक पदाधिकारी द्वारा निश्चित दिन तथा नियत समय पर एक माह में कम से कम एक बैठक आयोजित की जाएगी। अध्यक्ष के निर्देश पर अन्य बैठकें भी कार्यपालक अधिकारी द्वारा बुलायी जा सकती हैं। यदि नगर निकाय के पास कार्यपालक पदाधिकारी नहीं है तो अध्यक्ष बैठक आयोजित करेगा। आवश्यकता पड़ने पर किसी भी दिन या समय पर नोटिस देने के बाद अध्यक्ष द्वारा आपातकालीन बैठक बुलायी जा सकती है। आपातकालीन बैठकों के अतिरिक्त अन्य बैठकों हेतु नोटिस को कम से कम 3 दिन पूर्व सभी सदस्यों को भेजा जाना अनिवार्य होगा। नोटिस की अवधि 3 दिन से अधिक भी हो सकती है। आपातकालीन बैठकों के मामले में यह अवधि कम से कम 24 घंटे की होनी चाहिए। बैठक हेतु प्रत्येक सूचना में बैठक की तिथि, समय तथा स्थान का उल्लेख आवश्यक है। बैठक की गणपूर्ति कुल सदस्यों के एक तिहाई सदस्यों की उपस्थिति मानी जायेगी। गणपूर्ति के अभाव में बैठक स्थगित कर दी जायेगी तथा तय की गई तिथि को बैठक आयोजित की जाएगी। जिसकी सूचना आयोजन के कम से कम तीन दिन पूर्व दी जाएगी। बैठक की कार्यवाही को कार्यवाही पुस्तिका में अंकित किया जाएगा जिस पर अध्यक्ष का हस्ताक्षर होगा कार्यवाही की प्रतियों को राज्य सरकार या राज्य सरकार द्वारा निदेशित प्रधिकारी को तुरन्त भेज दी जाएगी। पारिस्थितियों की अनुकूलता के आधार पर अधिशासी अधिकारी अथवा सचिव द्वारा बैठक से पूर्व सभी सदस्यों को बैठक से सम्बन्धित अभिलेख, पत्राचार जो उस बैठक में विचार किये जायेंगें, दिखाये जायेंगे जब तक कि अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष द्वारा अन्यथा निर्देशित किया गया हो।

अभ्यास प्रश्न-1

1. संविधान का 74वां संविधान संशोधन.....से संबंधित है।

2. एक लाख ये अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों में नगर निगम गठित होंगे। सही/गलत

3. पचास हजार से एक लाख तक की जनसंख्या वाले क्षेत्रों में गठित होंगे।

क. नगर निगम ख. नगर पालिकाएं ग. नगर पंचायतें घ. इनमें से कोई नहीं

4. पचास हजार तक की जनसंख्या वाले क्षेत्रों में नगर पंचायतों का गठन होगा। सही/गलत

5. नगर निकायों का कार्यकाल होता है।

क. 4 साल ख. 5 साल ग. 8 साल घ. 10 साल

25.3.6 नगरीय निकायों में वित्तीय प्रबंधन

74वें संविधान संशोधन के उपरान्त अब नगर निकायों के आय के निम्नलिखित स्रोत हैं।

1. राज्य वित्त आयोग के द्वारा निर्धारित धनराशि।

2.नगर निकायों द्वारा वसूले गये करों से प्राप्त धनराशि।

3.राष्ट्रीय वित्त आयोग के द्वारा निर्धारित धनराशि ।

राज्य सरकार द्वारा नगरीय निकायों में समय-समय पर अनुदान देने की प्रथा को समाप्त कर राज्य सरकार द्वारा प्राप्त कुल करों में नगरीय स्थानीय निकायों के अंश का निर्धारण किया गया।

स्थानीय निकायों को दी जाने वाली राशि के वितरण का आधार 80 प्रतिशत जनसंख्या एवं 20 प्रतिशत क्षेत्र के आधार पर निर्धारित किया गया है।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक केन्द्रीय वित्त आयोग प्रतिवर्ष शहरी स्थानीय निकायों के लिए धन आवंटित करता है।

आयोग के निर्देशानुसार केन्द्रीय वित्त आयोग द्वारा दी गई राशि का उपयोग वेतन, मजदूरी में नहीं किया जाएगा बल्कि यह सामान्य सुविधाएं जैसे जल निकासी, कूड़ा निकासी, शौचालयों की सफाई, मार्ग-प्रकाश इत्यादि में ही इसका उपयोग किया जाएगा।

74वें संविधान संशोधन अधिनियम में 12वीं अनुसूची के अन्तर्गत जो 18 कार्य/दायित्व शहरी स्थानीय निकायों को दिये गये हैं राज्य सरकार को उन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु नगर निकायों आवश्यक राशि दी जायेगी।

नगरपालिका के आय का एक मुख्य स्रोत इसके द्वारा लगाये गये विभिन्न कर एवं शुल्क भी हैं।

25.3.7 नगर निकायों में बजट की आवश्यकता व महत्ता

वित्तीय प्रबन्धन के लिए आय-व्ययक अनुमान/आगणन अर्थात बजट तैयार करना अत्यन्त आवश्यक है। बजट आय तथा व्यय का एक अनुमान है जो कि अपने संसाधनों के उपयोग के लिए एक प्रकार से मार्ग दर्शक, नीतियों के निर्धारण, व्यय संबंधी निर्णय लेने के लिए मार्ग दर्शक, वित्तीय नियोजन का एक यंत्र तथा संप्रेषण का एक माध्यम है। बजट वित्तीय प्रबन्धक का एक महत्वपूर्ण अवयव है, इसे मात्र औपचारिकता के रूप में नहीं लेना चाहिए।

नगर निकायों में बजट एक विधिक आवश्यकता है, क्यों कि जब तक वित्तीय वर्ष का बजट बोर्ड द्वारा पारित नहीं किया जाता है, तब तक कोई खर्चा नहीं किया जा सकता है। बजट तैयार कर लेने से लक्ष्यों व उद्देश्यों के निर्धारण

तथा नीतिगत निर्णय लेने में सहायता मिलती है।बजट के द्वारा वास्तविकता आधारित कार्य नियोजन आसानी से किया जा सकता है अर्थात योजनाओं व कार्यक्रम की प्राथमिकतायें निर्धारित करने में सहायता मिलती है। इससे कार्य कलापों पर वित्तीय नियन्त्रण रखा जा सकता है और धन का अपव्यय भी रोका जा सकता है। अगर नगर निकाय आय-व्यय का विधिवत व उचित दस्तावेजीकरण करते हैं व उसको आधार मानकर अपना बजट बनाते हैं तो अंशदान, अनुदान, सहायता प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

बजट आवश्यकता आधारित होना चाहिए व इस हेतु ''जीरो बेस बजटिंग''(शून्य आधारित बजट) प्रक्रिया को अपनाना चाहिए न कि पिछले आय व्ययक अनुमान पर कुछ प्रतिशत बढोतरी या घटोतरी करें। अगले वित्तीय वर्ष का बजट वर्तमान वित्तीय वर्ष के अन्तिम माह अर्थात मार्च की 15 तारीख तक बोर्ड द्वारा विचारोपरान्त पारित पारित कर लिया जाना चाहिए। अतः बजट तैयार करने की प्रक्रिया प्रत्येक दशा में अंतिम तिमाही के पूवार्द्ध में ही पूर्ण कर ली जानी चाहिए व इस पर बोर्ड बैठक में विस्तृत चर्चा करनी चाहिए जिससे कि नीतिगत निर्णय, प्राथमिकता निर्धारण तथा जनता के हित में उचित वित्तीय निर्णय लिये जा सकें। चूंकि बोर्ड सभासदों से ही बना है, अतः बजट के माध्यम से सभासदों के बहुमत निर्णय से नीतियों व रणनीतियों का निर्धारण होता है।

25.3.8 नगरीय निकायों में लगाये जाने वाले कर

1.भवनों या भूमि या दोनों के वार्षिक मूल्य पर कर।

2.नगर पालिका की सीमा के अन्तर्गत व्यापार पर कर जिन्हें नगर पालिका की सेवाओं से विशेष लाभ मिलता है।

3.व्यापार, पेशों तथा व्यवसायों पर कर जिसमें सभी रोजगार जिनके लिये वेतन या शुल्क मिलता है वह सम्मिलित हैं।

4.मनोरंजन कर।

5.नगरपालिका के अंदर भाड़े पर चलने वाली गाड़ियों या उसमें रखी गई गाड़ियों पर कर।

6.नगरपालिका के अन्दर रखे कुत्तों पर कर।

7.नगर पालिका के अन्दर रखे सवारी, चालन या बोझे के पशुओं पर कर।

8.व्यक्तियों पर सम्पत्तियों या परिस्थितियों के आधार पर कर।

9.भवनों या भूमि या दोनों के वार्षिक मूल्य पर जल कर।

10.भवन के वार्षिक मूल्य पर उर्तक मूल्य पर उत्प्रवाह कर।

11.सफाई कर।

12.शोचालयों, मूत्रालयों तथा गड्ढ़ों से उत्प्रवाह तथा प्रदूषित जल के एकत्रीकरण, हटाने तथा खात्मा करने के लिए कर।

13.नगर पालिका की सीमा के अन्तर्गत स्थित सम्पत्ति के हस्तांतरण पर कर।

14.संविधान के अन्तर्गत कोई अन्य कर जो राज्य विधायिका द्वारा राज्य में लागू किया जा सके।

कर का प्रावधान- 3 व 8 के कर एक साथ नहीं लगाए जा सकते हैं। 10 व 12 के कर एक साथ नहीं लगाए जा सकते हैं। 13 के अन्तर्गत नगर पालिका के अन्तर्गत अचल सम्पति के हस्तांतरण पर कर नहीं लगाया जा सकता है। (यदि वह सम्पति नजूल की हो) 5 का कर मोटर गाड़ी, पर नहीं लगाया जा सकता है।

25.3.9 मूल्यांकन, छूट एवं वसूली

भवन या भूमि दोनों पर कर लगाने के लिए नगर निकाय एक मूल्यांकन सूची तैयार कर एक सार्वजनिक स्थल पर प्रदर्शित कर सकते हैं ताकि जिन लोगों को आपति हो वह एक महीने के अन्दर दाखिला कर सकें। जब आपतियों का निवारण हो जाता है तब मूल्याँकन सूची को प्रमाणित किया जाता है। प्रमाणित मूल्याँकन सूची नगर निकाय कार्यालय में जमा कर दी जाती है तथा उसे जनता द्वारा निरीक्षण के लिये खुला घोषित कर दिया जाता है। सामान्यतः नई मूल्याँकन सूची पाँच वर्ष में एक बार तैयार की जाती है। नगर निकाय किसी समय मूल्यांकन सूची को बदल सकते हैं या उसमें संशोधन कर सकते हैं। यदि कोई भवन या भूमि वर्ष में 90 या अधिक दिनों तक लगातार खाली रहती है तो नगर पालिका उस अवधि में कर छूट देती है। उस भवन या भूमि के पुनः कब्जे के लिए उस सम्पत्ति के मालिक को 15 दिनों के अंदर नगरपालिका को सूचना देनी होती है। अगर कोई ऐसा नहीं करता तो वह दंड का भागी होता है। दण्ड की राशि वास्तविक कर की दुगुनी राशि से दस गुना राशि से भी अधिक हो सकती है।

नगर पालिका करों से संबंधित अपीलें नगर पालिका कार्यालय में दायर की जा सकती है। साथ ही साथ इसकी एक प्रति जिलाधिकारी के यहाँ भी जाती है। सामान्यतः किसी भी अवधि के लिए देय कर या शुल्क का भुगतान उसकी अवधि के शुरू होने से पूर्व करना होता है। जब व्यक्ति कर का भुगतान समय पर नहीं करता तो उसके विरूद्व नगरपालिका द्वारा वारंट जारी हो जाता है। ऐसे व्यक्ति के अहाते से सम्पति को जब्त कर उसे नीलामी द्वारा बेचा जा सकता तथा बकायों की वसूली की जा सकती है। जब कोई व्यक्ति किसी कर का बकायेदार हो तो नगरपालिका कलेक्टर से प्रार्थना कर सकती है कि वह ऐसे धन को भू-राजस्व की भाँति वसूल करें, जिसमें कार्यवाही का खर्च शामिल नहीं होगा। कलेक्टर जब बकाया धन से संतुष्ट हो जाता है तो उसे वसूल करने की कार्यवाही करता है।

25.3.10 नगर-निकायों में वार्ड कमेटियाँ

स्थानीय लोग स्थानीय विकास में भागीदारी निभा सकें इसलिए संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम के अन्तर्गत स्थानीय नगरीय सरकार के लिए शक्तियों एवं सत्ता का विकेन्द्रीकरण किया गया है। संशोधन के माध्यम से विकेन्द्रीकरण के द्वारा ऐसे संस्थागत ढ़ांचे का निर्माण करने का प्रयास किया गया जिससे सभी स्तर के लोग स्थानीय विकास में भागीदारी निभा सकें। नगरीय निकायों के इस ढ़ाचे को हम स्थानीय स्वशासन की दो स्तरों पर की गई व्यवस्था के रूप में जानते हैं।

पहला स्तर नगर निकाय स्तर पर चयनित सरकार है जिसमें स्थानीय लोग प्रतिनिधि के रूप में चुनकर आते हैं जो स्थानीय समस्याओं की बेहतर समझ के साथ स्थानीय विकास के लिए प्रयास करते हैं। दूसरे स्तर पर वार्ड कमेटियों के गठन का प्रावधान है जिससे कि वार्ड के स्तर पर भी लोग विकास के लिए नियोजन से लेकर निर्णय लेने की प्रक्रिया एवं विकास कार्यों के क्रियान्वयन में अपनी भागीदारी निभा सकें।

74वें संविधान संशोधन की धारा 243(1) के अनुसार यह व्यवस्था केवल उन शहरों में लागू होती है जिनकी जनसंख्या तीन लाख या उससे अधिक हो। जिन शहरों की जनसंख्या तीन लाख है या उससे कम है, वहाँ पर राज्य सरकार अन्य समितियों को गठित करने को स्वतंत्र है। वार्ड कमेटी पाँच या उनसे अधिक वार्डों से मिलकर बनती है, जिसमें एक अध्यक्ष तथा जितने भी वार्ड उस कमेटी में हैं, के चयनित प्रतिनिधि/सदस्य उसके होते हैं।

नगरीय स्थानीय स्वशासन के तीन व्यक्ति जो इससे संबंधी मुद्दों/समस्याओं के बारे में विशेष ज्ञान रखते हों उसके वार्ड के नामित सदस्य होते हैं। उन्हीं में से किसी एक व्यक्ति का चुनाव एक वर्ष के लिए अध्यक्ष के पद के लिए होता है। जो यदि चाहे तो दुबार अध्यक्ष पद के लिए चुनाव लड़ सकता है।

वार्ड कमेटी का कार्यकाल उक्त नगर निकाय की अवधि के साथ समाप्त होता है।

संविधान के 74वें संशोधन के अनुसार वार्ड कमेटियों काव्यावहारिकरूप में वह स्वरूप नहीं बन पा रहा है जिसकी कल्पना की गई थी। एक सशक्त वार्ड कमेटी की भूमिकाओं में वार्ड/वार्डों की समस्याओं की पहचान कर उनकी प्राथमिकताएं तय करना, नगर निकायों के द्वारा कराये जा रहे कार्यों का निरीक्षण, नियोजन एवं विकासात्मक गतिविधियों का संचालन, वार्षिक आम सभा का आयोजन, म्यूनिसीपल वार्ड की जवाबदेही एवं इनके कार्यों में पारदर्शिता इत्यादि हो सकती है।

25.3.11 नगर-निकायों से संबंधित विषय
12वीं अनूसूची (अनुच्छेद,243-ब)

नगर निकायों के कृत्यों से सम्बन्धित विषयों का उल्लेख संविधान की 12वीं अनुसूची में किया गया है जो निम्नवत है-

1. नगर के नियोजन सहित शहरी नियोजन।
2. भू-उपयोग का विनियम और भवन-निर्माण
3. आर्थिक व सामाजिक उन्नयन को ध्येय से नियोजन।
4. सड़क एवं पुल।
5. घरेलू उपयोग व औद्योगिक और वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए जलापूर्ति।
6. जन स्वास्थ्य, स्वच्छता, जल-प्रबन्धन एवं कूड़ा-कचरा निस्तारण।
7. अग्निशमन सेवाएं।
8. परिस्थितिकीय एवं पर्यावरण संरक्षण के ध्येय से शहरी वनीकरण।
9. शाररिक व मानसिक विकलांगों सहित समाज के कमजोर वर्गों का हित संरक्षण।
10. मलिन बस्ती सुधार एवं उन्नयन।
11. शहरी गरीबी निवारण।
12. नागरिक जन-सुविधाओं जैसे पार्क, उद्यान, और क्रीडा मैदानों की व्यवस्था करना।
13. सांस्कृतिक, शैक्षणिक व सौंदर्यपूर्ण विकास।
14. शव-गृह, कब्रिस्तान और विद्युत शव-दाह-गृह।
15. पशुओं के लिए पीने के पानी के तालाब और पशुओं के प्रति क्रूरता की रोकथाम।
16. जन्म-मृत्यु के आंकडों सहित महत्वपूर्ण सांख्यि की सूचना।
17. गलियों, पार्किंग स्थल और स्टापों के पथ-प्रकाश(लाईट) की सुविधाओं की व्यवस्था और जल-प्रबन्धन।
18. पशु वधशालाओं और चर्मशोधनालाओं का विनियमन; ।

25.3.12 नगर-निकायों के कार्य एवं शक्तियॉं

प्रत्येक नगर निकाय का यह कर्तव्य होगा कि वह अपने क्षेत्र के भीतर निम्नलिखित व्यवस्था करे-

1.सार्वजनिक सड़कों और स्थानों पर पीने का पानी।
2.सार्वजनिक सड़कों और स्थानों पर रोशनी।
3.नगरपालिका की सीमा का सर्वेक्षण करना और सीमा चिन्ह लगाना।

4.सार्वजनिक सड़कों, स्थानों और नालियों की सफाई करना, हानिकारक वनस्पति को हटाना।

5.संतापकारी, खतरनाक या आपत्तिजनक, व्यापार, आजीविका या प्रथा का विनियमन करना।

6.आवारा व खतरनाक पशुओं को परिरूद्व कराना, हटाना या नष्ट करना।

7.लोक सुरक्षा, स्वास्थ्य या सुविधा के आधार पर सड़कों या सार्वजनिक स्थानों में अवांछनीय और अवरोध प्रक्षेप हटाना।

8.खतरनाक भवनों या स्थानों को सुरक्षित बनाना या हटाना।

9.मृतकों के निस्तारण के लिये स्थान अर्जित, अनुरक्षित, परिवर्तित और विनियमित करना।

10.सार्वजनिक सड़कों, पुलियों, बाजारों व वधशालाओं, शोचालयों, संड़ासों, मुत्रालयों, नालियों, जलोत्सारण, निर्माणकार्यों तथा सीवर व्यवस्था सम्बन्धी निर्माण कार्यों का निर्माण, परिवर्तन और अनुरक्षण करना।

11.घरेलू, औद्योगिक और वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए जलापूर्ति उपलब्ध करना।

12.सड़क के किनारे तथा सार्वजनिक स्थानों में वृक्ष लगाना और उनका अनुरक्षण करना।

13.ऐसे स्थानों में, जहां वर्तमान जल सम्भरण के अप्रर्याप्त या अस्वास्थ्यप्रद होने से वहां के निवासियों के स्वास्थ्य को संकट हो, शुद्व और स्वास्थ्यप्रद जल के पर्याप्त सम्भरण की व्यवस्था करना, मनुष्यों के उपयोग के लिए प्रयुक्त होने वाले जल को प्रदूषित होने से बचाना और प्रदूषित जल के ऐसे उपयोग को रोकना।

14.जल सम्भरण हेतु सार्वजनिक कुंओं को ठीक हालत में रखना उनके जल को प्रदूषित होने से बचाना तथा उसे मनुष्यों के उपयोग योग्य बनाये रखना।,

15.जन्म और मृत्यु का पंजीकरण सुनिश्चित करना।

16.सार्वजनिक टीका लगाने की प्रणाली की स्थापना तथा उसका अनुरक्षण।

17.सार्वजनिक चिकित्सालयों और औषधालयों की स्थापना तथा उनका अनुरक्षण या उनकी सहायता करना और सार्वजनिक चिकित्सा सम्बन्धी सहायता की व्यवस्था करना।

18.प्रसूति केन्द्रों, शिशु कल्याण, और जन्म नियंत्रण क्लीनिकों की स्थापना, अनुरक्षण और सहायता करना और जनसंख्या नियन्त्रण, परिवार कल्याण और छोटे परिवार के मानकों को प्रोत्साहित करना।

19.पशु चिकित्सालयों का अनुरक्षण करना या अनुरक्षण हेतु उन्हें सहायता देना।

20.प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना और उनका अनुरक्षण करना।

21.आग बुझाने में सहायता देना और आग लगने पर जीवन तथा सम्पत्ति की रक्षा करना।

22.नगरपालिका में निहित या उसके प्रबंधन में सौंपी गई सम्पत्ति की सुरक्षा करना, उसका अनुरक्षण तथा विकास करना।

23.शासकीय पत्रों पर तत्काल ध्यान देना और ऐसे विवरण और रिपोर्ट तैयार करना जिन्हें राज्य सरकार नगर पालिका से प्रस्तुत करने की अपेक्षा करे।,

24.विधि द्वारा उस पर अधिरोपित किसी बाध्यता की पूर्ति करना।

25.चर्म-शोधनशालाओं को निनियमित करना।

26.पार्किंग स्थल, बस स्टाप और जन सुविधाओं का निर्माण और अनुरक्षण करना।

27.नगरीय वानिकी और परिस्थितिकी पहलुओं की अभिवृद्वि और पर्यावरण का संरक्षण करना।

28.समाज के दुर्बल वर्गों के जिनके अन्तर्गत विकलांग और मानसिक रूप से मन्द व्यक्ति हैं हितों का संरक्षण करना।

29.सांस्कृतिक, शैक्षणिक और सौन्दर्यपरक पहलुओं की अभिवृद्वि करना।

30.कांजी हाउस का निर्माण और अनुरक्षण करना और पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण करना।

31.मलिन बस्ती सुधार और उन्नयन।

32.नगरीय निर्धनता कम करना व नगरीय सुख-सुविधाओं, जैसे पार्क, उद्यान और खेल के मैदानों की व्यवस्था करना।

स्वैच्छिक कार्य

उपरोक्त बाध्यकारी कर्तव्यों के अतिरिक्त संविधान में कुछ ऐसे कर्तव्यों का भी उल्लेख है जो बाध्यकारी न होकर स्व-विवेकानुसार की श्रेणी में निम्नवत हैं-

1. उन क्षेत्रों में, जिनमें चाहे पहले निर्माण किया गया हो या नहीं, नवीन सार्वजनिक सड़कों का विन्यास और इस प्रयोजन के लिए भूमि अर्जित करना।
2. मास्टर-प्लान तैयार करना और उसे निस्पादित करना।
3. पुस्तकालय, संग्रहालय, वाचनालय, रेडियो संग्राहों केन्द्रों, कुष्ठाश्रम, अनाथालय, शिशु सदन और महिला उद्वार गृह, पागलखाना हाल, कार्यालय, धर्मशाला, विश्राम-गृह, दुग्धशाला, स्नानगार, स्नानघाट, धोबियों के धुलाई-स्थल, पीने के पानी का स्त्रोत (ड्रिंकिंग फाउन्टेन), तालाब, कुआं, तथा अन्य लोकोपयोगी निर्माण कार्यों का निर्माण, उनकी स्थापना तथा उनका अनुरक्षण में अंशदान देना।
4. प्राथमिक स्कूलों की स्थापना और उनके अनुरक्षण से भिन्न उपायों द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों का प्रसार करना।
5. जनगणना करना और ऐसी सूचना के लिये इनाम देना, जिससे जन्म-मृत्यु के आंकड़ों का सही रजिस्ट्रीकरण सुनिश्चित हो सके।
6. ऐसी सूचना के लिये इनाम देना जिससे इस अधिनियम के आधीन आरोपित कर के अपवर्चन का या नगर निकाय में निहित या उसके प्रबन्ध या नियन्त्रण में सौंपी गई सम्पत्ति को हानि पहुंचाने या उस पर अतिक्रमण करने का पता लगे।
7. स्थानीय विपत्ति पड़ने पर, सहायता कार्यों की स्थापना और उनका अनुरक्षण करके या अन्य प्रकार से सहायता करना।
8. धारा-298 के शीर्षक छः के उपशीर्षक (क) के आधीन उल्लिखित किसी व्यापार या निर्माण के कार्यान्वयन के लिये उपयुक्त स्थान प्राप्त करना या प्राप्त करने में सहायता देना।
9. सीवेज के निस्तारण के लिये फार्म या कारखाना स्थापित करना और उसका अनुरक्षण करना।
10. कूड़ा-करकट की कम्पोस्ट खाद तैयार करने के लिए प्रबन्ध करना।
11. पर्यटक यातायात की अभिवृद्वि करना।
12. मेले और प्रदर्शिनियां लगाना।
13. गृह और नगर नियोजन योजनाएं तैयार करना और उनका निष्पादन।
14. व्यापार और उद्योग की अभिवृद्वि के लिये उपाय करना।
15. अपने कर्मचारियों के लिये श्रम कल्याण केन्द्र स्थापित करना और ऐसे कर्मचारियों के किसी ऐसोशियेशन संघ या क्लब की सामान्य उन्नति के लिए अनुदान अथवा ऋण देकर उसके कार्याकलापों में सहायता देना।
16. नगर पालिका संघों को संगठित करना और उन्हें अंशदान देना।
17. धारा-7 में या इस धारा के पूर्वगामी उपबन्धों में निर्दिष्ट उपायों से भिन्न ऐसे उपाय करना, जिनसे लोक सुरक्षा, स्वास्थ्य या सुविधा में अभिवृद्वि होने की सम्भावना हो।
18. भिक्षा-वृति पर नियंत्रण के लिये उपाय करना।
19. कोई ऐसा कार्य करना जिसके सम्बन्ध में व्यय राज्य सरकार द्वारा या नगरपालिका द्वारा विहित प्राधिकारी की स्वीकृति से, नगर पालिका निधि पर समुचित प्रभार घोषित किया जाए।

अभ्यास प्रश्न-2

1. 74वें संविधान संशोधन में 12वीं अनुसूची के अन्तर्गत शहरी स्थानीय निकायों कोदिये गये हैं।.....
2. नगर निकायों के कार्यों से संबंधित विषयों का वर्णन संविधान की 12वीं अनुसूची में किया गया है। सहीगलत/

25.4 सांराश

सरकार के 74वें संविधान संशोधन के माध्मय से पुनः नगरीय क्षेत्रों में स्थानीय लोगों को निर्णय लेने के स्तर पर सक्रिय व प्रभावशाली सहभागिता बनाने का प्रयास किया गया है। संविधान का 74वां संशोधन में नगर निकायों - नगर पलिका, नगर निगम और नगर पंचायतों में शहरी लोगों की भागीदारी बढ़ाने में मदद की है। इस संशोधन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि अब शहरों, नगरों, मोहल्लों की भलाई उनके हित व विकास संबंधी मुद्दों पर निर्णय लेने का अधिकार केवल सरकार के हाथ में नहीं है। अब नगरों व शहर के ऐसे लोग जो शहरी मुद्दों की स्पष्ट सोच रखते हैं व नगरों, कस्बों व उनमें निवास करने वाले लोगों की नागरिक सुविधाओं के प्रति संवेदनशील है, निर्णय लेने की स्थिति में आगे आ गये हैं। महिलाओं व पिछड़े वर्गों के लिए विशेष आरक्षण व्यवस्था ने हमेशा से पीछे रहे व हाशिये पर खड़े लोगों को भी बराबरी पर खड़े होने व निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करने का अवसर दिया है। 74वें संशोधन ने सरकार (लोगों का शासन) के माध्मय से आम लोगों की सहभागिता स्थानीय स्वशासन में सुनिश्चित की है। हर प्रकार के महत्वपूर्ण निर्णयों में स्थानीय लोगों को सम्मिलित करने से निणर्य प्रक्रिया प्रभावी, पारदर्शी व समुदाय के प्रति संवेदनशील हो जाती है।

25.5 शब्दावली

विकेन्द्रीकरण- एक केन्द्र में न रहना, विस्तारित होना

संक्रमणशील- ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों में परिवर्तित होने वाले क्षेत्र

गणपूर्ति- किसी भी कार्यवाही की पूर्ति हेतु उपस्थित अनिवार्य सदस्यों की संख्या

कांजी हाऊस- जहॉ आवारा पशुओं को पकड़ कर रखा जाता है

25.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1

1. नगर निकाय 2. सही 3. ख 4. सही 5. ख

अभ्यास प्रश्न- 2

1. 18 कार्य/उत्तर दायित्व 2. सही

25.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हार्क नगरीय स्वशासन प्रशिक्षण मार्गदार्शिका।

2. चौहत्तरवां संविधान संशोधन अधिनियम।

3. कुछ आम सवाल - नगरीय स्वशासन,यहां मिलेंगे उनके जवाब,2005, संसर्ग पटना एवं प्रिया नई दिल्ली।

25.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारत में पंचायती राज- के. के. शर्मा

2. रोल ऑफ पंचायत इन वैलफेयर स्टेट- अब्राहम मैथ्यू

3. भारत में स्थानीय शासन- एस0 आर0 माहेश्वरी

4. पंचायती राज में प्रमाण पत्र- डॉ0 घनश्याम जोशी एवं डॉ0 छाया कुंवर(उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल)

5. भारतीय प्रशासन- अवस्थी एवं अवस्थी

25.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.नगर निकायों के गठन एंव संरचना को स्पष्ट करें।

2.नगर पालिका की बैठकें व उनकी कार्यवाहियों को स्पष्ट करें।

3.नगर निकायों के वित्तीय प्रबन्ध को विस्तार से बतलाइये।

4.नगर निकायों से संबंधित विषय बतलाइये।

5.नगर निकायों की कार्य एंव शक्तियां एवं स्वैछिक कार्य बताएं